

भारतीय राजनीति और शासन

भारतीय राजनीति और शासन

लेखक

के० आर० बम्बवाल

एम० ए०, यू० पी० ई० एस०

डी० वी० एस० राजकीय डिग्री कॉलेज नवीनाल

१९६७

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली - नई दिल्ली बगड़ीगढ़ जयपुर - सप्तगढ़

BHARTIYA RAJNEETI AUR SHASAN

Bs

K. R. Bombwall

Rs 12 00

© Atma Ram & Sons Delhi 6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, सचायक
आत्माराम एंड सन्स
वा मीरी गट दिल्ली-६

शाखाए

होज खास नई दिल्ली
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ
चौथ रास्ता जयपुर
17 प्रशोक माग लखनऊ

तृतीय संस्करण 1967

मूल्य बारह रुपय

मुद्रक

अनीदय प्रस जयपुर

तीसरे संस्करण की भूमिका

इस प्रमत्तता है कि अंग्रेजी पुस्तक के ममान ही हिन्दी अनुवाद का भी सर्वप्रथम स्वागत किया गया है। इतने घाट समय में ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित होना उसकी उपयोगिता सिद्ध करता है। इस नवानुसंधान में जहाँ भी आवश्यकता थी संशोधन कर लिए गए हैं। भारत के संविधान में इस बीच जो संशोधन हुए हैं इस संस्करण में उनका भी यथा स्थान विवरण उल्लेख कर दिया गया है।

प्रकाशक

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक यहाँ Indian Politics and Government जिसे भारतीय विधिविज्ञान के शास्त्र विधान के छात्रों के लिए लिखा गया था का हिन्दी रूपान्तर है। इसका लिप्यंतरण भारत के राष्ट्रीय पार्लियामेंट और वैधानिक विकास का इतिहास है। इस पुस्तक को तैयार करने में लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियों की सहायता से भी लाभ उठाया था और उनसे प्रति अपने ज्ञान को प्राप्त किया और अंत में दो वर्षों के पुस्तक सूची में स्वीकार किया था। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के विषय में यह एक वैधानिक दृष्टिकोण से एक सम्पूर्ण प्रयास है फिर भी लेखक ने इस संग्राम के विभिन्न चरणों में ब्रिटिश सरकार द्वारा उसका सामना करने के हेतु अपनाई गई नीतियों और समय-समय पर भारत में किए गए वैधानिक सुधारों का सतुलित निरूपण और मूल्यांकन करने का यथासम्भव प्रयत्न किया था।

Indian Politics and Government का यह अनुवाद तैयार तो लगभग दो वर्ष पूर्व ही हो गया था परन्तु कुछ अप्रत्याशित कठिनायियों के परिणामस्वरूप इसके प्रकाशन में विलम्ब हुआ है। ऐसा दशा में दो एक स्थानों पर संशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है। भाषा है यह श्रुतियाँ अंग्रेजी संस्करण में दूर हो जायेंगी। यह अनुवाद यहाँ संभवतः और सुरक्षित लिप्यंतरण भी विश्वप्रकाश के परिश्रम का फल है। या विश्वप्रकाश का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने अनुवाद के साथ मूल सामग्री में यत्र-तत्र महत्वपूर्ण परिवर्धन कर दिए हैं। अंततः भाषा है कि यह पुस्तक छात्रों के लिए Indian Politics and Government से भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ० आर० अम्बेडकर

विषय-सूची

१	विषय प्रवेश	१
२	भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म	२५
३	उत्तर राष्ट्रीयता-वादा का प्रारम्भिक स्वरूप	४६
४	उत्तर राष्ट्रीयता का विकास	८१
५	भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का प्रवेश	१०३
६	माल्टे मिण्टो सुधार	१२१
७	प्रथम महायुद्ध के बीच भारतीय राजनीति	१२८
८	भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट १९१९	१४८
९	समूहयोग आन्दोलन	१८६
१०	साइमन कमिशन से गोलमेज परिषद तक	२१०
११	१९३५ का भारत सरकार अधिनियम	२२७
१२	प्रांतीय स्वायत्तता पर आचरण	२३३
१३	महायुद्ध और अध्यात्मिक गतिरोध	२७६
१४	स्वतन्त्रता और विभाजन	२८७
१५	भारत का नया संविधान	३१४
१६	भारत का नया संविधान-क्रमशः	३६६
१७	देशी राय-जनका विलीनीकरण और लोकतन्त्रीकरण व भारत का भावनात्मक एकीकरण	३८७
१८	महात्मा गांधी और जनका सन्देश	३९१
१९	नहल स्वतन्त्र भारत के निर्माता अनुक्रमणिका	४६६
	सहायक ग्रन्थों की सूची	४५३

भारतीय राजनीति

श्रीर

शास्त्र

अध्याय १

विषय-प्रवेश

१ अंग्रेजों को भारत विजय

अंग्रेज शासन ने अपनी जाति की शक्ति से भारत की विजय का काम साधने के लिये न तो आरम्भ किया था और न समाप्त किया था तथा न ही यह कोई युद्धात्मक काम था यह था एक विलम्बित अन्तर्द्वन्द्व छोट-छोटा काम। इसका सोलहवाँ साल में रानी एलिजाबेथ के द्वारा घोषित एक राजपत्र के अनुसार स्थापित की गई ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वाणिज्यिक कामों का बाद में भारत में अंग्रेज साम्राज्य बनाने में परिणत हुआ। पहले पन्द्रह वर्षों में अपना सारी शक्ति वाणिज्य-विस्तार के काम में लगाई और उम्र में उसकी कोई भी राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं थी। राजनीतिक अधिकार की सपना कुछ नागरिक मुविद्याओं का भाग बनने के लिए ही वह कुछ राष्ट्रीय धर्म की स्वामिनी बन गई। यद्यपि अंग्रेजों ने ईस्वी सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में काम किया था तथापि ई० १७६५ में सप्ताह शाह आलम के बगान विस्तार और उन्नीसवाँ के साम्राज्यिकार (सीवानी) प्राप्त करने से ही भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामन्य का आगोश हुआ था—यही जग सक्ता है। अब यह एक कम्पनी वाणिज्यिक सम्पत्ति नहीं रह गई थी, कारण वाणिज्यिक काम में राजनीतिक शक्ति का समावेश हो गया था।

वाणिज्यिक शक्ति का राजनीतिक सम्पत्ति—१७६६ में राजा रणजितसिंह का पराजय के साथ-साथ भारत में अंग्रेज राज्य स्थापित करने का काम और उसका हस्तक्षेप से प्रतिष्ठित करने का काम समाप्त हो गया। इस तरह से सूर्यनाति, छत्र चतुर्षु मुद्राविजय अथवा बदल प्रभाव से अंग्रेजों ने भारत में अपना साम्राज्य बना लिया।

महद अन्वयस्थित और लक्ष्य सम्पन्न शक्ति—१७६० में पञ्जाब में सिक्खों काय के भारत के साथ ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापन और माटन का काम भी पूरा हो गया। विन्ही शासन की शक्ति इस विस्तृत प्रायद्वीप के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसारित हो गई। वस्तुतः अंग्रेजों की भारत विजय एक मन्त्र, अन्वयस्थित और लक्ष्य सम्पन्न शक्ति थी। यह विजय केवल सामरिक विजय ही नहीं थी। भारत में अपने राज्य-विस्तार के लिए अंग्रेजों ने कई उपमाओं का प्रयोग किया।

इनमें सबसे प्रभावशाली उपाय देशी नरेशों की पारम्परिक ईर्ष्या से साम उठाना था। इस चान में अग्रज अपने विपत्ती फ्रांसिसियो से बाजी मार ले गए। पहले पहले उन्होंने दीवानों के रूप में भारतीय प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया तत्पश्चात् दुहरे शासन का द्धचवेश उतार फेंका और अंत में वे स्वयं शासक ही बन बठ। एगलण्ड के अधिपति चार्ल्स त्रितीय ने बम्बई को १० पौंड प्रति वर्ष के पट्टे पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हवाले कर दिया। कम्पनी ने निजाम के शासनाधीन प्रदेश में ब्रिटिश सयदन के प्रतिपादन हेतु बरार को निजाम से मकर वतन के बदले में ले लिया। गड डन हीजी की पृथक्करण नीति भी बहुत से देशी राज्य को ब्रिटिश शासन के अंतगत जाने में सफल हुई। पंजाब को तलवार की नोक के बल पर जीता गया। इस प्रकार अग्रजों ने कूटनीति सैनिक-विजय और अनतिक उपायों का अवलम्बन कर भारत में अपने साम्राज्य का निर्माण किया।

क्या अग्रजों ने भारत मस्तिष्क की अद्भ-चेतन अवस्था में जीता ?—अग्रज भारत में आपारी बनकर आए थे और यहा शासक बन कर रहे। कतिपय कहा करते हैं कि यह परिवर्तन प्राकस्मिक ही हो गया। माना कि भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना और विस्तार करते समय किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार काम नहीं हुआ। फिर भी त्त सम्भव में यह ध्यान देने योग्य है कि सत्रहवीं शताब्दी की समाप्ति के पूर्व भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रधान सर जोशिया चार्ल्ड ने भारत में सदैव के लिए एक विशाल और सुन्द अग्रजी राज्य की नींव डानने का उद्देश्य अपने सम्मुख रखा था। लेकिन सर जोशिया क उत्तराधिकारी इस नीति से सहमत नहीं थे और उन्होंने साधारणतया साम्राज्य-स्थापन की मही प्रत्युत वाणिय विस्तार की ही नीति का पालन किया। १७४६ ई. में वनन जेम्स मिल्स नामक एक व्यक्ति ने बंगाल की विजय के लिए एक योजना तयार की थी। परन्तु चूकि ब्रिटिश अधिकारी ऐसा किसी योजना के प्रति उदासीन थे अतः उसने अपनी योजना आस्ट्रिया के सम्राट के सम्मुख रखी। यह ठीक है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सचानका ने राज्य विस्तार सम्बन्धी नीति का बहुधा विरोध भी किया परन्तु फिर भी यह तर्क विलुन निराधार है कि अग्रजा ने भारत मस्तिष्क की अद्भ चेतन अवस्था में जीता। हाँ राकता है कि सुदूर ब्रिटेन में स्थित कम्पनी के सचालका ने भारतीय प्रदेशों में सत्वर बन्ते हुए अग्रजी प्रभुत्व का सत्त्व विचार या समथन न किया हो। तकिन भारत में स्थित कम्पनी के कमचारी इस बात को मनी भाँति जानते थे कि उन्हें क्या करना है। ७ जून १७५६ को बगदाद न अत आफ सथम को भारत में एक एसी सेना निरंतर तयार रखने के सम्बन्ध में लिखा था जो प्रथम अवसर आते ही उनकी साम्राज्य-विस्तार विषयक महत्वाकांक्षा की पूर्ति में सहायक हो सके। अग्रजों ने दखा कि भारत में विद्यमान राजनीतिक अराजकता उन्हें साम्राज्यवाण लिप्सा-गति का अनुपम अवसर प्रदान कर रही है और उन्होंने इस स्वल्प अवसर से साम उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

२ विदेशी शासन के दोष—प्रवृत्ति और प्रसन्नोप

ब्रिटिश राज्य के तत्कालीन वर्तमान— १९० वर्षों से अधिक के अपने सम्पूर्ण शासन-काल में अंग्रेज शासन भारत के जनता को ब्रिटिश राज्य के तत्कालीन वर्तमानों के मनमात्रक बलना के कारण है बहनात रहे । भारत के इतिहास के ऊपर विदेशी दुर्दशा-पुस्तक । म ब्रिटिश शासन-काल में भारत द्वारा की गई नतिक एवं भौतिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत विवरण पद्यान्त मात्रा में गत ये नकिन इस उत्पत्ति के लिए भारत को क्या मूल्य चुकाना पया इनका एसी अधिकांश पुस्तकों में उल्लेख मात्र ही नहीं किया जाता था । हम जानें तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश राज्य ने भारत को रेल, टेलीफोन और टेलीग्राफ आदि सभ्यता के कल्पित बाल्य उपकरण प्रदान किए लेकिन यहाँ यह भी स्मरण है कि जापान ने जो उन्नतता प्राप्त की मध्यकाल में सभ्यता का दोष में बहुत ही विद्युत् द्वारा दश या सभ्यता के समस्त उपकरणों को भारत का तुलना में कौन अधिक शीघ्रता में प्राप्त कर लिया और वह भी बिना किसी विदेशी शासन की आधीनता के स्वीकार किए । भारत का राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकाकरण जिनका अंग्रेजों का ध्येय किया जाता है राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं आर्थिक समृद्धि के मूल्य पर सम्पन्न हुआ । हमें कोई मद्दह नही कि पश्चात्य शिक्षा ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायता किया परन्तु अंग्रेजों ने उमका सभ्यता परहित को भावना से प्रेरित होकर नहीं किया था । सच तो यह है कि भारत जिस विशाल देश का शासन-संचालन करने में अंग्रेजों को अनुमति दी गयी थी सम्यक शासन संचालन के लिए उन्हें सत्त बरसों का आवश्यकता था । अंग्रेजों ने जिनका इन आवश्यकता का पयात्त माया में पूरा किया । पश्चात्य शिक्षा दीक्षा ने पहले-पहले शिक्षित भारतीयों की आस्था में तीव्र चलाचल उत्पन्न की जिसके फलस्वरूप वे धीरे धीरे अपने धर्म, साहित्य और सांस्कृतिक विमूर्त हानि गए । लेकिन यह चलाचल बने तक बना रह जाती था अंग्रेजों भी एक माया था । यहाँ यह भीमा पार हृदय शिक्षित भारतीयों को यह समझने दर ने लगी कि विदेशी शासन में हमारा भयकर राष्ट्रीय पतन हुआ है ।

भारत का आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दासत्व—राजनीतिक स्वाधीनता का अन्तर्गत ता अंग्रेजों को भारत विजय का एक एका परिणाम था जो बिल्कुल स्पष्ट किया देना था । लेकिन इस राजनीतिक पराधीनता के साथ ही-साथ ही हीर भी नतीज हुए जा यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में तो शिक्षा नहीं लिए परन्तु शिक्षित भारत का भारत भारत की आर्थिक समृद्धि की जड़ें बाट डाला तथा देश के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पतन का पथ प्रारम्भ किया ।

नर अंग्रेज भारत में आए, जैसा समृद्ध था । वस्तुतः भारत के धन और शक्ति न ही अंग्रेजों को अपनी ओर आकर्षित किया था । लेकिन अंग्रेजों राज्य की स्थापना देश के आर्थिक ह्रास का कारण बन गई । भारत के अर्थ हस्त बना बौद्ध एवं

धधे सभी कुछ धीरे धीरे चौपट ढे गए क्वाकि उ हें विदगी उद्योग धध्या ग अत्यन्त प्रतिभूल एव विपम परिस्थितियो म टक्कर नेना पडी ।

धातायात क साधनो क शीघ्र विनाश न अग्र गा को भारतवष म अघना गविन सबन करन म सहायना दी । इसी समय इगनण स मशीना का बना वस्तुधा का भारत म आना और विकना गर हो गया । इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि गारा की शिल्पकलाओ और घरतू उद्योग ध धो को अपार क्षति पहुँची । अग्र जा न गिर रह भारतीय उद्योग ध धा को तनिक भी सगारा नही लिया । उहान तो भारतवष की ब्रिटिश यन्त्राद्योगा के धास्ते कच्च मान का प्रपाता और अपने मान का ग्राहक बनान की निर्धारित नीति का पूणरूप से अनुसरण किया । ब्रिटिश सरकार का इस नीति ने भारत क विश्वविश्वन जनाहो के मुह का रोटी छीनने के लिए लकाशापर और मानचस्टर क विधान यन्त्रोद्योगो का माग निष्कण्टक कर लिया । दूसरी कोई समय सरकार इस विनाश को रोक सकती थी । अग्र गा सब कुछ य न थ तो केवन भारत के हितपा । इसका धातक परिणाम यह हुआ कि सहस्रा शिल्पिया की जीविका का अन्त हो गया और उह कधि का आश्रय नना पना । जब भूमि पर अधिक दवाव पडना प्रारम्भ हुआ उसकी उवरा शक्ति जवाब देी नगी । एसी स्थिति म जनता दुख दय स कराह उगी । गी डी ई वाचा न इस दाम्ण्य स्थिति का दिग्गशन करते हुय किया है— भारत क योगा की आधिक अवस्था ब्रिटिश शासन के अ तगन हास का प्राप्त हो रहा थी । तगमग ४ करार भारतीयो को केवन एन वार भोजन नसाध हाना था । भारत मनी गाड सविगरी ने मा १८७५ म स्वीकार किया था कि ब्रिटिश गामन भारत का रवन शापण करक उस रवनहीन य दवन बना रहा है । इस प्रकार यह स्पष्ट हो गाता है ब्रिटिश राज्य क कारण भारत का न कवन राजनीतिक पराधानता ही भोगी पडी प्रत्युत उसन परा म आधिक दासता की बन्धिया भी पन गई ।

ब्रिटेना शासन की छाया म भारत क आर्थिक और राजनीतिक पतन क साथ ही साथ यहा क गावा म सहस्रा वर्षों स गा स्व शासन बना आ रहा था उमश म नीवें हिन गन । भारतीय रामो का पचायता शमन प्रस्था म मगत पछाटाने भी वाई हस्तक्षेप नहा किया था । उहने अपनी सत्ता के प्रयाग का तगान वमूनी और सेना की भरती तब हा सीमित रगा था । लोकप्रिय पचायतों अग्रिनाशन उन समयत वाप्यों को करने क लिए स्वतंत्र था जिनका दनिक जन जीवन पर प्रभाव पडना था । अग्रजा ने भारतवष म अघन पर तमाने ही इस परम्परा को उरुट लिया । य दश म कद्रोमुसी शासन पडति का स्थापना करन क लिए कटिबद्ध थ । धीरे धीरे ब्रिटिश शासन सम्पूर्ण दग म ध्याप्त हा गया और उसन यहाँ की त्रेषत आत्मक सस्थाधा का अन्त कर िया । यह भारतीय जनता का राजनीतिक आत्मनिभरता पर निमम आघात था ।

धीरे साम्राज्यवाधिया के पीछे पाछे त्रिचिपन मिशनरियो ने भारत म पदापण

रिया। शासन का उदात्त भाग पर बरकत हुआ था। भारतीय जनता की बानी हुई दरिद्रता और सामाजिक पावन का ग्राहक बन कर उन रिवाजों तथा व्यवहारों के कारण ईसाई धर्म का धर्म प्रचार के लिए रास्ता बन गया। अंग्रेजी दरिद्रता से मुक्ति एवं सामाजिक पावन का पावन से लोग न बचने की गम्भीर मईसाई धर्म की दाया ब्रह्मण थी। इस बात का पहल हा मकेन रिया का युवा है कि अंग्रेज न भारतीय का मानविक एवं आध्यात्मिक पावन के पावन से अलग बनने के लिए दा म पावन रिया प्रणाली का मूलपात रिया था। अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के सौन्दर्य तथा पावन रिया की प्राप्ति न भारत के शिक्षित वर्ग का माह रिया। इस प्रकार वही भाग रिया का व लिए सबसे अधिक महत्व था डाक्टर पन्नामि मीतारमर्या के भाषा म विद्रोही शासन के स्थापन" बन गए। उस समय जबकि रिमान और वाराणसी विद्रोहा शासन के जग म अपनी अन्तिम पहिया गिन रहे थे राष्ट्र मीनिक औद्योगिक बौद्धिक और तर्किक रूप से रिया रिया हा रहा था। अंग्रेजियन के रण म रण भारतीय नीकियों तथा पदवृद्धि के लिए मध्य कर रहे थे। यह एक एक टुकड़ा एक पुष्पत्वहीन राष्ट्र का चित्र था जो न बचल अपना बल ही अपितु आत्मविश्वास भी सा बठा था और अब अन्तर्गत अमहाय एवं अनाय धवस्था म विद्रोहा भाषा की कृपासे का याचक था।^१

३ १८५७ का भारतीय विद्रोह

१८५७ का विद्रोही विद्रोह भारत के राष्ट्रीय प्रतिगम की प्रथम महत्वपूर्ण घटना है। कतिपय यूरोपीय इतिहासकारों का दृष्टिकोण रहा है कि वह कवन उन थोड़े से प्रगतिशील सिपाहियों का ही विद्रोह था जिन्हें कुछ अधिकारच्युत एवं प्रतिष्ठाहीन सामानों ने अपने स्वाध-साधन के लिए भड़का दिया था। हम तो कोई साह नहीं कि विद्रोह उस स्वतंत्रता प्राप्ति से सवदा भिन्न था जिसका मूलपात १८५५ में वंग्रम की स्थापना के पश्चात् हुआ। विद्रोह के मयत्न में शिक्षिता था एवं उस जनता की वास्तविक तथा अनवरत सहायता भी न मिली। हमें अतिरिक्त विद्रोह एक प्रजातांत्रिक और प्रगतिशील प्राप्ति होने का अपेक्षा एवं प्रतिगामी आन्दोलन ही अधिक था। लेकिन फिर भी वह भारत की स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध था, ब्रिटिश शासन को उड़ से उखाड़ कर फेंकने का एक प्रयत्न और गौरवपूर्ण प्रयास था। चाहे शुरू में यह विद्रोही विद्रोह हा परन्तु बाद में इसने ऐतिहासिक अन्तर्गत भाषणों की डा० पन्नामि मीतारमर्या और डा० पणिसर न हम आन्दोलन का स्वतंत्रता प्राप्ति का एक महान आन्दोलन बनाया है। और भावसर का मायही बन है। इसने विद्रोही भाषण के प्रति भारत की नैतिक आध्यात्मिक युग का प्रकाश रिया। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता का मयत्न पदमि अन्तर्गत उपाय स्थापना था

१ डा० मीतारमर्या — हिन्दी भाषा में मयत्न मूलमत्त इन इतिहास
पृ० ७०८ ।

बराबर आगे बढ़ता गया और वह १५ अगस्त १९४७ तक जबकि भारत ने विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त की जागे रहा ।

असतोप का प्रचण्ड विस्फोट—सन १८५७ का विद्रोह ब्रिटिश शासन के प्रभाव से उत्पन्न हुए भारतीय जनता के असंतुन असतोप का आंतरिमिक विस्फोट था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नोतुप नौकरो के दुष्टतापूर्ण कृत्यो देश के निम्न भाविक शासन और जनता की बर्नी हुई दरिद्रता विविधयन मिशनरियो के प्रचार एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रसार ने भारत में पापक अस तोप की भावना को उत्पन्न कर लिया था । भारत में विद्रोह के समय राजा टनहोजी का यह हृत् विश्राम था कि मैं अपना पीछे शांत भारत को छोड़ जा रहा हूँ । तबिन वास्तव में उस समय भारत पर एक जवानामुखा के तुल्य था जो श्रव फटने ही वाला था । सना में चरबी तग कारतूमो के प्रयोग न तो वाहद में दियासलाई लगाने भर का काम किया । श्रवध सतारा बीदर और नागपुर के पञ्च्युन शासकों तथा भाभी की रानी बीरागना तक्षमीदाई ने उस घनीभूत अस तोप को नवृत्त एवं दिशा प्रदान की ।

सन सत्तावन का विद्रोह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका । अग्रज उसका दमन करने में सफल हुए तबिन विद्रोह को दवाने में अग्रजा न जिस निरप्य और प्रति हिंसात्मक नीति का आचरण किया हिंसा का सामना करत समय जिस पशुना और बदरता का अपनाया चारो ओर जिस भय और आतंक की मृष्टि की वह उनके जातीय जीवन पर काव का टीका है । गरट ने एक इण्डियन कमन्वी में उभवा निम्नलिखित शब्दों में बणन किया है अग्रजो न अपने सत्ता बर्तियो को बिना किसी अभियोग की सुनवाई के भीत के घाट उतार लिया यह सभी भारतीयो की दृष्टि में बदरता की चरम सीमा थी । मुमनमाना को मारने से पहले सूअर की खालो में सी लिया जाता था उन पर सूअर की चरबी मल दी जाती थी फिर उनके शरीर गला दिए जान व और त्रि टुआ को बन् पूवक घमघ्रष्ट किया जाता था । हजारो की सख्या में स्त्री पुरुष और बानको को त्रिनी में ही नती प्रचण्ड नेताता में जा जा कर बर्तन किया गया । बुद्ध गावा का अपनाधी धापित कर दिया जाता था और उनके निवासियो को तगवार के घाट उतार लिया जाता था । जे की अग्रज सना पहुचती थी वहाँ के निवासियो के प्राण सक्कट में पड जाते थे । उह चाहे उधने काइ अपनाया किया हो अथवा नता अग्नि का बानाओ में भस्मीभूत कर दिया जाता था ।

बिद्रोह के परिणाम—सन सत्तावन के विद्रोह ने एक उस निरप्यता न जिसके साथ उसका दमन हुआ जातीय बर्ता की भावना को विपुल मात्रा में उत्पन्न किया । भारत के इतिहास में यह बिद्रोह एक युगांतरकारी घटना है । एसाय साथ भारत में एक युग का अन्त और दूसरे युग का उत्पन्न होता है । बिद्रोह के पव ब्रिटिश शासकों एक भारतीय जनता के बीच युनाधिक प्रमपण सम्बन्ध बन हुए थे । बिद्रोह न उन प्रमपण सम्बन्धों में अचानक हा आभूत परिवर्तन कर दिया । पहले अग्रज भारतीय

जनता के साथ किसी सीमा तक स्नेहमय एवं सदभावनापूर्ण वातावरण में जीवन यापन कर रहे थे रंगभेद और जातीय भ्रमिमान की अधिक भावना नहीं थी यहाँ तक कि कभी कभी अन्तर्जातीय विवाह भी हो जाते थे लेकिन विद्रोह ने इस सारी स्थिति को बिल्कुल ही बदल दिया ।

जातीय विद्वेष—विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश और आंग्ल भारतीय समाज ने पृथक् छावनियाँ और नगर स बाहर स्थित सिविल लाइनों में रहना प्रारम्भ कर दिया । अब उनका भारतायी व साथ सरकारा कामों के अतिरिक्त बहुत ही कम सम्पर्क करने लगा । फतत शासक और शासिता के बीच भेद की खाई उत्पन्न हो गई और जन्म जन्मे तिन बीतते गए उमका विस्तार होता गया । अंग्रजा न भारतीया को नितान्त असभ्य समझना प्रारम्भ कर दिया और उनके हृदय में इस विश्वास न घर कर गया कि भारताय जनता का तो केवल अविन प्रशान व द्वारा अथवा डरा घमना कर ही बश में किया जा सकता है । उाते दशवासिया के प्रति जिन घोर घृणा और प्रचण्ड असत्ताप की भावना का प्रथम शिवा उसका सुन्दर गणो परिणाम निकले ।

रक्त और लाह की नीति—भारतीय जनता के प्रति अविश्वास की भावना ने स्वयं को अंग्रजा द्वारा अपनाई गई रक्त और लाह की नीति (Policy of blood and iron) में व्यक्त किया । भारतीय अंग्रजों के कोपमाजन बन गए और उनके स्वाभिमान पर पग पग पर आघात किया जान लगा । अंग्रजा की नादिरशाह एवं मंगोना से तुलना करत हुए गरट इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नृशमता और निन्द्यता में अंग्रज इन दोनों में से किसी से कम नहीं थे । उसने लिखा है कि 'जस नादिरशाह ने दि नो का वारान कर दिया था वम ही अंग्रजा न त्स्नी को बीरान किया । मंगालों न अपराधिया और निरपराधिया का बिना किसी भेत्भाव के समान रूप में बध किया था और गाँवा में आग लगा कर अपनी बबर वृद्धाधा का पूर्ति की थी । अंग्रेज भी इसी लकार के फकीर बन ।' ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों का जरा-जरा सा दात के लिए अशुभाय अपराय हानि पर भी भयानक दण्ड दिए । एमके विपरीत यदि कोई यूरोपीय किसी भारत के न प्राण तक ने नेता तय भी उस बटून हल्का दण्ड दिया जाता था । सक्षम में महाराजा विक्टोरिया की वह नीति जिसमें कहा गया था कि 'प्रजा की प्रशानता में ही हमारा बच है उसका मतान में ही हमारी सुरक्षा है और उसकी वृत्तना ही हमारा लिए मन्थ प्ठ पारिनापि है व्यवहार में किचिमात्र भी प्रयुक्त न की गई ।

नीति का परिणाम— रक्त और लाह की नीति भारतीयों के लिए असह्य थी इसने उनके हृदय में अंग्रजा के प्रति भयानक विद्वेष की अग्नि की प्रवर्तित कर

१ जा० गन० सिंह द्वारा उद्धृत—नेवड मावस दन इण्डियन काँग्रेडियुगनन एण्ड नेशनल टवलपमेण्ट, पृ० १०८ ।

दिया। कोई भी दास अपने स्वामी से स्नेह नहीं कर सकता। यह स्वामी जा बरकर पशु के तुल्य आचरण करता है। विश्व ही घृणा का पात्र बन जाता है चाहे यह घृणा प्रकट न हो सके। भारतीयों के साथ भी यही हुआ। अंग्रजों का अपना द्धिग मनु, समझन लगे। यदा कदा घृणा का स्त प्रयोगा धारा न १८७२ के मानेरकोटला विद्रोह जती हिंसक चष्टामों में अपना निरास पाया। अंग्रजों ने स्त घटनाओं का भयानक प्रतिशोध लिया। उन्होंने मानेरकोटला विद्रोह के प्रश्न को नर ४९ सितारा का शिना किमी अमियाग की गुनवाई के तन्ने पर चन्ग दिया था। यद्यपि इस प्रकार के विस्फोट अधिक तो नहीं हुए परन्तु घृणा की प्रायः रागों के शिना में बराबर सुलगती रही। अंग्रजों के दण और मयाचार ने घृणा का इस भाग को नितन धीरे धीरे परन्तु असन्धिरूप से भारत में ब्रिटिश शासन को नडो को दुखल कर दिया और भी भडकाया।

भारतीयों का शासन से निष्कासन—भारतीयों के प्रति अविश्वास की नीति पर आचरण करने का फल यह हुआ कि ब्रिटिश शासकों ने उहें शासन के समस्त मत्त्वपूर्ण पन्ना स वाचन कर दिया। प्रजा मने जो वहन ही स्वामिभक्त ध शासकों की दृष्टि में वे भी सन्नेह के पात्र थे। महारानी विक्टोरिया के इस वचन की कि वश जाति और धम के आचार पर किमी भी भारतीयों को कोई भी पन् धारण करने से वधित नहीं किया जायगा पग पग पर अवहेलना की गई। विशेषी शासकों ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के फौलादी ढांचे—ग्राम् ० सी एस—में भारतीयों का प्रवेश कठिन कर देने के उद्देश्य से परीक्षा में धठने की अवस्था २१ वष से घटा कर २० वष और २ वष से घटा कर १६ वष कर दी। चूकि य परा गण वगण्ड में होती थीं, अन् उत्साही भारतीय नवयुवकों के लिए व्वा जाकर अंग्रज शासकों के मुकाबल अंग्रजों मापा और साहित्य की परीक्षाओं में सफलता पाना अवम्भव प्रायः ही गया। भारतीयों को सरकारी पन्ने से अलग रखने की इस कुवेला ने शैशवासिया के अन्स्तन में प्रवल रोप की भावना अङ्कुरित की। फलतः एक भारत प्रायी प्रन्तन का धीगणश हुआ। अन्त में सरकार का भवना पडा और ग्राम् ० सी एस की परीक्षाओं में वठन की अवस्था १६ वष में वन्ग कर पुनः २१ वष कर दी गई। नकि ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा उठाया गया यह कन्म उनकी स्त इच्छा का के व नामन के सम्बन्ध में भारतीयों के ऊपर तनिक भी विश्वास करना नही चा न अन्नी तरह से वातक था।

सेना का पुनर्गठन—विना के पश्चाल भारतीय मना का पुनर्गठन किया गया उसमें भी सन्नेह एवं अविश्वास की उग्र नीति का आभास मिलता है जिसका अभी ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस पुनर्गठन के आचार ब्रिटेन से सीधे गए सबक ध। ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीयों के विरुद्ध अन्नी शक्ति को अक्षय्य बनाए रखने के विचार से यह निश्चय किया कि अन्धिय में भारत में एक अन्धय ब्रिटिश सामदल रखा जाए। परिणामतः उहोंने ब्रिटिश शासन की मात्रा में वयस् वृद्धि कर दी।

उन्होंने यह भी तय किया कि यूरोपीय और भारतीय सेवा के बीच एक और दौरे का अनुपात किसी भी दशा में कम नहीं होने पाए। तापमान को नीचे रखा जाये देशी सिपाहियों के लिए बंद हो जाए और उन पर यूरोपीय सिपाहियों का ही एकचढ़ाने का अधिकार करने लगा। देशी सिपाहियों का गार सिपाहियों के मुताबिक घटिया हथियार मिलने लगे। सत्ता के बड़े-बड़े गौरे उत्तरदायित्वपूर्ण पद उनके लिए अलभ्य हो गए।

भारतवासी और यूरोपीयों के बीच बमनम्य उत्पन्न करने का अपेक्षा भारतीयों के बीच ही बमनम्य उत्पन्न करने का नाति अधिक आसान थी। इस विधान नीति के फलस्वरूप अनेक जातियाँ का एक ही पद्धति से वर्गीकरण किया गया। कुछ के लिए कहा गया कि इनकी सनिक परम्परा रहो है य सनिक जातियाँ हैं। कुछ के लिए घोषणा की गई कि इनकी सनिक परम्परा नष्ट रहो है य असनिक जातियाँ हैं। तजवीज यह ठहरा कि भारतीय पारम्परिक सिद्ध भारतीयप्रजा के मुताबिक नवान के गारवा सरहद के पाना जम्मू के डंगरा, राजस्थान के राजपूत पटियाता के मिकमा और मराठा रिवाजता के मराठी का तरजाहदा जाए। सत्ता में भी साम्प्रदायिकता का विष फन जाए, इस आशय में गतियाँ और त्रिरात्रियों के नामा के अनुहार ही फीजी टुकडियों के नाम रने जान लगे। उपाहरणाय राजपूत राजपूत सिक्क राजीयेष्ट जाट बटानियन आदि। इस प्रकार जातिभेद पर बन दकर एक जाति के नामा को दूसरी जाति के नामा से लडान का फल प्रारम्भ हुआ। यह फूट डाला और राय करो (Divide & rule) के पुराने सिद्धान्त का नया स्थापन था।

दशवामिया के विरुद्ध दशवामियों को लाने की इस नीति में उस साम्प्रदायिकता के बीज दिष्ट हुए हैं जिसने कागजात में भारत के राजनातिक जीवन को इतना प्रभावित, विपाकत और कलुषित किया। विद्रोह के पश्चात् मुमनमान अग्नेजो के विशय रूप से कापमाजन हो गए य क्योंकि उद्दो प्रतिम मुगल सम्राट कागजात के भण्ड के नीचे लडे हान और विदेशी गारको के विरुद्ध अस्त्र उठान का अक्षय्य अपराध किया था। एक गति के तौर पर मुसलमान सरकारों अनुग्रह सहाय था य। शासन में मुमनमाना के प्रति निरस्कार एक द्विभा के प्रति पक्षपान का मात्र प्रदर्शित किया। यह भारत की दो विशिष्ट जातियों के बीच नदमाव की मृष्टि करने और उद्द जान नगर एक दूमेर से अलग करने का नाति का स्पष्ट प्रमाण था। अग्रज सोम एक-दूमेरे का आपन में लडाकर अपनी स्थिति सुदृढ कर लेने की बजाय अत्यन्त निपुण था। वा म सर मयप अटमनारी जमे उरनाही मुम्निम नेवा ही अपनी जानि के प्रति अग्रजा के अविश्वास नाम को दूर करने में सफल हुए। अग्र चलकर परिस्थिति न पलटा गया। जस-जस राष्ट्रीयता की भावना बढ़ती गई अग्रजों ने हिन्दुवा के प्रति विरक्तिन एक मुगलमानो के प्रति अनुचित का मात्र प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। एमा करने में अग्रजा का स्वाय यही था कि मुमनमाना को प्रालाहित करने, उन्हें बनिम रिवाजों के रार राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई तरािणी को रावन के लिए दृढ़ अटान की तरह प्रयुक्त किया जाए।

४ विद्रोह के पश्चात् वधानिक परिवर्तन

विद्रोह के पूव का भारतीय शासन—१-५७ के विद्रोह के सम्बन्ध में यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह किन्हीं वधानिक कारणों का फल था तथापि उनमें भारत की शासन प्रणाली में कई मौलिक परिवर्तन उपस्थित किए। विद्रोह के पूव भारतीय शासन का निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण बोर्ड आफ क्लान्स व ग्रांथा प्रथा। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की स्थिति १८५३ के अधिनियम के फलस्वरूप पुराने शक्ति समिति के तुल्य। रह गई थी। भारत में कार्यपालिका शक्ति से परिषद गवर्नर जनरल में निहित थी। प्रांतीय शासन से परिषद गवर्नरों के अधीन था। सम्पूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का कार्य से परिषद गवर्नर जनरल अपने छ विधाया समितियों की सहायता में करता था। विधाया समितियों में से दो ता कर्तव्य के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथा शेष चार सदस्य मद्रास से बम्बई बंगाल और आगरे के स्थानीय सरकारों द्वारा नियुक्त सरकारी कर्मचारी होते थे।

कम्पनी के शासन का अन्त—१८५७ के विद्रोह ने कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया। वैसे तो कम्पनी के शासन का विद्रोह के पूव भी वादनायक ने समझा जाता था और ब्रिटिश सरकार धीरे धीरे उसका ह्रास से समस्त शक्ति धारण करती जा रही थी। विद्रोह ने ब्रिटिश सरकार का यह स्वप्न अचरित प्रमाणित किया कि वह कम्पनी के शासन का अन्त कर दे और भारत का शासन प्रत्यक्ष रूप में अपने हाथ में ले। जान ब्राउट के शासन में १८५७ की घटनाओं के फलस्वरूप ब्रिटिश राष्ट्र की आत्मा अस्मदीय रूप से जाग उठी और उनमें कम्पनी के तोड़ने का निश्चय किया। १ फरवरी १८५८ के भारत सरकार अधिनियम ने कम्पनी के शासन का अन्त करके भारत का शासन ब्रिटिश सरकार के हाथ में सौंप दिया।

१८५८ का भारत सरकार अधिनियम प्रमुख उपबन्ध—१८५८ का भारत सरकार अधिनियम भारत के वधानिक इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम के साथ ही साथ भारतीय इतिहास का एक युग समाप्त और दूसरा प्रारम्भ होता है। १८५८ के अधिनियम ने भारत के शासन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से लेकर ब्रिटिश शासन के हाथों में सौंप दिया और निश्चित किया कि भविष्य में भारत का शासन हर मजसूम के नाम से चलगा। अधिनियम ने कम्पनी की जन और घन सत्ता को शासन के नियंत्रण में ला लिया और निर्धारित किया कि उनका कार्यक्षेत्र उच्च प्रशासनिक शक्तों पर और यथापूर्व वन पेशन मत्त तथा विशेषाधिकार के अनुसार होगा। जमा कि कम्पनी का सत्ता में होता था।^१ अधिनियम ने बोर्ड आफ क्लान्स तथा कोर्ट आफ डायरेक्टर्स (court of Directors)

१ बोध द्वारा उद्धृत — स्पीचज फ्रॉम द गवर्नर पार्लियामेंट खण्ड १ पृ ३२ ।

२ वाक्य— स्पीचज फ्रॉम द गवर्नर पार्लियामेंट पृ ३८० ।

का अन्त कर दिया और उनके स्थान पर भारत मंत्री (Secretary of state) के एक नए पद का सृजन किया तथा उनसे दोना निवाया को समस्त शक्तियाँ भारत मंत्र का हुस्तांतरित की । भारत मंत्री ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सन्स्य था और मंत्रिमण्डल के दूसरे सन्स्य को भाति ही ससद के प्रति उत्तरदायी था । वह ससद की बन्स म भाग लेता था और ससद क सन्स्य भारतीय प्रशासन क सम्बन्ध में उनसे सब प्रकार क प्रश्न पछ ससत थे । ससद क सन्स्य को भारतीय प्रशासन क सम्बन्ध म अपनी रचनानुसार विधयन उपस्थित करन और उनक किसी पहल क लखर सत्तामंडल क विरुद्ध आविश्यास प्रस्ताव तक जाड का अनुमति थी । भारतीय शासन क निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का आवित्व भारत मंत्री के कंधे पर था । भारत मंत्री का बतन भारतीय राजस्व म लिया जाना तय हुआ ।

१८५८ क अधिनियम ने भारत मंत्री को सहायता क निय १५ सदस्यों की एक भारत परिषद (Indian Council) बनाड । १५ सन्स्य म स ७ का ना कोट आफ डायरेक्टस निवाचित करत थे और बाय ८ को ब्रिटिश शासन नियुक्त करत था । परिषद क आधे में अत्रिक सन्स्य क लिए यह आवश्यक था कि वे कम से कम दस बष तक भारत म रह चुके ह। और उह अपन नए पद को सनातन समय अर्थात् परिषद क सदस्य बनत समय भारत छोड दम बष में अधिक समय न बाता ह। परिषद क सन्स्य सनाचार पय त अपने पद स्थिर रहत थे यद्यपि ससद क नाता सन्सो की प्रायता पर उन्हें अपस्य किया जा सकता था । परिषद क प्रथम सन्स्य का बतन १२०० पीड प्रशिय था । यह बतन भारतीय राजस्व म लिया जाता था । परिषद का अध्यक्ष भारत मंत्री था और उन सनाधिकार प्राप्त था । बराबर मन हान की स्थिति म वह अपन एक निष्ठापक मन का प्रयोग कर सकता था । मन् परिषद का बन्सत भारत मंत्रा क किसी प्रस्ताव से सहमत न हाता ता मन् परिषद की सम्मति का उत्पदन कर सकता था बकिन ऐसा करत समय उस कारण का निर्णय करना पडता था । भारतीय राजस्व क अनुमान और विनियोग क सम्बन्ध म भारत मंत्रा के लिए परिषद क बहुमत का निय सवाकार बना आदेशक था । भारत क विभिन्न अधिकारिया के नाम निर्देशन' अथवा पद नियुक्ति क अनुप्रदाधिकार क विनाजन और बिनरण सम्बन्धी विनियम बनान में भा भारत मंत्रा परिषद क बहुमत का निय मानन क लिए बाध्य था । इस क अतिरिक्त अथ विषय मन्स करने और भारत सरकार का सम्पूर्ण सम्पत्तिक मामल म ही परिषद क बन्सत की ही बनता था । भारत मंत्री का बन्सत जनरल म गुप्त पत्र व्यवहार करन का अनुमति था । भारत मंत्री क लिए यह आवश्यक नडा था कि वह अपन गुप्त पत्र-व्यवहार की परिषद क सामने रते ।

१८५८ क अधिनियम की एक विशेषता यह थी कि उनसे पद नियुक्ति क अनुप्रदाधिकार को प्राउन सन्सपरिषद भारत मंत्रा और भारतीय अधिकारिया क बीच

४ विद्रोह के पश्चात् अधिनियम परिवर्तन

विद्रोह के पूर्व का भारतीय शासन—१८५७ के विद्रोह के सम्बन्ध में यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह किन्हीं अधिनियमों का फल था तथापि उमन भारत की शासन प्रणाली में कई मौनिक परिवर्तन उपस्थित हुए। विद्रोह के पूर्व भारतीय शासन का निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण बोर्ड आफ कंट्रोल तथा मथा। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की स्थिति १८५३ के अधिनियम के फलस्वरूप परामशदात्री समिति के तुल्य हो गई थी। भारत में वायपानिका शक्ति से परिपक्व गवर्नर जनरल में निहित थी। प्रांतीय शासन से परिपक्व गवर्नरों के अधीन था। सम्पूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का कार्य से परिपक्व गवर्नर जनरल अपने छ विधायी सभ्यता की सहायता में करता था। विधायी सदस्यों में से दो तो कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथा पाँच सदस्य मद्रास से सम्बद्ध बंगाल और आगरा के स्थानीय सरकारों द्वारा नियुक्त सरकारी कर्मचारी होते थे।

कम्पनी के शासन का अन्त—१८५७ के विद्रोह में कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया। इससे तो कम्पनी के शासन को विद्रोह के पूर्व भी वास्तविक नहीं समझा जाता था और ब्रिटिश सरकार धीरे धीरे उससे हाथ से समस्त शक्ति वापस लेती जा रही थी। विद्रोह ने ब्रिटिश सरकार का ये स्वल्प अवसर प्रदान किया कि वह कम्पनी के शासन का अन्त कर दे और भारत का शासन प्रबंध पूर्ण रूप से अपने हाथ में ले ले। जान राट के शासन में १८५७ की घटनाओं के फलस्वरूप ब्रिटिश राट की आत्मा अस्मनीय रूप से जाग उठी और उमन कम्पनी के तीन दशक का निष्पत्ति किया।^१ फरवरी १८५८ के भारत सरकार अधिनियम में कम्पनी के शासन की अन्त्येष्टि कर भारत का शासन ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया।

१८५८ का भारत सरकार अधिनियम प्रमुख उपबन्ध—१८५८ का भारत सरकार अधिनियम भारत के वास्तविक स्वतंत्रता में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम के साथ ही साथ भारतवाय इतिहास का एक युग समाप्त और दूसरा प्रारम्भ होता है। १८५८ के अधिनियम में भारत के शासन का ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से लेकर ब्रिटिश शासन के हाथों में सौंप दिया और निश्चित किया कि भविष्य में भारत का शासन हर मजिस्ट्रेट के नाम से चलेगा। अधिनियम ने कम्पनी की जन और मल सभा को शासन के नियंत्रण में ला दिया और निर्धारित किया कि उनका वायधान उन्ही प्रश्नों में उन्ही शक्तों पर और यथापूर्व बतन पेंशन भत्ता तथा विशेषाधिकार के अनुसार होगा। जमा कि कम्पनी का मवा में होता था।^२ अधिनियम में बोर्ड आफ कंट्रोल तथा कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स से (court of Directors)

१ बीच द्वारा उद्धृत — स्वीचज ग्रान इण्डियन पालिसी खण्ड १ पृ ३२ ।

२ वाय— स्पाचज ग्रान इण्डियन पालिसी पृ० ३८ ।

का मत कर दिया और उनके स्थान पर भारत मंत्री (Secretary of state) के एक नए पद का सृजन किया तथा उक्त दोनों निकायों की समस्त शक्तियाँ भारत मंत्री को हस्तांतरित की । भारत मंत्री ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सचिव था और मंत्रिमण्डल के हमारे सदस्यों की भाँति ही संसद के प्रति उत्तरदायी था । वह संसद की बैठकों में भाग लेता था और संसद के सदस्यों को भारतीय प्रशासन के सम्बन्ध में उससे सत्र प्रकार के प्रश्न पूछ सकते थे । संसद के सदस्यों को भारतीय प्रशासन के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार विधायक उपस्थित करने और उसकी किसी पहलु को लेकर सत्ताहट देने के विरुद्ध विश्वास प्रस्ताव तक जाने की अनुमति थी । भारतीय शासन के निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण का दायित्व भारत मंत्री के कंधे पर था । भारत-मंत्री का बतन भारतीय राजस्व से लिया जाता था ।

१८५८ के अधिनियम ने भारत मंत्री की सहायता के लिये १५ सदस्यों की एक भारत परिषद (Indian Council) बनाई । १५ सदस्यों में से ७ को वाट फ्रांक डायरेक्टरों ने निर्वाचित करते थे और शेष ८ को ब्रिटिश फाउण्डेनियुक्त्वा करता था । परिषद के आधे से अधिक सदस्यों के लिए यह आवश्यक था कि वे कम से कम दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों और उन्हें अपने नए पद की समाप्ति के समय अर्थात् परिषद के सदस्य बनते समय भारत छोड़ दस वर्ष से अधिक समय न बीता हो । परिषद के सदस्य सदाचार पयत अपने पद स्थिर रहते थे यद्यपि मन्त्री के जाने पर उनकी प्राप्ति पर उन्हें अल्पकाल दिया जा सकता था । परिषद के प्रत्येक सदस्य का वेतन १२०० पौं प्रतिवर्ष था । यह बतन भारतीय राजस्व से लिया जाता था । परिषद का अध्यक्ष भारत मंत्री था और उसे महाविचारपाल था । बरतारमत हान की स्थिति में वह अपने एक निष्ठापूर्वक मत का प्रयोग कर सकता था । यदि परिषद का बहुमत भारत मंत्री के किसी प्रस्ताव से हटकर न जाता तो भारत मंत्री परिषद की सम्मति का उल्लंघन कर सकता था लेकिन ऐसा करते समय उसे कारणों का निर्देश करना पड़ता था । भारतीय राजस्व के अनुदान और विनियोग के सम्बन्ध में भारत मंत्री के लिए परिषद के बहुमत का विशेष अर्थकारण करना आवश्यक था । भारत के विभिन्न अधिकारियों के नाम निर्देशन अथवा पद नियुक्ति के अनुपातिकता के विभाजन और वितरण सम्बन्धी विनियम बनाने में या मांग-पत्रों पर परिषद के बहुमत का निर्णय मानने के लिए बाध्य था । इसके अनिश्चित अर्थों को स्पष्ट करने और भारत सरकार की सम्पूर्ण सम्पत्तिक सामान्य मंत्री परिषद के सम्बन्ध में ही चलता था । भारत मंत्री का गवर्नर जनरल से सम्बन्धित अर्थों का निर्णय भी ही चलता था । भारत मंत्री के लिए यह आवश्यक था कि उसे अपने मुख्य पद-कार्य के परिषद के सामने रखा ।

१८५८ के अधिनियम की एक विशेषता यह थी कि जिनके द्वारा निर्देशन - अनुपातिकता के प्राप्ति के लिए परिषद भारत मंत्री को भारत मंत्री के निर्देशन के द्वारा

वांट दिया। अधिनियम ने निश्चित किया कि वे समस्त नियुक्तियाँ और पदनामों जो इस समय भारत स्थिति अधिकारियों के हाथों में हैं भविष्य में भी उन्हीं के हाथों में बनी रहनी। निश्चित सर्विस की नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षा द्वारा होगी। इन परीक्षाओं के नियम जो संघ-सदस्यों की सहायता से स-परिष्कार भारत मन्त्री बनानेवाले। अधिनियम का एक अर्थ महत्वपूर्ण उपबंध यह था कि उसने भारत मन्त्री के लिए प्रति वर्ष सत्तर करोड़ों रुपये का मजदूरी भात का नतिव और भौतिक प्रगति का नया उद्देश्य करना अनिवार्य कर दिया। अधिनियम ने यह भी निश्चित किया कि भारत का राजस्व ब्रिटिश सम्राट के दोनों सम्राटों की स्वोच्छति के बिना भारतवासियों को बाहर की सैनिक कार्यों के लिए प्रयुक्त नहीं होगा। अतः १८५८ के अधिनियम ने स-परिष्कार भारत मन्त्री को एक समुक्त विचार घोषित किया जो अंगरेज और भारत में अभियोग का वाणी अथवा प्रतिवादी हो सकता था।

१८५८ के अधिनियम की समीक्षा—वाहे यह बात देखने में विरोधाभास ही क्यों न लगती हो फिर भी बहुत कुछ सत्य है कि जहाँ ब्रिटिश सम्राट ने भारत के ऊपर नियंत्रण प्राप्त किया उसने भारत के ऊपर नियंत्रण रखना बंद सा कर दिया। इसका कारण यह है कि पन्ने भारत का नियंत्रण दोन-आफ कण्ट्रोल तथा वाट आफ डायरेक्ट्स के हाथों में था। यह बात समझ के लिए एक चुनौती तुल्य थी और उसे अपनी सत्ता का प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करती थी। विरोध के पश्चात् बोर्ड आफ कण्ट्रोल तथा वाट आफ डायरेक्ट्स का अन्त हो गया और भारतीय प्रशासन की सम्पूर्ण शक्ति भारत मन्त्री के हाथों में आ गई। भारत मन्त्री समझ के प्रति उत्तरदायी था। इसलिए अब समझ जा कुछ पाना चाहती था वह उस मिन गया। ऐसी स्थिति में उसने भारतीय शासन के ऊपर निरन्तर नियंत्रण रखने और उसका आलोचना करने में ढील डाल दी। भारतीय प्रशासन के प्रति सम्राट की उपेक्षा नाति का दमरा कारण यह था कि जिन व्यक्तियों का भारत मन्त्री के पद पर नियुक्त किया जाता था वे पर्याप्त योग्य होते थे। चूंकि वे भारत के सुचारु शासन-संचालन के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे अतः वे अपने कर्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वहन अधिक-त-अधिक प्रवीण ढंग से करने का प्रयास करते थे। इसके प्रतिरिक्त १८५७ से १९१५ तक ब्रिटिश राजनीति में अपनी देश की समस्याओं में ही अत्यधिक व्यस्त रहें। उनसे पास बनना प्रवृत्ति नती था कि वे भारत जैसे विस्तृत प्रायद्वीप की जटिल समस्याओं का सम्भारतापूर्वक अनुशासन कर सकते। पुनश्च भारतीय सिविल सर्विस में इंग्लैण्ड के नून हुए सुशिक्षित और सुयोग्य व्यक्ति भाग लेते थे। स्वभावतः ब्रिटिश जनता का इन व्यक्तियों के ऊपर विश्वास था और वह उनके कार्यों में टांग बहाता व्यर्थ समझने लगा।

यद्यपि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से आउने के हाथों में जाना एक बहुत बड़ा परिवर्तन था परन्तु सर एच० एम० बनिजस के शासन में यह परिवर्तन

सारमत ज्ञान की अपेक्षा औपचारिक ही अधिक था। इसी की पुष्टि करते हुए रमज म्पार ने लिखा है कि भारतीय साम्राज्य के 'शासन' के हाथों में स्वयंशासन न जितना प्रतीत होता है उसकी अपेक्षा काफी कम परिवर्तन किया। १८५७ के पूर्व भी भारतीय शासन से सम्बद्ध सम्पूर्ण वास्तविक शक्ति बाह्य शासन के अधीन थी जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का एक सभ्य या हाथों में था। नाट्य और हायरकट्स के हाथों में कोई विधि शक्ति नहीं रही थी। उसका काम तो बाह्य शासन के कण्ट्रोल को परामर्श देना भर रह गया था। हाँ यह बात अवश्य है कि उसके हाथों में पहले करने की शक्ति थी। १८५३ के अधिनियम ने उसकी स्थिति और भी दुबल कर दी थी। उसका नियुक्तियाँ के अनुग्रहाधिकार में बढि कर लिया गया था। उसकी सदस्य सभ्या २४ से घटाकर १८ ही रहने दी गई थी। इन १८ हायरकट्सों में से भी ६ को 'शासन' नियुक्त करता था। १८५३ के पूर्व सदन न जितने भी चाहे अधिनियम पास किए थे उनका कार्यकाल २० वर्ष ही रहता था। १८५३ के अधिनियम के कम्पना के चाहे को २० वर्ष के लिए सहायित नहीं किया था। उसने केवल यही कहा कि कम्पना 'शासन' की ओर से उस समय तक जब तक सदन कोई अधिनियम न करे भारत में प्रथा पर घोरेहर के रूप में शासन कर सकती है। इन प्रकार यह स्पष्ट है कि १८५३ के अधिनियम ने भारतीय शासन को कम्पनी के हाथों से लेकर 'शासन' के हाथों में सौंप देने का पय प्रयत्न कर दिया था। १८५८ के अधिनियम ने तो पूर्णतः ही प्रारम्भ की गई प्रक्रिया का पूर्ण कर दिया। १८८८ के परवान् भारत मन्त्री ने बाह्य शासन के कण्ट्रोल तथा भारत परिवर्तन के कोश शासन हायरकट्स का स्वयं ग्रहण किया।

महाराणी विक्टोरिया की घोषणा— शासन द्वारा भारतीय सत्ता के ग्रहण के समाचार से भारतीय जनता को महागना विक्टोरिया का घोषणा न परिचित कराया। इस सम्बन्ध में नाट्य कर्मियों ने जो शासन की ओर से भारत के प्रथम वायसराय और गवर्नर जनरल नियुक्त हुए थे फाल्गुन १८५८ का जनाहावा में एक जनता दरवार किया और उसमें महाराणी विक्टोरिया के घोषणा पत्र को स्वयं पढ़कर सुनाया। यह घोषणा पत्र सद्दयता, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता की भावनाओं से परिपूर्ण था। इसमें दशा नरेशों का यह विद्वान् जिलाया गया था कि 'शासन' उनका स्वतंत्र एवं अधिनारा की रक्षा करेगा। घोषणापत्र ने भारत स्वयं अधिनारा किया को यह आशा किया था कि वे जनता के धार्मिक मामलों में रचनात्र भी हस्त न न कर और उसे पूरा धार्मिक स्वतंत्रता का उपयोग करने दें। घोषणापत्र ने यह भी निर्धारित किया था कि भारत के लिए विधि निर्माण करते समय देश के रीतिरिवाजों परम्पराओं और लोकानुष्ठानों का निरन्तर ध्यान रखा जाएगा। उममें यह भी विश्वास जिलाया गया था कि 'हर मजिस्ट्री की भारतीय प्रजा को ब्रिटिश साम्राज्य के अधिनारा की प्रजाओं के समकक्ष ही मानता प्राप्त होगी। घोषणापत्र

ने समस्त भारतीयों को बिना किसी भेद भाव और पक्षपात के योग्यतानुसार शासन के उच्च से उच्च पद देने और समान अधिकार व भ्रवसर प्रदान करने का वचन दिया । घोषणा पत्र में यह भी कहा गया था कि विद्रोहियों के साथ दया का व्यवहार किया जायेगा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय की समस्त संधियाँ जारी रहेंगी । घोषणा पत्र के अंत में भारतीयों को यह विश्वास दिलाया गया था कि ब्रिटिश सरकार उनकी भौतिक तथा नैतिक उन्नति करने में कुछ उठाने लखेगी ।

घोषणा पत्र का महत्व—महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र का भारत के राष्ट्रीय और अध्यात्मिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । यह घोषणा पत्र प्रायः ६ वर्षों—१८१७ तक ब्रिटिश सरकार की भारत विषयक नीति का मूल आधार बना रहा । उसने उन समस्त सिद्धान्तों को निश्चित किया जिनके अनुसार भारत का शासन प्रबंधन हुआ करता था । यद्यपि उसका अतिरिक्त महत्वपूर्ण उपबन्धों पर आचरण नहीं हुआ फिर भी वह पर्याप्त दीर्घकाल तक भारत में ब्रिटिश नीति का आदर्श माना जाता रहा ।

१८६१ का भारत परिषद अधिनियम—पृष्ठभूमि—१८५८ के भारत सरकार अधिनियम ने गृह सरकार की रूपरेखा में ही परिवर्तन किया था । उसने भारतीय शासन तंत्र का अभाव रहने दिया था । युग की परिस्थिति को देखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक था कि भारतीय शासन तंत्र में भी परिवर्तन किए जाएं । १८५७ का विद्रोह का मुख्य कारण शासकों और शासितों के बीच सम्पर्क का अभाव था । चूंकि गवर्नर जनरल की परिषद में भारतीय सदस्यों को कोई स्थान नहीं दिया गया था अतः सरकार के पास ऐसा कोई उपाय नहीं था जिससे वह भारतीय जनमत के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सके । सर बर्टन फ्रियर जस दरदर्शी विचारका नृप दात की आवश्यकता पर बल दिया कि शासकों और शासितों के बीच बन्ती हुई भेद की खाई का अविनाश पाटा जाए । उन्होंने इसी दस्तु को विद्रोह का मन्त्रित्व ठहराया था । उनका कहना था कि हमारे पास विद्रोह अथवा अतिरिक्त यह पात करने के लिए हमारे ज्ञानन एवं हमारा शासन तन्त्र का मनोवैतन्य है अथवा नहीं अत्यल्प साधन हैं और कहा गवर्नर जनरल की परिषद तथा प्रांतीय परिषदों में भारतीयों का साथ मिलाना अथवा उनके लिए आवश्यक हुआ गया था क्योंकि करना ताजों तोगों के लिए कानून बनाने समय अंग्रेजों को भारतीय विद्रोह के बिना यह पता लगाने का कार्य साधन नहीं था कि उनके बनाये हुए कानून भारतीयों को पसन्द है या नहीं । सर सयद अहमदशाह ने भी सरकार को यही परामर्श दिया था । १८६१ के अधिनियम ने इस त्रुटि को सबसे पहला चार दूर किया । १८५३ के अधिनियम ने जिस व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की थी उसमें अदर कई दोष थे । पहला दोष तो यह था कि विधि निर्माण के कार्य से सर-सरकारी व्यक्ति चाहे वे यूरोपीय हों अथवा भारतीय—बिलकुल वृत्त रह गये थे । दूसरा दोष यह था कि व्यवस्थापिका सभा के पास बन्द

और मद्रास प्रभृति दूसरे प्रांतों के लिए आवश्यक कानून बनाने के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी नहीं था। इन प्रांतों के प्रतिनिधियों को यह शिक्षायुक्त रहती थी कि बंगाल के प्रतिनिधियों की अधिक संख्या हान के कारण हमारे एक नहीं चल पाती। तीसरा दोष यह था कि व्यवस्थापिका सभा ने कई ऐसे काम अपने हाथ में लिये जिनमें सरकारी शासन व्यवस्था की दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता था। वह कायपालिका के कामों पर तरह-तरह की आपत्ति करने लगा था और उसका यह आग्रह था कि गुप्त राजपत्रों को भी उसमें सामने रखा जाए। व्यवस्थापिका सभा की यह प्रवृत्ति कायपालिका के लिए बड़ी अनुविधाजनक थी। फलतः गवर्नर जनरल लार्ड कनिंग ने १८६० में भारत में श्री लॉ चाल्स वुड को इन सारी कठिनाइयों और आवश्यकताओं के सम्बन्ध में एक जाहद्वार पत्र लिखा। ६ जून १८६१ का सर चाल्स वुड ने भारत परिषद् अधिनियम कानून सभा (House of Commons) के सामने प्रस्तुत किया।

प्रमुख उपबन्ध—१८६१ के भारत परिषद् अधिनियम में पहला काम तो यह किया कि गवर्नर जनरल को कायपालिका परिषद् में एक और पौत्रवा सत्स्य बनाया। यह सदस्य कानूनी पक्ष से सम्बन्ध रखता था। अधिनियम ने दूसरी बात यह की कि गवर्नर जनरल को परिषद् का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए नियम और आदेश बनाने का अधिकार दिया। गवर्नर जनरल अपनी अनुसन्धित स परिषद् का बन्का का समापन करने के लिए परिषद् में सही किसी एक सत्स्य को मनाने का अधिकार देकर सत्स्य को मनाने का अधिकार दिया। गवर्नर जनरल को यह अधिकार भी दिया कि वह भारत में विभाग व्यवस्था चला सकता है अथवा अपने कायपालिका परिषद् के प्रत्येक सत्स्य को शासन का कोई एक महत्वपूर्ण विभाग सौंप सकता है। विभाग व्यवस्था का मूल सिद्धान्त यह था कि प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के छोट छोट प्रश्नों का स्वयं ही निराकरण करे और बड़े बड़े प्रश्नों का अपने विभागाध्यक्षों से विचार विनिमय करके तथा गवर्नर जनरल से परामर्श लेकर निराकरण करे। १८६१ के अधिनियम में तीसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया कि अपने विधि और विनियम बनाने के लिए गवर्नर जनरल की परिषद् का विस्तार किया। अधिनियम में निश्चित किया कि परिषद् में प्रतिरिक्त सदस्यों की संख्या कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ रहना चाहिए। यह आवश्यक था कि इन प्रतिरिक्त सत्स्यों में कम से कम आधे सत्स्य गर सरकारी हों। प्रतिरिक्त सत्स्यों का कायपाल दो वर्ष था। परिषद् के कार्य और अधिकार विधि और विनियम बनाने तक ही सीमित थे। उन कायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। परिषद् के ऊपर अनेक प्रतिबंध लगे हुए थे। सावजनिक श्रेणियों और राजस्व घम और सारा सारि विषयों से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव गवर्नर जनरल की पूर्व-स्वीकृति के बिना उपस्थित नहीं किए जा सकते थे। गवर्नर जनरल परिषद् द्वारा पास किए गए किसी भी कानून पर न केवल विन्यासिकार का ही प्रयोग कर सकता था, प्रत्युत उस आपात-काल में कानून निबानने का भी अधिकार भी।

गवर्नर जनरल व अध्यात्म का यहाँ बने और प्रभाव हुआ था जो कि परिषद द्वारा पास किए गए कानून का ।

अधिनियम न प्रांतीय विधि निर्माण के लिए प्रत्येक प्रसाइडेंसी के गवर्नर को यह अधिकार दिया था कि वह अपने प्रांतीय परिषद में एक तो प्रसीडेंसी के महाविधायक का तथा कम से कम चार और अधिक से अधिक आठ अतिरिक्त सदस्यों को नियुक्त कर सकता है । परिषद का कार्य विस्तृत रूप से विधायी था । प्रांतीय परिषद द्वारा पास किए गए प्रत्येक कानून पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी । अतः १८६१ के अधिनियम ने गवर्नर जनरल को विधान काय के लिए नए प्रांत बनाने और उनके लिए उप-गवर्नर नियुक्त करने का भी अधिकार दिया । (Right to making new province and right to appoint Lieutenant Governors) अधिनियम ने गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार दे दिया कि वह चाहे तो किसी प्रसीडेंसी प्रांत या प्रशासक को विभाजित कर सकता है अथवा उसका सीमाएं घटा-बढ़ा सकता है ।

१८६१ के अधिनियम की समीक्षा— १ जी एन सिंह व शर्मा भारत के अधिनियम इतिहास में १८६१ के भारतीय परिषद अधिनियम का महत्व दो मुख्य कारणों से है । पहला कारण तो यह है कि उसने गवर्नर जनरल को विधान के कार्य में भारतीयों को साथ बनाने का अधिकार दिया । दूसरा कारण यह है कि उसने बम्बई और मद्रास को सरकार का विधान परिषद का अधिकार दिया और अन्य प्रांतों में भी वही विधान परिषद बनाने का व्यवस्था की । उन प्रकार विधान की उस नीति का आरम्भ हुआ जिसमें फेडरेशन और प्रजातन्त्र का अन्तर्भाव था । १९७७ में लगभग पूर्ण गतिविधि स्वायत्तता प्राप्त की गई । १ इनमें कोई संदेह नहीं कि १८६१ का भारतीय परिषद अधिनियम भारत के बराबरिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण सीमा चिह्न से कम नहीं है । इसका अर्थ है कि भारत में जो भी बराबरिक परिवर्तन हुए उन सबका मूल आधार यही अधिनियम था । यद्यपि अधिनियम ने यह तो स्पष्ट नहीं कहा कि वह प्रांतीय विधान परिषद का सम्मिलित किया जाय । उसमें तो सरकार की शक्ति का प्रयोग था । अतः व्यवहार में उसका अर्थ प्रायः यही समझा गया कि विधि निर्माण के कार्य में भारतीयों का भी सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

१८६१ के अधिनियम की उक्त विशेषताओं का विवरण करते समय हमें उसकी कुछ शक्तियाँ भी ध्यान में रखनी चाहिए । इस अधिनियम का एक बड़ा त्रुटि यह थी कि उसने अधीन निर्मित विधान परिषदें कायपालिका के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रखती थी । उनका ऊपर प्रतिबंध इतने लघु रूप से कि उनका सारा महत्व दिखावटी ही मालूम होता था । वे सरकार कायपालिका के समक्ष से प्रत्येक प्रश्न केवल ६ दिनों का नोटिस देकर ही पूछ सकते थे । गवर्नर जनरल किमा प्रश्न का पूछने की स्वीकृति प्रदान करता

था। उह पुरक प्रश्न (supplementary) पूछने का अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल को विधान परिषदा क कानूना पर राक (veto) लगाने का अधिकार था। इससे सारी प्रतिम शक्तिया गवर्नर जनरल के हाथ म आगइ और वह न केवल शासन सम्बन्धी मामला मे अपितु कानूनी मामला में भी अपना मनमानी कर सकता था। इसके अतिरिक्त तहाँ तक परिषदा म गर सरकारी व्यक्तियों की नियुक्ति का प्रश्न था सरकार जनता के नसाधो को नहीं, प्रयुक्त देशो नरेशो या पुराने कुलान परिवारों के सदस्यो को ही नियुक्त करती थी। य लीग भारतीय जनमत का प्रति निश्चित करने म सवथा अममथ थे। प्रिंसिपल श्राराम शर्मा के अनुसार ' सरकार का यह विचार नहीं था कि क कानून निर्माण म कोई कारण भाग लें। वे तो कानून निर्माण को प्रक्रिया सागी क मर ही थे। ' संक्षेप म १८६१ के भारतीय परिषद् अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य यही था कि भारत म नीकरशाही जैसे-जैसे अपने अपना काम चलाती रहे।

५ भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म-काल १८७६-१८८४

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उत्पन्न एवं विकास के अध्ययन म १८७६ से १८८४ तक क समय की और विशेष ध्यान देने का आवश्यकता है। नाट विटन एवं नाट रिपन के इस शासन काल को भारतीय राष्ट्रीयता के जन्मकाल क नाम से ठीक ही सम्बोधित किया जाता है। हम देख चुके हैं कि विनाह क परचात् सरकार द्वारा प्रयुक्त अविश्वास एवं दमन की नीति श्रेयवाधियों को धायम म सदान के माझा-य या की दान पेंच और जनता के मन्त हूए दारिद्र्य आदि तथ्य भारतीय का निदेशी शासन के दोषों का समुचित परिणाम करा रटे थे। यद्यपि भारतीयो ने अभी तक ब्रिटिश शासन का विरोध स्पष्ट एवं मंगलिन रूप से तो नहीं किया था परन्तु उनके हृदय म विदेशी राज्य के प्रति विरक्ति की भावना तिन दूनी रात चौगुली बन्ती जाती थी। दूसरे शब्दो म यह कहा जा सकता है कि उस समय राष्ट्रीयता का वातावरण होने के लिए मूम तयार हो रही था। ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन माफ बंगाल मद्रास नेटिव एसोसिएशन ईस्ट इण्डियन एसोसिएशन वाय् प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन और पूना सावजनिक सभा आदि राजनीतिक संस्थाएं भारत के राजनीतिक रणमंच पर पहल से ही प्रकट हो चुकी थी तथा शासन सुधार सम्बन्धी आ-दोहन करने म सलग्न था तथापि इन संस्थाओं का एक निर्धारित ध्येय था। राष्ट्रीय अन्त्युत्थ एवं राज नीतिक स्वाधानता के किमी मागोपीय प्रोग्राम का उनके पास अभाव था। नाट विटन के शासनकाल म कतिपय ऐसे अध्याय एवं दमन के काय किए गए जिनके फलस्वरूप जन साधारण और मित्रिय भारतीयो दोना के हृदयो म सपास रूप से विदेशी शासन के प्रति रोष की वह भावना जागृत हा गई जितने १८८५ म राष्ट्रीय महामन्ना (Indian National Congress) के संस्थापक का भाग साक कर दिया।

देहली दरबार—लिटन डिज़रली की विचारधारा का साम्राज्यवादी या एव राजकीय शक्ति सामर्थ्य व प्रश्नन में उसकी दृढ़ भावस्था थी। राजनीतिक दूरदर्शिता का उसमें अभाव था और भारतीय जनता की भावनाओं एव उच्चावादाओं के प्रति उसके हृदय में तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। उसके शासन काल में महारानी विक्टोरिया की नई उपाधि कसरे हिंद (भारत साम्राज्ञी) की घोषणा करने के लिए १८७७ में शानदार देहली दरबार किया। इसी दरबार में ब्रिटिश नौकरशाही भारतीय नरशों सामन्ती मुखियों और अग्र्य राजमन्त्रों ने भाग लिया परन्तु यह व्यय साध्य एव विराट प्रदर्शन अत्यन्त अनुपयुक्त अवसर पर किया गया। उस समय दक्षिण भारत में भयंकर दुर्मिक्ष पड़ रहा था। देहली दरबार के आयोजन में धन की पानी की तरह बहाया गया जब कि असह्य मानव प्राणों की रक्षा के लिए उसकी महती आवश्यकता थी। कलकत्त के एक तत्कालीन पत्रकार ने इसका जबकि रोम जल रहा था नीरो सारंगी बजाने में तल्लीन था (Nero was fiddling while Rome was burning) कह कर उल्लेख किया था। भारतीयों के मन में यह अपेक्षावृत्ति काटे की तरह चुम गई। इसने उनके हृदय में अदम्य प्रभावशून्य विरोध की वेगवती धारा को उत्पन्न किया।

अफगान युद्ध और सैनिक व्यय—नाइ लिटन के सैनिक अभियानों की वजह से जनता की कठिनाइयाँ और भी बढ़ गई। काबुल के ऊपर एक अवाञ्छनीय आक्रमण किया गया जिसके फलस्वरूप अफगान युद्ध हुआ और सैनिक व्यय में आशातीत वृद्धि हो गई। इसी आक्रमण के काल्पनिक भय के निवारणार्थ सना की अनावश्यक रूप से बढ़ा देना तथा वज्ञानिक सीमांत की स्थापना के प्रयास बहुत ही लचीले प्रयोग थे जो परोक्षरूप से जनता की कठिनाइयाँ बढ़ाने के उत्तरदायी थे। देहली दरबार आशामक अफगान युद्धों और काल्पनिक हठी हथिये से बचने के लिए की गई चौकसियों ने भारतीयों के समक्ष इस कठ सत्य को प्रत्यक्ष कर दिया कि उनके शासक जनसाधारण की आपदाएँ दूर करने की अपेक्षा अपने साम्राज्य को बनाए रखने के लिए अधिक कृत सवल्प हैं।

भारतीय शस्त्र विधमक—नाइ लिटन का शासनकाल भारतीय शस्त्र विधमक जस वाले कानून को पास करने के लिए भी मुख्यतः है। इस विधेयक व द्वारा भारतीयों को बिना आजा के शस्त्र रखने अथवा धारण करने से बंचित किया गया। जिस चीज से भारतीयों को मर्मांतक वेदना पड़ती वह केवल निरीह एव असहाय जनता का निरास्त्रीकरण करना है। अतः इस दिशा में यूरोपियनों और भारतीयों के बीच बरता गया भेदभाव था। भारतीयों के लिए तो शस्त्रों का रखना अथवा धारण करना अपराध माना गया लेकिन यूरोपियनों यूरोपियनों एंग्लोइण्डियनों तथा अन्धाय विन्सिमो के ऊपर ऐसा कोई अक्रुश नहीं उगाया गया। यह भेदभाव भारत के स्वाभिमान के ऊपर अथवा धापात था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में 'शास्त्र विधेयक ने हमारे समाज पर जातीय हीनता की छाव लगा दी। सत्तार के सम्य देशों

य भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ नागरिकों का सैनिक होने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। भारतीय अपने ही देश में द्वितीय श्रेणी के नागरिक बना दिए गए।”

बर्नार्डयुलर प्रस विधेयक—लाड लिटन के शासनकाल का तीसरा प्रतिगामी काल १८७८ का बर्नार्डयुलर प्रस विधेयक था। विद्रोह के पश्चात् भारतीय प्रेस ने बड़ी शीघ्रता से उन्नति की थी। १८६४ में लगभग ६४४ पत्र प्रकाशित हो रहे थे, उनमें ४०० से अधिक देशी भाषाओं के पत्र थे। देशी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले पत्र लाड लिटन की दमन नीति का तीव्र शत्रु के विरोध करते थे। उनके लेखों और झालोचनाओं से जनता का रोष व्यक्त होता था। वे राष्ट्रीय चेतना के विकास में एक जनता के क्रोध को तीव्रता देने में सहायता पहुँचा रहे थे। बर्नार्डयुलर प्रेस के नित्यप्रति वृद्ध प्रभाव को दमनकारी नीतिशाही के सिरे में दब होने लगा। लाड लिटन ने भारत मन्त्री को देशी प्रेम के इस बढ़ते हुए प्रभाव के सम्बन्ध में जो शक प्रत्यक्ष विद्रोह का सूचक था लिखा। वायसराय इस बात को झुंझी तरह समझना था कि समाचार-पत्रों की स्वाधीनता और विदेशी शासन का साथ साथ निभ सकना असम्भव है। इसी के समर्थन में एक बार मुन्शी ने लिखा था स्वतंत्र धर्म और विदेशी शासन एक साथ नहीं चल सकते। (A free press and the dominion of a stranger can not go together) परिणामतः बर्नार्डयुलर प्रस विधेयक अथवा ग्लोबलिट कानून—जिस कि वह उस समय विख्यात था—अति शीघ्रता से भारतीय व्यवस्था पिका समा द्वारा एक ही बठक में पास किया गया। यह भारतीय पत्रों की स्वाधीनता पर प्रत्यक्ष आक्रमण था। इस विधेयक के द्वारा जिलाधीशों के हाथों में यह अधिकार था गया कि वे समाचार पत्रों के मुद्रकों और प्रकाशकों में जमानतें माँग सकते हैं और उनमें ऐसे किसी समाचार के जो शासन के प्रति अशुभ या जानिया के बीच कटुता की भावना को उत्पन्न करें प्रकाशित न करने की प्रतिज्ञा करवा सकते हैं। कानून मग करने पर यह जमानत जन्म की जा सकती थी और इस नियम के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती थी। बर्नार्डयुलर प्रस विधेयक इतना घातक था कि भारत परिषद के एक सदस्य सर एरस्टाइन पेरी ने भी उसको अदूरदर्शी, असामयिक और भारत की भावी उन्नति के लिए घातक बताया था। इस ग्लोबलिट कानून ने और उस सकुचितता ने जिसके साथ वह कार्यान्वित किया गया विरोध का एक तृपान ढाढा पर दिया। सारे देश में असंतोष की एक लहर दौड़ गई। भारत के लोक-नेताओं ने इस विधेयक के विरोध में एक देशव्यापी आन्दोलन ढाढा किया। पाँच वर्षों के अविराम प्रयत्नों के पश्चात् १८८२ में यह विधेयक रद्द हुआ। इस विधेयक के निमार्ण ने भारतीयों को पराधीनता के पाश से अलग करवा दिया और उनका हृत्पत्र में राष्ट्रीय जागरण की उपाति प्रज्वलित की।

बपास आयात कर—लाड लिटन ने बपास की बनी वस्तुओं पर स आयातकर हटा कर भी भारतीयों के हृदय में अशुभ शासन के प्रति अथरु उत्पन्न की। भारत में पहली बपास टक्सटॉइल मिस १८३१ में पास हुई थी और अनिश्चित परिस्थितियों

के होते हुए भी धीरे धीरे उन्नति कर रही थी। लकाशायर और मानचेस्टर के व्यापारियों ने इसका विरोध किया। क्योंकि भारतीय टक्सटाइल उद्योग के विकास को उन्होंने अपने एकाधिकार के लिए एक चुनौती समझा उहाने गृह सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वह भारत सरकार का बाहर से आया हुआ कपास क कपड़े पर लगाए गए ५ प्रतिशत कर को उठा देने के लिए विवश करे। भारत मंत्री ने इस घोषी दलील के आधार पर कि इस कर से भारतीय व्यापारियों को अनुचित प्रोत्साहन मिलता है आयात-कर उठा देने के लिए गवर्नर जनरल को लिखा। लाड लिटन के पूर्ववर्ती लाड नायडू क ऐसा करने के लिए सहमत नहीं हुए क्योंकि उनके विचार से यह भारत के लिए अहितकर था। इसके विपरीत लाड लिटन ब्रिटिश सौभाग्यो के हाथों का खिलाफ बन गया। उसने आयात-कर को उठा दिया और यह पण उठाते समय अपनी कायपालिका परिपद के बटुमंत को भी परवाह नहीं की। यद्यपि भारतीय व्यापारियों ने देश के अतिक्रमिता कपास उद्योग के ऊपर किए गए इस घातक प्रहार का प्राणपण से विरोध किया परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। उन्होंने इंगलण्ड की कामन सभा के समीप भी इस सम्बन्ध में एक आवेदन पत्र भेजा परन्तु उससे भी कुछ नहीं बन सका।

इण्डियन एसोसिएशन १८७५—लाड लिटन के प्रतिगामी शासन ने भारतीयों के हृदय में उमड़ती हुई राष्ट्रीय जागरण की भावना को बल प्रदान किया और इस बात के लिए आवश्यक वातावरण तयार कर दिया कि देश के विभिन्न भागों में काम करती हुई देशनिष्ठ सस्थाएँ सामूहिक काम उठाने के लिए एकता के सूत्र में गुम्फित हो जाएँ। मुरद्रनाथ बनर्जी १८७५ में इण्डियन एसोसिएशन का संगठन कर चुके थे। लाड लिटन के कठोर कानूनों और 'यायहीन कार्यों ने उन्हें १८७७ में उत्तरी भारत और उसके एक वर्ष पश्चात् १८७८ में दक्षिण भारत का भ्रमण करने की प्रेरणा दी। उन्होंने अपने आन्वयक व्यक्तित्व एवं भाषण-मदता के द्वारा विभिन्न प्रांतों को समान कष्टों तथा समान ध्येय के आधार पर एक दूसरे के प्रति निकट ला दिया। मुरद्रनाथ के गतिशील नेतृत्व एवं एकता के सदप्रयत्नों ने इण्डियन एसोसिएशन को अतिव्यक्त भारतीय आन्दोलन का केंद्र बनाने में सफलता प्राप्त की। एसोसिएशन का ध्येय भारतवर्ष में एक प्रभावशाली 'नोबमठ तथा सत्कारिणी महत् जन आन्दोलनों में जनसाधारण का संगठन तयार करना था। इसके अतिरिक्त एसोसिएशन ने अपने सामने भारतवर्ष की विभिन्न जातियों के बीच सामान्य राजनीतिक हितों और आकांक्षाओं के आधार पर एकता स्थापित करने और हिन्दू मुसलमानों के बीच समवाय प्रेम एवं बंधुत्व की भावना को विकसित करने का भी आशय रखा था।

इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बठने की अवस्था में जो कमी कर दी गई थी उसने इण्डियन एसोसिएशन को एक अक्षिण भारतीय आन्दोलन स्थापित करने का अवसर प्रदान किया। आई सी० एम० की परीक्षा में बठने की अवस्था २१ वर्ष से घटाकर १९ वर्ष कर देने का स्पष्ट आशय उसमें भारतीय नवयुवकों की सफलता को

मानवून कर भ्रष्टम्भ कर देना था। इससे शिक्षित समाज में जो असंतोष उत्पन्न हुआ, उसे इसी प्रश्न पर केंद्रीभूत करने में इण्डियन एसोसिएशन न सफलता प्राप्त की। इंग्लण्ड की कामन-मसा (House of Commons) के पास सम्पूर्ण देश की ओर से एक स्मृतिपत्र भेजा गया और अन्त में, जिस उत्साह के साथ फ्रान्सेलन का संगठन किया गया था उसके फलस्वरूप वह अपने उद्देश्य में सफल हुआ। इण्डियन सिविल सर्विस में बढन की अवस्था दुबारा १९ वर्ष से बढ़ाकर २१ वर्ष कर दी गई।

इल्बट बिल सम्बन्धी वाक विवाक न जो लाड लिटन के अनुवर्ती लाड रिपन के उदार शासनकाल में उठ गया हुआ था भारत के राष्ट्रीय जागरण की ओर नी उत्तजना थी। लाड रिपन के दृष्टिकोण चरित्र एवं व्यवहार में आकाश पानाल का अंतर था। लाड रिपन अत्यन्त सहृदय एवं उदारमय वायमराम थे। इंग्लण्ड में ग्लडस्टन के नेतृत्व में उदारवादी शासन का स्थापना हुआ चुकन के पश्चात् वह भारतवर्ष में आए थे। भारतीयों की भावनाओं के प्रति उनके हृदय में आर्द्र का भाव था। वनायपुनर प्रेस विभयक रद्द करके उन्होंने भारतीयों को सार्वभौमता देने का प्रयत्न किया। उन्होंने अफगानिस्तान से एमी शर्तों पर संधि की जिसे कि ब्रिटिश सरकार के सम्मान में वृद्धि हुई। परिणामतः सभा के ध्येय में अपने प्राप्त कर्मो हो गई। उन्होंने स्पानीय स्वशासन को प्रोत्साहन दिया और १८८२ में अपनी मुक्तिपत्र रिपोर्ट लिखा। इस प्रकार लाड रिपन की नीति जनहित की भावनाओं से प्रेरित थी। इसलिए भारत के शिक्षित समाज में वे अत्यन्त लोकप्रिय हुए। हिमानय से कन्या कुमारी तक प्रत्येक भ्रष्टेजी भाषाभाषी परिवार में उनका नाम अत्यन्त आर्द्र के साथ स्मरण किया जान लगा।

इल्बट बिल—स्वाभाविक रूप से, लाड रिपन के उक्त सुधार जहाँ भारतीयों के सवया मनानुकूल थे भारत में रहने वाले यूरोपियनों की दृष्टि में वे कान का तरह सटकने थे। रिपन यूरोपीय समाज के वापमाजन बन गए। १८८३ में सर इल्बट कोटना न भारतीय नजिस्लेटिव कौंसिल में एक बिन उपस्थित किया जिसका उद्देश्य यह था कि भारतीय एवं यूरोपीय व्यापारीशर्तों के बीच विद्यमान भेदभाव का हटा दिया जाए। इसमें पूरे भारतीय व्यापारीशर्तों को छोड़े व कितने ही ऊँचे पन्ना पर क्यों न प्रतिष्ठित हो किन्तु यूरोपीय के विद्वद् अभियोग मुनन का अधिकार नष्ट था।

अपने मौलिक रूप में इल्बट बिल न सभी जिलाधीशों एवं नेशन जजा की यूरोपीय अपराधियों के निष्णय करने का अधिकार प्रदान किया। इस बिल में किसी का हानि पहुँचाने वाली कोई बात नहीं थी। किन्तु भारत स्थित यूरोपीय समाज इसे सहन न कर सता। लाड रिपन ने भारतीयों के सम्बन्ध में जो उदार नीति अपनाई थी यूरोपीय समाज उससे बहुत ही रण्ट हा गया और इल्बट बिल ने तो उनसे रोगानन में घन का काम किया। यह बिल उनको अपने विगपाधिकारों पर कुगारा धान प्रतीत हुआ और उन्होंने इसका विरोध में प्रचण्ड फ्रान्सेलन खड़ा कर दिया। यूरोपियनों ने अपने हितों के रक्षाए एक गुरसा-सय का निर्माण किया और सप्ट घन

एकत्रित करके इल्वट बिल के सिलाफ 'जिहान' शुरू कर दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि उमाद की सी भवस्या में चलाया गया था भागे चलकर शिष्टता की सीमाएँ भी उल्लंघन कर गया। यूरोपियनों ने यह भय प्रकट किया कि भारतीय इस मुविधासे अनुचित लाभ उठावेंगे। साइ रिपन के ऊपर व्यंगवाणों की वर्षा होने लगी। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक सोचा कि गुप्त रूप से साइ रिपन को सरकारी भवन से उठा कर हगलण्ड रवाना कर दिया जाए। कई बार साइ रिपन का निराश्रित किया गया और उनकी दावतों का बहिष्कार किया गया।

समझौता—यह झगड़ा लगातार कई महीनों तक चलता रहा जब बही जाकर समझौता हुआ। १८८४ के तृतीय विधेयक के अनुसार भारतीय जिलाधीशा और सेशन जजों को यूरोपियनों के मुकामे मुनन का अधिकार तो दे दिया गया किन्तु इसमें एक शत लगा दी गई कि यूरोपियन अपराधियों को यह माग करने का अधिकार होगा कि मुकदमा ज्यूरी की सहायता से सुना जाए और ज्यूरी के प्राये सदस्य यूरोपियन अथवा अमरीकन हों। सर जान स्ट्रेची के शासन में इससे यूरोपियनों को भारत में एक ऐसी सुविधा मिल गई जो एक अग्रज को अपने देश में कदापि प्राप्त नहीं हो सकती थी।^१

इल्वट बिल सम्बन्धी वाद विवाद ने भारतीय जन माओलन के विकास पर भारी प्रभाव डाला। इसने भारतीयों की अखिलें खोल दी। अत्यन्त मर्मन्तिक बदनामी के साथ उन्होंने अनुभव किया कि पराधीनता का अविशास कसा कठोर होता है? विदेशी शासकों ने हम किस प्रकार से पद दलित किया है और इस हीन भवस्या में डाल रखा है यह बात उनके सामने बिल्कुल स्पष्ट हो गई। अब उन्हें जान हुआ कि अपनी जातीय श्रेष्ठता के प्रतिमानों सकोण मनोवृत्ति वाले शासक वर्ग से 'पाप' की आशा करना मृग मरीचिका से अधिक कुछ नहीं है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी क शब्दों में कोई भी स्वाभिमान भारतीय इस वान को सहन नहीं कर सकता था। उनके लिए जो इसकी महत्ता समझते थे यह देशभक्ति का आह्वान था। इल्वट बिल की हलचल ने भारतीयों को एक पाठ पढाया और वह यह कि अपने देश में भी बराबरी का दर्जा पाने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पडगा। यूरोपियनों ने इसका विरोध करने के लिए जिन सगठनों का सहारा लिया उसका प्रभाव भारतीयों पर पडा। मजमदार ने लिखा है इल्वट बिल विवाद के समय यूरोपीय सगठनों को देखकर भारतीय यह समझ गये कि राष्ट्रीयता का विकास सम्भव है तो केवल एक सावभौमिक राष्ट्रीय समा द्वारा ही। इस समा का सम्बन्ध प्रांतों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक 'पापक' राजनीति से ही होना चाहिए।

राष्ट्रीय सम्मेलन (Indian National Conference) १८८३—इस सारी हलचल के फलस्वरूप भारतीयों को न केवल जातीय भेदभाव एक राजनीतिक

पराधीनता के विरुद्ध एक प्रविर्ण न सधप की ही आवश्यकता का मान हुआ अपितु यह भी जात हो गया कि इस सधप की रूपरेखा क्या हो। यूरोपियना ने इल्लट विल के सशोधन म मनोवाछिन सफलता प्राप्त का थी, इसने यह स्पष्ट हो गया कि विदेशी शासन का सधप विरोध तभी समव है जब कि कोई देशयापी सगठन ऐसे कामा को सधपने हाया म ल से और उस जनता का सत्रिय सहयोग मिल सक। समव की यह पुकार व्यय नहीं गई। इल्लट विल के सम्बन्ध म यूरोपियनो का जो दृष्टिकोण रहा था उसे भारतीय नेताओं ने विस्मृत नहीं किया। निसम्बर १८८३ मे सुरद्रनाय बनर्जी क पयप्रवचन म प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन कलकत्ते म तान त्रि होता रहा। इसम विभिन्न प्रान्ता के प्रतिनिधिया न भाग लिया। सम्मेलन सधपार वस्ताह क वातावरण म सम्पन्न हुआ और उसम भारत की उपायमान राष्ट्रीयता का सधच्छी तरह से परिचय मिलना था। १८८५ म बम्बई म राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) की स्थापना हुई। वास्तव म उक्त सम्मेलन की राष्ट्रीय महामभा का सधगुवा पयप्रवचक सधया निर्माता बहना उचित हाया। सम्मेलन ने सधपने की राष्ट्रीय महासभा म विनीन कर लिया। ऊपर जो बुद्ध कहा गया है उसका तात्पय यही है कि १८७६ से १८८५ तक क ८ वर्षों का भारत के राष्ट्रीय इतिहास म सधत्यन महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस काल की घटनाओं न ही उस सधप की नीव डाली जिसका सधन्त भारत म ब्रिटिश राज क सधन्त क साथ हुआ।

सारांश

सधजों ने भारतवप पर धारे धीरे विना किसी पूव निश्चित योजना के साथ काम करते हुए सधधिकार किया था। १८५२ तक सम्पूर्ण देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सधीन हो गया। यह बात विस्कुन गनत है कि भारत म सधजों न सधपने मास्राय का निर्माण, मस्तिष्क की सधद्वेचन सधक्या म किया। १८वीं शताब्दी म भारत की राजनीतिक दशा सधत्यन्त सधव्यवस्थित एव शोचनीय थी सधजों ने इसका काम उठाया और सधपन उद्भव का पूरण करन म सधकृता प्राप्त की।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना म भारत की सधाविन राजनीतिक एव मासृत्तिक सधवनति हुई। प्रतिगामी ब्रिटिश शासन क पनस्वरूप दन क पुरान उद्योग सधपे सधोट हो गए और जनत त्रिटिना क दन-जन म पय सध। ब्रिटिश शासन की स्थापना के कारण पभासने नष्ट हा गई। इमाइ पात्रियो के सधम सधचार और सधजों निगा के सधसार ने भारत को मासृत्तिक सधमना की वेदियों में जकड लिया।

सन् १८५७ का विद्रोह ब्रिटिश की सुरादया क कारण जनता म सधपने हुए सधसन्तोष का सधयकर विस्फोट था। भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता का यह प्रथम युद्ध सधसपन हुआ और सधजों ने सधत्यन्त निष्कारतापूर्वक सधमका दमन किया। विद्रोह के पश्चात् सधजों ने सधविश्वास तथा पून डालो और राज करो की नीति का सधायप किया जिसका फल यह हुआ कि भारतीयों और सधजों क बीच सध-सध की सधई बसूती सधनी गई।

१८५७ के विद्रोह के पश्चात् भारत की शासन प्रणाली में कई मौलिक परिवर्तन हुए। १८५८ के भारत सरकार अधिनियम ने भारत में बम्पनी के शासन की अत्यन्त कठोरता को भारत का शासन ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया। अधिनियम ने बोर्ड आफ कन्ट्रोल तथा बोर्ड आफ डायरेक्टर्स का अंग बन लिया और उनके स्थान पर भारत-मंत्री के एक नए पद का सृजन किया। भारत में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था। अधिनियम ने भारत में ब्रिटिश सहायता के लिए १५ लाखों की एक भारत परिषद बनाई। कतिपय आलोचना के अनुसार भारतीय शासन का 'नाउन' के हाथों में जाना एक औपचारिक परिवर्तन मात्र था। नई व्यवस्था का प्रारम्भ महारानी विक्टोरिया की एक घोषणा के साथ हुआ। घोषणा में कहा गया था कि दशवीं शताब्दी के अधिपतियों की रक्षा का जायगी विद्रोहियों के साथ दया का व्यवहार होगा और सभी धर्मों और जातियों के लोगों को बिना किसी पक्षपात के योग्यता-नुसार सरकारी पदा पर नियुक्त किया जायगा।

जहाँ १८५८ के अधिनियम में केवल गुट सरकार की रूपरेखा में ही परिवर्तन किया था १८६१ के भारतीय परिषद अधिनियम ने भारतीय शासन में भी कतिपय सुधार किए। इस अधिनियम में गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद में एक पाँचवा विधि सभ्य और बढ़ाया। अधिनियम ने केन्द्र में गवर्नर जनरल को और प्रांतों में गवर्नरों को यह अधिकार दिया कि वे कानून निर्माण के कार्य में भारतीयों को भी सम्मिलित कर सकें हैं। फिर भी १८६१ के अधिनियम के अधीन निर्मित भारतीय व्यवस्थापिका समारोहों को कई कठोर प्रतिबंधों के अधीन काम करना पड़ता था।

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में लाड रिपन और वाड लिटन का शासन कानून अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीति के अन्तर्गत साध्य दिल्ली दरबार अफगान युद्ध एवं वित्त सम्बन्धी वाद विवाद अल्प विधेयक समाचार पत्रों की स्वाधीनता का अन्वेषण इण्डियन सभिस की परीक्षा में बतने की अवस्था में कमी कर देना आदि एषीं बातें थी जिन्होंने भारतीयों के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति व्यापक असंतोष की उस भावना को उत्पन्न किया जिनके फलस्वरूप १८८५ में कांग्रेस की नींव पड़ी।

अध्याय २

भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म

६ भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय के कारण

① बहुत से कारणों का परिणाम—भारत में राजनीतिक चेतना के मूल जागरण १८५५ में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के रूप में भूत आकार धारण कर लिया। यह स्मरणाय है कि काग्रस जा देशभक्ति का आकषण केन्द्र और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य सभ्यता की अग्रणी धन गई उसका जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं था। मंच ता यह है कि वह उन्नामनी शताब्दी के राष्ट्रीय नवजागरण का ही एक भाग थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह उस अंधकार आधिक और राजनीतिक अज्ञानता का अभिव्यक्ति थी जो ब्रिटिश शासन के अत्याचारों के कारण फैल रहा था। पट्टाभिसातारमया ने भी इस तथ्य को स्पष्ट स्वीकार किया है। एक माथ ही साथ वह उन राष्ट्रवादी शक्तियों की सन्नेपण थी जो पृथ्वी से हा धार्मिक-सामाजिक मुधार-अत्र में सक्रिय थी। बंगाल में रामगोपाल घोष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन बासु ने बम्बई में दानामाई नौराजी और जगन्नाथ शंकर सठ ने मद्रास में जी० मुन्हाण्य अय्यर और महाराष्ट्र में राव बहादुर के० एल० नल्कर तथा एम० एच० चिपलान्कर ने राष्ट्रीयता के बीज बोने के लिए भूमि अर्थात् तयार कर दी थी। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को यूरोप के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभूत प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में राष्ट्रवादी प्रचण्ड लहर उठी थी जिसके पनस्वरूप विस्तृत जर्मनी और इटली का एकीकरण तथा ग्रीस और बर्जियम को विदेशी शासन से मुक्ति मिली। मध्यकालीन अंधांधति की दशा से जापान के अग्रभूत प्रव आकस्मिक उत्थान ने भी भारत की राष्ट्रीयता को पर्याप्त प्रभावित किया। संक्षेपतः भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन कई शक्तियों और कारणों के समूह का परिणाम था। नीचे हम उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारणों पर विचार करते हैं।

② भारत का राजनीतिक एकीकरण—यद्यपि भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन का स्वरूप प्रतिगामी ही था फिर भी उसने भारत को राजनीतिक एकता प्रदान कर जो उसका दास पहले कभी नहीं थी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास को प्रोत्साहित किया। अस्तु भारतवर्ष में विस्तृत समय के अन्त में, रक्त रण नापर वेप, रीति रिवाज और मन्त्रण्य आदि की अमल्य विभिन्नताएँ रहूँ हूँ भी एक यौतिक एकता रही है। नौगोत्रिक दृष्टि से भारतवर्ष सर्व एक इकाई रहा है। अतः ना कहीं अधिक महत्वपूर्ण भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता है जो विदेशियों के अतिक्रम

भायमणों के बावजूद सदब प्रशंसा रही है। जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है कि 'सम्पूर्ण प्रायशः के निवासियों की मानसिक पृष्ठभूमि दृष्टिकोण और विचाराधारा में भारतीयजनक समाता रही है। शकराचाय द्वारा निर्धारित प्रमुख तीर्थ भारत के चार कोनों पर विराजमान थे। उत्तर में हिमालय के नीचे बड़ीनाथ दक्षिण में कादा कुमारी के समीप रामेश्वरम पश्चिम में धरव समुद्र की धार धार गढ़ाए हुए द्वारिका और पूव में वंगाल की खाड़ी के जल से अठगलिर्मा करती हुई पुरी। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच सौहार्द विद्यमान था। भारत ही उनकी पुष्पभूमि थी।' भारतवर्ष में इस्लाम का प्रवेश इस एकता को छिन्न भिन्न करता हुआ मातृम हाना था किन्तु भारतीय संस्कृति में दूसरी संस्कृतियों को मिनाने और अन्वय धर्मों के प्रति सहिष्णुता की जो भावना रही है उसने यहाँ भी संश्लेषण का माग लिया। यह तो अग्रजों की फट्टाओं और राज करो नीति का परिणाम रहा है कि भारत की संश्लेषण शक्ति नष्ट हो गई और भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सन्व ही एक रहने बान देश का अंग भग हुआ।

यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि ब्रिटिश शासन के पूव भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था। अगोक और अकबर जैसे महान शासकों को भी भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने में पूरा सफलता नहीं मिली। भारत का जो कुछ एकीकरण के कर सके वह अल्प जीवी रहा। इसका एक तो कारण यह है कि जनता में राजनीतिक एकता की उत्कट आकांक्षा नहीं थी। दूसरे आवागमन के आधुनिक साधन भी उस समय उपलब्ध नहीं थे। भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने का अन्व अग्रजों को ही प्राप्त है।^१ वे सम्पूर्ण देश को एक दृढ़ केन्द्रित शासन व्यवस्था के अंतर्गत लाने में सफल हुए। उन्होंने भारतवर्ष का वह राजनीतिक सत्ता प्रदान की जिसके आदेशों का दश के एक कोने से दूसरे कोने तक पानन किया जाने लगा। अग्रजों की इस सफलता का कारण यातायात के साधनों का विकास है। यह तो स्पष्ट ही है कि अग्रजों ने भारत में प्रशासनिक एकता अपने साम्राज्य के हितार्थ स्थापित की आवागमन के आधुनिक साधनों का सूत्रपात करने में उनका अग्रणी ही स्वाध निहित था। एसा होने पर इस देश का आर्थिक शोषण के और भी सुगमतापूर्वक कर सकते थे। पर तु इसका परिणाम सवधा उनका मनोनुकूल नहीं हुआ। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित भारत की राजनीतिक एकता सामान्य आधीनता की एकता थी किन्तु उसने सामान्य राष्ट्रीयता की एकता को जन्म

१ जवाहरलाल नेहरू— यूनिटी आफ इण्डिया पृ १६।

२ सुब्रह्मण्य अय्यर ने राष्ट्रीय महासभा के प्रथम अधिवेशन में भाषण देते समय इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की कि देश के इतिहास में जनता के बीच एकता की भावना के दशन का (राष्ट्रीय अस्तित्व के अभाव का) यह सवप्रथम अवसर है' चर्चा की थी।

दिया।^१ अखण्ड और स्वतंत्र भारत का विचार राजनीतिक एकीकरण का अनिवार्य परिणाम था। उसने लोगों के दिमागों में घर कर लिया। हम समय एकता का विचार कहा ऊपर से नहीं लाया गया था वह स्वतः प्रेरित था। इन विचार ने प्रत्येक देशभक्त भारतीय को नई प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान की और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य समर को आगे बढ़ाया। आगे चलकर एकता की हम बना हुआ भावना न अग्रजों को मजबूत कर दिया। अब उन्होंने हम एकता की मांग करनी की चलावा। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद का अनुकूल शक्ति को रोकने के लिए देशवासियों के विरुद्ध देशवासियों के सम्मुख का सिद्धान्त प्रयुक्त किया तथा धार्मिक और साम्प्रदायिक घमनस्य के बीज बोए। अपना हम चलावा म अग्रजों का कुछ सफलता मिली परंतु राष्ट्रीयता की बेगवती मन्त्रिणी जो एक बार वह निकली उस न अग्रजों की डूटना ही है और न उनका दमन ही रोचने म सफल हो सका।

⑤ पारश्चात्य शिक्षा और संस्कृति—भारतीय राष्ट्रीयता के जन्म और विकास में पारश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने भी बड़ी सहायता दी। अग्रजों शिक्षा के पत्रस्वरूप भारत के पश्चिम के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ जिसके मुद्दरस्थापा परिणाम हुए, सुशिक्षित भारतीय अग्रजों भाषा और साहित्य के सीखने पर मुग्ध हो गए उन्होंने पारश्चात्य मन्त्रिणी के धर्म का आधानक पान किया। एक अग्रज नलक राजालडगाँ न स्वयं लिखा है 'पश्चिमी अध्ययन की नई मन्त्रिणी न भारतीयों के मन्त्रिणी म गन्दाई से प्रवेग किया और भारतीयों न भी उसका गम्भीरता पूर्वक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता के रास्त से पान किया जिसके पत्रस्वरूप उनका इच्छिकाग क्रान्तिकारी बन गया। शिक्षित भारतीयों न इटली की राष्ट्रीयता के मन्त्रिणी मजिनी मन्त्रिणी रायशान्ति के प्रशंसा समा और बाल्टियाँ व्यक्तित्व स्वाधीनता उत्तरवाँ और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अग्रदूत धर्मस पत्र लाकबक मन्त्रिणी और मिन धान्ति मन्त्रिणी की रचनाओं का अध्ययन मनोयोगपूर्वक अनुशीलन किया। उन्नीमर्षी मन्त्रिणी में जो राष्ट्रीय धान्ति मन्त्रिणी हुए म उनसे भारतीय नवयुवकों की बड़ी प्रेरणा मिली। इन राष्ट्रीय धान्ति मन्त्रिणी का ही यह पत्र था कि तुर्कों म यूनान की और हालण्ड से बर्लिन के मन्त्रिणी प्राप्त हुई। अपने देश की अयोगनि देगकर भारतीय युवकों का हृदय मन्त्रिणी से भर गया। राजमाद्र नौरोजी के अनुसार जो राष्ट्रीय महामना की नींव डालने वालों में म एक म पारश्चात्य शिक्षा भारत के राष्ट्रीय आग्रण म एक विच्छि स्थान रखती है। हमें एक नूतन प्रकार मिला है और उससे बनोया है कि राजा प्रजा के लिए होना है प्रजा

१ हिन्दुस्तान की राजनीतिक एकता गोल हम से साम्राज्य की वृद्धि के गुणाधार था म प्राप्त हुई था। बाँ में जब यह एगना राष्ट्रीयता के साथ मिल गई और विदगी राय की पुनीती देने लगी तो हमारे सामने पूरा डालने और साम्प्रदायिकता का जानबूझ कर बड़ाए जाने के हृदय आने लगे जो हमारी भावी उन्नति के माग में जबरदस्त रोड़े बने।' जवाहरलाल नेहरू धर्मिणीप्राणी पृ० ४३७

राजा के लिए नहीं। सक्षयत पाश्चात्य विचार धारा और साहित्य के सतत ने भारत के बुद्धिजीवियों के समक्ष नवीन भावनों की सृष्टि की उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम की भावना उत्पन्न की।

वस्तुतः भारत में ब्रिटिश शासकों ने पाश्चात्य शिक्षा का सूत्रपात किया उन्नत ध्येयों परहित की भावना से प्रेरित होकर नहीं किया था। इतम कोई सत्य नहीं कि कुछ ऐसे भी 'युवक' अग्रज थे जिनका अग्रजी माया और ससृष्टि का अतर्क्य अष्टना में दृढ़ विश्वास था और वे सोचते थे कि भारत की उन्नति अग्रजी रीतियों को अपनाते पर ही सम्भव है। राजा राममोहन राय जैसे बुद्धि दंशमन्त्रों का भी यही विचार था कि जिस अयोग्यता में भारत पड़ा हुआ है उसमें छुटकारा पाने के लिए पाश्चात्य ससृष्टि का सम्पन्न अतीव आवश्यक है। परन्तु भारत में अग्रजी शिक्षा प्रारम्भ करने के पीछे सबका अन्तर्दृष्ट उद्देश्य नहीं था। अग्रजों को उस समय ससृष्टि के अतीव आवश्यकता थी वे शिक्षित भारतीयों का विदेशी शासन के प्रति राजमन्त्र और भूत कानून ससृष्टि तथा धर्म के प्रति विमुक्त करना चाहते थे। ब्रिटिश शासकों की इन एपणामों का ही यह परिणाम था कि यहाँ पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया गया। भारतीय जनता के अग्रजीकरण के साथ ही साथ भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ करना ही विदेशी शासकों का प्रमुख उद्देश्य था। अधिकांश अग्रज मोस्टग्रंट एन्फिस्टन के विचार से सहमत थे कि 'अग्रजी शिक्षा के प्रभाव से भारतीय ब्रिटिश शासन को सह्य स्वीकार कर लेंगे।' स्पष्ट रूप से यह आशा की गई थी कि शिक्षा प्रसूत सस्कार जनता को ब्रिटिश शासन से सन्तुष्ट कर देंगे और उसके हृदय में विदेशी शासन के प्रति अनुरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाएगा। मोस्टग्रंट एन्फिस्टन के अनुसार भारतवर्ष में अग्रजी शिक्षा एक राजनीतिक आवश्यकता थी। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना अत्यन्त सदिग्ध और अनिश्चित वातावरण में हुई थी शासक और शासिता के बीच बहुत भेदभाव था। इन कारणों से ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति सबका सुरक्षित नहीं थी। उसकी सुरक्षा का एकमात्र उपाय यही ही सबता था कि अग्रजी शिक्षा के प्रचार द्वारा स्वतंत्र विचार शक्ति को कुण्ठित कर दिया जाये। ट्रेनिंग न १८३८ में किया था कि अग्रजी साहित्य का प्रभाव भारत में अग्रजा साम्राज्य के लिए द्वितीया होगा। लेकिन वह यह भूल गया कि अग्रजा साहित्य स्वतंत्रता की उन्नत भावनाओं से परिपूर्ण है और इस द्वारा राष्ट्रियता एवं स्वाधीनता की भावना का प्रोत्साहन मिलेगा।^१

पाश्चात्य शिक्षा का सूत्रपात करने में अग्रजा का ध्येय भारत में अपने साम्राज्य की जडा को मजबूत करना था लेकिन उसने इन जडों को उखाड़ने में सहायता दी। भारतीयों को अपने विदेशी शासकों के प्रति राजमन्त्र का पाठ पढ़ाने के बजाय अग्रजी शिक्षा ने उन्हें स्वतंत्रता और स्वशासन का पाठ पढ़ाया। शिक्षित भारतीयों ने

१ श्री मन (सम्पादित)— माडन इण्डिया एण्ड दि वस्त ' पृ० ६५८ ६।

अमेरिका इटली और आयरलैण्ड के स्वातंत्र्य सश्रमों के सम्बन्ध में पढ़ा। उन्होंने ऐसे लेखकों की रचनाओं का अनुशीलन किया जिन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सिद्धांतों का प्रचार किया है। ये शिक्षित भारतीय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक और बौद्धिक नेता हो गए।^१ यह स्मरणीय है कि मुरदनाथ बंनर्जी दादामाई नौरोजी गोबल तथा भारत की राष्ट्रीयता के अग्रणी ज्योति-बाहुबुध्रजी शिंदे की ही दल थे। मकाने ने कहा था कि उस दिन को जब यूरोपियन ज्ञान में निष्णात भारतीय यूरोपियन मस्थाओं की मांग करेंगे में ब्रिटिश इतिहास का सर्वाधिक गौरवपूर्ण चित्रण" ममभूगा। मकाने का यह स्वप्न बहुत शीघ्र साध्य हो गया इतना शीघ्र जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की होगी।

अंग्रेजी भाषा से भारत की राष्ट्रीयता को प्रभूत बल प्राप्त हुआ। प्रांतीय सीमाओं के ऊपर उठकर उसने अखिल भारतीय भाषा का रूप धारण कर लिया। शिक्षित भारतीयों की लोक भाषा (Lingua Franca) के रूप में यह देश के विभिन्न भागों के निवासियों के बीच विचारों के आदान प्रदान का माध्यम बन गई। अपने उन्हें एक मंच पर मिलने सामान्य समस्याओं पर विचार करने और कार्य की सामान्य योजना के निर्माण का पथ प्रशस्त किया। दूसरे शब्दों में अंग्रेजी न भारत की राजनीतिक हृदय और राष्ट्रीयता के अभ्युत्थान में महत्वपूर्ण भाग लिया है।

(५) भारतीय प्रेस और वर्तमान साहित्य—अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारत में पत्रकारिता का जन्म और प्रांतीय भाषाओं के साहित्यों का विकास हुआ। विदेशों के पत्रकारों द्वारा समाचार पत्रों की आशानीय वृद्धि हुई। जब राष्ट्रीय महासभा का जन्म भी नहीं हुआ था और भारतीयों के पास कोई सामान्य मंच नहीं था समाचार पत्रों ने राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बहन सहायता दी। उन्होंने जनता को शिक्षा के निर्माण में व्यस्त किया और वे सरकारी कामों का तीव्र आलोचना करने में पीछे नहीं हटे। भारतीय प्रेसों ने अंग्रेजी और देशी भाषाओं दोनों में राष्ट्रीयता के शिशु-पालन का सिचन किया और ऐंग्लो-इण्डियन समाचार पत्रों का बहुतायत उत्तर दिया।

भारतीय प्रेस के जन्मगत राजा राममोहनराय ने १८२१ में 'सम्वाद कोमुनी' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसका दृष्टिकोण प्रातिश्रील एव राष्ट्रवादी था। सब एक ही मंच का पाठन जो मुजबान ने उभार राष्ट्रिय पत्र चाम्य समाचार निकानना गुरु किया। १८३१ में भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय द्वारकानाथ टगोर और प्रमनहुमार टगोर द्वारा सम्पादित 'अग्रदूत' का प्रकाशन शुरू हुआ। मुजबान 'राजगुणार' की स्थापना १८५१ में हुई थी और कुछ बान तक उसका सम्पादन दादामाई नौरोजी ने किया। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् तो भारतीय

समाचार पत्रों ने विद्यतगति से जनता की। ऐंग्लो इण्डियन टाइम्स प्राय इण्डिया' (१८६५) मद्रास मेल (१८६८) स्टेटमन (१८७५) और लाहौर क सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' (१८७६) प्राय पत्र शासन के प्रवक्ता थे। इन पत्रों की चुनौती का उत्तर देने के लिए इसी युग में प्रमृत बाजार पत्रिका (१८६८) ट्रिब्यून (१८७७) और पायनियर (१८७९) का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। उन्होंने राष्ट्रीयता के प्राय का ग्रहण किया।

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में समाचार पत्र-पत्रिकाओं का काफी हाथ रहा है। उन्होंने जनता को जागरण का साधन दिया है और उसे राजनीतिक रूप से शिक्षित किया है। राष्ट्रीय आन्दोलन समाचार पत्र पत्रिकाओं का कितना श्रेणी रहा है यह इस तथ्य से ही स्पष्ट है कि राजा राममोहनराय से लेकर केशवचन्द्र सेन गोल्लल तिनक फिरोजशाह महता दानामाई नौराजी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सी० वाई० चिन्तामणि महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू तक सावजनिक नेताओं की एक विशिष्ट परम्परा रही है जिन्होंने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए प्रस का उपयोग किया है और अब भी कर रहे हैं।^१

इस समय देशी भाषाओं में जिस साहित्य का सृजन हुआ उसने भा राष्ट्रीयता की बेगवती धारा को शक्ति प्रदान की। बंगाल में बकिमचन्द्र जैसे साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की उन्नता को प्रदीप्त रखा। उनका मान-दमठ तो प्राधुनिक बगीय राष्ट्रीयता की गीता बन गया। उसन नवयुवकों को बहुत प्रभावित किया और बंगाल में प्रातिकारी राष्ट्रीयवाद की पाठ्य पुस्तक का काम किया।^२ ब दमातरम जो रवीन्द्र के जन मन गन क साथ साथ भारत का राष्ट्रीय गीत है यकिम की रचना है। बहुत से भारतीय यूरोपियन अधिक्ता नील के बगीचों में काम करते थे। वहाँ उनको जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ता था 'नीन्दण नामक एक बंगाली नाटक में उनका सफल चित्रण किया गया। इस नाटक का पत्रकार देशभक्त भारतीयों की भावनाओं को उत्तजना मिली। राष्ट्रवादी आदर्शों का प्रसार करने में बंगाल में प्रस पियेटर और गुप्त प्रातिकारी समितिया विशेष रूप से सक्रिय थीं। गरीबाल्डी और मजिनी के जावन चरित्रों का अनुवाद किया गया और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के ध्येय को स्वप्न में हस्तगत भारत का इतिहास (History of India gained in a Dream) असे शो में घोषित किया गया।^३

घानि पुनर्जागरण और राष्ट्रीयता—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रवाद की बेगवती धारा की उस युग के सुधार आन्दोलनों ने अपूर्व बल प्रदान

१ मार्गटा बस— दि इण्डियन प्रस पृ० १६।

२ जी०एन सिंह— लण्डनमास इन इण्डियन नेशनल एण्ड कान्स्टीट्यूशनल डबलपमेण्ट' पृ ११७।

३ हस काहन— ए हिस्ट्री आफ नेशनलिम इन दी ईस्ट पृ० ३६०।

किया। शताब्दियों तक विपश्चिता के पराधीनता पाश में फँस रहने के कारण हिन्दू धर्मन सांस्कृतिक धर्म का मूल चुके थे। भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ साथ ईसाई धर्म का भी आगमन हुआ और वह हिन्दू धर्म के अस्तित्व तक को चुनौती देता प्रतीत होने लगा। यह स्पष्ट था कि उम ममय हिन्दू धर्म शन शन विनाश की ओर बढ़ रहा था और उसकी रक्षा तभी हो सकती थी जब कि वह अपनी सामाजिक कुरीतियों को दूर कर देता। अन्ततः शताब्दी के प्रारम्भ में पश्चिमी ज्ञान के आलोक से आये धुन पर तथा पराधीनता की पादा धनुमव करने पर दूरदर्शी भारतीयों ने धर्मन देश की सुरक्षा देयी। उन्हें उसमें सशोधन की आवश्यकता जान पड़ी। इसी के परिणाम आधुनिक धार्मिक सुधार आन्दोलन थे। इन धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने देश में जिस पुनजागरण का सजन किया वह भारत की विकासी-मुख राष्ट्रीयता का एक अविभाज्य अंग तथा उसका लिए आधार शक्ति का स्रोत बन गया। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इन धर्म सुधार आन्दोलनों का विशेष महत्व है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के अन्तर्गत इन सुधार आन्दोलनों का निर्यायक हाथ रहा है। नाच हम सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार आन्दोलनों तथा भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण पर पडा उनके प्रभाव का विश्लेषण करेंगे।

७) ब्रह्मसमाज और राजा राममोहनराय—ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय (१७७२—१८३३) गत शताब्दी के अग्रगण्य सुधारका म स थ। डॉ० पट्टामि सीतारामय्या के शब्दों में उनका दशन बडा विस्तृत और दृष्टि हिन्दु व्यापक था।^१ उन्होंने २० अगस्त १८२८ का ब्रह्मसमाज की स्थापना की। ब्रह्मसमाज के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित थे—(१) ईश्वर एक है। वह समार का स्रष्टा पालक और रक्षक है। उसकी शक्ति प्रता प्रेम शान्त और पवित्रता अपरिमित है। (२) जीवात्मा धर्म है। उसमें अमीम उन्नति करने की क्षमता है और वह धर्मन बर्णों के लिए भगवान के सामने उत्तरदायी है। (३) आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रायना भगवान का आश्रय और उनका प्रतिरक्ष की अनुमूर्ति आवश्यक है। (४) विभा भी बनाई हुई वस्तु को ईश्वर ममक कर नहा पूजना चाहिए न किमी पुस्तक या पुण्य को निर्घात अथवा भाग का एक मात्र साधन मानना चाहिए।

राजा राममोहनराय के प्रभावशाली नृतत्व में ब्रह्मसमाज न चतुमुखी उन्नति की। उनकी मृत्यु के पश्चात् महर्षि देवदत्ताथ और कश्च चन्द्र सन न उनसे शाय को धाग बनाया। सकिन इन दोनों व्यक्तियों के दृष्टिकोण में अन्तर था, फलतः ब्रह्मसमाज के दो भेद हो गए—आध्यात्मिक और साधारण समाज। आदि समाज के तथा महर्षि देवदत्ताथ थे। इसकी विचार धारा कुछ सङ्कुचित और पुराणपयी थी। साधारण समाज अधिक आधुनिक और सुधारवासी था।

१ डॉ० पट्टामि सीतारामय्या— 'हिस्ट्री ऑफ़ दी ब्राह्मिन्स' पृ० १७।

ब्रह्मसमाज ने हिन्दू धर्म की सराहनीय सेवाएँ कीं। उसने हिन्दू धर्म की मौलिक पवित्रता व श्रेष्ठता का उन्पाटन किया। अंधविश्वासों और बहुदेववाद की निन्दा की तथा वान विवाह (तत्ती प्रथा और विधवाओं) की दुःशा जमी सामाजिक गुरीतिषा को दूर करने में हाथ बटाया।

(८) **आय समाज और स्वामी दयानन्द**—उन्तीसवीं शताब्दी का दूसरा महत्वपूर्ण गुप्त ब्रान्दोलन आयसमाज था। इसके स्थापक स्वामी दयानन्द का जन्म काठियावाड़ के एक छोटे से गाँव में १८२४ में हुआ था। वे २१ वर्ष की अवस्था में गौतम बुद्ध की मूर्ति पर छोड़कर निकल गए और उन्होंने अपनी प्राध्यात्मिक पिपासा की शान्ति के लिए वन-वन की खाक छानी। १८६० में दयानन्द जो का मथुरा में स्वामी विरजानन्द के दर्शन हुए। विरजानन्द जो न उन्हें वेदों का सम्यक् अध्ययन कराया और प्रेरणा दी कि वे सत्संग में वैदिक धर्म का प्रचार करें। गुरु से बिना लकर दयानन्द जो ने भारत का भ्रमण किया और जनता को वैदिक धर्म की शिक्षा दी। उन्होंने १८७५ में बम्बई में आयसमाज की स्थापना की। एक अग्रज विद्वान बनने अल्पावधि में स्वामीजी के तत्कालीन समाज पर प्रभाव के विषय में लिखा है— स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अनुयायियों पर अपूर्व राष्ट्रीयता की छाप छोड़ी और भारत को भारतीयता का पापित किया।

आयसमाज हिन्दू धर्म के अतीत गौरव की पुनः स्थापना के लिए प्रयत्नशील था। उसका मन सिद्धांत था वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आयसमाज और ब्रह्मसमाज के धार्मिक पहलुओं में अन्तर है। आयसमाज में समन्वय की उस भावना का जो ब्रह्मसमाज की एक प्रमुख विशेषता थी अभाव था।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् सन्ती तेलराम गुरुत्त विद्यार्थी लाला लालूपतराय स्वामी अद्धानन्द और महात्मा हसराम आदि महानुभावों ने आयसमाज के आन्दोलन को शक्तिशाली बनाया। शिक्षा के प्रश्न पर आयसमाज में कालिज तथा गुरुकुल नामक दो दल हो गए। कालिज दल ने डी० ए० बी कालिज की स्थापना करके शिक्षा का प्रसार तथा वैदिक सिद्धांतों का प्रचार किया। गुरुकुल दल के नेता स्वामी अद्धानन्द ने १९२२ में हरिद्वार के पास गुरुकुल काण्डी की स्थापना की। आयसमाज ने शिक्षा हिन्दू प्रचार दलितोद्धार जातिभेद के उच्छेदन लोक सेवा तथा राष्ट्रीय जागृति के कार्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया।

आयसमाज के दो परस्पर विरोधी पहलू रहे हैं—एक प्रतिगामी दूसरा प्रगतिशील। वेदों की निर्घातता पर अत्यधिक बल-यत्नित निष्पत्ती की उपेक्षा आयसमाज के प्रति निषेधात्मक तथा कतिपय अज्ञान में प्रतिबुद्ध दृष्टिकोण ने उसको सावजनिक अथवा सच्चा राष्ट्रीय धर्म नहीं बनने दिया। लेकिन दूसरी ओर जहाँ आयसमाज ने आह्वानों की प्रभुता मूर्तिपूजा और बहुदेववाद विषयक अंधविश्वासों का विरोध किया—

है, नारी जाति के धम्मुदान और शिक्षा प्रसार के लिए प्रयास किया है वह एक प्रगतिशील आन्दोलन रहा है। भायसमाज राष्ट्रीय जागरण का वतालिक था। एक समय राजनीतिक दृष्टि से भायसमाज सरकार की दृष्टि में क्रान्तिकारी आन्दोलन था और उसके दमन का प्रभूत प्रयास किया गया। सर वलेष्टाइल शिवाल ने उसे भारत में ब्रिटिश प्रभुता के लिए बहुत बड़ा खतरा बताया था।^१

ॐ रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द—श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्म १८३४ में हुगली परगने के एक धार्मिक जन साहस्य कुल में हुआ था। बाल्यकाल से ही उनका विश्वास था कि परमात्मा का दर्शन हो सकता है इसलिए उन्होंने बङ्गोर-साधना का और भक्ति का जीवन बिताया। श्री रामकृष्ण का विचार था कि सब धर्म सच्चे हैं और वे ईश्वर तक पहुँचाने का मिश्र मिश्र साधन मात्र हैं।

श्री रामकृष्ण के शिष्यों में नरद्वन्द्व (स्वामी विवेकानन्द) बहुत प्रसिद्ध हैं। गुरु की मृत्यु के बाद उन्होंने सायास ग्रहण किया और वे ६ वर्ष तक निव्वत में बौद्ध धर्म के अध्ययन में भ्रमण करते रहे। १८६३ के सितम्बर मास में शिवागो के धर्म सम्मेलन में सम्मिलित होकर उन्होंने अपना वह प्रसिद्ध ऐतिहासिक भाषण दिया जिससे धर्मरीका को भारत के धार्मिक महत्व का पहली बार पूरा पान हुआ। धर्मरीका और इंग्लैण्ड में हिन्दू धर्म का प्रचार करने के बाद वे भारत वापस लौटे। विवेकानन्द ने धर्मन गुरुदत्त का शिक्षा के प्रचार के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

विवेकानन्द महान् धार्मिक नेता ही नहीं थे वे महान् राष्ट्र निर्माता भी थे। उनकी दशमविन के विषय में धर्मज तक कहा करते थे कि 'उनका पूजा का देवी उनकी मातृभूमि थी' (The queen of his adoration was his moth rland) यद्यपि उन्होंने राजनीति में प्थापण नहीं किया, परन्तु उनकी रचनामा में उत्कृष्ट देश भक्ति का स्वर सुनाई पढ़ता है। वे पश्चिम के स्वातन्त्र्य और जनता के साथ पूर्व के अध्यात्मता का संयोग करना चाहते थे।

विद्योमोरी—भारत के धार्मिक तथा राजनीतिक नवजागरण की विधाताकी से जो कि एक विरय आन्दोलन था, विपुल सहायता मिली। विद्योमोरी की स्थापना महम अन्वैदुरकी तथा बनल मल्लान ने १८५७ ई० में धर्मरीका में की थी। वे १८७६ में भारत आए और उन्होंने मशरत के निव्वत धर्मप्रचार में धरना केंद्र बनाया। भारत में इस आन्दोलन का स्थापक बनाने का श्रेय श्रीमती एनीबागल का है।

विद्योमोरी आन्दोलन ने हिन्दू धर्म की प्राचीन रूढ़ियों और विश्वासों का प्रबल समर्थन किया। इसका उद्देश्य प्राचीन भारतीय आन्दोलनों और परम्पराओं का पुनर्जीवित करना था। श्रीमती बासेण्ट के प्रयत्न से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनारस में हिन्दू टेम्पुल स्टेन की स्थापना हुई जिसने आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण

किया। पियोसोकी आन्दोलन ने हिन्दू धर्म की बड़ी सेवाएँ की हैं। उसने तब धर्मों में सद्भाव बनाने के लिए सहिष्णुता का प्रचार किया और हम अपनी सम्मति पर गर्व करना सिखाया।

मुसलमानों के धार्मिक आन्दोलन—भारतीय नवजागरण का प्रभाव से मुसलमान भी प्रेरित नहीं बचे और उनमें भी सुधार की भावना जागृत हुई। सैयद अहमद खान शेरिली नदरव के बहावी आन्दोलन का संदेश भारत में प्रसारित किया। उन्होंने ईश्वर की एकता पर पुनर्बार ध्यान दिया और कहा कि कुरान की व्याख्या करने का सब को अधिकार है। बहावी आन्दोलन की भावना अत्यंत कट्टर और प्रतिक्रियावादी है।

मुस्लिम समाज सुधारका, में सर सयद अहमद साँ का नाम शीघ्र स्थानीय है। उन्होंने अलीगढ़ आन्दोलन चलाया मुसलमानों को पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया। वे पूर्ण प्रयास के विराधी और स्त्री शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने १८७५ में मुहम्मद ऐंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज की नींव डाली जिसने बाद में अलीगढ़ विश्वविद्यालय का रूप धारण किया।

सुधार आन्दोलनों का प्रभाव—उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जागृति के कार्य में अग्रणी योगदान दिया। विदेशी शासन में भारत तीव्र गति से सांस्कृतिक अंधपतन की ओर बढ़ रहा था। धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने इस पतन-मुख प्रवृत्ति को रोका। सदियों से परतन्त्रता की चक्की में पिस्तले पिस्तले भारतवासियों में जो मानसिक और अध्यात्मिक दुःखनाशा आ गई थी सुधार आन्दोलनों ने उसे इस दुःखनाशा से उभारा।

सुधार आन्दोलनों ने भारत की कुरोतियों को दूर किया। जनता के अंध विश्वासों को तोड़ा और उसमें जाँच पड़ताल करने की भावना भर दी। इन आन्दोलनों ने हम बताया कि हमारे धर्म में कौन सी बातें अच्छी हैं जिन्हें हम स्वीकार करें और कौन सी बातें बुरी हैं जिन्हें हम त्यागें। यह धार्मिक सुधार आन्दोलनों का ही फल था कि भारत अंध विश्वासों के धने कुहरे से बहुत कुछ बाहर निकला और उसने अत्यन्त वस्तु की तब विज्ञान और विवेक के प्रकाश में देखना प्रारम्भ किया।

प्रायः समस्त धर्म सुधार आन्दोलनों ने भारत के अतीत वचन का चित्र उपस्थित किया। भारतीय जनता न जब इस चित्र से अपनी वर्तमान स्थिति का मिलान किया तो उस अंधार वेदना हुई। कहा तो भूतकाल का जगदगण भारतवर्ष और वहाँ वर्तमान काल का पराधीन निधन और अशिक्षित भारतवर्ष स्वभावतः धार्मिक आन्दोलनों ने भारतीय जनता का अन्तस्सल में अपनी वर्तमान दुःशा से पुनश्चारा पाने की अत्यन्त आवश्यकता व्यक्त कर दी। इस प्रकार धर्म सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रवाद की भावना को धार्मिक धर्म में व्यक्त किया।

यह स्मृत्य है कि राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन स्वामी दयानन्द पौर स्वामी विवेकानन्द प्रभृति गुणारक उच्चकाटि व राष्ट्रवादी थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को देशभक्ति का पुनीत पाठ पढ़ाया। राजा राजमोहनराय को प्राधुनिक भारत का जाक कहा गया है। यद्यपि व ब्रिटिश शासन के प्रशसक थे फिर भी वे उन धारणों में प्रवृत्त थे जिनसे भारतवर्ष पांडित था। 'मानदजी का तो राष्ट्रप्रेम अमरिद्य है। उन्होंने अपने सबथरुय सरयाय प्रवास में लिखा है 'बाई कितना ही करे परन्तु जा स्वदेशी राय होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मनमतातर के प्राग्रहरहित धन और पराये का पक्षपातधूय प्रत्या पर माता पिता के समान श्रुपा माय और दया के साथ विनियों का राय भी पूरा सुखदायक नही है।' स्वामी विवेकानन्द का हृदय जहाँ वेणुन की शिखामा में आप्लावित था वहाँ उनके हृदय में देशभक्ति की उत्तान तरंगों की हिलोरें नेती रहती थीं। नवयुवक व लिए उनका संश था, मेर तरुण मित्रो! वतवान् बनो। तुम्हारे लिए मरी यही सलाह है। तुम भगवद्गीता व स्वाध्याय की प्रवेगा फुटवान् खलवर वही अधिक सुगमता से मुक्ति प्राप्त कर सकत हा। जब तुम्हारी रंगें और पठे अधिक हठ हागे तो तुम भगवद्गीता व उपन्यों पर अधिक ध्या तरह बन सकाय। याता का उपदेश कापरा को नहीं प्रत्युत भजन का दिया गया था जो बड़ा पुरवीर पगक्रमा और अत्रिय शिरामणि था।

(११) **धार्मिक कारण**—शुरू में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी केवन मात्र धार्मिक सस्था ही थी जिन्होंने मनुष्य सामान जाती और उसे भारत के वन्ध स्तनकारिया तथा धर्माय विलास का चीजा म बदल नेती तब भारतीय उद्योग को बड़ा बल मिला और कारीगरी की चीजा म भारत निमात्र धार्मिक बन्दुत बढ गया। तत्रिन उस समय हालत बिलुल धन गई जब कि इंग्लण्ड में औद्योगिक क्रान्ति व परिणामम्यरूप मिल्पकारों का एग नया का तमार हो गया। इंग्लण्ड में सारो राजनीतिक शक्ति का आ जाना भारत की कनाया और दस्तकारियों के लिए प्राण घातक सिद्ध हुआ। गाइगिन के उन्ना म इग धार्मिक सपरार में मनया एकमात्र नात्याय घटना (भारत म) पुरानी दस्तकारियों का पतन है। यामाव म इन दस्तकारिया या कामूल बिना कामस्तिमा ढग मे हो गया।

(१२) **भारतीय मिल्पकारों का पतन**—भारतवर्ष में जिन पदार्थों का इंग्लण्ड में धारण होना था उन पर भारी कर लगा लिए जिससे वहाँ का निमान व्यापार नष्टप्राय हा गया। इगो समय भारत के कर्मियों को निम्न दमन का सामना करना

१ ही० भार० गाइगिन— दि इन्डिस्ट्रियल एवोल्युशन ऑफ इण्डिया इन रिपोट टाइम्स पृ० ६।

पडा। सरकार ने भारत में स्वतंत्र धातुओं की भी छूट दे दी। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन के यंत्र उद्योगों से तयार की हुई सस्ती चीजों की प्रतियोगिता में भारतवर्ष के छोटे मोटे उद्योग पधे बिल्कुल नहीं ठहर सके। रत्न और सवाहन साधनों की उन्नति ने विदेशियों का भारत के सम्पूर्ण बाजार का भोषण करने और दस्तकारियों के पतन में सहायता दी।

विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार की बराबर यह कोशिश रही कि भारत इंग्लण्ड के उद्योगपतियों के हितार्थ कच्चे माल का पूरक और तयार माल का ग्राहक बना रहे। इसके लिए उसने यहाँ के उद्योग धंधों के विरुद्ध विभेद की नीति अपनाई। इसी समय भारत में प्राधुनिक उद्योग धंधे विकसित होने लगे लेकिन उनके संरक्षण का उपाय नहीं किया गया चेष्टा यह की गई कि उनका उत्पन्न न हो सके। नाइटिन के प्रतिगामी शासन-काल में कपास से ही आयात कर उठा लेना इसका उदाहरण है। भारत पुरानी दस्तकारियों पर ब्रिटिशराज का जो प्रभाव पड़ा ७० पेट्रॉलमि सीता रामय्या उसका सविस्तार बखान किया है। उन्होंने लिखा है— पुरातन काल में कौशल दस्तकारियाँ नष्ट कर दी गई। खद्दर जो ईस्ट इण्डिया द्वारा ज़ाज़ा में भर भर कर बाहर भेजा जाता था और जिसके बने में गाँव के जुलाहे छापी धारी और गपारी आदि को पर्याप्त धन मिलता था लकाशायर के कपड़ के आयात के साथ समाप्त होन लगा। लकाशायर से आने वाले कपड़े का मूल्य १८०२ में तीन गाल था १८२६ में उन्नीस गाल हुआ और १६२६ में बढ़ते-बढ़ते बहतर करोड़ तक जा पहुँचा। जब भारत में बाहर से यंत्र निर्मित सस्ता सामान आने लगा सहस्रो कर्मियों को अपनी जीविका से हाथ धोना पडा। बीस गाल जुलाहे अपने कुटुम्ब के लोग को मिठाकर जिनकी सख्या एक करोड़ तक पहुँचती थी जीविका से वंचित हो गए। इससे साथ ही साथ तीन करोड़ मूल्य कातन वाले जिनका बजह सवास लाख करध चलते थे अपनी रोजी से हाथ धा बठ। इस प्रकार चार करोड़ कर्मियों की रोजी जानी रही। अत्याय शिल्प कर्मियों का भी यही हाल हुआ। नगरों में डूंग हटाने वाली गाडों के लिए मोटर टायरों के आयात ने बर्तई की रोटी छीन ली। बर्मिण्ड और एण्टवप से आने वाले तार सुण्टो बजे आला तान और तालिया आदि के कारण लोहार की आय मारी गई। जूते भी बाहर से ही आने लगे फलत चमार की जीविका का भी कोई ठिकाना न रहा। रोगन और चीनी के सामान बजह स बुझार अपनी जीविका री बठा।^१ अग्रजों ने भारत का पुरानी दस्तकारियों का पतन करने के साथ

१ पेट्रॉलमि सीतारामय्या—हिस्ट्री ऑफ नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इण्डिया पृ० ५

२ पेट्रॉलमि सीतारामय्या—हिस्ट्री ऑफ नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इण्डिया पृ० ५६।

ही साथ यहाँ के माल तयार करने के कई उद्योग घरों को भी ममल डालने की कोशिश की।^१

⑤ कृषि पर प्रभाव—निष्पन्नता और असतोष—भारतीय कारीगरों की विपुल बेकारी और शिल्पकलाओं के हास व कारण नगरों की जन संख्या कम हो गई सोम शहरों की छोड़ छोड़कर गाँवों में जा बसे और जीविकोपाजन के लिए उन्हें कृषि की शरण ली। जमीन पर बढ़ते हुए दबाव भ्रष्टों का भूमि सम्बन्धी नाति जमादारी प्रथा और भारतीय कृषि की परम्परागत दुबलताओं ने खेती को बड़ा धक्का पहुँचा। फलतः चारों ओर दरिद्रता प्रसरित हो गई और लोगों के रहन-सहन का स्तर नीचे गिर गया। इससे स्वभाविक रूप से असतोष की जन्म दिया। यह स्पष्ट रूप से देखने लगा कि भारत की दुर्लभ प्रायिक समस्या गरीबी को उस वक्त पयत नहीं सुलझाया जा सकता जब तक कि भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति नहीं पा लेता।

⑥ व्यापारियों और शिक्षित भारतीयों में असतोष—जनता की बढ़ती हुई गरीबी के कारण जा बचनी फन रहा था उसको भारत के उदीपमान बोरजुआजी (Bourgeoisie) और मध्यवर्गीय शिक्षित जनों के असतोष में भी बल मिला। भारतीय व्यापारी यह संकष्ट तरह समझ गए कि देश का औद्योगिक उन्नति में ब्रिटिश राज बहुत बड़ी बाधा है। ऊँची सरकारी नौकरियाँ के दरवाजे अपने लिए बन्द कर शिक्षित भारतीयों की भा प्रोत्साहन मडक उठा। विद्रोह के पश्चात महारानी विक्टोरिया ने अपने प्राणवायव में जा आनाए जिलाई थीं उनको निम्न होना देना कर उन्हें और भी परेशान हुई। बस्मूत आई० सी० एल० की परीक्षा में बढ़ने की धवस्था में कमी कर देने का आशय यही था। कि भारतीय शासन सम्बन्धी किसी भी महत्वपूर्ण पद का न पा सकें। ऐस कृत्यों का किस प्रकार देशव्यापी विरोध हुआ इसका हम पढ़न ही

१ ब्रिटेन ने भारतवर्ष के साथ बपास-बस्तों का जो वाणिज्य किया उसने इतिहास को 'इंग्लैण्ड का और से भारतवर्ष के प्रति किए गए ध्याय का एक ज्वलंत उदाहरण' बताते हुए हार्लेस विल्सन ने लिखा है—यदि इस प्रकार के निषिद्ध कर और व्यवधान न लग होते तो मानचम्बर और पत्से के कारण होने शुरु में ही बन्द हो जात और फिर बाध्य की शक्ति से भी उन्हें खालित करना बठिन ही जाता। भारतीय शाय के बलिदान के बल पर उनका निर्माण हुआ। यदि भारत स्वतंत्र होता तो बहु प्रतिवार करता। उसे आत्म रक्षा के इस साधन से वधित रक्खा गया। बहु विदेशियों को बना का मुसापसो रहा। बिना किसी प्रकार का कर चुकाए विदेशी माल का यहाँ स्वतंत्रतापूर्वक आयात किया गया। विदेशी व्यापारी ने अपने इस प्रतिपत्ती का पदादने और बाँ में उतका जमा घोट देने के लिए राजनीतिक ध्याय का धायव किया जिसके सम्मुख बराबरी की मर्दाना पर बहु बिल्कुल नहीं टहर सकता था। च० एम० मित द्वारा उद्धृत— टिप्रेजेंटिव पृ० ३८५।

उल्लेख कर चुके हैं। यह स्मरणीय है कि मित्रिमध्य युग का प्रगतोपजित्तो भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की गेंद की हिलते द्रुते रणगा बुद्ध तो प्राथिक या और बुद्ध राजनीतिक। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय व्यवसायियों ने भी राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संधप में सहयोग किया। अधिपतिर उद्देश्य के पीछे ग काम किया परन्तु उनका प्रभाव बहुत था। स्वदेशी आन्दोलन और प्रिदमो घोषा का यहिपचार करो नारे न उनका बहुत बड़ा हाथ रहा। दूसरे शब्दों में य कह जा सक्ता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में व्यापारी वर्ग के प्राथिक स्वाथ गिहित थे।

(c) राजनीतिक एकीकरण—भारतवर्ष के प्रशासनिक एकाकरण प्रावगपन के प्राचनिक साधनों की उन्नति और प्रपनी शिक्षा प्रद्वनि के प्रचार ने राष्ट्रीय चेतना और एकता के लिए सहायक वातावरण तयार कर दिया। भारतवाय जनता की बढ़ती हुई गरीबी ने प्रसतोप में वृद्धि की और इस तरह राष्ट्रीयता की ज्वाला को मक्का दिया।¹ परन्तु भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवाह को सबसे प्राथिक शक्ति राजनीतिक कारणों से ही प्राप्त हुई।

इन सब राजनीतिक कारणों में सबसे प्राथिक शक्तिशाली जातीय द्वय (racial discrimination) था। कोई भी पराधीन जाति विदेशी प्रभुता को स्तव सहन नहीं कर सकती। कभी न कभी जल्दी प्रयवा देर में उसके प्रति असतोप उत्पन्न हो ही जाता है। भारतवर्ष में विदेशी शासन न अत्यन्त उदत भाव से प्राचरण किया अत उसके प्रति असतोप की भावना शीघ्र ही जाग्रत हो गई। प्रपज भारतीयों को अपने से हीन नस्ल का प्राध बनमानुष और प्राध ह गी (Half negro half gorilla) समझकर घृणा की दृष्टि से दलते थे। इस प्रकार के दृष्टिकोण से भारतीयों के बीच अनिवाय रूप से त्रिाटन विरोधी भावनाओं का विस्तार हुआ। इसकी वजह से भारतीय और उनके श्वेत शासकों के बीच बहुत खोड़ी खाई उत्पन्न हो गई। चूकि सभी उच्च सरकारी नौकरियों पर यूरोपियनों की ही नियुक्ति होती थी इससे ब्रिटिश विरोधी भावनाओं में और भी वृद्धि हुई। इस जातीय भेभाव और भारतीय प्रतिभा के तिरस्कार का शिक्षित भारतीयों ने प्रचण्ड रूप से विरोध किया। गरेट ने ठीक ही कहा है कि भारतीय राष्ट्रीयता के उदय में जातीय भेभाव एक प्रधान कारण था।

प्रपजो न जिस अविश्वास और दमन की नीति पर प्राचरण किया उसके कारण असतोप और प्रचण्ड हो उठा। साड लिटन के प्रान्तिमय शासनकाल में जो

१ ड्यूक आफ आर्गोन ने जो साड नाथयुवक के शासन काल में भारत के राज प्राची भी थे भारत की दरिद्रता का निम्न शब्दों में वणन किया है प्राधीण भारत बय की विशाल जनसदय में जिस दयनीय दरिद्रता और जीवन निर्वाह के निम्न स्तर के दशन होते हैं प्राच तय समार में उसका उदाहरण कभी नहीं मिलेगा।

प्रतिक्रियावादी बान किए गए उन्हीं प्रसंगों के ज्वालामुखी को उस स्थिति तक पहुँचा दिया कि सब उसके फटने का ही देर रह गई थी। मूर्खतापूर्ण प्रकाशन युद्ध के कारण भारत की प्राथिक स्थिति पर कुप्रभाव पड़ा। जबकि देश भयंकर दुर्मिष्ठ के पत्रों में जकड़ा हुआ था जनता की बठिनायों की मजबूत उभार कर लाइ रिपन ने ज्ञानदायक लिटिली दरबार का आयोजन किया। उसने निरंतराव भारतीयों के लिए हृदयकारक वक्ता प्रत्येक कर लिया जब कि यूरोपियनों के ऊपर ऐसा कोई प्रकृत नहीं लगाया। समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाकर उसने प्राचीनता के स्वर को बन्द करने की चेष्टा की। इन सब कार्यों की वजह न जनता के प्रसंगों की पुत्रीभूत ज्वाल बन्ना ही खला गया।^१ सर विनियम वडरवन क शब्दों में हमी पुलिम के दमन की विधियों से समुक्त इन समा प्रतिगामी कार्यों के कारण लाइ रिपन के शासनकाल में भारत शान्तिकारी विस्फोट के प्रतीक समीप पहुँच गया था। मिस्टर ह्यूम का थोड़ा भी विस्मय प्रत्यक्ष प्रतीक सिद्ध होता। लाइ रिपन ने विगडी हुई स्थिति को सम्भालने का भरसक प्रयास किया परन्तु इल्बट बिन को लेकर यूरोपियनों ने विरोध का जो तूफान खड़ा कर लिया उससे सब शिवा-कराया मिट्टी में मिल गया। जब भारतीयों को यह समझत प्रेर न लगी कि यदि वे विदेशी शासन से टक्कर लेना चाहते हैं उसके दमन और शोषण से छटकारा पान का आकांक्षी हैं तो उन्हें सगठन के सूत्र में बंध जाना पड़ेगा। यह स्मरणीय है कि राष्ट्रीय महासभा का जन्म इल्बट बिन सम्बन्धी बाद विवाद समाप्त होने के पूर्व ही हो गया था।

७ भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश शासन की देन।

ब्रिटिश शासन के द्विविध रूप शान्तिकारी और प्रतिगामी—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय के कारणों का उक्त विश्लेषण यह सुस्पष्ट कर देता है कि भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश शासन की स्वाभाविक वृद्धि का परिणाम थी। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो परस्पर विरोध पहुँच चुके थे। उस कुछ घण्टों में तो कान्ति द्वारा और कुछ घण्टों में धार प्रतिगामी बना जा सकता है। स्वतंत्रता और न्याय प्राप्ति के लिए जो राष्ट्रीय संघर्ष खड़ा गया उसके उदय और विकास में ब्रिटिश शासन का भी निर्विवाद श्रेय रहा है। हम यह निश्चय चुके हैं कि भारत के इतिहास में प्रथम बार भयंकरों ने ही उसे राजनीतिक एकाग्र प्रमाण की। इसके प्रभाव में राजनीतिक चेतना घमम्मत्र हो जाती। भयंकरों शिवा पद्धति का सूत्रपात करके भयंकरों ने भारतीय राष्ट्रीयता की शक्ति प्रामाण्य में वृद्धि की। भयंकरों शिवा ने भारत के बुद्धिजीवी वर्ग का परिचय तो धार उभार कर दिया जहाँ से शक्ति प्रारम्भियों ने व्यक्तिगत स्वाधीनता और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य का शान्तिकारी विद्रोह सामर्थ्य और धन संघर्ष में उन्हें हस्तगत करने का लिए महती प्रेरणा भी प्राप्त की। यह सच है कि भयंकरों ने

१ ए० धार० देगार्ड—सोना बर प्राण्ड प्रोफ इन्विक्ट नान्ति-य
पृ० २८६।

जान-बूझ कर भारतीय राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन नहीं दिया। देश का राजनीतिक एकीकरण और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का गृहपात करने में उनका ध्येय यही था कि वहाँ वे अपने साम्राज्य की जड़ों को गूढ़ कर सकें परन्तु इन सब यामों का परिणाम उनकी आशाओं से गिन हुआ।

यदि ब्रिटिश शासन के प्रगतिशील पहलू ने भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावना के उदभव के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण किया तो उसके प्रतिगामी पहलू ने भारतीय राष्ट्रीयता को उभरता प्रदान की। यदि वास्तव में ब्रिटिश शासन उत्तर और द्युत्पन्न राज्य क्रम (Enlightened despotism) रहा होता तो वह प्रसतोप ही उत्पन्न नहीं होता जिसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता की इच्छा को जन्म दिया। यह तो सब विदित है ही कि प्रारम्भ में राष्ट्रीय महासभा राजभक्त भारतीयों और अ भारतीयों की सस्था थी जिनकी भाँति बहुत नरम थी। यदि अग्रजों ने तनिक बुद्धि चातुय और दूरदर्शिता से काम लिया होता तो वे भारतवर्ष पर और अधिक समय तक शासन कर सकते थे और इसमें उन्हें जनता की सहमति भी मिल जाती। परन्तु उनके पास इन दोनों ही वस्तुओं का अभाव था। साम्राज्यवाद की तो कुछ प्रकृति ही ऐसी है कि वह न तो उदार ही होता है और न द्युत्पन्न ही। भारतीय परम्परा से ही सरल और शान्त स्वभाव के रहें हैं पर अपने जातीय रूप के कारण अग्रज उनका दृष्टान्ताजन बन गए। अग्रजों के अघाघुष भाषिक शोषण ने भारतीय मस्तिष्क को अस्तुष्ट और अशांत कर दिया। भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवाह के भाँति कारण अग्रज स्वयं ही थे उन्होंने उसे नियंत्रित करने के लिए हमन के साधनों का प्रयोग किया। परन्तु राष्ट्रीयता का यह अग्रज प्रवाह उनके रोके नहीं रुका। भारतीय राष्ट्रवादी विदेशी शासन का समत उद्घेदन करने के लिए बद्ध परिकर हो गए।

८ राष्ट्रीय महासभा का जन्म (Birth of Indian National Congress)

एनेन आक्टिवियन हूँ मैं—हम देख चुके हैं कि, राष्ट्रीय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस जिसे सुविधा के विचार से कांग्रेस ही कहेंगे) भाषिक और राजनीतिक कारणों के संयोग और 'राजनीतिक दासत्व की अनुभूति का परिणाम थी। साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान का प्रतिपादन करने वाली सस्था भी थी।' इसकी स्थापना का विचार एनेन आक्टिवियन के मस्तिष्क में आया जो एक अवकाश प्राप्त सिविलियन थे। यह हमके लिए भूमि पहले से ही तयार की जा चुकी थी। देश के विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय सगठनों की नींव पढ़ चुकी थी। ये सगठन राजनीतिक रूप से सक्रिय भी थे सुरद्रनाथ बनर्जी को राष्ट्रीय सम्मेलन (Indian National Conference) की स्थापना करने में सफलता मिल चुकी थी। परन्तु कांग्रेस ने इन सब सहायक नदियों को अपने में मिलाकर शीघ्र ही एक महान् तरंगिणी का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार की एक सस्था का विचार। वायुमण्डल में व्याप्त या कायस ने एक अक्षित

भारतीय सत्ता की उच्च भावश्यकता को पूरा किया जिसका अनुभव सभी देशमन्त्रों को हो रहा था।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कांग्रेस की स्थापना का विचार सबसे पहले किस व्यक्ति के मस्तिष्क में उदित हुआ। समाज्युज ह्यूम का ही इस सत्ता का जन्मदाता समझा जाता है। उसके मन्दिर बंद हो चुके प्रजातीय व स्वतंत्र को पहचान कर तथा सोचकर कि यह भ्रमन्ताप क्यों आति का रूप धारण न कर से उन्होंने १ मार्च, १८८३ ई० को कलकत्ता विद्यविद्यालय के प्रेजिडेंटों व नाम एव पर निम्न ओ प्रत्यन्त हृदयस्पर्शी था। इसमें उन्होंने ५० ऐसे निस्वार्थ और निमग्न छात्रों को मौर की ओ इस सिद्धान्त पर कि 'भारत अलग और निस्वार्थता सुख और स्वातंत्र्य के प्रचुर पथप्रदर्शक है काम करने के लिए तैयार हों। ह्यूम ने अपनी योजना के सम्बन्ध में नए वायसरॉय लार्ड डफ़रिन (Lord Dufferin) से वात्सल्य किया। लार्ड डफ़रिन ने उनकी बातों का ध्यानपूर्वक सुना और योजना के क्षय को बढ़ा दिया। उमेदवार बनने के अनुसार ह्यूम के मस्तिष्क में सबसे पहले यह विचार आया था कि भारत के प्रधान राजनीतिज्ञ साल में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषयों पर चर्चा कर लिया करें। यह यह नहीं चाहत था कि चर्चा का विषय राजनीति रहे क्योंकि बम्बई जनकता मद्रास और मद्रास भागों में राजनीति के मण्डल थे हा। लार्ड डफ़रिन ने ह्यूम साहब के विचार को राजनीतिक दिशा प्रदान की। उन्होंने कहा कि इस सत्ता को 'इंग्लैण्ड की तरह यहाँ सरकार के विरोध का काम करना चाहिए।' उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि यहाँ के राजनीतिज्ञ प्रतिवर्ष अपना सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या क्या त्रुटियाँ हैं और उसमें क्या सुधार किए जाए।^१ ह्यूम ने अपनी योजना में वाय सराय व निर्देशों के अनुसार सुधार किया और व इंग्लैण्ड पहुँचे। इंग्लैण्ड में उन्होंने यहाँ के प्रमुख व्यक्तियों के साथ रिपन, इन्ट्रीवा जॉन ब्राइट और मि० स्नग आदि से विचार विनिमय किया। भारत लौटने से पूर्व उन्होंने इण्डियन पार्लियामेण्ट के कमिटी का संगठन किया जिसका उद्देश्य पार्लियामेण्ट के सदस्यों से यह प्रतिज्ञा करवाना था कि वे भारत के मामलों में दिनभर लगे।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सम्बन्ध में यह निश्चित किया गया था कि यह पूना में २५ से २८ दिसम्बर (१८८५) तक होगा। लेकिन पूना में हैजा शुरू हो जाने के कारण उचित निश्चय में परिवर्तन करना पड़ा। यह ठीक समझा गया कि कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हो। २८ दिसम्बर १८८५ का दिन के १२ बजे गान्धुलगास रोजपाल सत्कृत बलिज के भवन में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस प्रकार कांग्रेस का जन्म हुआ जिसे देशी पार्लियामेण्ट का घुंटा समझा गया। कांग्रेस की स्थापना भारत में

१ इत्यु० सी० बनर्जी— 'इण्डियन पार्लियामेण्ट'।

२ 'कही'।

कांग्रेस का जन्म केवल ब्रिटिश साम्राज्य के रक्षार्थ ही नहीं हुआ था—यह धारणा सबका ध्यानीय है कि कांग्रेस का जन्म ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए हुआ था और उसके मूल में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के ह्रास निहित थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश अधिकाारियों ने उसके जन्म के अवसर पर प्रसन्नता प्रकट की थी बहना चाहिये कि कांग्रेस की स्थापना में उनका भी यत्किंचित् हाथ था परन्तु उसके सम्बन्ध में अपना मत परिवर्तन करने में भी उन्हें देर न लगी। शीघ्र ही उसके सतरे का उन्हें मान हो गया वे तुरन्त ही उसके विरोधी हो गए। उन्हीं साठ इफरिन ने जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना का स्वागत किया था अब उसे मूर्ख अल्पसंख्यक बग कहकर पुकारा। सर वलेंटाइन गिरोल ने कांग्रेस के प्रति शासन की नूतन प्रति क्रिया को इन शब्दों में सक्षिप्त रूप से व्यक्त किया 'कांग्रेस भारत की केवल शताब्द जनसंख्या का ही प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने कांग्रेस को साम्प्रदायिक हिन्दू नेताओं की प्रवृत्तता बताया। यन्तु स्थिति यह है कि कांग्रेस शुद्ध राष्ट्रीय और स्वदेशी मान्योत्तन के रूप में अवतरित हुई। इस प्रकार की देश व्यापी संस्था के लिए भारत की प्रादेशिक राजनीतिक संस्थाओं ने पहले से ही भूमि तयार कर ली थी किन्तु इस एक साव जनिक राष्ट्रीय संस्था का रूप देने का श्रेय श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को है जिन्होंने १८८३ में इसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया था। जब कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हो रहा था राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था। भारतवर्ष के महान् देशमन्त्र दादासाहेब नौरोजी उमेशचन्द्र बनर्जी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दिनशा वाचा एवं बन्धुजी तयब जी प्रमति जन प्रारम्भ में ही कांग्रेस में प्रविष्ट हो गए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस साम्राज्यवाद की पृष्ठपोषक मात्र नहीं थी।

अध्ययन — इसके अलावा कांग्रेस की उत्पत्ति के बारे में दो अन्य मत भी प्रचलित हुए हैं किन्तु उनका भी खंडन किया जा चुका है। श्रीमती एनिबेन्ट के अनुसार धियोनिफिकल या दोलन के फलस्वरूप कांग्रेस का जन्म हुआ। यन्तो माना जा सकता है कि धियोसाफिकन सोसाइटी के कुछ कार्यकर्त्ता कांग्रेस के भी सदस्य थे किन्तु एक राजनीतिक संस्था की उत्पत्ति का विषय एक सुधारवादी और धार्मिक रूप से धार्मिक विचारधारा वाली संस्था से समुक्त करना भूल होगी। इसी प्रकार लस्टर ह्विन्सन ने कांग्रेस को धनिकवर्ग के हित में रचित संस्था मानते हैं। कांग्रेस के जन्म के प्रारम्भिक काल में इसके सदस्य धनिक वर्ग के अवश्य थे परन्तु वह वर्ग कांग्रेस को कभी नियंत्रित नहीं कर सका। कांग्रेस के प्रारम्भिककाल के सदस्य समाज के विग्नान व बौद्धिक व्यक्ति थे उनका सबध साधारण जनता से बहुत कम था पर वे धनिक वर्ग के ही हितसमर्थक कभी नहीं थे। धनिक वर्ग साधारणतया सुधारनीति व परिवर्तन नीति में सक्रिय दिसचर्यो नहीं लेता है। इस वर्ग ने १९१९ तक देश की सेवा में सक्रिय भाग भी नहीं लिया।

१ जी० एन०—“संघमास्य इन इण्डियन वान्स्टीट्यूशनल एण्ड डवलपमेण्ट”

सारांश

मूलरूप से तो राष्ट्रीय भ्रान्तोलन का स्वरूप राजनीति का परन्तु उसकी जड़ें धार्मिक, सांस्कृतिक जातीय और राजनीतिक आदि विभिन्न कारणों में निहित हैं। आवागमन के साधना की उन्नति भारत के राजनीतिक एकीकरण और सामाय आधीनता की भावना ने जनता को राष्ट्रीयता के मूल में विरोध किया। अंग्रेजी शिक्षा और पारचात्य संस्कृति के सम्पर्क से नवीन भारत में राष्ट्रीयता का अर्थ बल प्राप्त हुआ। पारचात्य शिक्षा के कारण भारतीयों का प्रशस्त मानसिक विकास हुआ। उनके हृदय में अद्वितीय स्वाधीनता और राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का उन्नति और प्राचीन आचार्यों के साहित्यिक विद्वानों के राष्ट्रीय आत्मानों का नूतन शक्ति प्रदान की। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक सुधार भ्रान्तोलनों ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन पर विस्मयकारी प्रभाव डाला। पुरातन शिल्पकलाओं के हास कृषि की अयोग्यता और जनता की बढ़ती हुई शक्ति ने 'यापर' असन्तोष का जन्म दिया था। जातीय विद्वेष का भावना और अविश्वास तथा दमन की नीति के कारण भारतीयों को अज्ञान से बहुत दूर होना पड़ा। शिक्षित भारतीयों के अग्रजों का इस नीति से कि उन्हें वापस लेना बहुत कठिन था, पर उन पर आचरण नहीं किया। असन्तोष की प्रचण्ड लहर दौड़ गई। राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व उन्हीं हा किया भारत के उद्योग-मान बोरजुआज़ (Bourgeoisie) वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन का हार्निक सहयोग प्रदान किया क्योंकि अग्रजों ने भारत में उद्योग धंधा की प्रगति में बाधाएं पहुँचाई।

भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश राज का उत्पत्ति थी। उसे अन्तिकार और प्रति गामी दोनों प्रकार की शक्तियों से बल प्राप्त हुआ।

कांग्रेस की स्थापना का राष्ट्रीय आन्दोलन का आन्तरिक अर्थ बन गई १८८५ में हुई था। उस संस्था का स्थापना का विचार एडमंड डेविसन एडमंड डेविसन एडमंड डेविसन से उत्पन्न हुआ था। इस में एक अग्रज प्राप्त सिविलियन थे और उन्हें उच्च स्तर के मान हुआ कि भारत में जनता का असन्तोष एक आन्तिकार विस्फोट के अन्तर्गत समीप पहुँच गया है। ब्रिटिश साम्राज्य का इस प्रकार के विरोध से रक्षा करना चाहते थे। लेकिन वे अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्तिकारक दम समझना मूल है। इसका अन्तिकार कांग्रेस जन्म के सम्बन्ध में जो दावा करने में प्रवृत्त हुए हैं उनमें आन्तिकार सत्यता व्याप्त है।

उदार राष्ट्रीयता—कांग्रेस का प्रारम्भिक स्वरूप

१० कांग्रेस 'देश में एक शक्ति' (६)

कांग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति—वास्तव में कांग्रेस का इतिहास ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास है। वह सस्था जिसने बासठ वर्षों के अखिराम घोर कठिन समय के उपरान्त स्वतन्त्रता प्राप्त का आरम्भ में प्रयत्न नरम थी। उसके प्रथम अधिवेशन में जो १८५५ के अन्त में बम्बई में हुआ था ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिन्होंने अपने-अपने प्रतिनिधि के रूप में चुन लिया था। परन्तु कांग्रेस की शक्ति प्रतिवर्ष बढ़ती ही गई। दूसरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या ४३३ और उसमें ४००० के लगभग दशक भी उपस्थित थे। तिसरे में ६०७ और चौथे में १२४८ तक जा पहुँची। जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे से स्रोत में होता है उसी प्रकार महान् सस्थाओं का आरम्भ भी बहुत मामूली होता है। जीवन की शुरूआत में वह बड़ी तेजी के साथ दौड़ती है परन्तु ज्यों-ज्यों व्यापक होती जाती है त्यों-त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होता जाती है। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ती हैं त्यों-त्यों उनमें महायत्न नष्टियाँ मिलती जाती हैं और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती हैं। यही उदाहरण हमारी कांग्रेस पर भी लागू होता है।^१ अपने-अपने क कुछ ही वर्षों के भीतर कांग्रेस ने एक अलग भारतीय संगठन का रूप धारण कर लिया। प० मन्न मोहन मानवीय के शब्दों में भारत में अपनी आवाज को उस महान् कांग्रेस में पाया। सर हैनरी वाटन ने जिन्होंने कांग्रेस को जन्मदाता से ही उसके विकास का निरीक्षण किया था उसको उदय करके कहा कि उसके नेता देश में एक शक्ति बन गए हैं जिनकी आवाज देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विनाशित होता है।

कांग्रेस इतिहास की तीन अवस्थाएँ—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का तीन विशिष्ट अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। पहली अवस्था १८५५ से १९०५ तक की है। २० वर्षों के इस काल में उदार अथवा नरम राष्ट्रीयता की प्रधानता रही। यही इस काल की विशेषता है। इस युग में कांग्रेस किसी भी प्रकार एक प्रातिवारी सस्था नहीं थी। उस काल में कांग्रेस ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी राजमन्त्रिणी की बातों को बार-बार दहराती रही और उसने आज्ञा की थी कि अंग्रेजों से

प्रायत्न करने पर कि वह अपनी परम्पराओं और भावनाओं के प्रति सच्चे बनें, वह भारत का राजनीतिक प्रगति पान में सफल होगी। कांग्रेस के इस काल की सबसे बड़ी सफलता १८६२ का इण्डियन कॉन्ग्रेस एक्ट है। दूसरा काल (१८०६-१९१८) उग्र राष्ट्रीयता की प्रधानता का युग है। इस काल में कांग्रेस का बागडोर उग्र राष्ट्रवाद्या के हाथों में गयी। उन्होंने ऐसा कि हाथ जोड़कर मा प्रायत्नाए करके तो भारत के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती ब्रिटिश सरकार कांग्रेस को बन्द करती है लेकिन उन पर धारणा नहीं करती। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारत के राजनीतिक साधनों की प्राप्ति के लिए कठोर और शान्तिकारी उपायों का अवलम्बन ग्रहण करना पड़ेगा। १८७७ में कांग्रेस का १९१८ में विभाजित हो गई और वे दोनों १९१५ तक अलग अलग काम करने रहे। १९१५ में उनमें पुनः एक स्थापित हो गया। इस काल में ब्रिटिश शासन की प्रेरणा से मुस्लिम पृथक्त्व की भावना भी बन्द हो गई। कांग्रेस इतिहास का तीसरा युग तिन गीतों युग के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है प्रथम चरण महाशुद्धि के अन्तर्गत प्रारम्भ होता है। यह युग उस समय से प्रारम्भ होता है जब कि अखिल भारतीय कांग्रेस के पश्चात् महाशुद्धि ने भारत का राजनीति में अग्रिम भाग लेना प्रारम्भ किया। उनके गतिशील नवतन्त्र में कांग्रेस ने स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा के शस्त्रों से सशय किया। १९१८ में नवतन्त्र के ताल कांग्रेस से बाहर निकल गए और उन्होंने अखिल भारतीय अन्तर्गत का संगठन किया। इस युग में हिन्दू मुस्लिम भेदभाव की परीक्षा हुई। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के लिए आन्दोलन किया और अन्त में अखिल भारतीय महाशुद्धि स्वतंत्रता के अन्तर्गत तथा बढरता के बीच भारत का विभाजन हुआ।

११ कांग्रेस का प्रारम्भिक स्वरूप और कार्यक्रम

एक राष्ट्रीय संगठन—कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन ही उसके सांख्यिक स्वरूप को व्यक्त करता है। ६० सौ० लोग सर विनियम बढरवन और सर हनरी काटन जैसे वरिष्ठ उच्च अग्रजों के साथ ही साथ भारत की सभी जानिया के दशक तक उमर के लोग थे। कांग्रेस के प्रथम सम्मेलन उमेरवान् बनें तो भारत में विविधता के दूसरे तन्त्र कोई नोरोडा पारला के तानर बन्दहीन तबब जो मुनतमान थे और चौथे तथा पांचवें सम्मेलन जात्र युवा और सर विनियम बढरवन अग्रज थे। प्रारम्भ से ही कांग्रेस का दृष्टिकोण एक आन्त विमुक्त राष्ट्रीय रहा है। दूसरा मानस्य परिपक्व के अन्तर्गत पर निम्न तन्त्र में गीतों जो न कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप पर विचार करने पर—सांचे अर्थों में यह (कांग्रेस) राष्ट्रीय है। यह किसी विचार जाति के अथवा हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह सम्पूर्ण भारतीय शिष्टों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। इसे लिए यह बताना सबसे अधिक प्रयत्नता की बात है कि कि उसकी उमर प्रारम्भ में एक अग्रज के मस्तिष्क में हुई। एतद आश विमल लोग की बाँटने के दिवा के रूप में हम जानते हैं। दो महान् पारसियों

ने—फिरोजशाह मेहता और दाग भाई नोरोजी ने—जिन्हें सारा भारत 'बृद्ध पितामह' कहने से हृष्य अनुभव करता है इगवा पोषण किया। प्रारम्भ में ही काँग्रेस में मुमतागान ईसाई ऐंग्लो-विद्यार्थी आदि शामिल थे बल्कि मुझे यों कहना चाहिए कि इसमें सब धर्मों सम्प्रदायों और हितों का पूणता के साथ प्रतिनिधित्व होता था।

काँग्रेस का सामाजिक आधार—बड़े तो उपरोक्त कथनानुसार काँग्रेस का स्वरूप सदब ही राष्ट्रीय रहा है परन्तु शुरू में अपनी सबसे पहली भवत्वा में उसकी जन सठगन मान लेना भ्रम होगा। यद्यपि यह देश के सभी वर्गों की कठि नाइयों को मुखरित करती थी और राजनीतिक उत्थप के लिए उनके हृष्य की उद्दाम लालमा की भी व्यक्त करती थी परन्तु मुख्यतः व. बुद्धिजीवियों, शिक्षितों और उच्च मध्य वर्गों तथा व्यापारों और जूभाजी का ही प्रतिनिधित्व करती थी। काँग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में यकीनी गिद्या विद्यार्थी पत्रकारों विद्वत्सकों तथा व्यापारियों की ही सख्या अधिक रहती थी।

प्रारम्भ में काँग्रेस क्रांतिकारी सत्या नहीं थी—काँग्रेस के वायधत्त एव स्वरूप के सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रारम्भ में वह क्रांतिकारी सगठन नहीं था। उस समय उसका बागडोर पूरी तरह से नरम राष्ट्रवादियों के हाथ में था। अग्रजों का याय भावना में उनकी हृद आस्था थी। उनका प्रमुख ध्यय यही था कि भारतीय शासन का प्रजातन्त्रीकरण हो तथा विधान सभाओं में भारतीय प्रतिनिधियों की सख्या बढ़ जाय। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने किसी प्रकार के उग्र साधनों का अवलम्बन नहीं किया अपितु सावजनिक मापणा प्रचार प्रशनों आवेगों तथा प्रतिनिधिमण्डला द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास किया।

१२ प्रारम्भिक काँग्रेस के काय का सक्षिप्त सिंहावलोकन

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन १८८५—प्रारम्भिक वर्षों में काँग्रेस के प्रोपान और क्रियाकलाप का सक्षिप्त विवरण हम यह समझने में सहायता दगा कि उदार राष्ट्रवादियों के क्या ध्यय थे उनकी क्या काय पद्धति या और उनके नेतृत्व में क्या सत्या का क्या दृष्टिगत रहा। काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ था। उसके अध्यक्ष उमेशचन्द्र बनर्जी थे और मंत्री ए० श्रो० ह्यूम। इस अधिवेशन में भारत की कई सुप्रसिद्ध विभूतियाँ जिनमें ईसाई नोरोजी फिरोजशाह मेहता जिनशा एदलजी बाबा काशीनाथ शम्भूराज सनग नारायण गणेश चंदावरकर पी० भानूचालू वी० यह रामवाचाय और एम० सुब्रह्मण्य आदि का सगम उपस्थित कर दिया। इस अधिवेशन में कई सरकारी कर्मचारी भी उपस्थित थे जिनमें सर विलियम वेठरबन और श्री रानाडे का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय है। रानाडे ने तो खुदने अधिवेशन के विचार विमर्शों में भी भाग लिया था। समापति थी उमेशचन्द्र बनर्जी ने काँग्रेस की मुहता की और प्रतिनिधियों का ध्यान दिनात हुए उसके उद्देश्यों की इस तरह बतनाया—

(क) साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में देशहित के लिए सगन से काय करने वाला की काँग्रेस में पविष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(म) समस्त देश प्रमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मन्त्री व्यवहार के द्वारा वस घम और प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूव दूषित सत्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओं का, जो लाड रिपन व बिरे स्मरणीय शासन काल में उदभूत हुई, पोषण और परिवर्द्धन करना ।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के अनन्तर प्राप्त परिपक्व सम्मतियों का प्रामाणिक सग्रह करना ।

(घ) उन तरीकों और निशाओं का निराकरण करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ दशहृत व काय करें ।

कांग्रेस ने प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव पास किए गए थे । प्रथम प्रस्ताव में भारत व सामल काय के निरीक्षणार्थ एक रायल कमीशन बठाने की मांग की गई । दूसरे में एंग्लो पा कॉलेज को ताड दन की राय दी गई । तीसरे प्रस्ताव व द्वारा धारा सभा की कमिया की आर सबन किया गया जिनमें अज नर नामज्म सन्स्य ही थ । प्रस्ताव म नामज्म सदस्यों के स्थान पर निवाचित सदस्यों व रमन युवतप्रान और पजाब म कौमिले कायम की जान और कामनममा म स्याया गमिनि की स्थापना करने की मांग की गई—म आशय म कि कौमिले म बहुमत म ज़ा विराध हो उन पर उत्तम विचार किया जाए । चौथे के द्वारा यह निवचन किया गया कि भाई० सी० एस० की परीक्षा इंग्लण्ड और भारत म एन साथ हा और परीक्षाधियों की भवस्या म वृद्धि कर ली जाए । पांचवें एक छठ वी सम्बन्ध अनिर व्यय से था । मानवें म अवर वर्मा का मित्रा नैन तथा उस भारत म सम्मिलित कर देने की नीति का विरोध किया गया था । आठवें के द्वारा यह आदेश किया गया कि ये प्रस्ताव राजनीतिक सभाओं म भन लिए जाए । अन्तिम प्रस्ताव म अगले अधिवेशन का स्थान बनवत्ता और ता० २६ सितम्बर नियत हुई । विभिन्न चरनाओं ने अपने भाषणों म ब्रिटिश राज व वरदाना का गुणगान किया, अग्रजा की पाय भावना में अपना पूरा विश्वास व्यक्त किया और ब्रिटिश सिंहासन के प्रति अपनी राजमक्ति की उत्साहपूर्ण घोषणा की ।

१८८६—कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता म हुआ । इसके अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी थ । इस बार प्रतिनिधि सावजनिक सभाओं द्वारा निवाचित हुए थ । गुरेन्नाथ चतर्जी और पंडित मन्मनाहन मातवाप ने इसी वष कांग्रेस म प्रवेश किया । दूसरे अधिवेशन म विधान-सभाया के सुधार की मांग को दुहराया गया और कहा गया कि उनमें 50 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होने चाहिए तथापि कांग्रेस में "अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त मान लिया गया । कहा गया कि प्रांतीय कॉलेजों के सदस्यों का चुनाव ही म्युनिसिपल और सोशल बोर्डों, स्थापार-जर्मा तथा विषयविद्वानों व द्वारा हो और सर्वोच्च केन्द्रीय कॉलेज (Supreme Central Council) का चुनाव प्रांतीय

कोसिलो के द्वारा हो। देश के विभागे मण्डला म जनता के प्रतिनिधियों का भी स्थान मिलना चाहिए, इस मांग का समर्थन करते हुए एक हलीगट न स्त्रीकार किया हम राष्ट्रीय शासन की धनछाया म नहीं अपितु विदेशी नोकरशाही की आधीनता म रहने है। आगामी काग्रस अधिवेशनो म यह प्रस्ताव बार बार दहराया गया फनत १८८२ का इण्डियन कोसिल एक्ट पास हो गया। काग्रस क दूसर अधिवेशन म यह प्रस्ताव भी पास किया गया कि कायपालिका और कायपालिका का अलग अलग कर देना चाहिए।

१८८७—काग्रस का तीसरा अधिवेशन १८८७ म बम्बईन सयबजी की अध्यक्षता म हुआ। यह काग्रस क प्रथम मुस्लिम अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन म काय कई प्रस्तावो क साथ-साथ एक प्रस्ताव यह भी पास किया गया कि भारताया को शिक्षा दन के लिए सनिक विद्यालयो की भी स्थापना हानी चाहिए। एक नए सदस्य अटने नोटन (Eardley Norton) ने काग्रस के ऊपर नगाण गए इन दोपारापण का कि वह एक राजद्रोही सस्था है इस अधिवेशन म मुहता उत्तर दिया।

१८८८ और १८८९—१८८८ का वष रसतिए विशय रूप स उल्लेखनीय है क्याकि ब्रिटिश नोकरशाही का काग्रस क प्रति मुस्लिम विराध का सगठन करने म सफलता मिल गई। इसी वर सर सयब अहम खां न ऐंग्लो मुस्लिम डिफन्स एसोसिएशन (Anglo Muslim defence Association) की नीव डाला और उस दिशा म भारतीय मुमनमानो का निश्चित नगृह्य प्रदान किया कि क काग्रस को अपना सहयोग न दें। इस विराध का उस समय कोई विशेष प्रभाव नष्टा पडा जा हुआ वह मा नाममात्र का और उस वष के काग्रस अधिवेशन को जा कनकत के एक व्यापारी जाज यून की अध्यक्षता म हुआ था। पूर्ववर्ती अधिवेशनो की अपना वहाँ अधिक सफलता प्राप्त हुई। गापालकृष्ण शासन ने इस वष काग्रस म प्रवेश किया। इस अधिवेशन म पास किए गए प्रस्तावो म एक यह प्रस्ताव भी था जिसम सरकार की भूमिकर सम्बन्धी नीति म सुधार करने की मांग की गई थी।

१८९३—१८९२ क इण्डिया कोसिल एक्ट पास हो जान के बाद काग्रस की

१ उन्नत कहा सज्जा। यदि अत्याचार का विरोध करना राजद्रोह हो यदि यह कहना कि जनता का अपने देश के शासन म अधिकधिक हाव रहना चाहिए राजद्रोह हा यदि बग अत्याचार का विरोध करना दमन के खिलाफ अपनी आवाज उठाना आयाया का मुकाबला करना व्यक्तितगत स्वतंत्रताया का समर्थन करना और उत्तरोत्तर किन्तु सदैव विकासशील सुधार के सामान्य अधिकार को प्रमाणित करना राजद्रोह हो ता मैं निस्संदेह राजद्रोह है और मुझ राजद्रोही कहनाते समय अप्रक प्रसन्नता हाती है जब मैं आज अपने चारो भार विराजमान राजद्रोहिया की गौरवपूर्ण पतिन म स्वय को भी सम्मिलित पाता हू। श्री वार्डो विन्तामणि द्वारा उद्धत—
‘इण्डियन पालिटिक्स सिन्स म्युटिनी पृष्ठ ४३।

प्रारम्भिक काग्रस के काय का सक्षिप्त तिहावलीकन

मांगा म सवाधिक महत्व इम मांग को दिया गया कि आइ० सी० एस० भारत और इगलण्ड म माय-साय हुआ करे । काग्रस हनचल क फनस्वरूप की इस मांग के समयन म इगलण्ड की कामन-समान एक प्रस्ताव को परतु इगलण्ड और भारत दानों ही जगह अधिकारिया ने इस प्रस्ताव को स्वरूप नहीं लिया । १८६४ में काग्रस अधिवेशन की अध्यक्षता दूसरा बार नौरोजी न की जो कि एम बीच में इगलण्ड की कामन ममा क भी सप्तस्य गए थे । काग्रस अधिवेशन का अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिए दादाभाइ नौराज भारत आए उनका भ्रमूतपूर्व स्वागत किया गया जा कि सुरक्षाय वनर्जी क म नरगों और नृपतियों की भी ईर्ष्या का विषय है परन्तु उनकी पहुंच के बाहर काग्रस न बगार और रसप्रया के उभूतन की मांग की । इसके अनावा जो लकाशापर के व्यवसायिया क हित संरक्षणाय भारत के बन्त हुए कपास उ का नष्ट कर देने के लिए जानबूझ कर लगा दिया गया था । इस प्र काग्रस ने प्रारम्भ स ही भारत के व्यावसायिक और औद्योगिक दानो प्रकार बोरजमाजी के हिनों की रक्षा की है । लकिन इमक साथ-साय भारतीय जनता दारिद्र्य-यक स समुदाय किया जाए इम आवश्यकता की धार स भी उसने अप धालें नहीं मू दी । भागामी कुछ वर्षों म काग्रस ने इम बात क लिए कागिण क वि प्रयासा भारतीयों की दशा म सुधार हा प्रस पर प्रतिबन्ध हट जाए भी भारतीय श्रृपक जिस श्रृण के मार स सदव दबा रहता है उससे उम मुक्ति प्राप्त हा इमक अलावा उसने सरकार से १८९८ के राजद्रोह विधेयक (Sedition Act of 1898) तथा १९०८ के सरकारी रहस्य विधेयक (Official Secrets Act of 1904) जन दमनकारा पात्रुनों क हटा नेन का बारम्बार विनता की । १९०१ तक काग्रस समनन पय पर दौटना रही । सावजनिक महत्ता का एगा कोई भी विषय नहीं निमन उमरा ध्यान अपनी धार आहृष्ट न किया हा और निमन विषया पर पाम किय गय प्रस्तावों में धरन विचार आनेन क नेनामा की राजनीतिक रति राजनीतिक बुद्धिमत्ता क सादी थे ।

था। यह स्थिति सचचा स्वामाधिक भी थी। उनमें से अधिकांश उच्चवर्गीय थे और पाश्चात्य शिक्षा का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। यदि उस समय ब्रिटिश शासन का प्रचंड विरोध किया भी जाता तो प्रारम्भ से ही उसका दमन किया गया होता। अतएव हम यह देखकर कोई आश्चर्य नहीं होता कि राष्ट्रीय सघन क प्रभात काल में भारतीय राष्ट्रीय ब्रिटिश शासन के उत्कट प्रशासन थे परन्तु यह भी समझ लेना भ्रम होगा कि उन्हें ब्रिटिश शासन की प्रतिभों और दुबलताओं का कोई गान नहीं था। ब्रिटिश राज के उपकारों के प्रति उनके हृदय में कृतज्ञता का भाव था। क्या ब्रिटिश शासन ने भारत का राजनीतिक एकीकरण नहीं किया था, उसे केवल मान भौगोलिक नाम से बंध कर कुछ वस्तु नहीं बनाया था और उसमें राष्ट्रीय चेतना का संचार नहीं किया था? वे ब्रिटिश सम्बंध को भारत के लिए लाभकर समझते थे।

वे अग्रजों की इस बात के लिए जो खोलकर सराहना करते थे कि उन्होंने पाश्चात्य सम्प्रदाय और संस्कृति के संपर्क से भारत के सामाजिक जीवन को समृद्ध किया था नूतन राष्ट्रीयता की वाहक अग्रजों शिक्षा का सूत्रपात किया था और पाश्चात्य विचारधारा और साहित्य के सस्र स स्वाधीनता तथा प्रजातन्त्र के प्रति भारतीय नवयुवकों में प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न किया था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कड़ा करते थे कि इंग्लैंड हमारा पपप्रदशक है। ब्रिटिश शासन के सूत्रपात को एक ऐसा देवी वरदान समझा गया जो भारत को मध्य युगीन अयोग्यता की दशा से ऊपर उठाकर राजनीति और आर्थिक उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिए ही भवनीय हुआ था।

असम कोई आश्चर्य नहीं है कि उदार राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार के प्रति राज मन्त्रि की भावना से प्रेरित रहते थे। इस प्रकार के दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय काग्रस के प्रथम अधिवेशन में ही मिलता था जो महारानी विक्टोरिया की जय-जयकार के साथ समाप्त हुआ था। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजमन्त्रि की धोषणाएँ करने में नरम राष्ट्रवादियों को किसी प्रकार के सकोच प्रथवा हीनता के भाव का अनुभव नहीं होता था। उस समय दादाभाई नौरोजी अपने सहयोगियों की सामान्य भावना को ही व्यक्त कर रहे थे जबकि उन्होंने यह धोषणा की कि आगे हम युवकों को तरह-तरीकों और धोषणा कर दें कि हम आच्छे राजमन्त्रि हैं।

सरकार भी प्रारम्भिक भारतीय राष्ट्रवादियों को मन्त्री एवं मन्त्रिभावना से अपरिचित नहीं थी। क्योंकि वह उनके साथ रियायतें करके जब-जब भारतीयों को ऊँचे पद प्रथवा स्थान देने का अवसर आया तब-तब उन्हें (राष्ट्रवादी) को उसके लिए चुनकर यही सिद्ध करती रही है।^१ सरकार ने उनमें से कइयों को ना टहुड और प्रतिष्ठा की श्रेय उपाधियाँ प्रदान कीं। गोपालकृष्ण गोखले को सी० आर्इ० की उपाधि प्रदान की गई। कुछ को विधान सभा का सदस्य नामजद किया गया कुछ नायकारियों के सदस्य चुन लिए गए और कुछ हाई कोर्ट के जज बना दिए गए। वस्तुतः जिन कांग्रेस नेताओं को इन उपाधियों प्रथवा पदों के लिए चुना गया था वे

धनो योग्यता के आधार पर इनके उचित अधिकारी भी थे, उन लोगों को पदलोभुप मानना किसी भी प्रकार तकसंगत नहीं है। यह तो उनको प्रतिभागों के प्रति थढ़ाजति हा ह कि सरकार को भा यदि योग्य भारतीयों की आवश्यकता हुई तो इसकी पूति के लिए उमे भी काग्रसियों का ही मुह तवना पत्ता था। दूसरे शब्दों में सरकार की इन रिषायलों से यह सिद्ध होता था कि कांग्रेस ने सप्रतिभ भारतीयों को बहुत बड़ी सख्या में धनो और भावण कर रखा था।

धनो की न्याय प्रियता में विश्वास—ब्रिटिश सरकार की 'याय प्रियता में उदार कांग्रेसियों की घटन थढ़ा थी इसी कारण उसक प्रति उनक हृत्प में प्रथमा और राजमविन की मानना उन्मूल हुई थी। कांग्रेस के बारहवें अधिवेशन (१८६६) के अध्यक्षपद में भापण करते हुए मुहम्मद रहामतुल्ला सयानी ने कहा 'धनो से बढकर ईमानदार और शक्ति सम्पन्न जानि इस सूय क तल कही नहीं है। हमारे काप्रिसी बुजुग समझते थे कि धनो तो बढ प्रजातिप्रदाता है, उनकी ता परम्परा ही एगी रही है, व भात में प्रजातांत्रिक सस्यामो के विकास का स्वागत करेंगे। क्या यह सत्य नहीं था कि धनो ने उन परिस्थितियों का निर्माण किया जा राष्ट्रीय जागरण के लिए जिसरी कि कांग्रेस प्रताक था आवश्यकता थी? १८६३ में अधिवेशन के स्वागतार्थ्य सरकार दयावत्सिह मन्त्रीगिया ने कांग्रेस के विषय में कहा था कि 'यह भारत में ब्रिटिश शासन का कीर्ति का वनश है। इसी प्रकार के विचार कांग्रेस के तनीय अधिवेशन में स्वागत ममिति के अध्यक्ष पद में स्वागत भापण दते हुए सर टी० भाषकराव ने व्यक्त किए थे— कांग्रेस ब्रिटिश शासन का सर्वोच्च यग निस्तर और ब्रिटिश जाति का कीर्ति मुकुट है।' यह बात नहीं थी कि कांग्रेस के उदार नेताओं को ब्रिटिश नीकरशाही की गतियों का भाव नहीं था। व उसकी श्रुटिया और गलतियों को श्रद्धा तरह से जानने थे फिर भी उनका यह विश्वास था कि यदि भारत की समस्या का स्पष्टत और प्रबलना पूर्वक चिन्तन ही समद तथा जनता के सम्मुख रग किया जाय तो वह मांग करेंगे कि भारत की परिस्थितियों में परिवर्तन हाना चाहिए। यह धागा भी जाता था जमा कि सर फिरोज शाह मेहता ने १८६० में कहा था मुझ इग बात में काई सदेह नहीं है कि ब्रिटिश राजनीतिग घन्त में जाकर हमारा पुकार पर धन्य ध्यान देंगे। विश्वास की इस स्थिति में मुझ के भारतीय राष्ट्रवादी पयप्रधान घोर प्रेरणा के लिए धनो की ही धार ताकत थे। सुरद्रनाथ धनो की निम्न शब्द उदार राष्ट्रवादियों की मनोवृत्ति को नता मीति स्पष्ट कर दते हैं। धनो के 'याय बुद्धि और दयाभावना में हमारी हृत्प धाम्पा है। समार की धनोत्तम प्रतिनिधि गमा समर्थों की जनता ब्रिटिश कॉमन गमा के प्रति हमार हृत्प में धनीम थढ़ा है। धनो ने न सुवन प्रतिनिधि धान्य पर ही शासन की रचना की है।

उदार राष्ट्रवादियों की विचारधारा और मांगें—एग बात की उदार राष्ट्रवादियों ने गुत्त नहीं रखा कि कांग्रेस धान्यन का ध्येय स्वशासन को प्राप्त करना

है। यद्यपि उन्होंने अपनी अधिकांश शक्ति और ध्यान को शासन के कामों पर ही रखा था। इस प्रकार वे कभी इस और कभी उस पहलू में मुग़ल सरकार के आदेशों में ही लगता था। फिर भी वे उस अधिकांश की कल्पना कर सकते थे जबकि भारतीयों के हाथों में अपने साम्य निर्माण का अधिकार आ जाएगा। १८६६ के संवत्सारी अधिनियम में मुद्रनाथ बनर्जी ने कहा था स्वशासन प्रकृति का व्यवस्था है विधि का विधान है। प्रकृति ने अपने पुस्तक में स्वयं अपने हाथों से यह सर्वोपरि व्यवस्था तैयार रखी है। प्रत्यक्ष राष्ट्र अपने साम्य का भाव ही निमाता होना चाहिए।^१ दादाभाई नोरोजी ने यूनाइटेड किंगडम अधिकांश उपनिवेशों के जैसे स्वशासन या स्वराज्य का जिक्र किया था। उन्होंने १९०५ में कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा था हमारा उद्देश्य ८०० करोड़ अमेरिकी के समान स्वराज्य प्राप्त करना है। स्वशासन अधिकांश स्वराज्य से प्रारम्भिक कांग्रेस का आशयपूर्ण स्वाधीनता नहीं थी जिसकी १९२९ में कांग्रेस ने अपने उद्देश्य की भाँति प्रकृति किया। वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य में सब सम्बन्ध विच्छेद करने का विचार तो उदारवादियों के अस्तित्व में कभी आया ही नहीं था। सम्भवतः उन्होंने यह कभी सोचा भी नहीं था कि औपनिवेशिक स्वराज्य किस रूप में है। प्रारम्भिक कांग्रेस का उद्देश्य भारत में प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना करना था।

वास्तव में उदारवादी राजनीतिज्ञ इस बात को भली भाँति जानते थे कि प्रतिनिधिक शासन के समीप वे केवल एक ही छलाँग में नहीं पहुँच सकते बल्कि उन्होंने सरकार से भी ऐसी कोई प्राथना नहीं की थी कि वह उन्हें तुरन्त ही प्रतिनिधिक शासन प्रदान कर दे। अवस्थित विकास में ही उनका विश्वास था। क्रमबद्धता ही उनके दशन की विधायक थी। ह्येने पर सरसों जमाने की नीति के वे कायम नहीं थे। उस समय के कांग्रेसी नेताओं की भाँति यही होती थी कि सरकारी नौकरियों का दरवाजा भारतीयों के लिए बन्द न होना चाहिए जिससे कि ऊँचे पदों के योग्य बन सकें धारा समाज में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होने चाहिए और उन्हें प्रशस्त करने तथा बजट पर चर्चा करने का भी अधिकार मिलना चाहिए अतः व्यवस्था में कमी की जाय कर कम हों आय और शासन विभाग अलग अलग हों और नौकरियों के लिए भारत तथा इंग्लैण्ड में एक साथ परीक्षा ली जाए, प्रान्त और केंद्र की कार्यकारिणियाँ और भारत मंत्री की कौंसिल में भारतीयों का भाग स्थान मिलना चाहिए तथा भारतवर्ष को ब्रिटिश संसद में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिले। सामाजिक आर्थिक क्षमता में कांग्रेस ने नमक कर में कमी करने की प्राथना की सूची साल पर लगाए उत्पत्ति कर को अधिकांश बतया। सरकारी नौकरियों और विश्वविद्यालयों के पुनर्गठन सामाजिकों के पुनरुद्धार और सेतो सम्बन्धी ऋणबद्धता से किसानों को छुटकारा मिले इस बात के लिए भी कांग्रेस प्रयत्नशील रही।

उनके साधन—उदार राष्ट्रवादियों के साधन भी उनकी विचारधारा के सबब अनुसूप थे । व इस बात में यकीन नहीं करते थे कि भारत और इंग्लैंड के हित एक दूसरे के विरोधा है और दाना में घर कर का सा' है । पट्टे से स्थापित की हुई व्यवस्था में आन्तरिक आन्दोलन परिवर्तन करना भी उनके विश्वास का सामाग्री से बाहर का धान था । इसलिए स्वभावतः धा-पेनन के सभी प्राधिकारी साधनों का उद्देश्य बर्जित कर रखा था । हिंसा के प्रति उनका हृदय में धार घण्टा की भावना था । तीन चीजों का उद्देश्य बड़ा निषेध कर रखा था । विद्रोह विरुद्ध आक्रमण की महायत्ना करना और अत्याय की आशय दना । ब्रिटिश सरकार के प्रति राजनैतिक और सहयोगात्मक दृष्टिकोण के अनुकूल ही उद्देश्य बधानिक आशापन की टकनाक का प्रयत्नाया । उद्देश्य ए-सी प्रत्येक योजना अथवा साधन का अन्ततः मतवतापूरक बहिष्कार विरुद्ध जिम्मेदार लिए लड़े गेका थी कि ब्रिटिश सरकार उमका विरोध करगी । व सरकार का काय-प्राजन नही बनना चाहते थे । यहाँ तक कि दमन और अत्याय के नानुना का सामना करता उन्हें लजकारना भी उनके प्रोशाम में नहीं था । चूकि अग्रजों की 'याम प्रियता में उनकी आस्था थी इसलिए उद्देश्य सरकारी अधिकारियों के ध्यान का सावजनिक मापणों स्मृति पत्रों प्रस्तावों आश्वेन पत्रा तथा गिण्टमन्तों द्वारा जनता का उचित भागों और कर्तितों की धार प्राकृष्ट करना ही यद्यपि ममत्ता । अग्रिम न ब्रिटिश जनता और सग' के सामने भारत का समस्याओं का टोक ठाक उपस्थित करने के द्वारा स कई गिण्टमन्त ब्रेज । वन साधनों के द्वारा नरम राजनैतिकों न भारतीय जनता को ऊपर उठाने और गिणित करने की कामिना की और अग्रज भारतीयों का 'याययुक्त मांगा का पूरा करना प्रयत्ना करताय समझे । ब्रिटिश जनता का यह सम्यक परिज्ञान कराने के लिए कि भारत में राजनीतिक सुधारों की महत्ता आवश्यकता है काग्रिम न १८८६ में एक ब्रिटिश मन्त्रि की स्थापना की और उमके अधानन के लिए पठागोस हजार रुपयों की स्वाकृति भी दी । धार कपों के उपरान्त कॉमन-सभा में जनमत का भारत के राजनीतिक विकास के पन में सर्गाठन करने के लिए सर विलियम वेडरवेल न भारतीय समन्वीय समिति (Indian Parliamentary Committee) की रचना की । उम उमान के राष्ट्रवादिया के इन सग'कों की कभी कभी राजनीतिक भिलावति (Political expediency) कहकर बर्णित किया जाता है ।

आवेदन और प्रायना—मठ वल्लुन कुछ अग्रिम प्रवच है पर गत नहीं है । व सरकार के पास रियायतों और सुधारों के लिए अत्यन्त विनीत्र भाव सहाय जोशकर जाने में यकीन रखते थे । उनका आश्वनों और प्रायनाधा में बितना करोमा था व इन पर किन्ना बल दन थे यह प० मन्मोहन मासवीय के निम्न शब्दों से स्पष्ट है वा उद्देश्य काग्रिम के ततीय अधिकारन में कहें वे 'यद्यपि धन प्रयत्नों में अभी तक हमें सफलता नहीं मिली है फिर भी हमें सरकार के अन्तर्गत पुन जाय

चाहिए और नियंत्रण करना चाहिए कि वह हमारे माँगों को हमारी प्रायश्चित्तों पर भीषातिशीघ्र विचार करे ।”

✓ १४ उदार राष्ट्रियता का मल्याकन

उदार राष्ट्रियताओं की प्रतियाँ—प्रायः के शुरू के दिनों में उदार राष्ट्रियताओं ने जो काम किया था वह उनका उदार मद्द्त को हम समझा जाता है । कभी कभी तो लोग उस प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें कुछ प्रतियाँ स्पष्ट रूप से विद्यमान थीं जस—

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति मिथ्या धारणा—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का क्या वास्तविक आधार था यथा उसकी क्या प्रकृति थी इस बात को उदारवादी लोग नहीं समझ सके । यह उनका मिथ्या अनुमान था कि दोनों देशों के हित परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । ब्रिटिश शासन के वर्तमानों के प्रति प्रशंसा और कृतज्ञता की धारणा भातिजय थी । वे इस बात को हृदयगम करने में असमर्थ हुए थे कि भारत ब्रिटिश पूँजीवाद के लाभार्थी का एक शोषित प्राथिक उपनिवेश था और इसलिए एंग्लोइड के लिए यह सबका स्वामित्व ही था कि यह भारत के प्राथिक और औद्योगिक अन्वयान में बाधाएँ उपस्थित करे और उसे अपने यहाँ के उद्योगों के लिए वे चालाकी से तैयार मान के लिए मज्जी बनाए रखे । यदि भारत में वे बड़े सुधार कर दिए जाते यदि जनता का अपने भाग्य निर्माण का अधिकार दे दिया जाता यदि भारत निवासियों को अपने देश का प्रबंध अपने आप करने की स्वतंत्रता दे दी जाती तो ब्रिटेन अनिश्चित काल तक भारत का प्राथिक दासता के पाशा में निबद्ध नहीं रह सकता था । यह एक स्पष्ट सी बात थी जिसे उदार राष्ट्रवादी नहीं समझ सके । अंग्रेजों की याचिकाओं पर उनका विश्वास बना रहा । वे अपने इस विश्वास में कभी नहीं डिग अंग्रेज एक जनतन्त्रप्रिय गति है भारत में धीरे धीरे जनतन्त्र का स्थापना के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक होगी परन्तु उनका यह विश्वास कितना आधारहीन कितना भ्रान्तिजय था यह इसी से स्पष्ट है कि १९१८ तक उनकी प्रमुख वधानिक माँगों की भी जो चाहे कितनी ही नरम क्यों न रही हों अंग्रेज पूर्ण नहीं कर सके ।

राजनीतिक भिक्षावृत्ति की दुबलता—सब बातें ता यह है कि इन लोगों ने जिन माँगों और उपायों का प्रयोग किया वे ही इतने हल्के थे कि उनका सारा प्रभाव जाता रहा था । वे ब्रिटेन के द्वार पर मिश्रा माँग कर वहाँ की जनता की आत्मा को प्रायश्चित्तों और धारणों से जागृत कर प्रतिनिधि शासन के उद्देश्य को पूरा करने की आशा करते थे । यह उनकी दुबलता का प्रमाण है कि उन्होंने अपनी माँगों पर भरोसा करके साम्राज्यवादी सत्ता को चुनौती देने की बजाय अपने शासकों की अनुकम्पा पर ही विश्वास किया । गुहमुख निहालसिंह का यह कथन सबका

सुचितसंगत है कि 'तिलक और सम्भवत गोखले को छोड़कर कांग्रेस के नरम नेताओं में स्वतंत्रता के लिए व्यक्तिगत बलिदान करने और भावतियाँ सहने का कोई तयार नहीं था।' उनमें ऐसे लोग बहुत कम थे जो कि दीर्घ कारावास देश निर्वाहन अथवा सरकार द्वारा अपनी सम्पत्ति का हारण किया जाना शान्तिपूर्वक सहन कर लेते। य सब चीजें उस आगामी पीढ़ी के लिए जिसने महात्मा गांधी की पताका को नीचे काम किया या भक्ति सामान्य हो गई थी।

उनकी सफलताएँ—परन्तु यह न तो आवश्यक ही है और न उचित ही कि हम प्रारम्भिक देशमन्त्रों के कार्यों को भवभेदना की दृष्टि से देखें। भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के इन माग-देशकों के बाव को मर्यादा निरर्थक नहीं कहा जा सकता उसमें भी सुन्दर व्यापक और अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम हुए। हम १८६२ के इण्डियन कॉन्सिल एक्ट का उल्लेख कर चुके हैं जो कांग्रेस द्वारा राजनीतिक सुधारों के लिए किए गए आन्दोलन का ही सीधा परिणाम था। परन्तु यह और इसी प्रकार की अत्याप रियायतें जो उन्होंने प्राप्त की उनकी सफलताओं में विनाय महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखती।

भारतीयों की राजनीतिक शिक्षा—राष्ट्रीय आन्दोलन को उनकी वास्तविक देन यह है कि उन्होंने भारतीय जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की और उसमें प्रजातन्त्रिक भावों को प्रसारित किया। उन्होंने सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का विचार विमर्श के लिए एक 'फोरम' तथा सरकार की नीतियों और कार्यों से सम्बद्ध आलोचना को। सच लाइट का दिशा प्रदान कर प्रबल जनमत को संगठित किया किया था। न तो उनकी प्रायनामा और न आलोचना ने ही नीकरमाही पर अधिक प्रभाव डाला परन्तु सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को उस सरकार का खण्डन करते हुए पाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो कि अपने मग्नाचार्ट (Magna Charta) और हबियस कोरपस (Habeas Corpus) एक्ट की श्रेणी बंधारते हुए नहीं बचती। परन्तु भारतीय जनता को व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्राथम्य अधिकार देने से इनकार करती है।

भारतीय राष्ट्रीयता के प्रणेता—यह बात तो हमें मुझ बण्ड न स्वीकार करनी ही चाहिए कि भारत की प्रथम राष्ट्रिय संस्था के प्रणेता उदार राष्ट्रवादा ही थे। उन्होंने दशवासिमा का शिक्षा दी कि वे साम्प्रदायिक और प्रान्तीय घरातलों से ऊपर उठें तथा सामान्य राष्ट्रियता की भावना को अपने हृदय में विकसित करें। गुरुमुख निहालसिंह का हृदय में प्रारम्भिक कांग्रेस ने राजमन्त्रियों की प्रतिज्ञाओं, नरम नीति भावना भावना ही नहीं अहितु सिद्धा वृत्ति के बावजूद ना उन शिक्षा राष्ट्रिय आदर्श राष्ट्रिय शिक्षा, भारतीयों को एकता का सूत्र में अहित करने और उनमें सामान्य भारतीय राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने में अहित परिश्रम किया

१ श्री० एन० सिंह— अण्डमार्क इन इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल एण्ड नेशनल वेनचर-मेण्ट' पृ० १२३।

था । १ शुरू के कांग्रेसियों की गीहना और शिक्षा यत्ति की उपहास की दृष्टि से देसना अत्यन्त गुणम है परन्तु उस समय जब भारतीय राजनीतिक क्षत्र म कोई नहीं था उन लोग ने जा रज्य ग्रहण किया था उसक लिए हम उन्हें दाप नहीं दे सकते । किसी भा प्राधुनिक इमारत की नीव मे छ फीट नीच जो ईट बना और पत्थर गड़ हुए हैं क्या उन पर कोई दाप लगाया जा सकता है ? क्योंकि वही तो हैं जिनक ऊपर सारा इमारत रखी हा सका है । पहले उपनिवेशों क डग का स्वशासन फिर साम्राज्य क अन्तगत होमरूल इमक बाद स्वराज्य और सबक उपर जावर पूण स्वाधीनता की मजिनों एक क बाद एक बन सकी हैं । १३

१५ राष्ट्रीय आ दौलन के प्रति सरकार का रुख

कांग्रेस क जन्म और उसकी जिन प्रतिदिन बढ़ती हुई शक्ति ने सरकार के ऊपर क्या प्रतिक्रिया उत्पन्न की इसका अध्ययन अत्यन्त रोचक है । कपटण्ड क इन कथन को कि कांग्रेस क जन्म के समय ब्रिटिश अधिकारियों न उसका भाशोर्वा निया था हम किसी पूव अध्यय मे उदघन कर चुक हैं । कांग्रेस की स्थापना क अदमर पर वायसरॉय लाड डफरिन ने उसक शाश पर अपना बरदहस्त रसा था और न्तीय अधिवेशन म प्रतिनिधियों का स्वागत भी किया था । मंगस के गवर्नर लाड कोनेमारा न भा कांग्रेस क तृतीय अधिवेशन में (१८८७) उसी प्रकार क सौजन्यमय पवहार का परिषय दिया था और स्वागत समिति की, सरकारी बोधालार से रसदादि दिलवाकर सहायता की थी । १३

किन्तु कुछ ही समय के पश्चात् कांग्रेस के प्रति सरकार क रुख म धामूल परिवर्तन होगया । यद्यपि कांग्रेसी नेताओं ने अपने व्यक्तितगत सम्बन्ध क शासन के साथ अच्छे ही बनाए रखे परन्तु सरकारी अधिकारी कांग्रेस को सन्हे और शका की दृष्टि से देखने लग । लाड डफरिन न लूम साहब को परामस दिया था कि वे कांग्रेस का क्षत्र सामाजिक न रखकर राजनीतिक भी बनावें । किन्तु वही लाड डफरिन कांग्रेस क शत्रु हा गए और उसे राजद्रोही सस्या कहने लग । कुछ प्रातीय गवर्नर तो कांग्रेस के उग्र विरोधी थे । उत्तर पश्चिमा प्रात के (यू पी०) क गवर्नर सर आकलण्ड काल्विन की सम्मति में यह भा दालन केवन समय से पूव ही नहीं था अपितु खतरनाक भी था । १८८७ मे एक सत्रन अपने जिनाधीश की इच्छा के विरुद्ध कांग्रेस अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थ जिसके अपराधस्वरूप उनस २० ० ६० की नमानत मांगा गई । कांग्रेस के प्रति सरकार का कडा रुख उस गश्ती पत्र स अच्छी तरह प्रकट हाता है जिसको बंगाल सरकार ने सब मन्त्रियों एव सब विभागों के प्रमुख अफसरों के पास

१ जा एन० सिंह— लण्डमाक्स एन दी कास्टीट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेण्ट आफ इण्डिया पृ० १२३ ।

२ डॉ० पट्टामि सीतारामय्या— दी हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस पृ० ९६

३ सी० याई० चिन्तामणि— इण्डियन पालिटिक्स सिरू म्युटिनी पृ० २६ ॥

भेजा था। इसमें उन्हें हिदायत दी गई थी कि भारत सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी समारोहों में दशक रूप में भी सरकारी व्ययों का जाना ठीक नहीं है और ऐसी समारोहों की आयवाहियों में भाग लेने में मरत मनाही का जाना है। १८६७ में 'राजद्रोहात्मक' भाषणों और कायदाविरुद्ध पर अनुष्ण रखन के विचार से 'इंडियन पौनल काठ' में दफा १२४ (अ) तथा दफा १५३ (प्र) और जोड़ दी गई। प्रम पर बहुत स प्रतिबंध लगा दिए और १८८८ में गुप्त प्रस समितियों का स्थापना हुई। दशवाकियों को आपस में लड़ाने का पूर्व परिचित नीति का एक राजनीतिक क्षेत्र में खुल कर प्रयोग किया गया और कायम क विरुद्ध मुसलमानों का संगठित करन क प्रयास किए गए। विद्रोह क पूर्व और बाद में भारतीय मुसलमान सम्राज्य क विधाय कोष भाजन रहे थे परन्तु अब जस जस कायम की लोकप्रियता और अविश्व में बढ़ि जाती गइ सरकार मुसलमानों के प्रति अपन रख में परिवर्तन करती गइ। मुसलमानों का विधाय सुविधाएँ देकर उन्हें अपनी विशेष माँगें रखन का प्रोत्साहन देकर नोकरशाही न भारतवर्ष की दो प्रमुख जातियों क मध्य भू का लाई का लादन की कारिग की। अद्विराम गनि से बन्नी हुई राष्ट्रीय एकता की भावना पर कुठाराघात करके ब्रिटिश सरकार ने शुरू शुरू में ही राष्ट्रीय आन्दोलन कुचल डालन का प्रयास किया। इस सम्बन्ध में कि मुसलमान कुज शठ पन्थाधिकारियों द्वारा जिनका कि फल डालो और राज्य करो की नीति में विश्वास था प्रयुक्त किए जा रहे थे। हमार पास ६० प्रा० ह्य म की सारी विश्वास है। कायम क चौथे अधिवेशन (१८८८) में शाय रजा हुसन न घटलन क साथ कहा कि मुसलमान नहीं बल्कि उनक मातृक सरकारी हुकाम हैं जो कि कायम क विरुद्ध है।^३

प्रारम्भिक भारतीय देशसंघत

१६ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (1848-1925)

धार्मिक धारा क निर्माता और भारत क राष्ट्रीय आन्दोलन क प्रणेताओं में अग्रगण्य सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भारत क प्रतिष्ठा भाजन व्यक्तियों में एक उच्च स्थान के अधिकारी हैं। वे उन व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने इन्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में अत्यंत शीघ्र सफलता प्राप्त कर ली थी। सन १८७१ में वे सिलहट क एसिस्टेंट मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। दो ही वर्ष क पश्चिम सरकारी आधरण में कुछ दिनों पाए जाने क कारण उन्हें नौकरी स हाथ फाना पडा। बाद में दो सपिटमन्ट गवर्नर न इस बात को स्वीकार किया था कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नौकरी स हटाया जाना मवषा अध्याय पूरा था। परन्तु यह, ६८ वर्ष के वरदान ही सिद्ध हुआ। भा० आई० विन्नामण्डि ने

१ डॉ० पट्टमि सीतारामम्मा—'दा हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन पृ० १०८।

२ 'बले पृष्ठ ११०।

ठीक ही निम्ना है शासन की हानि देश का साम बन गई । ' १ घाई० मी० एम० से हटने के पश्चात् सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने स्वयं को राष्ट्रीय सम्मुख क बाय म ही प्राणपण से निरत कर लिया । कुछ समय तक उन्होंने विद्यासागर कालिज म जो उस समय मट्रोपोलिटन इस्टीट्यूट क नाम से विख्यात था लवचरर क रूप म बाय किया । बाद म उन्होंने रिपन कालिज की नींव डानी और उसम भ्रमजी के प्राफेसर के रूप म कई वर्षों तक काम किया । तत्पश्चात् वे पत्रकार बने । इन्होंने बंगाली पत्र का सम्पादन प्रहण किया । इस पत्र क जन्मना उमरक बनर्जी थे । सरकार की तीव्र धालोचना करन के फलस्वरूप उन्हें १८८३ म दो मास क कारावास का दण्ड मिला ।

१८७६ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की जिसका मुख्य ध्येय आई० सी० एम० की परीक्षा म बढने की भवस्या को २१ वष से घटा कर १९ वष कर दन के विरुद्ध आन्दोलन करना था । उन्होंने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया और शिथित भारतीयो म एक हनचल भी उत्पन्न करी । इस आन्दोलन के पक्ष मे जनमन का सगठन करने म व सकन हए । इस प्रकार उन्होंने राष्ट्रीय चेतन की नींव डालने म सहायता दी जिसने कि शीघ्र ही राष्ट्रीय सगठन का रूढधारण कर लिया । काग्रस की स्थापना के दो वष पूव राष्ट्रीय सम्मनन की स्थापना करने मे सुरेन्द्रनाथ का बहुत बडा हाथ था । राष्ट्रीय सम्मनन प्रथम अखिल भारतीय राजनीतिक सगठन और काग्रस का भ्रमवर्ती था । १८८६ म सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा राष्ट्रीय सम्मेलन के अधिनाश नेताओं ने काग्रस म प्रवेश किया । राष्ट्रीय सम्मेलन ने भी स्वयं को काग्रस म विलीन कर लिया । १९१७ तक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी काग्रस के अत्यन्त प्रभावशाली नेता रहे । इसके पश्चात् उग्र राष्ट्रीयता क अन्मुख के कारण उठाने काग्रस से हाथ खीच लिया । यह भी कहा जाता है कि वे १९१९ क सघार नाग करवाने क पक्ष म थे जबकि अन्य काग्रसी नेता इनका विरोध कर रहे थे । इसी तथ्य क फलस्वरूप १९१७ म उन्होंने काग्रस छोड दी । किन्तु १९१७ तक वे सावभौमिक और प्रभावशाली नेता रहे । वे काग्रस क दो बार, (१८९५ और १९३ म) सम्पादित बनाए गए । उन्होंने ब्रिटिश जनता और समस्त सम्मिल भारतीय समस्या को स्पष्ट करन क लिए इ गलण्ड ज ने वान कई शिष्टमण्डलो का नेतृत्व किया था । १९०५ म जब बंगाल का विभाजन किया गया सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उसक विरुद्ध आन्दोलन करने म प्रमुख भाग लिया था । वे भारत क उन सबसे पहले देशभक्तो में से थे जिन्हें पुलिस क दण्ड खाने का सीमाव्य प्राप्त हुआ था ।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अत्यन्त प्रभावशाली बवना थे । एक भ्रमज ने तो यहा तक कहा था कि सावजनिक बवनाओं मे ग्लडस्टन क अनावा उनसे बढकर और कोई नहीं

था। व Indan Gladstone क नाम स इंग्लड में प्रतिष्ठ होगय। डॉ० पट्टामि सीतारामय्या क शब्दों म माया प्रभत्व रचना नपुण्य बल्यता प्रवर्गना उच्च भावुकता वाराचिन हृकार एन मुणों में धारकी वक्तव्य कता की पराजित करना कठिन है। आज मा कोई आपकी समता ता क्या आपकी निकटता का भी नहा प्राप्त कर सकता।^१ मर्कने की तरह मुरम्नाय का भी विलक्षण स्मरणशक्ति थी। दोना ही भवसरों पर जबकि उहोंने वाग्रम की अध्ययनता की बिना मुद्रित प्रति की सहायता के, भाषण लिए जिनम मुक्ति प्रति स एक शब्द की भी गलती नहीं थी। यह उनकी शब्द मुन स्मरण शक्ति का हा परिचायक था।^२

मुरेद्रनाम धनजो दृष्टिकोण और काय पद्धति दोनों में ही नरम राष्ट्रवादी थे। मजिनी व शर्मा द्वारा प्रभावित होने पर भी उन्होंने उमक प्रान्तिवारता कायक्रम को नहा अपनाया। अग्रजी सम्मता और सम्पासों क प्रति उनके हृदय म बहुत अनुराग था। एक भवसर पर उहाने कहा था अग्रजा सम्मता ससार म सर्वोच्च है। यह इंग्लड और भारत का अलख एकता का चिन्ह है। यह सम्मता भारतवासियों के प्रति अप्रुव भागीर्वाता तथा प्रसादा म परिपूर्ण है और अग्रजा क मुनाम को अप्रुव स्थानि मिलान वाली है। उनको आशा था कि अग्रजों और भारतीयों का यह सम्पर्क अविमकन रहेगा तथा 'भारत समय आने पर चरित्र में अग्रजी और सम्पासा म अग्रजी, स्वतन्त्र राष्ट्रों क महान् सम म अपना स्थान पा लगा।' इमय काई आश्चय की बात नहीं कि अग्रजा क प्रति राजनवित्त मुरम्नाय का विचारधारा का कट्ट बिन्दु था। उहोंने कहा राजनवित्त कलख्यों के उच्च क्षम में इंग्लण्ड मारा राजनवित्त पध्दत और नवित्त गुट है। वाग्रम क १८ वें अधिवेशन म उहोंने भारत में ब्रिटिश राज के स्थापित क लिए प्रायता की। नकिन व भारत म ब्रिटिश नीकरवाही की शर्मीर श्रुतियों म मा अछी तरह से परिचित थ और उहनि उनक निवारण का भी यथाशक्ति प्रयत्न किया। तो भी उनका आश ब्रिटिश सम्पर्क क प्रति अटल राज नवित्त क साथ काम करना था यथाकि उनका उद्देश्य भारत म ब्रिटिश शासन का अन्तर्गम करना नहीं अपितु उमक आधार का विस्तार करना उसका चतना को उगार बनाना उसके चरित्र की प्रतिष्ठा वद्धि तथा उम राष्ट्र क प्रेम की अपरिवर्तनीय आधार गिना पर स्थित करना था।

१७ दादाभाई नौरोजी (1825-1917)

भारत के पितामह दादाभाई नौरोजी जिनकी स्मृति भारतवासियों क प्रेम मन्दिर में विराटती है हमारे प्रारम्भिक राष्ट्र निर्माताओं में मूषय थ। तीम वय की आयु में उन्होंने स्वय को सावजनिक सेवा के लिए समर्पित कर लिया। 'भारत का

१ पट्टामि सीतारामय्या—दी हिन्दू अंक काग्रस पृ० १६७।

२ सी० बाई० चिन्तामणि—विद्यमन पॉलिटिकल सिम दी म्युटिनी पृ० ७२।

सावजनिक जीवन बौद्धिक विचारों और निस्वार्थ दश मन्त्रों की भाषाश-गंगा से झलकृत रहा है परन्तु हमारे समय में दादाभाई नौरोजी के समकक्ष कोई दूसरा नहीं हुआ।^१ उन्होंने भारतवर्ष में तीम सावजनिक सस्थाओं की स्थापना की। उन्होंने इंग्लण्ड में इण्डिया सोसाइटी और ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी नामक सस्थाएँ स्थापित की। उन्होंने अपनी जीवनवृत्ति को प्रोफेसर के रूप में प्रारम्भ किया था परन्तु वे शीघ्र ही राजनीति की ओर मुड़ गए। वे एक मुक्तिव्यापक पत्रकार थे और उन्होंने बम्बई में प्रथम समाचार पत्र की स्थापना की थी।

काग्रस के साथ दादाभाई नौरोजी का सम्पर्क उसके जन्मनाल से ही रहा था और बीस वर्ष से अधिक काल तक यह सम्पर्क बना रहा। पट्टाभि सीतारामप्पा के शत्रुओं में दादाभाई नौरोजी काग्रस की जुहमात से लेकर अपने जीवन पयत उसकी सेवा करते रहे और उन्होंने काग्रस को सबसाधारण की शासन सम्बन्धी गिकायतें दूर करने का प्रयत्न करने वाली जन समा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य प्राप्ति (कलकत्ता १९०६) के निश्चित उद्देश्य से काम करने वाली राष्ट्रपरिषद पर पहुँचा दिया।^२

१ सा० वाई० चिन्तामणि— इण्डियन पालिटिक्स सिंस दो म्युटिनी 'पृष्ठ २०।

२ टिप्पण्यो—यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि दादाभाई नौरोजी और उनके मन्त्रवाचीन दूसरे नरम राष्ट्रवादियों की स्वराज्य भ्रमवा स्वशासन सम्बन्धी मायता उस स्वतन्त्रता से भिन्न था जिसे कि भारत ने १५ अगस्त, १९४७ को प्राप्त किया। उन्हें इस बात की कल्पना नहीं थी कि भारत निकट भविष्य में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। उनकी आकांक्षा यह थी कि भारत धीरे धीरे श्रौतनिवर्तित स्वराज्य (Dominion Status) की दिशा में प्रगति करे। १९०६ के काग्रस अधिवेशन में जो स्वशासन-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ वह इस प्रकार है—

इस काग्रस की राय है कि स्वराज्य प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी चलाई जाए और उसके लिए नाचे लिख सुधार सुरत किए जाए—

(क) ता परीक्षाएँ केवल इंग्लण्ड में होती हैं वे भारतवर्ष और इंग्लण्ड में साथ साथ हों तथा भारतवर्ष में ऊँची नौकरियाँ पर जितनी नियुक्तियाँ होती हैं वे सब केवल प्रतिस्पर्द्धी परीक्षा द्वारा हों।

(ख) भारतमन्त्री की कौंसिल वायसराय और मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों की वायकारिणियों में भारतीय प्रतिनिधि पर्याप्त सख्या में हों।

(ग) भारतीय और प्रान्तीय कौंसिलें बढ़ाई जाएँ उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहे और उन्हीं देश के अधिक एवं शासन सम्बन्धी कार्यों में अधिक अधिकार रहे।

(घ) स्थानाय और म्युनिसिपल बोर्डों के अधिकार बढ़ाए जाएँ और उन पर सरकारी नियंत्रण उस अधिक न हो जितना एसी सस्थाओं पर इंग्लण्ड में सोचन गवर्नमण्ट बोर्ड का रहता है।

१८८६, १८९२ और १९०६ में प्रथम तीन बार वे कांग्रेस के महापति निर्वाचित किए गए। दादाभाई नौरोजी का चरित्र अत्यन्त दृढ़ था। अपने परिचितों को वे प्रयासों से घोर निराशा से परिपूर्ण कर देते थे। यदि किसी से कोई भूल हा जाती तो वे श्रद्ध नहीं हाते थे उनका व्यवहार बड़ा मंद्य बना रहता था। उनका क्या कोई व्यक्तिगत अनु नहीं रहा। चिन्तामणि ने लिखा है, 'उनसे अधिक सज्जन पुरुष का मैंने कभी दर्शन नहीं किया। उनकी तो उपस्थितिमात्र ही श्रद्धा का संचार करती है। मोसल ने लिखा था कि 'कभी मनुष्य में निर्व्यता का वास रहा तो वह दादाभाई नौरोजी में'। अधिकतर प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों की तरह दादाभाई नौरोजी का भी अग्रजों की स्वामादिक 'दायप्रियता' और युक्तिपूर्वक व्यवहार में दृढ़ विश्वास था और यह विश्वास मृत्युपश्चात् अविचल बना रहा। उनको इस बात में सदैव विश्वास ही नहीं था कि भारत अपने राजनातिक ध्येय को प्राप्तिपूर्ण द्वाय का उपाय और ब्रिटिश जनमत के शिक्षण द्वारा प्राप्त कर सकता था। उन्होंने घोषणा की था हम भारतीय एक बाण में यकीन करते हैं और वह यह कि यद्यपि जान बुल तनिक मनुष्युद्धि है तकिन यनि एक बार उस वानि बात समझा दो गाय कि वह अन्धी और उचित है ता प्राय उमक काय एव म परिणत किए जाने के प्रति विश्वस्त हो सकत है। सावजनिक उक्ता क एव म दादाभाई नौरोजी का आवाज और भाषा बड़े नरम रही था परन्तु वानि के वषों में अग्रजा की प्रतिगामा नाति न उह कठार भाषा का प्रयोग करने क लिए विवश कर दिया। दादाभाई नौरोजी न भारतीयों की बढ़ती हुई दरिद्रता क गराजों की और शान्ति रोला। उनका कहना था कि अग्रज नाति भारत का प्रायिन भाषण कर रही है। उहा एम सवध म एक पुस्तक लिखा गिम्का नाम था 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया (Poverty & Unbritish Rule in India) क अग्रजों गसको का भी उनक प्रस्थाया क प्रति जागृक कराना पादुत थ। नौरोजी साधारणतया लाट रोनिस्तेरा के इस वाक्य को उचित किया करते थ कि 'अयाम एक सवशक्तिगता राय का पतन क गत म दाल देता है।' (Injustice will bring down the mightiest to ruin) नौरोजी ने शासक र्गण पर जोर दिया—(१) भारतीयों का प्रतिनिधि समझों में प्रतिनिधित्व मिन (२) भारतीयों का प्रतापनाय सेवामों में प्रवृत्त। १९०६ में जब दादाभाई कलकत्ता क कांग्रेस अधिवेशन क महापति हुए सारा एव बगधिच्छेद्र के कारण 'मानों एक सौनत हुए क्ताक म था। अगल अमत्रोप मे उवल रदु था। सरकार ने सात्रिप अादावन का विगय वातृता (परिसेसा) पीर और साबरीरो पुलिन की सनाता अ्याक गिरफ्तारिया पीर अादापुम सागे प्रहाय हाग कुचन डाने का प्रयास किया। इन जन अादावन और पीरशाही दमन क अकतर पर यह व्यक्ति दादाभाई नौरोजी हा थ जिहोंने 'स्वराज' को वाप्रय का अय मोवित्र किया। किन्तु उन्होंने क्या का नाति का पग नहीं लिया।

१८ गोपालकृष्ण गोखले (1866-1915)

गोपालकृष्ण गोखले महाराष्ट्र के एक बीर पुत्र और महानतम राष्ट्रवादी नेताओं में से थे। उनका जन्म १८६६ में कोल्हापुर में हुआ था। उनका मस्तिष्क समुद्रतट था और हृदय सुविमान इन गुणों के कारण उन्होंने अपने जीवन में बड़ी शीघ्रता से उन्नति की। १८ वर्ष की वय में प्रोपेयर, २२ वर्ष की वय में बम्बई विधान परिषद के सदस्य और ३९ वर्ष की वय में कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। अपनी तरुणावस्था में ही उन्होंने अपने जीवन को राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित कर दिया था। नग भ्रूष झुरिया पड़े हुए ठिठुरते और तिकुडत हुए सुबह से शाम तक दो रोटियों के लिए खत में बड़ा धम करन वाला धूपचाप धोरज के साथ न जाने कितना सहने वाले अपने मालिकों के पास जिनकी भावाज जरा भी नहीं पहुँचती, और ईश्वर तथा मनुष्या के द्वारा जो कुछ भी बोझ उनकी पीठ पर लाद दिया जाता है और उसे बिना ची चपट किए सदा सहने के लिए तयार किसानों के लिए गोखले के हृदय में प्रेम का स्थान था। गोखले ने विधान और शापित कृषक वर्ग के हितार्थ एक मन हाकर एकनिष्ठा से काम किया। गोखले ने नमक कर का सण्डन किया था जिसे के लिए बाद में महात्मा गांधी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह कर तो गरीबी पर लगा हुआ कर है क्योंकि इससे तीन पाई वाली नमक की टोकरी की कीमत पाँच आने हो जाती है। पाँच गावों में से चार गाव बिना किसी पाठशाला के हैं और बच्चों का विकास प्रज्ञान में ही होता है यह उन्होंने घोषणा की। गोखले उस शिक्षा के लिए सरकार को ही उत्तरदायी ठहराते थे।

१८८६ में गोखले ने कांग्रेस में प्रवेश किया और वे शीघ्र ही अग्रिम पंक्ति में आ गये। जब वे कांग्रेस के २१ वें अधिवेशन (१९०५) के महापति चुने गए इस गौरवपूर्ण पद पर पहुँचने वाले व्यक्तियों में उनकी अवस्था सबसे कम थी। मूरत विन्डे (१९०७) के पश्चात् उन्होंने कांग्रेस के कामों में महत्वपूर्ण भाग लिया। वास्तव में वे तिलक के प्रतिभूल नरम दल के नेता और कई वर्षों तक कांग्रेस के कल्याणकार का काम करते रहे। मुख्यतः यह उनके ही विरोध का परिणाम था जिससे कि उनके जीवन काल में गरम दल और नरम दल के बीच मेल होने के सारे प्रयास निष्फल हुए। भारतवर्ष के प्रतिनिधि के रूप में गोखले कई बार गलण्ड गए और वहाँ के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रशस्त भाजन बने। सी० वा० चिंतामणि ने 'निवेशन पत्र' के सम्पादक श्री भस्मिधम को यह कहते हुए उद्धृत किया कि गलण्ड में गोखले के समक्ष कोई राजनीतिज्ञ नहीं था। १८८८ में गोखले बम्बई विधान परिषद के सदस्य हो गए। बाद में उन्होंने भारतीय विधान परिषद (Indian Legislative Council) में प्रवेश किया और कई वर्षों तक उसके प्रभावशाली सदस्य बन रहे।

१९०५ में गोखले ने भारत सेवक समिति नामक संस्था स्थापित की जो उनकी देश की सबसे बड़ी देन है। संस्था का उद्देश्य ऐसे साधनविव बाधकताओं को

निश्चित करना था "जो प्रत्यक्ष पारिश्रमिक पर मातृभूमि की सेवाथ कठोर अनुशासन व पालनाथ साम्राज्य के प्रति राजभक्ति के लिए वचनबद्ध हो। समिति व विधान की प्रस्तावना व गोरख ने लिखा था, अब हमारे देशवासियों को काफी सन्ध्या में ध्याय प्राप्त करना चाहिए और देशहित के क्राय व स्वयं की उत्ती भावना से समर्पित कर देना चाहिये जिस भावना से कि धार्मिक कृत्य किया जाता है। सावजनिक जीवन की भाव्यात्मिकतामय होना चाहिए। देश प्रेम हृदय को इस प्रकार भाव्यायित कर दे कि उसके सामने आयाय सभी वस्तुएं अल्पन्त हय मालूम पडने लगें।' वे दक्षिण अफ्रीका भी गए थे और उन्होंने कुछ समय तक महात्मा गांधी के साथ काम भी किया था। गांधीजी के सत्याग्रह धर्म क व प्रशस्तक हो गए थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन के नित्ये फल भी एकत्रित किया। १९१२ म व सावजनिक सेवामो से संबंधित नियुक्त इसलिंगटन आयोग के सन्धय नियुक्त हुये।

✓ गोखले का चरित्र और उनकी विचारधारा—गोखले के चरित्र में कई दुर्लभ गुण थे। अपनी स्पष्ट सत्यवादिता और बौद्धिक साहस व लिए व विख्यात थ। वे अपनी राय को उत समय तक कर्मा प्रकट नहा करते थ जब तक उसकी सच्चाई में उनका पूर्ण विश्वास न हो जाता था जब वे एक बार कोड राय कायम कर लेते थे अथवा किसी आदेश को अपना लेते थ तब न तो आलोचना और बदनामी हा उन्हें अपने निर्धारित पथ से विमुख कर पाती थी। व एक निःस्वार्थ दानकर्ता थ जिनके हृदय में कदापि कोई द्वेष विचार नहीं आया। यद्यपि उनका व्यवहार कभी-कभी स्या प्रतीत होता था फिर भी उनका व्यक्तित्व आकर्षक था जो हृदय में उनका प्रति न कवल आदर अपितु प्रेमभाव का भी संचार करता था। यद्यपि उनका आदेश बहुत ऊँचे थे परन्तु यथाय को मा व अपनी भाँसों से आभन नपी होने देते थे। यस्तुत वें व्यावहारिक आन्धवादी थ। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थ जा स्पृहणीय आदेश और ऐसे आदेश क बाध, जा स्पृहणीय हो परन्तु साथ ही साथ प्राप्तव्य भी हो भेद समझ सकते थे। साह मर्ले के रूपनानुसार इनका मस्तिष्क राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क था और इनमें मातन के उत्तरदायित्व की भावना थी। मकियावेली (Machiavelli) का मतिथ उद्धरण को पूर्ण व लिए किसी भी साधन को ठीक न समझने थे वरन् जीवन क प्रत्यक्ष काय की नतिवता के आधार पर रगते थ। साह कजन ने उनकी एक बार लिखा था इररर ने आपकी सहाधारण योग्यताओं से भानूपित किया है और आपने उन योग्यताओं का देण क हिताय प्रयुक्त किया है।'

गोखले कोबरसाही के विरोधी थ। व जनतन सरकार के समर्थक थ। उन्होंने स्वयं ही आन्दोलन का समर्थन किया था। उनकी माँग थी कि भारत म भारतीयों का सवाधों में प्रवेश मिले। निर्वाचन प्रणाली की सुधारण हा और विकेंद्रियकरण किया जाए। गोखले का उच्च राष्ट्रपिता में विश्वास नहीं था। व नरम राष्ट्रीयता के अनुयायी थे। अंग्रेजों ने भारतवर्ष की जो सहाधारणता प्रदान की इसके व प्रशस्तक वें। ब्रिटिश

शासन के प्रति राज मन्त्रित्तुण सहयोग और भारत की नीति का व समर्थन दिया करते थे। सामान्यतः गोप्य जाता और सरकार के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। व जनता की आकांक्षाएँ वापसराय सब पट्टु करते थे और सरकार की कठिनायियाँ वापस तक।' स्वभावतः इससे कारण इनकी स्थिति कभी कभी विषम हो जाती थी। उनका सहयोगी उनको बहुत नरम समझते थे और सरकार इनके ऊपर उभर होने का दोषारोप करती थी तथापि अपनी सारी 'रसी' के बावजूद भी गोप्यता बनाम नौरोजी प्रथवा फीरोजशाह महता की अपेक्षा कहीं अधिक वक्तव्य और नौकरशाही के बटु भावोचक थे। पट्टामि सीतारामय्या के अनुसार उनमें कड़ी से कड़ी बात को भी मधुर भाषा में कहने का बड़ा गुण था। 'परन्तु यदि व आलोचना में कोमल शब्दावली का प्रयोग करते थे उनके प्रथम सदेह का गुजायश नहीं रहती थी। जब नाट्य कृष्ण के प्रतिगामी कार्यों ने अग्रजों की नेकनीयता में उनका सारे विश्वास को नष्ट कर दिया तब उनकी भाषा भी कुछ कठोर हो गई। उन्होंने अपने स्वभाव के विरुद्ध तनिक विगड कर यह कहा था तो प्रथम इतना ही कह सकता हूँ कि लोक हित के लिए नौकरशाही से किसी तरह का सहयोग की तमाम आशाओं को नमस्कार। अपना जीवन का अन्तिम वर्षों में गोप्यता का सरकार के ऊपर से विश्वास हटने लगा था और व शिक्षायुक्त करने लग था कि नौकरशाही स्पष्टतः स्वायत्तसुधु और सुल्लम सुल्लम राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है।' इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि १९५५ का प्रथम अधिवेशन में जिसका विषय अध्यक्ष थे उन्होंने स्वशासन के ध्येय पर समुचित प्रकाश डाला उसकी सुविस्तृत व्याख्या की राजनीतिक शस्त्र के रूप में बहिष्कार का समर्थन किया और कहा कि स्वतंत्र प्रयोग सभी करना चाहिए जबकि प्रथम कोइ चारा न रह गया हो।

१६ युग के अन्त्य राष्ट्रवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भारत में कई असाधारण सावजनिक व्यक्ति हुए जिनका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। उनका अन्तर्भाव उमेशचन्द्र बनर्जी दीनशा एदल जी याचा फीरोजशाह मेहता बदरुद्दीन तयबजी ययापीश राना आनन्दमोहन बोस जी० सुब्रह्मण्य एयर और सी० विजय रायवाचाय आदि नम्रों से देश भक्तों की आकांक्षा गगा अन्तर्गत थी। वैसे तो बात गगाधर तिनका भी इसी युग में हुए परन्तु उनका और नरम राष्ट्रीयता के उपासकों में अन्तर था। उनके कर्तव्य और चरित्र का हम अगले अध्याय में बहान करेंगे।

उमेशचन्द्र बनर्जी (1844-1906)—उमेशचन्द्र बनर्जी का यहाँ पर उल्लेख करना केवल इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि वे काग्रस की नींव डालने वालों में से थे और उन्होंने काग्रस का प्रथम अध्यक्षपद को सुशामित किया था अपितु सुरेन्द्रनाथ

जनता की भाँति कांग्रेस की स्थापना करने में उन्होंने भी कठिन परिश्रम किया था। कांग्रेस के प्रथम अध्यक्षत्व से दिया-गया उनका भाषण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉक्टर पट्टमि सीतारामय्या के शब्दों में यह प्रामाणिक रूप से जानना है कि कांग्रेस का आरम्भिक उद्देश्य क्या था तो उसके प्रथम अधिवेशन के समावृत्ति उद्देशचक्र जनता के भाषण की ओर ही निगाह दौड़ानी पड़ेगी।

दीनशा एदलजी वाचा—दीनशा एदलजी वाचा कांग्रेस के सर्वाधिकार प्राप्त राष्ट्रीय युगों में से थे। पच्चीस वर्षों से अधिक काल तक वे कांग्रेस की राजनीति में अग्रिम भाग लेते रहे। वैसे वे बहुत ही नरम थे और सरकार उन पर विश्वास करता भी लेकिन फिर भी वे कांग्रेस के फायर ब्रैंड के नाम से विख्यात हो गए थे। शासन की ओर से उन्हें 'नाइटहुड की उपाधि प्रदान की गई थी और वे भारतीय विधान परिषद (Indian Legislative Council) के लिए नामित किए गए थे।

फिरोजशाह मेहता (1845-1915)—फिरोजशाह मेहता पारसी परिवार में से एक थे—दूसरे टाटाभाई नौरोजी और तीसरे दीनशा एदलजी वाचा के जिनोने आरम्भिक वर्षों में कांग्रेस का नेता का और उसे संचालित किया। १९१५ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे सावजनिक कामरत रहें और उन्होंने अपने देश की प्रभुत्व स्थापना की। अपनी रचनात्मक राजनीति में वे के लिए वे सुविधाएँ थीं और उन्हें अम्बेडकर आयोग के अध्यक्ष के रूप में विधान परिषद तथा वायसराय की परिषद के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया। उन्होंने कांग्रेस के छठे अधिवेशन (१८९०) का समावृत्ति किया था और अपने भाषण में साह सेनगरी के रूप में विचार का प्रस्ताव किया कि प्रतिनिधि शासन पूर्ण परम्परा में अग्रिम रूप के निवासियों की मनोविधि के अनुसार नहीं है अपनी बात का पुष्टि में मि० चिसोम एन्स्ट (Chisohm Anst y) का यह उद्धरण देना किया कि 'मानव-स्वराज्य का जनक तो पूरा ही है क्योंकि स्वशासन का अधिकार से अधिक विस्तृत जो अधिक हो सकता है उस रूप में यह आरम्भ से ही नहीं हो रहा है' अर्थात् नरम राष्ट्रवादीयों की तरफ से अग्रिमों का नया संकल्पित आशावादी और उच्च सिद्धांतों में फिरोजशाह मेहता की भी अतीव आस्था थी। वे 'समस्याएँ राजनीतिगत सिद्धांतों की प्राप्ति और बहुत ही नरम और सरल के साथ' करने के विश्वासी थे। इस विषय में उन्हें तब तक ही यह नहीं था कि 'अन्त में ब्रिटिश राजनीति हमारी पुनार की अग्रिम मुक्ति'। नरम दल और गरम दल के बीच सुरत विच्छेद के पश्चात् मेहता धीरे धीरे कांग्रेस से अलग हो गए और १९१० में उन्होंने दुबारा कांग्रेस के समावृत्ति का आसन ग्रहण करने से इंकार कर दिया।

महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901)—भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में महादेव गोविंद रानाडे का नाम भी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। बहुत बारीकी में उन्हें तब तो उन्हें कांग्रेसी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे अम्बेडकर सरकार के साथ विभाग के उपाध्यक्ष थे लेकिन यदि वे कांग्रेस के रणरत पर निर्माई नहीं केने

थ या बहुत कम दिसाइ देते थे तो क्यों तक पीछे से कांग्रेस का मूत्र संचालन करने वाली शक्ति वे बने रहे थे। अपने युग के वे महानतम भारतीय विचारक थे और कांग्रेस भादौनन के नेताओं पर उन्होंने प्रशुण्ण प्रभाव डाला था। गोवने उनके बहुत से शिष्यों में से एक थे। वे अविश्वात उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता और भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध (Essay in Indian Economics) और मराठों का उत्थप (The Rise of the Maharatta Power) जसी स्मरणीय पुस्तकों के लेखक थे जो कि अब भी अपने विषयों पर 'नासिक्स' मानी जाती हैं।

बहरहोन तपस्वी—तपस्वी का भी उत्थेस करना भावश्यक है। वे कांग्रेस में प्रवेश करने वाले सवप्रथम मुस्लिम थे। कांग्रेस क ततीय अधिवेशन (१८८७) का उन्होंने सभापतित्व किया था। बम्बई हाईकोट के जज होने पर वे कई वर्षों तक कांग्रेस से अलग रहे लेकिन १९०४ में कांग्रेस में पुन लौट आए और इसके दो वर्ष बाद तक अगो मृत्युपयन्त अत्यन्त उत्साह पूर्वक काम करते रहे।

२० १८९२ का इण्डियन कौंसिल्स एक्ट

कांग्रेस का एक कृत्य—१८३३ में मकलि न भाशा व्यक्त की कि एक दिन यह आएगा जब भारतीय 'यूरोपीय सस्याओं' की मांग करेंगे। मकलि न तो किसी भावी युग की भाषा में बात की थी परन्तु वह दिन इतनी शीघ्र आ पहुँचा जिसका मकलि को स्वप्न में भी भान न रहा होगा। कांग्रेस की स्थापना १८८५ में हुई थी और उसने अपने प्रथम अधिवेशन में ही, 'यूरोपीय सस्याओं' की मांग की। सरकार के तत्कालीन रवये के प्रति उसने धार असताप प्रगट किया १८९२ के एक्ट क अन्तगत विधान परिषदों के सुधार और बिस्तार की तथा सयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और पंजाब के लिए परिषदों को स्थापित करने की मांग की। एक प्रस्ताव द्वारा प्रान्तीय और केन्द्रीय परिषदों में अधिक निर्वाचित सदस्यों के प्रवेश' की मांग की गई। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किए गए थे उनमें कहा गया था—

- (१) परिषदों के कम से-कम भाधे सदस्य निर्वाचित होने चाहिए।
- (२) परिषदों को बजट समेत सभी आधिक' प्रश्नों के विवचन का अधिकार होना चाहिए।
- (३) सुरक्षा की सामाओं में रहते हुए परिषद के सदस्यों को शासन सम्बन्धी सभी मामलों में प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए।

इन मांगों को लेकर कांग्रेस न दो शिष्टमण्डल इंग्लण्ड भेज। इन शिष्ट मण्डलों को भेजन में कांग्रेस का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को इस बात का विश्वास जिलाए कि भारत में प्रतिनिधि शासन के ध्येय की ओर पग चलान की गम्भीर भावश्यकता है। १८९२ का एक्ट स्पष्टत इन प्रयासों का ही परिणाम था।

प्रतिनिधित्व का ध्योगारा—भारतीय शासन में प्रतिनिधित्व के सूत्रपात की ओर प्रथम पग १८९१ क इण्डियन कौंसिल एक्ट के अन्तगत ही उठा लिया गया था।

इस एक्ट के अनुसार वातून बनाने के लिए गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई और गवर्नर जनरल को कम से-कम छह तथा अधिक-से अधिक बारह सदस्यों के मनोनीत करने का अधिकार मिला। यह भी स्पष्ट कर लिया गया कि मनोनीत सदस्यों में कम से-कम भाग्ये गर सरकारी होंगे। इसी एक्ट में प्रान्तों में भी विधान परिषदों के संस्थापन की बात कही गई थी जिनमें कम-से-कम चार और अधिक से अधिक भाग मनोनीत सदस्यों को प्रवेश करने का अधिकार दिया गया था। इनमें कम से-कम भाग्ये सदस्यों का गर सरकारी होना आवश्यक था। इस एक्ट के अंतर्गत निमित्त विधान परिषदों को विधान परिषद कहना उचित नहीं माना जाता वस्तुतः वे तो दरबार थीं। इसमें भारतीय जनता को अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार नहीं दिया गया था। वस्तुतः अधिकार निर्वाचित गर सरकारी संसद यूरोपियन ही होते थे। इसका अन्तर्गत परिषदों के अधिकार बड़े परिमित थे। उन्हें न तो बजट पर ही बहस करने का और न शासन सम्बन्धी मामलों में कार्यकारिणा में प्रश्न करने का अधिकार था।

१८६२ के एक्ट के उपबन्ध—भारतीय शासन विधान सम्बन्धी एक्टों में १८६१ के एक्ट के पश्चात् १८६२ का ही एक्ट महत्व का है। इस एक्ट के अनुसार (१) भारतीय और प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। भारतीय विधान परिषद में गवर्नर जनरल की कौंसिल के प्रतिनिधित्व, कम से कम दस और अधिक से अधिक बीस संसद बढ़ाए जा सकते थे और प्रान्तीय विधान परिषदों में कम-से-कम आठ और अधिक-से अधिक बीस (२) गवर्नर जनरल को यह अधिकार मिला कि वे परोक्ष निर्वाचन प्रणाली का मूल्यांकन करें—यद्यपि निर्वाचन शक्त का प्रयोग सब प्रथम कुछ प्रतिनिधित्व सदस्यों के चुनने के लिए नहीं हुआ था। वस्तुतः यह निश्चित किया गया कि कुछ गर सरकारी स्थान तो नाम निर्देशन (Nomination) द्वारा ही पूर्ण किए जाते रहें और शेष स्थानों की पूर्ति उन नामजत किए गए व्यक्तियों से से कुछ को चुनकर की जाय जिनकी सिफारिश म्युनिसिपल कमिटीयाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कॉर्पोरेशन, विश्वविद्यालय अथवा व्यापारिक मण्डल आदि करें। (३) कौंसिल के सदस्यों को बजट पर बहस करने का अधिकार मिला यद्यपि वे उन पर धोरे के अधिकार से अधिकृत राय गए। अनहित के मामलों में वह प्रश्न पूछने का भी अधिकार नहीं दिया गया।

एक्ट की धारणा—एक्ट ने कुछ रिश्तों में तो बर्तों परन्तु वे बहुत अपूर्ण और अपर्याप्त थीं। परिषदों के अधिकार को वृद्धि 'धु' और सुन्दर थी। १८९२ के अपने अधिवेशन में काँग्रेस ने इस बात का शिकायत की कि 'स्वतंत्र इस एक्ट के द्वारा लोगों को परिषदों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया है। यह परिषदों को सरकार की अधिकांश नीति पर तो सामान्य ढंग में बहस करने का अधिकार दिया गया परन्तु उन्हें बजट पर मतदान का अधिकार संस्थापन उपस्थित करने का अधिकार नहीं दिया गया। सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया, परन्तु

के पूरक प्रश्न (Supplementary questions) करने के आधार से दक्षित रहे गए।

सारांश

१८८५ में स्थापित कांग्रेस ने प्रभाव और लोकप्रियता में शीघ्र उन्नति की तथा यह देश में एक शक्ति बन गई। प्रारम्भ से ही उसका दृष्टिकोण और स्वल्प विशुद्ध राष्ट्रीय था और उसमें "शक सभी हितों वगैरे जातियाँ और धर्मों का प्रतिनिधित्व किया।

अपनी पहली अवस्था में कांग्रेस एक प्रातिनिधिक नहीं बल्कि सुधारवादी संगठन था। उस पर उत्तर अथवा नरम राष्ट्रवादियों का अत्यन्त प्रभुत्व था जिनका ब्रिटिश जनता को जन्म ज्ञान न्यायप्रियता तथा प्रजातान्त्रिक भावनाओं में असीम विश्वास था। ब्रिटिशराज से भारत को जो लाभ हुए उनकी वे प्रशंसा करते थे और ब्रिटिशराज के प्रति राजमन्त्रिण को धोखाए करना अपाय देना उनका स्वभाव था। उसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में नीकरशाही के व घातों के धरतु उनका विश्वास था कि घातनिक उपायों से सहयोग की नीति द्वारा ही भारतवर्ष धीरे धीरे स्वशासन (ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत) के लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जायगा और सब अवस्थाएँ एवं अशान्ति ठीक हो जाएगी। प्राथमिक और मावनी के प्रोग्राम में ही उनकी दृष्टि घातना थी जिसे कि बाद में "राजनीतिक अभावित्व" के नाम से अस्मिन् किया गया।

यह नरम राष्ट्रवादियों का भ्रम था कि उन्होंने भारत और इंग्लैंड के हितों को परस्पर सम्बद्ध समझा। साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघन करने में विशुद्ध घातनिक वाद की दुबलता का अनुभव करने में वे असफल सिद्ध हुए। परन्तु उनका कार्य भी निष्प्रयोजन नहीं था। वे भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में और उन्होंने उस अग्रवृत्त प्रदान किया। सांख्यिक मापणा और सांख्यिक महत्व के प्रश्नों पर विचार विमर्श के द्वारा उन्होंने जनता को राजनीतिक शिक्षा दी। इसके फलस्वरूप १८९२ का इण्डियन कॉन्ग्रेस एक्ट नरम राष्ट्रवादियों के उद्योगों का ही फल था।

कांग्रेस की स्थापना शासकों के सहयोग से हुई थी परन्तु ब्रिटिश अधिकारियों को ज्ञान ही कांग्रेस को मार्ग और आलोचनाएँ अदृष्टिकर और असह्य प्रतीत होने लगी। परिणामतः उन्होंने उसकी उन्नति में रोड़े अटकाने शुरू किए। राउड इफरिन तक भी जिन्होंने कि कांग्रेस की स्थापना में योग दिया था अब उसके विरुद्ध हो गए और उन्होंने भारतीयों की प्रतिष्ठा में अल्पमत (Microscopic Minority) का प्रतिनिधित्व करने वाला राजनीतिक सत्यापनाया। फिर भी सरकार ने कांग्रेस को अस्मन्नुष्ट रखना उचित न समझा उसे राजी करने की कोशिश की और १८९२ का एक्ट उसकी उन्नति का फल था।

अध्याय ४

उग्र राष्ट्रीयता का विकास

२१ भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में नतन प्रवृत्तियाँ

उग्रवादी (Extremists)—१९१२ के तुरत बाद ही, जब कि नया शिल्पन कीसित एक्ट पास किया गया था भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नूतन प्राणधार का विकास हुआ। एमन ब्रिटिश शासन के प्रति उग्र विरोध का स्वरूप धारण किया। यद्यपि कांग्रेस पर प्रभुत्व का उग्रर दल का ड्रा बना रहा, परंतु सगठा के अनगत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के नतृत्व में एक नतन भावित का आविर्भाव हुआ। एमन वृद्ध मध्य पश्चात् बंगाल के राजाज नक्षत्रमण्डल में भी विविध चद्र पास और धरवित्र धोव जैसे नता चमक तिहोने कि भारत के राष्ट्रीय मध्य में नवान जीवन धारा का नखार किया। महाराष्ट्र और बंगाल के जिन नेतामान न कांग्रेस आन्दोलन की रागिनी में नया स्वर भरा उस नयी गति और नयी दिशा प्रदान की वे उग्रवादी (Extremists) के नाम से विख्यात थे क्योंकि उनका दृष्टिकोण नातिकारी था और वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सक्रिय प्रतिकार पर बन दत थे।

उग्रवादी और उदारवादियों की तुलना—उदारवादियों से उनका मतभेद न केवल भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति अनन दृष्टिकोण के ही सम्बन्ध में था अपितु भारत के राजनीतिक क्षय का प्राप्न करने के लिए वे जिन माधनों का समपन करते थे उनकी दृष्टि से भी दानों में मतभेद था। उग्रवादी जसा कि हम पूव ही देख चुके हैं ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अननी राजसक्ति की स्पष्ट घोषणा करत थे। एममें सन्देह नही कि भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य के वे आनोचक थे परन्तु धधेज जाति की तयाकषित उग्रत लोकतन्त्रात्मक भावनाधों में उनकी अचन अटन अट्टा थी। एनत-के विश्वास करत थे कि अघेजों की धधेज्याधन भारत राजनीतिक उग्रति और आविक-ममृद्धि प्राप्न कर सकता है और भारत के राीय तन्त्र की प्राप्ति के लिए विगुद्ध नधानिक उपायों का ही प्रयोग करना चाटिए। उग्रवादी ब्रिटिश शासन का सन्तनम सन्ता विरोध करत थे उस प्रतिगामी बनात थे दग की आविक धधेजति के सामूहिक धधेजति का उत्तरदायित्व उसक गिर सक्त थे। राजनीतिक सिद्धा दृष्टि की नाति में उनकी बहुत कम धारणा था। अघेजों की क्षयाकार पर निमर सन्त के यत्राय के धारते थे कि भारतीय आनी दृष्टि पर ही सरोमा करें। उग्रवादी भारतीयों में स्वावसम्भन धारमनिभरत) और आत्मानिमान उत्तरन करना चाटने दे। उठोने नवराज्य की अनना सद्य धारिण किया और कहा कि हम सद्य का राजसक्ति के

पारितोषिक के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने सहभायता के प्रतिबन्धन प्रवृत्ति की नीति का प्रचार किया। उन्होंने अपने देश के लिए बलिदान करने और ब्रिटिस संहार के लिए भारतीय जनता का आह्वान किया। उग्र और उदार दल के विरोध पर तिलक का कहना था राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा। उदार दल सोचता है कि वे समझाने से प्राप्त हो सकते हैं। हम सोचते हैं कि वे तीव्र दबाव से ही प्राप्त हो सकते हैं।'

आतंकवाद (Terrorists)—१८६२ के सुधारों के बाद कथनों ने उग्र राष्ट्रीयता की एक नया धारा आतंकवादियों (Terrorists) का जन्म देता। उग्रवादी उदारवादियों के विपरीत बंधनवाद (Constitutionalism) का पक्षधर करते थे परन्तु उन्होंने हिंसा के प्रयोग का कदापि समर्थन नहीं किया। वे राजनीतिक आन्दोलन का शांतिपूर्ण विरोध में अरोसा करते थे। परन्तु आतंकवादी उग्र प्रकृति के राष्ट्रवादी थे। उन्होंने हिंसा का आश्रय ग्रहण किया। वे भारत की सम्पूर्ण साम्राज्यवादी व्यवस्था को बर्ताने और टुकड़ियों में बाँटने के प्रोग्राम द्वारा अस्त-व्यस्त करने की आशा रखते थे। राष्ट्रवादी आन्दोलन के एक भाग के रूप में हम आतंकवाद के अनुभव का इस अध्याय के अन्त में अध्ययन करेंगे।

२२ उग्रवाद के प्रादुर्भाव के कारण

१ नौकरशाही कुशासन और दमन—भारतीय राष्ट्रवादियों में शान्तिकारी भावना के विकास के प्रमुखतम कारणों में से एक गिने नौकरशाही की असाध्य प्रतिगामी नीति के प्रति बर्तना हुआ भारतीय था। १८९२ का इण्डियन कौंसिल एक्ट (Indian Councils Act) उग्रवादियों तक को संतुष्ट करने में असफल हुआ था। सरकार राष्ट्रीय भाषाक्षमा को बुरा करने की नीति का कठोरता पक्का आघात अनुकरण करती रही। १८६२ में गाल्फे को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि वे अधिकारियों को यह चेतावनी दे दें कि सरकार की जो प्रतिगामी नीति है उसके अन्तर्गत परिणाम हो सकते हैं। १८६७ में सरकार ने तिलक को गिरफ्तार किया और राजद्रोह के अपराध में उन्हें १८ मास के लिए बंजर कारावास का दण्ड दिया। दक्षिण के सुप्रसिद्ध और प्रभावशाली जमींदार—नटू बंधुओं को देश निकाला दे दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त करनी गई उनके ऊपर सदेह यह किया गया था कि वे भारत के राजनीतिक आन्दोलन से सम्बद्ध हैं। उन्होंने और इस प्रकार के दूसरे क्रूरतापूर्ण कृत्यों ने सम्पूर्ण देश में आघात तथा प्रतिशोध की नहर फला दी। रमेशचन्द्र दत्त के शब्दों में ब्रिटिश शासन की 'यावत् और सम दृष्टि भावना में भारतीय जनता का जो विश्वास था वह ऐसा हिल गया, जसा कि पहले कभी नहीं।

२ प्रकाश और महामारी—बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उग्र राष्ट्रीयता के विकास का एक सहायक कारण अकाल और महामारी जैसी प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव भी था। शासकों ने उनके निवारण करने के प्रयासों में जिस उदासीनता और सुस्ती का परिचय दिया, उससे सम्पूर्ण भारतीय जनता सरकार के प्रति अतीव रुष्ट

हो गई। १८९६-९७ में अत्यन्त भीषण दुर्मिष पड़ा। इससे जनता को अर्थधनार्थ कष्टों का सामना करना पड़ा और जन-जीवन की अपार हानि हुई। अकाल से छुटकारा पाने के लिए सरकार ने जिम मन्थरि से काम किया और लगान दामा कर देने के सम्बन्ध में जो शिथिलता दिखाई उसके कारण जनता न बहुत स एसे कष्टों के लिए जिनका निवारण किया जा सकता था सरकार को ही दोगी ठहराया। १८९६-१९०० में पुन वर्षान हुई व एक और अकाल पड़ा जो पहले अकाल की अपेक्षा कहीं अधिक भीषणतर था। १८९७-९८ में पूना में प्लेग बड़े आरंभ से फैली। एक तो लोग अकाल के मारे ही परेशान थे, प्लेग ने तो उनकी कमर ही तोड़ दी। सरकारी रिपोर्ट में कहा गया था कि १७३ ००० व्यक्ति इस बीमारी के कारण जान बलिहारी हुए। परन्तु यह तो सरकारी रिपोर्ट की बात है जब कि यथार्थत इससे कहीं बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस मृत्यु का सामना करने में अधिकारियों ने अपनी ओर से कुछ उठा न रखा परन्तु इस बीमारी को दूर करने के साधनों में सरकार ने जन साधारण को धार्मिक धारणाओं का कोई ध्यान न रखा इनके प्रयोग में बड़ी कठोरता से काम लिया और इस प्रकार से जनता के धार्मिक विश्वासों को घोट पहुँचाई। जनता बड़ी असन्तुष्ट हुई। पूना की प्लेग कमेटी के समाप्त मि० रण्ड से जिन्होंने कि प्लेग विरोधी उपायों के लागू करने में ब्रिटिश सैनिक दलों को नियुक्त किया था जन साधारण विशेष रूप से नुष्ठ था। इस बात का समाचार पत्रों और भाषणों के द्वारा तीव्र विरोध किया गया। एक दिन मि० रण्ड और एक सैनिक अधिकारी लफिन्टेनैट ग्राम्प्ट को गाली से मार दिया गया। इससे सारे भारत में जनसन्तोष फैल गई। सरकार ने कठोर दमन नीति से काम लिया। फलतः जनता में और भी असन्तोष बढ़ा।

५) धार्मिक असन्तोष—साम तौर पर भारत में यह अनुभव किया जाता था कि जनता को जिन कष्टों के निवारणों का सामना करना पड़ रहा है, व ब्रिटिश शासन की भारत के सम्बन्ध में अपनाई गई उस धार्मिक नीति के अनिवाप परिणाम है जिसमें कि भारत के हिन्दू की अपेक्षा इंग्लैण्ड के हिन्दू को ही अधिक प्रयत्नता दी जाती है। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि जनता के हृत्प में तीव्र से तीव्रतर ब्रिटिश विरोध भावनाएँ जाग्रत हुईं। दादाभाई नौरोजी रमणचन्द्र दान दानशा एतन्वी बाबा धार्मिकी रचनाओं ने यह सिद्ध किया कि भारत का बड़ती हुई गरीबी का एक एकमात्र कारण विदेशी शासन की यह नीति है जिसके फलस्वरूप देश का धन लौकिक विलास में पड़ता जा रहा है। उन्होंने हमारी राष्ट्रियता को धार्मिक व राजनीतिक नीति प्रदान करने में सहायता दी। भारतवर्ष के विधायक-समूह व्यापारीवर्ग को देश की औद्योगिक उन्नति की वृद्धि पर बलि किया जा रहा था इससे भारत की विधायकता में वृद्धि न होती तो और क्या होता ? अन्त में भी वनों पर वृद्ध ५% धातु कर का यह घटाकर ३ ५ ही कर दिया गया। भारतवर्ष में तब तक लिए गए अन्त में के अन्तों धार्मिक पर उपायित मुद्रमूत्र अन्त-मुद्रक (Counter Vailing Excise duty)

सागू कर दिया गया। सब हृदय प्रगट रूप से सरकार के साम्राज्यवादी घोषण की नीति या परिचय देते थे।

मुनिहित मध्यवर्ग का शासन के उच्च पौं से निष्कासन कर दिया गया। अतः उनके हृदयों में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विराधी भाव की बिगारी गुलन रही थी। नाड वजन क शासनकाल में इस बिगारी का और भी तीव्र रूप धारण किया। १६-४ म नाड वजन ने घोषणा की कि उच्च सरकारी पदा पर बसल अफसो की ही प्रतिष्ठा हानी चाहिए। उ ह इतने स ही सताप नहीं हुआ उन्होंने यह कह कर कि आनुवशिकता गिला योग्यता और कायक्षमता आदि की दृष्टि से शासन क उत्तर दायित्व का भार वहन करने के लिए भारतीयों की अपेक्षा अफस अधिक उपयुक्त हैं बडे पर नमक छिडका। नाड वजन की यह दर्पोक्ति भारत के जानीध अभिमान के ऊपर पाट प्रहार के तुल्य थी देशभक्त भारतीयों के लिए यह सबका असहनीय थी और १८५८ में महारानी विक्टोरिया ने जो घोषणा की थी, उनके विरुद्ध प्रतिकूल थी। काइ आशय नही कि नवयवकों ने बहुत बडो सख्या में इप चुनौती को स्वीकार करन और स्वयं को भारतीय मूमि में ब्रिटिश शासन को जड से उखा फर देने के महत्कार्य में सलग्न कर देने का दृढ निश्चय किया।

२ धार्मिक पुनरुत्थान और सांस्कृतिक नवजागरण—उप राष्ट्रीयता की नूतन चेतना को उन धार्मिक पुनरुत्थान के आन्दोलनों से भी प्रभूत प्रेरणा मिली जिन्होंने कि उभासवी शताब्दी के अन्तिम चरण म भारतीय जन जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया था। विवेकानन्द रामनीध दयानन्द और एनीबीसेण्ट की शिष्याओं ने उप राष्ट्रीयता के नताओं के ऊपर गम्भीर प्रभाव डाला। उपवादियों में धार्मिक उत्साह विशेष रूप से था ये भारत और उसकी जनता के पश्चिमीकरण के घोर विरोधी थे। बिपिन चन्द्र पाल बाल गंगाधर तिलक और नाला लाजपतराय आदि की उप राष्ट्रीयता हिंदू धर्म की कट्टरता पर आश्रित थी। धार्मिक पुनरुत्थान को उस समय के सांस्कृतिक नवजागरण से अप्रतिहत वेग प्राप्त हुआ। बकिमचन्द्र चटर्जी रवीन्द्रनाथ टगौर निलक तथा अयाय सामर्थ्यवा विचारकों की रचनाओं ने भारतीयों की अपने देश पर और उसकी सभृति पर अभिमान करना सिखाया। उन्होंने भारत की राष्ट्रीय तरंगिणी को नूतन प्रवाह से आचलित कर दिया। पाश्चात्य सभृति का प्रवेश प्रचार और प्रसार भारतीय जनता के हृदय में हीन भाव का संचरण कर सकता है अतः उसके प्रति सजग रहने की आवश्यकता है। भारत की आध्यात्मिक श्रष्टना म उनकी अपार निष्ठा थी और भारत के उच्च मन शिवर के सम्मुख क पश्चिम को एक बच्चे के समान ही समझते थ। वे चाहते थ कि भारतीय अपने देश के अतीन गौरव में प्रेरणा ग्रहण करें। राष्ट्रीयता और धार्मिक पुनरुत्थार का गठबन्धन पूणतः प्रगतिशील विकास नहीं था और हिंदू सभृति पर दिया गया जोर भी खतरे से खानी नही था। परंतु इनका असदिग्ध भाव स कहा जा सकता है कि इसन जनता को एक नवीन चेतना प्रयवा

पुष्पोचित शासन निरमरता और विदेशी शासन के प्रतिकार करने का कष्ट सहने का और यदि आवश्यकता हो तो उत्तम करन का हृदय निश्चय प्रदान किया।

कजन का प्रतिगामी शासन—लाह कजन के प्रतिगामी शासन ने भारत में सबसे अधिक भ्रष्टान्तोप उत्पन्न किया। उन्होंने जिस साम्राज्यवादी नीति का आश्रय लिया, उससे स्पष्ट होकर नवयुवक बहुत बड़ा समूह म ब्रिटिश शासन के तीव्र विरोधी हो गए। कजन तेज-तरार प्रकृति के व्यक्ति थे और वे धरन कुछ थोड़े प्रशासनिक सुधारों के लिए माद किए जाते हैं। परंतु भारत में उनका शासनकाल सतत भारत विरोधी नीति से परिपूर्ण था। कजन मिर से पर तक बट्टर साम्राज्यवादी के भारतीयों के प्रति उनके हृदय में तीव्र अविश्वास की भावना थी और वे भारत में ब्रिटिश शासन का ही व पावों को अधिक से अधिक मजबूत करना चाहते थे। वे शासन में यत्रतुल्य सुश्रुता का संचरण करना चाहते थे। ध्यान इस लक्ष्य को मित्थ करने के लिए उन्होंने केन्द्रीयकरण की नीति को प्रति तक पहुँचा दिया और समस्त मज्जकपूर्ण पदों पर मज्जक पदाधिकारियों का नियुक्ति की। कपि, शिक्षा मफार्ड और मिकार्ड आदि विषय प्रान्तीय सरकारों के नियंत्रण में थे कजन ने उनका केन्द्रीयकरण करके और बहुत से विभागों की नियुक्ति के द्वारा शासन में एकत्वता लाने का प्रयास किया। इसका फलावा वे नम्बर एक व नौकरशाह थे वे सुश्रुता को सरकारी नियंत्रण का पर्याय मानते थे। उनका पहला प्रहार स्पानीय स्व शासन की सम्पत्ति के ऊपर हुआ। वे सम्पत्ति लाह रिपन के पेशवान् के अत्यन्त तीव्र गति से उभरित कर रही थी। लाह रिपन ने यह भाषा व्यक्त की थी कि स्पानीय स्व शासन की सम्पत्ति भारतीयों को अपने देश का शासन प्राप्त करने की कला में म त्वपूर्ण शिक्षण प्रदान करेंगी। इसके प्रतिबन्ध कजन ने यह अनुभव किया कि भारतीयों का इन प्रकार की शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे लोक उद्यम (Popular Initiative) को प्रोत्साहित करने और स्पानीय सम्पत्तियों के नौकरशाहीकरण में मरोता रसत थे।

५ कलकत्ता कॉर्पोरेशन एक्ट १८९९—कलकत्ता कॉर्पोरेशन एक्ट (Calcutta Corporation Act of 1899) के द्वारा उनकी सरकार ने स्पानीय सरकारी व विभाग का अखण्ड करने का प्रयास किया। कॉर्पोरेशन के सदस्यों का संख्या ५० से पडा कर २५ कर दी गई। इन परिवर्तन का कारण सरकारी नीति के अनुसार यह था कि कॉर्पोरेशन के सम्पूर्ण अंग व भाग विभाग में लाह रहते थे और काम करने में आसक्तता से अधिक विचम्ब लगता था। जनता के दृष्टिकोण से यह एक कॉर्पोरेशन को सरकारी प्रभाव में रखने के लिए पास किया गया था और उसका उद्देश्य यह था कि भारतीय कर देने वालों का स्वयं मज्जक मनोनीत मन्त्र मज्जक बनाने का म सध कर लकें और कॉर्पोरेशन की नौकरियों में यूरोपियन व यूरेजियन कामचारी भर दिए जाए।

६ भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट १९०४—लाह कजन ने सुश्रुता और प्रबन्ध आख्या के नाम पर विश्वविद्यालयों का भी सरकारीकरण किया गया उन्हें मा

सरकारी नियंत्रण में लेने की चेष्टा की। भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट के द्वारा लाड कजन ने सीनेट के सदस्यों की सहायता को कम कर दिया सिन्डिकेट और दूसरी प्रबंध समितियों के संगठन में सशोषण किए बिना कॉलेज की विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृति भयवा अस्वीकृति का अन्तिम नियुक्त सरकार के हाथ में रखा और कॉलेजों के सरकारी निरोधण की व्यवस्था की। इस एक्ट ने विश्वविद्यालयों की अधिकार स्वतंत्रता का स्वायत्तता का घपहरण कर लिया और उन्हें बंधन नौकरशाही नियंत्रण में ला पटका। फ्रजर के अनुसार इस कृत्य ने देश में अंध शक्तिशाली विरोध को जन्म दिया और शिक्षित भारतीयों का अनुभव हुआ कि 'वायसरॉय का अभिप्राय विश्वविद्यालय प्रणाली पर एक प्रहार करना है।'

सैनिक व्यय—कजन की सैनिक नीति भी सतोग्रन्थ न थी उनकी सीमान्त नीति तिर्यक्त और फारस की खाड़ी के सैनिक अभियान और भारतीय सैनिक दस्तों को चीन भेजना आदि वाय ऐसे थे जिनका कि भारतीय जनता ने विरोध किया क्योंकि इनका ध्येय भारतीय घनागार के मूल्य पर ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था।

सरकारी गुप्त समितियों का कानून १९०४ (Official Secrets Act)—लाड कजन के शासनकाल के छठे वर्ष अर्थात् सन् १९०४ में सरकारी गुप्त समितियों का कानून पास हुआ। लाड कजन के शासनकाल का यह कृत्य भी देशभक्त भारतीयों की भावनाओं पर एक कुठाराघात था। १८८६ और १८९८ के प्रारम्भिक सरकारी गुप्त समितियों के कानूनों ने शासन के हाथों में जो अधिकार प्रदान किए थे इन्होंने उनमें और वृद्धि कर दी। इसके द्वारा सैनिक गुप्त बातों के अतिरिक्त सरकार की सावजनिक गुप्त बातों का भी प्रकाशन दण्डनीय निर्धारित हुआ और पत्रकारों की वे आलोचनाएँ भी अपराधी बतलाई गईं जिनके कारण सरकार के प्रति सदेह या घृणा उत्पन्न होती हो। मिस्टर नेविंसन (Nevinson) के कथनानुसार इस विधेयक के फलस्वरूप भारतीय पत्र और पत्रकार केवल वे ही बातें प्रकाशित कर सकते थे जिनको सरकार पसन्द करे। १८९८ के कानून में राजद्रोह की जो परिभाषा की गई थी १९०४ के कानून ने उस परिभाषा में और अधिक विस्तार उत्पन्न किया।

कजन का अभिमान और भारत विरोधी दृष्टिकोण—भारतीय जनता के प्रति अपने अभिमानों और घणामूलक दृष्टिकोण द्वारा कजन ने रोष का तूफान खड़ा कर दिया और ब्रिटिश विरोधी भावनाओं में बढ़ि की। उन्होंने भारतीयों के प्रति अपना विश्वास को अत्यन्त उद्धत भाषा में व्यक्त किया और खल्लम खल्ला इस बात की घोषणा की कि शासन के उत्तरदायित्वों के त्रिण भारतीय सवथा अनुपयुक्त है। सन् १९१५ में लाड कजन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दोहात भाषण में हिन्दू और मुसलमानों के अरित्र पर भयकर आक्षेप किए और इस बात पर जोर दिया कि

१ रोनाल्ड रो—लाड कजन लाड कजन खण्ड २ पृ० ३२२ गुरुमुख निहान सह द्वारा सडमास एन एण्डियन कास्टीट्यूशनल एण्ड नशनल इवन्पमण्ट से उद्धृत।

पश्चात् देशों के नतिक आचरण में सत्य का विनाश स्थान है और पश्चात् देशों के नतिक आचरण में सत्य के स्थान पर मक्कारी और कूटनीतिज्ञता का प्रचार है। उनके विचारानुसार भारतीय साहित्य में भी इसी आचरण की प्रतिष्ठा है। प्राच्य देशों पर इस प्रकार का दोषारोपण नीतिमत्ता के विरुद्ध या विशेषकर उस मापण में जिसे उन्होंने विप्रविद्यालय के कुलपति के पद से दिया था। मापण के विरोध में समस्त देश में सावजनिक समाए की गई। कजन ने भारतीयों को गव और आत्म-सम्मान का परो सले रोड़ा और यह घोषणा करके कि भारतीय राष्ट्र नामक कोई वस्तु नहीं है इसीमे रोय को जन्म दिया। कायस के प्रति अपन विरोध भाव की छिपाने की उन्होंने कोई परवाह नहीं की और आशा प्रकट की कि उसका शीघ्र ही अन्त हो जाएगा।

(० बंगाल का विभाजन १९०५—साठ कजन के उक्त सभी कथों से भारतीय जनता के हृदय में क्रोध का दावानल मुलक रहा था और असन्तोष के बादल बड़ी तीव्रगति से घुमक रहे थे। परन्तु जिस चीज से तूफान उमड़ा, वह बंगाल का विभाजन था और इसको साठ कजन की सबसे बड़ी सूरतता के नाम से पुकारा गया है। इसमें कोई सदेह नहीं कि सरकारी पक्ष में जो यह बताया गया कि बंगाल का प्रांत बहुत बड़ा हो गया है मुशासन का दृष्टि से उसका दो भागों में बाँटा जाना आवश्यक है यह कथन में कुछ सत्यता अवश्य थी। उस समय बंगाल में उड़ीसा व बिहार का शामिल व और सब मिलाकर कुल प्रान्त की आबादी ८ करोड़ थी। यदि केवल मात्र मुशासन की ही दृष्टि से प्रांत का विभाजन किया होता, तो भीतरपूण ठहराया जा सकता था परन्तु कजन का वास्तविक उद्देश्य यह न होकर कुछ और था। कजन भाषा के आधार पर भी प्रान्त के विभाजन की आकांक्षा न रखते थे। साठ कजन की स्वीम के अनुसार बंगाल दो हिस्सों में बाँटा हुआ था, बंगाली बंगाल जिसकी आबादी ५ करोड़ ४० लाख थी और जिसमें बंगला भाषा भाषी जनों की संख्या कवल १ करोड़ ८० लाख थी तथा पूर्वी बंगाल व आसाम जिसकी आबादी ३ करोड़ १० लाख थी और जिसमें २ करोड़ ५० लाख बंगाली बसते थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों का बहुमत था (उनकी जनसंख्या १ करोड़ ८० लाख थी)। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बंगाल का विभाजन करने में कजन का प्रमुख उद्देश्य एक मुस्लिम-बहुल प्रांत का निर्माण करना था। स्वभावतः बंगाल की जनता ने विभाजन का बंगाली राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई दृढ़ता के ऊपर एक मूर्ख भागमण समझा। वस्तुतः कजन देववातियों को आपस में सड़ाने की, उनमें फूट डालने की नीति पर ही आचरण कर रहे थे। दूसरे हिस्सों में यह कहा जा सकता है कि बंगाल का विभाजन एक दण्ड था, जो बंगाल को दिया गया, इस अपराध पर कि उसने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़ कर भाग

सरकारी नियंत्रण में लेने की चेष्टा की। भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट के द्वारा लाड कजन ने सीनेट व सदस्यों की सदस्या को बम कर दिया सिण्डिकेट और दूसरी प्रबंध समितियों व संगठन में सशोषण किए बिना कालिज की विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृति प्रथवा अस्वीकृति का अन्तिम नियुक्त सरकार के हाथ में रखा और कालिजों व सरकारी निरोक्षण की व्यवस्था की। इस एक्ट में विश्वविद्यालयों की अधिकांश स्वतंत्रता का स्वायत्तता का प्रपहरण कर लिया और उन्हें कठोर नौकरशाही नियंत्रण में ला पटका। प्रजर व अनुमार इन कल्प न देश के अंदर शक्तिशाली विरोध को जन्म दिया और शिक्षित भारतीयों का अनुभव हुआ कि वायसराय का अभिप्राय विश्वविद्यालय प्रणाली पर एक प्रहार करने का है।^१

सैनिक धर्म—कजन की सैनिक नीति भी सतोग्रह न था उनकी सीमान्त नीति ति व्रत और फारस की लड़ाई व सैनिक अभियान और भारतीय सैनिक दस्तों को चीन भेजना आदि काय ऐसे थे जिनका नि भारतीय जनता में विरोध किया क्योंकि इनका ध्येय भारतीय घनागार के मूल्य पर ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था।

सरकारी गुप्त समितियों का कानून १९०४ (Official Secrets Act)—लाड कजन के शासनकाल के छठे वर्ष अर्थात् सन १९०४ में सरकारी गुप्त समितियों का कानून पास हुआ। लाड कजन के शासनकाल का यह कृत्य भी देशभक्त भारतीयों की भावनाओं पर एक कुठाराघात था। १८८६ और १८९८ के प्रारम्भिक सरकारी गुप्त समितियों के कानूनों ने शासन व हाथों में जो अधिकार प्रदान किए थे इसने उनमें और वृद्धि कर दी। इसके द्वारा सैनिक गुप्त बातों के प्रतिरिक्त सरकार की सावजनिक गुप्त बातों का भी प्रकाशन दण्डनीय निर्धारित हुआ और पत्रकारों की वे आलोचनाएँ भी अपराधी बतलाई गईं जिनके कारण सरकार के प्रति सदेह या घृणा उत्पन्न होती हो। मिस्टर नेविंसन (Nevinson) के कथनानुसार इस विधेयक के फलस्वरूप भारतीय पत्र और पत्रकार केवल व ही बातें प्रकाशित कर सकते थे जिनको सरकार पसन्द करे। १८९८ के कानून में राजद्रोह की जो परिभाषा की गई थी १९०४ के कानून में उम परिभाषा में और अधिक विस्तार उत्पन्न किया।

कजन का अभिमान और भारत विरोधी दृष्टिकोण—भारतीय जनता के प्रति अपने अभिमानी और घृणामूलक दृष्टिकोण द्वारा कजन ने रोप का तफान खड़ा कर दिया और ब्रिटिश विरोधी भावनाओं में वृद्धि की। उन्होंने भारतीयों के प्रति अपने अविश्वास को अत्यंत उद्धत भाषा में व्यक्त किया और खुल्लम खुल्ला इस बात की घोषणा की कि शासन व उत्तरदायित्वों के लिए भारतीय सचवा अनुपयुक्त हैं। सन् १९०५ में लाड कजन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दोषांत मायण में हिंदू और मुसलमानों के चरित्र पर भयंकर आक्षेप किए और इस बात पर जोर दिया कि

१ रोनाल्ड रो— ला क पाफ लाड कजन सण्ड २ पृ ३२२ गुरमुख निहान सह द्वारा संशोधन इन इण्डियन कार्टीद्यूशनल एण्ड नेशनल डेवल्पमण्ट से उद्धृत।

पापचात्य देशों के नतिक आचरण मे सत्य का विशेष स्थान है और पौराणिक दशों के नतिक आचरण में सत्य के स्थान पर मक्कारी और कूटनीतिज्ञता का प्रचार है। उनके विचारानुसार भारतीय साहित्य में भी इसी आचरण की प्रतिष्ठा है। प्राच्य देशों पर इस प्रकार का दोपारापण नीतिमत्ता के विरुद्ध या विशेषकर उस भाषण में जिस उन्होंने विश्वविद्यालय के कुलपति के पद से दिया था। भाषण के विरोध में समस्त देश में सावजनिक सभाएँ की गई। कजन ने भारतीयों के गव और आत्म-सम्मान को परा तल रौंदा और यह घोषणा करके कि 'भारतीय राष्ट्र' नामक कोई वस्तु नहा है असीम रोय को जन्म दिया। काग्रस व प्रति अपन विरोध भाव को द्विपाने की उन्होंने कोई परवाह नही की और भाशा प्रवट की कि उसका शीघ्र ही धन्न हो जाएगा।

10 बंगाल का विभाजन १९०५—साठ कजन व उक्त सभी वर्यों से भारतीय जनता व हृदय में शोध का दावानल सुलग रहा था और असन्तोष के वादन बढी तीव्रगति से घुमट रहे थे। परंतु जिस चीज से तफान उमडा वह बंगाल का विभाजन था और इसकी लाठ कजन की सबसे बढी मूलता क नाम से पुकारा गया है। इसमें कोई सदेह नही कि सरकारी पक्ष में जा यह बताया गया कि बंगाल का प्रांत बहुत बडा हो गया है सुशामन की दृष्टि से उसका दो भागों में बाँटा जाना आवश्यक है इस कथन में कुछ सत्यता अवश्य था। उस समय बंगाल में उडासा व विहार भी शामिल थे और सब मिलाकर कुल प्रांत की आबादी ८ करोड थी। यदि केवल मात्र मुसातन की ही दृष्टि से प्रांत का विभाजन किया होता, तो मौचित्यपूर्ण टहराया जा सक्ता था परन्तु कजन का वास्तविक उद्देश्य यह न होकर बुद्ध और था। कजन भाषा के आधार पर भी प्रांत के विभाजन की आवाजा न रगत य। साठ कजन की स्कीम क अनुसार बंगाल दो हिस्सों में बटा हुआ था अमली बंगाल जिसकी आबादी ५ करोड ४० लाख थी और जिसमें बंगला भाषा भाषी जनों की सख्या कवल १ करोड ८० लाख थी तथा पूर्वी बंगाल व आसाम जिनकी आबादी ३ करोड १० लाख थी और जिसमें २ करोड ५० लाख बंगाली बसते थ। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों का बहुमत था (उनकी जनसख्या १ करोड ८० लाख थी)। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बंगाल का विभाजन करने में कजन का प्रमुख उद्देश्य एक मुस्लिम-बहुल प्रांत का निर्माण करना था। स्वभावत बंगाल की जनता न विभाजन का बंगाली राष्ट्रवादी की बड़ी हुई दृढ़ता व ऊपर एक गुंम मानमण १ समझा। वस्तुत कजन देशवासियों को धापन में सझाने की, उनमें फट डालने की नीति पर ही आचरण कर रहे थे। दूसरे शर्णों में यह कहा जा सक्ता है कि बंगाल का विभाजन एक दण्ड था जो बंगाल को निया धम दम अपराध पर कि उमने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़ कर नाग

लिया था। ए० सी० मजुमदार के अनुसार मुगलमानों की एक बहुत बड़ी समाजजन ने इस बात की स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि बंगाल का विभाजन करने में उसका लक्ष्य शासन में ही सही नियत उत्पन्न करना नहीं था अपितु एक मुस्लिम प्रान्त का निर्माण करना था जो कि इस्लाम प्रबल हो। बंगाल ने इसकी अपनी बड़बुदना सनभ्रा उनका मान मग लिया था और उसमें साथ धूनता का व्यवहार किया गया था। न केवल बंगाल में ही अपितु आसाम हिमाचल सारे देश में सनसनी फन गई। लाठ कजन के इस दुष्कृत्य का सचित्र ही प्रचण्ड रूप से विरोध किया गया। जनता के व्यापक विरोध का ही यह फन था कि १८११ में बंगाल के विभाजन को रद्द कर दिया गया।

११. उपनिवेशों में भारतीयों के साथ दुष्कृत्य—भारतीयों के साथ केवल भारत वष में ही दुष्कृत्य होता हो यह बात न थी अंग्रेजी उपनिवेशों में उनके साथ और भी अधिक अमान्य व्यवहार किया जाता था उनकी अवस्था और भी अधिक शोचनीय थी। नटाल टासवाल और दक्षिणी अफ्रीका के दूसरे उपनिवेशों में उनके साथ जो दुष्कृत्य होता था वह भव्यनीय है। नाता प्रचार के कठोर और अमानवीय प्रतिबंधों के साथ उन्हें अपना जीवनयापन करना पड़ता था। नटाल में वे मताधिकार से वंचित थे उन्हें पोट टक्स देना पड़ता और निर्धारित स्थानों में रहना पड़ता था। वे सड़क की पटरियों पर न चले सकते थे रेल के डिब्बों में अंग्रेजों के साथ न बैठ सकते थे और निर्धारित काल के परचाय भरने पर स बाहर न निकल सकते थे। विदेशों में भारतीयों के साथ जो दुष्कृत्य होता था उसका कारण क्या था? देश मजत भारतीयों को इस प्रश्न का यही उत्तर पाता होता था कि चूंकि भारत पराधीनता के पाश में आबद्ध है इसलिए विदेशों में उसकी सन्तति का अनादर अपमान व लाठन सहने के लिए विवश होना पड़ता है। दक्षिणी अफ्रीका में महात्मा गांधी के नेतृत्व में जिस वारतापूर्ण आन्दोलन का संचालन किया गया भारत में उसकी मूरि मूरि प्रशंसा हुई। इसके साथ ही साथ ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ भी तीव्र से तीव्रतर होनी गईं।

१२. अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव—जिन तत्वों ने भारतीय राष्ट्रीयता को उत्पन्न प्रदान की उनमें कनिष्ठ महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव भी था। गरीबी जातियों का आघात और भारतीयों की असह्यमता के विचार सन् १८६४ में इटली के अबीसीनिया से और सन १९०५ में रूस के जापान द्वारा पराजित होने से सचपा दूर हा गए। मिस्र ईरान और टर्की आदि सभी एशियाई राष्ट्र अपनी अलस्यमयी और तद्दामयी निद्रा का त्याग कर अगडार्ई ले रहे थे इन सभी देशों में स्वतंत्रता आन्दोलन का जार था भारत इनसे अछूता रह सकता था? जापान ने रूस का पराजित कर सम्पूर्ण एशिया के तलाक को उन्नत कर दिया। जापान की गौरवपूर्ण विजय का कारण यही ठर्राया गया कि वहाँ के निवासी उग्र रूप से राष्ट्रवादी हैं। भारतवर्ष के राष्ट्रवादियों को इन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने एक नूतन

भाषा और नूतन निरुचय प्रदान किया। भारतीयों के हृत्पथ में जिस आत्महीनता की भावना न घट कर रखा था वह धीरे धीरे नष्ट होने लगी और उसका स्थान पर विदेशी शासन को विध्वंस करने की भावना बलवती होती गई।

१) उदारवादियों के उपायों में विश्वास की कमी एक तत्कालीन नेताओं का व्यक्तित्व—यह तथ्य, उपयुक्त घटनाओं के आलोचक में स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन घटनाओं से न बलवति ब्रिटिश विरोधी भावनाओं को हाँती बल प्राप्त हुआ अपितु उन्होंने उदार प्रतिपादित उपायों में भी विश्वास उत्पन्न कर दिया। नई राष्ट्रीयता की समय में अधिक प्रभावित करने वाला कारण था आग-बुक नेताओं का मनस्व। सात, पाल, बाल, हरदयाल शरद्विद धोप आदि नेताओं ने सरकार के इस असह्य व्यवहार के स्वाधपूण नीति का तीव्र विरोध किया। इन नेताओं ने स्पष्टतः कहा कि यदि हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो हम ब्रिटिश नीतिरक्षणही को राजमन्त्रिपूण सहयोग देने की नीति का परिवर्तन करके अपने परों पर अपने आप खड़ा होकर विदेशी साम्राज्यवत् का प्राणपण से प्रतिवार करने के लिए बटिबद्ध रहना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने जनता में सरकार के प्रति घणा का यातावरण निर्मित कर सरकार विरोधी जनमत का निर्माण किया। रियासतों के लिये धाचना करने की योजना राजनीतिक अधिनारों के लिए सात ठोकर मद्राम करने की तत्परता उभे राष्ट्रीयता का विधायक तत्व था।

२३—महाराष्ट्र में राष्ट्रीयता

लोकमान्य बाळ गंगाधर तिलक (1880-1920) उभे राष्ट्रीयता सवप्रथम महाराष्ट्र में उद्भूत हुई और लोकमान्य बाळ गंगाधर तिलक के रूप में उसने एक अर्थतः प्राण किया। तिलक असन्तुष्ट रूप से दशमकता के द्विपहार' थे। उनकी विमलण बुद्धि, अप्रतिहत दृष्टा शक्ति और दान-मेवा की कमी पर किए गए उनके मन्तुपूर्व बलिगता न उभे पहले महाराष्ट्र का और बाद में सम्पूर्ण भारत का धन रहित सम्राट बना दिया था। अपनी महान विज्ञान और धन प्रचल घम निष्ठा के लिए तिलक सुविख्यात थे। पारवात्य दृष्टिकोण एक सस्कृति के प्रति उनके हृत्पथ में घोर विराक्ति थी। १८८० में उन्होंने केमरी मराठी में (सांसाहिक) और मराठी' (मराठी सांसाहिक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया। राष्ट्रीयता की नूतन ज्योति को विकसित करने में ये समाचार पत्र बहुत सहायक सिद्ध हुए। सन १८८१ में काठ्यापुर राय के तत्कालीन कुप्रवचन के सम्बन्ध में मराठी और केसरी में कुछ सत निरुचय थे जिनके मून सेवक तिलक या उनके सहयोगी धागरकर में से कोई न था। उनके कारण उनके पत्रों के सम्पादन होना न तात तिलक और धागरकर दोनों का १०१ दिन के कारावास का दण्ड मिला। उभे कारावास में जनता को मोठों में तिलक और उनके पत्रों का सम्मान बहुत बढ़ा दिया।

तिलक १८८६ में कांयस में सम्मिलित हुए। उभे समय उदारवादिता ने ही कांयस पर प्रभुत्व जमा रखा था। तिलक उदारवादिता की नीति से सन्तुष्ट नहीं

थे। उन्होंने अपनी शक्तियों को महाराष्ट्र के राष्ट्रीय घांसेसन को सुसंगठित करने में लगाया। उन्होंने महाराष्ट्र के नवयुवकों में धारम निमरता आत्म बलिदान और आत्म विश्वास की भावना को जागृत करने के विचार से (Anti cow societies) गोवध विरोधी समितियों भलाडों और लाठी बलबो की स्थापना की। वे चाहते थे कि भारतीय जो स्वतंत्रता प्राप्त करें वह किसी भी कपाकोर के बल पर नहीं अपितु अपनी ही सामर्थ्य के द्युते पर। उन्होंने स्वयं भी अपार कष्ट सहे और अपने अनुयायियों का प्रेम प्राप्त किया। यह भी स्मरतव्य है कि तिलक के विरोधी उनकी कठोर और दृढ प्रकृति के कारण उनसे बहुत डार खाते थे।

गणपति-उत्सव—१८९३ में तिलक ने गणपति उत्सव को सगठित किया। ऐसा करने में उनका लक्ष्य राजनीतिक भी उतना ही था जितना कि धार्मिक नवयुवको और दशमकतिपूण प्राणवाही जीवनधारा से अप्लावित करने के उहें साहस उरसाह एव अनुशासनपूर्वक मिल जुलकर काय करन को शिक्षा देने के साधन क रूप में इस उत्सव का उपयोग किया गया। उत्सव को अपने उद्देश्य में पूण सफलता मिली।

शिवाजी-उत्सव—१८९५ में तिलक ने शिवाजी उत्सव प्रारम्भ किया। इस महान वीर की स्मृति को पुन प्रतिष्ठापित करने की योजना में जिसने कि महाराष्ट्र को मुगल शासन की आधीनता से मुक्त कर स्वतंत्रता के स्वर्णिम प्रभात में ला सडा किया था स्पष्ट रूप से राजनीतिक उद्देश्य था। यह देश के नवयुवको के लिए एक प्रत्यक्ष आह्वान था कि वे शिवाजी महाराज के उदाहरण को अपने सामने रखें उस पर आभरण करें और ब्रिटिश शासन के बंधन से भारत को मुक्ति दिलाए। भाषण लाठी प्रदर्शन जनस कथाए और संगीत दल इन उत्सवो के अनिवाय साज-बाज थे और स्वयं तिलक के अनुसार ही उन्होंने न केवल जनता के अन्तस्तल में धार्मिक उत्साह ही जाग्रत किया अपितु उसमें राष्ट्रीय चेतना का सचार किया और उन दिनों के जो महत्वपूर्ण प्रश्न थे उनके प्रति जनता के अतस्तल में अमिश्रिच उत्पन्न की।

रड और आयस्ट की हत्या व तिलक को कारावास यात्रा १८९७—इस प्रकार एक ती महाराष्ट्र पहले से ही अन्तिकारी और उग्र राष्ट्रीयता का गढ बना हुआ था कि तभी दुर्मिष्ठ और प्नेग जसी प्राकृतिक आपत्तियों ने जनता को घर दबाया। सरकार ने जनता के कष्टो के प्रति उदासीनता का परिचय दिया और यदि उसने ष्ट व्यापक रोग—प्लेग—के निवारण में बुद्ध साधनो का प्रयाग भी किया तो उसमें बहुत कठोरता बरती। यह एक प्रकार से जनता के शोधानल पर घत छिडक देने का काम हुआ। चापेकर बंधुज जैसे प्रातिवारियों ने अग्रजो के प्रति जनता के रोषानल को अधिकधिक तीव्र किया उसे हिंसा के लिए और पृथ्वी को अपने शत्रुओ के जीवन रक्न से रजित कर देने के लिए उकसाया। इस प्रकार के विध्वंसारम्भ भावनाभा से परिपूण वातावरण में मि० रड और लपिटनट आयस्ट के बध की घटनाएँ घटित हुई। इस सम्बन्ध में दामोदर और बालकृष्ण चापेकर को गिरफ्तार किया गया और उहें प्राण-दण्ड हुआ। तिलक का इस जपय कृत्य से

महाराज मे उग्र राष्ट्रियता

किसी प्रकार का भाव कोई सम्बन्ध नहीं था उद्धाने वस्तुतः कमरी में उग्र राष्ट्रियता का निर्माण था । परन्तु अग्रजी समाचारपत्रों ने तिनक के विरोध में तफान उठा कर दिया और वह इस आधार पर कि ऐसा वातावरण उत्पन्न करके तिनक के प्रति अतिशय नकारात्मक प्रभावों का प्रभाव होने लगा तिनक ही उत्तरदायी उक्त ऊपर प्रतिपादित बलान की भाव की । २७ जुलाई १९२७ को राजद्रोह अधिनियम के तिनक गिरफ्तार किए गए । एक नवत्रयिक अधिनियम (सं. २४) ने उक्त अधिनियम की सुनवाई की । तब तब पत्रकारों द्वारा उक्त का कोई भी नहीं बनाया और तिनक का १९ मास के अंतराकारावास का दण्ड तिनक के साथ होने वाला अधिनियम ने न केवल महाराज की ही अतिशय भारी और भी अधिक उग्र कर दिया । कनेटाइन गिरोल ने इस विषय में लिखा है—

तिनक की गिरफ्तारी के पश्चात् अनेक स्थानों पर दंग हुए और जन साधारणों में विरोध का रोष प्रकट किया । इससे ऐसा आभास होता है कि तात्कालिक समय में तिनक का जनता में कितना प्रभाव था ।

तिनक और दूरत को फट १९०७—तिनक ने इस बात की चारम्भार की थी कि काँग्रेस 'राजनीतिक सिद्धान्त' वाली दायमन नीति को त्यागकर सामान्य और सुदृढ नीति का अंगण पर खुले तब उस समय उदार वादियों का काँग्रेस प्रभुत्व था अतः उन्हें अनेक प्रयत्नों में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी । तिनक और उग्र राष्ट्रवादिता एक उग्र राष्ट्रवादिता के अन्तर्गत जो मनभंग था वह इतना तीव्र हागमा । १९०७ में काँग्रेस के दूरत अधिवेशन के अन्तर्गत पर दावा में पूरा पत्र गई । इसका १९१५ तक जब तक कि दोनों में पुनरवय स्थापित नहीं हो गया था । बाहर ही रह कर साथ कर रहा । जब कि अन्तर्गत और दूरत स्थानों में विराट् आन्दोलन उत्पन्न की चरम सीमा पर पहुँच रहा था, जन १९०८ में काँग्रेस अधिवेशन में पुनः पत्रक लिखा गया कि 'कमरी' के दंग का और य उपाय टिकाऊ नहा है' भाषि बुद्धि सन् आधिकारिक सम्मेलन में । तिनक को ६ वर्ष का कारावास-दण्ड दिया गया और उन्हें मॉडरेत भन्ना गया । जेल में तिनक ने अनेक नो मुद्रित द्वापरत्नों में आधिकारिक नोमों के विरुद्ध मोनारहस्य की रचना की । इन दोनों ही अन्तर्गत स तिनक के मुद्रित एतिहासिक मोनारहस्य विचारों-कल्पना का परिचय मिलता है ।

१. टिप्पणी—तिनक के प्रति इन दिनों इस अन्तर्गत ने जनता के माता में विराट् कर दिया था । पुनः के साथ प्रवचन हीन के वाचकुर के पर दंग हो गए । मर कनेटाइन गिरोल ने लिखा है— प्रतिपादित के काँग्रेस दंग हुए । कभी-कभी तो इन दिनों में बहा अन्तर्गत रूप पारण कर लिया । क तो मूर्खत्व की अनेक विस्तीर्ण व सतिर हस्तों की अन्तर्गत रसायन माद पा अन्तर्गत परना थी । दोनों की बुद्धि ने इस बात का पता अन्तर्गत था । अन्तर्गत अन्तर्गत मोनों के ही अन्तर्गत अन्तर्गत के निम्न वर्गों के अन्तर्गत का नि

तिलक और होमरूल आशय—तिलक सरकार की भाँति वे बात की तरह सटकते थे वे बार बार उनके बीच माना जा रहा ऊपर प्रगल्भ आशाएँ माँह परतु वे अपना विश्वास पर सत्य प्रतिष्ठा रू । अपने अर्थ की स्वतंत्रता के प्रति उनके हृदय में जो भाँति भाव था वह अनायास उसे डिगान में प्रगल्भ गिद्ध हुई । तिलक ही देश के स्वातंत्र्य योद्धाओं की मूर्ति प्रविष्टमरणाय जाग रिया स्वतंत्रता मरा जन्मसिद्ध आघार है और वे उस तरह रहना । तिलक ने अपनी पुस्तक में प्रारंभिक (Man's Other religion) के एक मय में टूटितराम (Two Talaks) दो तिलक का दया विद्या, एक नायारण वायन तिलक का एक विशिष्ट कवि थे और दूसरे वायन गगाधर तिलक का स्वतंत्रता का अधिकारी था । तिलक सरकार की गीता का समयोग मानते थे । उनके भाँति वे स्वतंत्रता मारत की नींव है न कि भावा उपरति की धरम सीमा । हम सब आ दापन के कान में जब कि उ न श्रीमती एनीबीसेंट के साथ कथ से कथा मिलाकर काय विद्या के भारत के प्रमुक्त मता थे ।

तिलक का चरित्र और दृष्टिकोण—तिलक एड़ी से छोटी तक राष्ट्रप्राणी थे । वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में उनके विराट व्यक्तित्व ने भारत के सम्पूर्ण राजनीतिक नमो मण्डल का आच्छादित कर रखा था । वे एक जमानत योद्धा एय एकादशमूल मराठ थे । तिलक का यदि कोई एक मात्र जीवन ध्येय था तो यही कि इस महादेश की सुपुत्र आत्मा को अपनी गरीबी नीचे से जगाकर पुनः उसके जजरीभूत कलबर में उसे प्राणवाही जीवन धारा का संचार किया जाय जिसके प्रताप से किसी समय उसके भतीत का भवा निर्माण हुआ था ।^१ अपने राजनीतिक विचारों और कार्यों के लिए तिलक ने जितने कष्ट रूहे उतने उनके समकालीन अथ किसी राजनीतिज्ञ ने नहीं । उनका दृष्टिकोण धार्मिक था और प्राचीन भारतीय संस्कृति में आ बुद्ध भी थप्ट है उस सबका वे हार्मिक समर्थन करते थे । भारत के पश्चिमोत्तरण में उह घणा थी और प्राचीनकाल में भारत जिस गौरवपूर्ण पत्र पर प्रतिष्ठित था उसने उसने पत्रव्युत्तर करन का उत्तरदायित्व के अग्रजों के सिर मन्त थे । तिलक को हम आधुनिक भारत का कृष्ण धयवा कौटिल्य कह सकते हैं । उनमें संगठन करने का अपूर्व क्षमता थी । वे साध्य वस्तु के सम्मुख साधनों की भीण समझते थे । उन्होंने अपने इस विश्वास की गीता की शिक्षाओं पर आधारित किया था । उनका कथन था— यदि हमारे शिक्षक और निकट से निकट सम्बन्धी भाँ भाँवाय का पक्ष ग्रहण करें तो उनका भी कथन कर दन में दाप नही है यशत कि हम यह काय अनासवन भाव से करें । तथापि तिलक ने विद्या का प्रतिपादन कदापि नहीं किया क्योंकि वे इस बात का अनुभव करते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में विद्या सफल नहीं हो सकती थी । तिलक के विचारों और उनके राजनीतिक साधनों ने

उन्हें शान्तिकारी वाप्रसियो का दिव्यहार बना लिया। सी०वाई० चिन्तामणि के अनुसार मांटग्यू (Mont-gu) न एक बार कहा था भारत में कबल एक ही प्रकृतिम उग्र राष्ट्रवादी था और वय निरत।^१ तिलक उदारवाद्या का एक विचार में सहमत नहीं थे कि भारत अपने लक्ष्य को स्मरणपत्रा व प्राथनाओं द्वारा प्राप्त कर सकता है। उनसे यह मायना थी कि यदि भारत अपनी स्वतन्त्रता का प्राप्न करना चाहता है तो उसके लिए सतत सघष करत रहने की आवश्यकता है। उदारवादी वाणी क चाहें कितन भी घनी हों परंतु उनमें स अनिवाग जन व्यक्तिक त्याग करने स पाध्य मागते थे। तिलक स यह बात न थी। व बड़े स बड़ा व्यक्तिक त्याग करन की प्रस्तुत थे। उन्होंने तीन बार कारावास की यात्रा की और अपने लिए महान का साज हासिल किया।^२

✓ तिलक और गोखले का तुलनात्मक अध्ययन—तिलक और गोखले का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत मनोरंजक है। दोनों ही महाराष्ट्र क राष्ट्रस्वी सुपुत्र थे। परंतु दोनों की विचारधारा और दृष्टिकोण में प्राचाज-पानाज का अंतर था। गोखले पर इन दोनों नेताओं की जो छाप पड़ी वह स्मरण रहन योग्य है। तिलक उन्हें हिमालय की तरह उच तथा अगम्य लिताई पठे परन्तु गोखले गंगा की पवित्र धारा क स्रग प्रतीक हुए जिनमें कि व आसाना स गात्रा तथा सतत थे। पट्टामि सीतारामरथा न दोनों क अंतर को निम्न श्लोक में अत्यंत हृदयपाहा ढग स सांठ दिया है। यदि हम स्पूत भाषा का प्रयोग करें तो क० सक्ते हैं कि गाखन नरम' य और निरक गरम'। गोखले चाहते थे कि वनमान विधान में सुधार क किया जाय परन्तु तिलक उसके पुननिर्माण के पगपाती थे। गाखन की नीररगाही क साथ काम करना पडना था तो तिलक की नीररगाही से निहन्त रहते थे। गाखन कहते थे—जहाँ सम्भव हा सहयोग करो जहाँ आवश्यक हा विराय करो। निरक का भूराव घडगा-नीति की तरफ था। गोखले नामन और उनके सुधार की धार मुरज ध्यान देत थे तिलक राष्ट्र और उसके निगम की सबसे मुख्य समनन थे। गाखन का ध्यान था प्रम और सेवा तिलक का ध्यान था सेवा और कल-नहन।

गाखन विधेयों का जीवन का उपाय करत थे तिलक उनका हटाना चाहत थे। गाखन दूरने की सहायता पर धाधार रहते थे निरक स्वानन्धन पर। गाखन उचवग और बुद्धि जीवियों की तरक दसते थे निरक गवनाधारण और करोडा की धोर। गोखले का धनाडा था कौसिल सवन-ता तिलक की धनवत धो गाड की घोषाल। गाखन धधना में निगत थे परन्तु तिलक मराठा में। गाखन का उद्देश्य था स्व शासन दिगने योग्य लोग अपने की धधनों की कनौतियों पर बन कर बतावें किन्तु तिलक का उद्देश्य था स्वराज्य जो कि प्रत्येक भारतवाता का जम निद १ सी० वाई० चिन्तामणि— इन्डियन पोलिटिक्न मिन्स द्वा स्टुडिनी पृ० ११७। २ सी० एन० सिंघु— सैदमानस इन इन्डियन क्वास्टीयूशनल एण्ड नरनन इवतपमेंट' पृ० ११७।

परिहार है और बिना यह विदेशियों की महायन्त्र या बाग की परवाह न करत हुए प्राप्त करना चाहते थे।^१ इस प्रकार साधन मन्त्र के साथ व गौर निम्न तमय से प्राप्त।

तिलक और गांधी—एक तुलना—राजनीतिज्ञ नरत्न एव राष्ट्र मुक्ति धारण के देन की दृष्टि से लोकमान्य तिलक की महात्मा गांधी के साथ तुलना भी अत्यन्त समीचीन एवं सार्थक है। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी दोनों अपने अपने युग की सर्व श्रेष्ठ राष्ट्रवादी विभूतियाँ थीं। दोनों ही नेताओं के अतिरिक्त अपने अपने काल स्वतंत्रता सपना के जीवित प्रतीक थे। प्रथम महायुद्ध के परभाव भारत के राजनीतिक रणमंच पर महात्मा गांधी का जिन प्रकार एक नए आयिष्य रचा प्रायः उसी प्रकार प्रथम महायुद्ध के पूर्व लोकमान्य तिलक भारतीय लोक मन के मुकुटरहित सद्ग्राह्य थे। लोकमान्य तिलक जन्मजात याज्ञिक थे। राजनीति में उनके आदर्श श्रीकृष्ण कौटिल्य शिवाजी और पेशवा थे। उनकी जन्मे की समाप्ति में आस्था थी। वे साधुजन की राजनीति के लिए अनुपमुक्त मानते थे। भारत में ब्रिटिश शासन के कृष्ण रत्न की उल्टे खेव ध्वजा तरह समझ था। उनका अग्रजो की याचपरामर्शना में दिनहुँ विश्वास नहीं था। वे कहा करते थे कि हम स्वराज्य अग्रजो से दात के रूप में नहीं मिल सकत। प्रयुक्त स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए हमें विशेषी शासनको स हट कर संपन्न करना है। व राजनीति में साध्य और साधन के अर्थ को स्वीकार नहीं करने थे। उनका मत था कि यदि हमारा आशय श्रेष्ठ है तो हम उनको हस्तगत करने के लिए चाहे जन्मे सामनों का प्रयोग कर सकते हैं। यद्यपि तिलक का अविगत जावन गांधीजी के जीवन की भाँति ही निम्न और विषयक था फिर भी उनके लिए राष्ट्र हित की बेरी पर मन का बलिदान करता कोई बड़ी बात नहीं था।

गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा और कार्यप्रवृत्ति इससे भिन्न थी। वे स्वभाव में राजनीतिज्ञ नहीं प्रत्येक धार्मिक पुरुष थे। राजनीति में तो उन्हें आवश्यकता पक्ष आता पडा था।^२ राजनीतिक जावन के प्रारम्भिक काल में गांधीजी का भी उत्तरवादी नेताओं की भाँति अग्रजो की याचपरामर्शना में अटन विश्वास था। यद्यपि बाद में उन्होंने माँ ब्रिटिश शासन के कृष्णस्वरूप को तिलक के समान ही दृष्ट्यगम कर लिया था। वास्तव में तिलक की भाँति गांधीजी भी यह कहने लगे थे कि हमें स्वराज्य दात के रूप में नहीं मिल सकत। उस प्राप्त करने के लिए हमें संपन्न करना होगा यद्यपि वह संपन्न अर्द्धमात्रमत्र होना चाहिए। तिलक के विपरीत गांधीजी साध्य और साधन के बीच कोई विभाजन देखा नहीं मानते थे। उनका मत था कि हम श्रेष्ठ साधन का प्रयोग करता चाहिए। गांधीजी का साध्य और साधन के अर्थ

१ पट्टमि सोतारामय्या— दी हिन्दी आफ कापस पृ० १९६।

२ रोम्यो रोला— महात्मा गांधी पृ० २३।

पर इतना प्रयत्न आग्रह रहना था यद्यपि उनकी देग निष्ठा में किमा का स्वभाव मा स देह नहीं हो सकता वे यह कहते नहीं सकते य कि मरी दृष्टि में सत्य का स्थान देश मन्ति स ऊपर है ।

ग धीजी और तिलक दोनों के ही हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा थी । परन्तु उनकी संस्कृति विषयक भावनाओं में थोड़ी भिन्नता है । तिलक कट्टर हिंदू थे । उनकी कट्टरता इतनी बड़ी हुई थी कि वे हिंदू धर्म का नाम पर बानविवाह जमा नामाजिफ कुीतियों की भी सहमत थे । उनका हिंदू धर्म आक्रामक हिंदू धर्म था । गांधीजी के साथ यह बात नहीं थी । उनके धार्मिक विश्व मा म पुराणप्रियता अथवा अर्थ विश्वासों के लिए कोई स्थान नहीं था । उनका जीवन सब धर्म सम वष का जाता जागता उदाहरण था । तिलक गांधीजी की भांति पाश्चात्य जनतंत्र के प्रतिनिधि सरकार के आलोचक नहीं थे । वे गांधी के अहिंसा शस्त्र का निरहुता के प्रतिनिधि रूप में नहीं देखते थे । तिलक मूल गणितज्ञ थे । उनका तर्क म अधिक विश्वास था । गांधीजी सत्या के उत्तम कारक नहीं थे । यदि वे किसी बात की ठीक समझन थे तो फिर हम बात की परवाह नहीं करते थे कि कोई उनका साथ है या नहीं । वे अकते हैं अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार काम करने के लिए तयार हो जाते थे क्योंकि अंतरात्मा सम्बन्धी मामलों में बहुमत के लिए स्थान नहीं है ।^१ बहुमत के नियम पर सीमित रूप में व्यवहार हो सकता है अतः सफ़्तोली मामलों में व्यक्ति की बहुमत की बात माननी चाहिए । किन्तु बहुमत का नियम चाहे जिस प्रकार हो उसे मान लेना सामना है । बहुमत का यह अर्थ नहीं कि एक व्यक्ति की भी राय को यदि बहुतीक है वा दे । एक व्यक्ति की राय को यदि बहुतीक है बहुते की राय की अपेक्षा अधिक महत्व देना चाहिये ।^२

कनिषय आधारभूत मठभों के हाते हुए भी तिलक और गांधी दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिहत सनानी थे । दोनों ने ही अपने प्रबन्ध अरविनरस स राष्ट्रीय आन्दोलन को नूतन गति और नूतन णिया दी । तिलक के पूर राष्ट्रीय आन्दोलन केवल कुछ अग्रजों पर सिधे धर्मशास्त्र लोगों तक ही सीमित था । तिलक की राष्ट्रिय आन्दोलन को सबसे बड़ी देन यह है कि वे अपने माय मध्यम वर्ग का राष्ट्रीय आन्दोलन में लाय लाए और इस प्रकार उन्हे राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र का विस्तृत कर दिया । गांधीजी ने तिलक के काम को और आगे बढ़ाया । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को न केवल जन आन्दोलन ही प्रयुक्त प्रार्ति तकारी आन्दोलन भी बना दिया । महारमा गांधी के अन्तर्गत म व द्वाय आन्दोलन का सन्तत दग के एक-एक कौन में एक एक किमान और एक एक मजूर के कानों में पहुँच गया । यह भारत का दुर्भाग्य

१ म व हिंदू धर्म मा० १८०० ।

२ डा० जी० एन० पावन द्वारा उद्धृत— यशोव्य तरकदशन पृ० १२३

ही मानना चाहिए कि जत ही महारमा गांधी ने भारत की सभिय राज नीति में प्रयत्न किया तिनका वा मोहवाती हा गए ।

२४ बंगाल में उग्र राष्ट्रीयता

जत तो भारत में जनस राष्ट्रीयता की लहर उठी बंगाल "गंगा गण" रहा था परन्तु "गण" बंगाल के शासनशासन में उग्र राष्ट्रीयता की घोर उदरग भन्नाय स्पष्ट दृष्टि गोचर हान गया । बंगाल के भारत विरोधी विचारों और "पनमूनर" कत्या न जनता के प्रस ताप की प्रगि का अधिक प्र-वलित किया । बंगाल के शासनशासन के अन्तिम दि नो में गांगल के घनसार जनता सतत स तान की परिस्थिति में था । धामती एनावसण न भी उग्र राष्ट्रीयता के जागरण के लिए बंगाल का ही उत्तरदायी ठहराया था । उ लेन लिखा था "जन द्वारा बोए गए बी-गो का प्रभार क दानों का फसन क हन म पकना अवश्यम्भावी था । " बंगाल के विभाजन ने जनता के प्राध का एकदम स मटका दिया । बंगाल की राष्ट्रीय एकता का ऊपर एक भयकर कुठाराघात समझा गया । सरकार के इस दुष्करय के विरोध म ना तफान उत्पन्न हुआ यह तत्र तत्र शासन हो गया जब तक कि १९११ में बंगाल का रह न कर दिया गया ।

विभाजन विरोधी प्रानेत्तन—लाड बंगाल ने बंगाल का जा विभाजन किया था उसके पाछे एक कर्नीति काम कर रही थी । बंगाल विभाजन का उद्देश्य बंगाली जनता की राजनीतिक हृत्ता और राष्ट्रीयता की नूतन प्राणधारा को प्रवृद्ध कर देना था । बंगाल के विभाजन के मूल म सरकार की प्रसली मशा बदा है बंगाली राष्ट्रवादिगो न इसको अच्छी तरह से जान लिया था । वे इस बात को मसो भांति समझ गए थ कि प्रान्त को दो भाग म विभाजित करके सरकार हिंदू और मुसलमानों में फट डालना चाहती है । कू नीतिज्ञ बंगाल ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि भारतवर्ष में साम्प्रदायिक भे भाव के बीज बो देना ब्रिटिश साम्राज्य के हित की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है । नूनन निमित्त पूर्वी बंगाल और आसाम प्र त के गवर्नर सर व फाल्ड फनर के आवरण और नीति ने बंगाल विभाजन के वास्तविक उद्देश्य के सम्बन्ध म बच सचे स-देहो का भी निराकरण कर दिया । उन्होंने हिंदूओं के प्रति विरोध और मुसलमानों के प्रति पक्षपात की शून्यमालना नीति अपनाई । उन्होंने स्पष्ट ण में यह कहकर कि हिंदू और मुसलमान मरा दो पत्नियाँ हैं जिनम मुसलमान मुझ अधिक प्रिय हैं राष्ट्रीय भावाभा को अधिकाधिक उत्तमना प्रदान की । विभाजन की योजना को १९ जुलाई १९०५ को घोषित किया गया और जनमत के सभी वर्गों के विरोध किए जाने के बावजू भी १६ अक्टूबर १९०५ को उसे क्रियान्वित कर लिया गया । वह दिन सम्पूर्ण बंगाल में राष्ट्रीय शोक का दिन माना गया । बहुत से लोगो ने उस दिन उपवास रखा ।

१ एनीबीडेण्ट— हाऊ इण्डिया राट पार फाइम पृ० २९ ।

विभाजन विरोधी धारणाएँ—बंगाल विभाजन के विरोध में सारे देश में राष्ट्रभक्ति समाए का एक दौर जनक नियान गण। प्रत्येक कण्ठ से ये बातें मातरम् का स्वर गुनाह रहा था और गंगा गती क्वचन ने मुद्रिति या उरना था। रगाथ उन उग्र स्त्रि क प्राणान म गाविन था। यत् जनता क रूप हत् निरुधम का प्रनीक था तब तक कृष्णि प्रात को प्राणन नी कर लिया जाता मराम निरतर चालू रहता। जिह उग्र राष्ट्वार्ति गाने प्राण विभाजन विरोधी धारणावन का नत प्रकिर्या उनम विविन च न्पाव सरवि न धाय उनक भाई बीर न धाय व प्रशिनकुमार न्त क्षाति प्रभित प्रमुव थ।

विनि चद्र पाव—(१८१८ १६ २) विनि चद्राल न १८८७ म काप्रम म प्रया। क। रा बीर च रा न्पुव तय वी प्राणि क विण उदारवात्ति क साधनों न मन्धत नी व। त एव प्रशिनगाती यकता पत्र पढनार थ। बंगाली नवयुवकों त ऊपर उनका वगाव प्रभाव था। उनका काम म जवत्तन शक्ति था। व अपने द्वारा मध्यानि पू दुष्णिगा घोर धरवि न धाय नारा मध्यानि न मातरम में धननी रगाणे प्रगाणित रिषा करत थ। विविच न म्पत विचार धपनी पुम्नक दा साव त्राक वि दा (The soul of India) म प्रफ्ट किय हैं। उनका रचनाओं न उग्र राष्ट्रवाी क म्पूव प्ररगा प्राण होता था। जनसाधारण क ऊपर उनका जो गू गम्मार प्रभाव था तबक कारण सनार उनम डरनी धी घोर उहें नारमत्न करनी था। १९०७ म उह मन्ग म्प्रीडना हाड न्ने क विण विवश किया गया। दुमका बाण्य पत्र धा कि प्रधिकारिणों न उनके भावगो का बहुत ही उग्रवक एवं धारतिजक मन्ना। विनि चद्र पाव प्रने उग्र रात्र्या न विचारों क म्पुमार बीरनिवगित स्वराय क म्प्राप्त का संघावहाव मानत थ। धरवि न घोष क साथ म इतक पा निनारक पूण स्वतंत्रता क ध्यय काय प्रचार करत थ। बहिष्कार और स्व गी धा इवना क पीछे व ठक म्पन शक्ति थ। भारतीय राष्ट्रपना के धा गनन म उा न धपार कष्ट सह। व स्वतन्त्र्यन क द्वारा स्वराय्य प्राप्त करन क पक्ष में थ। सन् १९०७ मे उहें धरवि न पाष ड, धर्मिया म गवाही न नी क कारण छ मात काराशन भी म्पगना पठा।

धरवि न घोष—(१८७२ १९५०)—धरवि न घोष का राजनीतिक जीवन कननी गी।पता म भा धरपन् म्पस्व, ए है। धरवि न राजनीतिक जीन में बहुत। पाठ वय काय किया था परन्तु भा भा का किया तबक विण इनका नाम भारत क राष्ट्रीय द्दिहाम में मन्ध धमर रगा। धरवि न घोष क विचारों का क्पान दुम उनही रचनाओं— ती माडन विपान रोषन घोंन गीडा न सिधमिन् धाफ धाग क्षाति म कर मन्ड है। धरवि न धाठरि क म्प्राणितम हत तता म नरोत्त म्पन न। व धायुवि क पू त्रीया क घोर गिगाय म। न्ने निवह रा म्पाननिक धम्पुन कडा जाता है। वह एक महान् घोणे साधु, मानवता का प्रमा, घोर

महान् दागनिश माने जाते हैं। घरवि = उच्च म उच्च गार्डि क राज्या १ थ परन्तु उनका भुगतान उद्यता को और घपिय था। 'य राजनीति क प्राण में एक बमबत्ते उला ५ ममान प्रकट और मुक्त हा गण। ' राष्ट्रीयता उनक लिए एक प्राध्यात्मिक भिगन और धार्मिक बसभर था। कतिपय घातकवा १ कथा क माथ सम्बन्ध होने के आरोप पर उ ह गिरफ्तार किया गया और उन पर मुकद्मा चलाया गया। परन्तु त्रिम आरोप पर उ ह गिरफ्तार किया गया था वह मन्त्रा साबित नहा हुषा और इसलिए उ छुड िया गया। इसके पून ही कि अगिबारी पुन अरन पन म उ ह जकड सकें उहोने ब्रिटिश मारत को त्याग कर पाष्णीवेरी म प्राथम प्ररण किया। वर्य पहुचकर श्री घरवि = न राजनीति स सवाम १ किया एक दागाश्रम की स्थापना का और स्वय को प्राध्यात्मिक साधना में लयलीन कर दिया।

बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन—राष्ट्रवाद की तून प्राणधारा ने बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलनो म अभिव्यक्ति प्राप्त की। इन दोनों आन्दोलनो को घगान विमानन के विरोध म प्रारम्भ किया गया था। इ दोनों विन्शो शासन के विरुद्ध भारत के राष्ट्रीय सपप में एक नए अध्याय की सृष्टि की। विविध च पान और मुरे इनाथ बनजी जने नेतामो ने दोनों बगानों का दौरा किया बन्ने बडी समाप्रा म म यण लिए और जनता स यह प्रतिना करवाई ईश्वर को साक्षी ढेकर और भावी पीन्ति की उपस्थिति मे खडे हाकर हम यह गुरु गम्भीर शपथ लते हैं कि जहा तक व्यावहारिक होगा हम घर की बनी चीजो का प्रयोग करगे और विदेशी वस्तुमो के उपयोग का बहिष्कार करेगे। बहिष्कार और स्वदेशी के जुडवा प्रोग्राम को धार्मिक उतनाह के साथ प्रागे बढ़ाया गया। ये आन्दोलन अपन प्रमुख उद्देश्य म राष्ट्रीयता की भावनामो को उत्तजित करने मे यथेष्ट रूप से सफल हुए। उहोने नवयुवका को अपनी और विशय रूप से आकृष्ट किया। स्कूल और कालिजों के विद्यार्थी इन आन्दोलनो म सर्वाधिक प्रवाहित हुए। उहोने बडी बडी समाए की सब जोशीले भाषण लिए कन्वेंसालरम गाया राष्ट्राय नारे लगाए विदेशी वस्त्रो की दुकानो पर परने दिए और स्थान स्थान पर विदेशी वस्त्रा की होली जलाई।

सरकार की दमन नीति—स आन्दोलन का दमन करने म सरकार ने भी अपनी और स कुछ उठा न रखा। राष्ट्रीय नेतामों और नखको की गिरफ्तारी उन दिनो एक घाम बात हो गई। १९०८ म लाला लाजपत राम लोकाय लिलक और विविध च पाल जैसे नेतामो को १९०८ के रेग्यूलेशन के अन्तगत जिसे कि कानून रहित कानून क नाम स सम्बोधित किया गया निर्वासन दे दिया। नवयुवक और विद्यार्थी मोकरशाहा निदयता के विशय अजन थे। शिक्षा संस्थामो के प्रधानो को इस बात की घमसी दी गई कि यदि उहोने विद्यालयो को सरकार विरोधी हलचलो मे

१ जा एन सिंह— सव्यमास इन इण्डियन कास्टीट्यूशनल एण्ड नेशनल डेवलपमण्ट पृ १५२।

भाग लेने से नहीं रोका तो उनको जा मरकार की ओर स सहायता मिलती है उसे बन्द कर दिया जायगा व विश्वविद्यालयों से उनका जो सम्बन्ध है उसे तोड़ दिया जाएगा। पूर्वी बंगाल में नौकरशाही का दमन चक्र बृद्ध तीव्र गति में धूमता। वहाँ की सावजनिक गतिधरो में ब्रह्मात्मकता का गान भी घर-कानूनी घोषित किया गया। अप्रैल १९०६ में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का बच प्रयाग द्वारा तितर-बितर कर दिया गया और प्रतिनिधियों को पुनिग क द्वारा मारा गया। परन्तु ज्यों ज्यों मरकार का दमन तीव्र होता गया राष्ट्रीय आन्दोलन का उत्साह में वृद्ध हुई। सरकार ने अपनी दमन नीति द्वारा उन शक्तियों को नष्ट नहीं किया जिनको वो कि उसने उत्पन्न किया। यह आन्दोलन तीव्र गति में चल रहा था। अतः बंगाल में ही अखिल भारतीय कांग्रेस का उदय समय तक चलता रहा जब तक कि १९११ में उस समय उद्भव में सफलता न मिल गई अर्थात् बंगाल का विभाजन रद्द न कर दिया गया।

बंगाल विभाजन का अर्थ १९११—बंगाल विभाजन का अर्थ की घोषणा १२ अक्टूबर, १९११ को दिल्ली में हुआ था। राधाकृष्ण मिश्र के अध्यक्षता में स्वयं सम्राट् जाज पंचम ने की। उसी समय भारत का राजधानी आ कलकत्ता में हटाकर दिल्ली में जाई गई। नूतन व्यवस्था के अनुसार बिहार उड़ीसा और छाटा नागपुर को बंगाल से अलग कर लिया गया। यद्यपि एम नागध सिंह म बतें पम न थी पर तु फिर भी बंगाल में और मार देश में कर्म की सरारत पूण योजना की विकलता पर ध्यान स्मृतियाँ मनाई गई।

२५ लाला लाजपतराय (१८६५-१९२८)

भारत में उच्च राष्ट्रीयता के विकास का विवरण लाला लाजपतराय के बारे में कुछ शब्दों में बड़े बिना ता घपूरा हा रह जाता है। वन केवन निस्वाम एक दण्डवत हा थ अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष, शिक्षा मंत्री, अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष भी थे। व अद्य-ममात्र के प्रमुखतम स्तरों में से एक थे और डा ए०वी० बालिज लाहौर की स्थापना करने में उन्होंने महत्वपूर्ण भाग लिया था। कांग्रेस के अध्यक्ष हा राष्ट्रीय दल की स्थापना करने में उन्होंने विभिन्न आन्दोलनों और बाल गंगाधर तिलक के साथ बंधन-स्थिति मिलाकर काम किया था। 'लाल-बाल पाल की निर्मूलित उन दिनों राष्ट्रीय भारत के अद्यत लोक प्रिय थे। लाजपतराय ने कांग्रेस में १८८८ में प्रवेश किया था और वे शीघ्र ही अपने समय के मुखिया सावजनिक कार्यकर्ता हा गए। वे अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष भी थे। सी० वाई० चिन्मणि उन उनका भार में लिखा है मैं सावजनिक चरणा के रूप में सर्वप्रथम जाज और लाजपतराय का एक साथ स्मरण करता हूँ। जनता के श्रेष्ठों का जाग्रत कर देने की शक्ति में समान समता की। अपने देश के राष्ट्रीय आदर्श के प्रति लाला लाजपतराय

१ सा० वाई चिन्मणि— इण्डियन पार्लियामेंट सिन्धु दी स्पुटिना ।
पृ० ११८ ।

में जो निर्भीक मतिपत्रों का उगना उठना पत्रों के मरी बनी गिया । १९२० में ये कायम व घटायन निवाचिन हुए ।

१९०५ में एक शिष्टमण्डल का उद्भव माना जाजाताय मी गोपने के साथ एगनण्ड गण पर नु वहा । हूँ वर उठ वनी तिगाता ह । व । स घात पर उनायम घविगत (दिमम्बर १९ ५) के उनीमने की उगाये माफ माफ बना गिया हि मति भारत स्वतन्त्रता प्राप्त उरगा चाहना है ता उस घपने पों व ऊपर ही गडा हाना पडेगा । घपन उग्र कातिनाद के कारण उ हूँ घसत्य कष्ट मन्न पडे । १९०८ में तिनक व माय ी साथ उ न मा निर्रा मन गिया ग्या । जब व छूने तो सा घाई हा० कुत्तों व ममान उनक पीछे उग रहते ये फान घपन ही गैज में उनका जीवन दूमर हो ग्या । युद्धवान क व व घमरिका और एगलड म न । शिष्टमू चम्पना मुधारी व पस हाँक पशवात् उ न स्वराय न क कौवन पवा प्राग्राम वा ममयन किया । उहोन महा मा माधी नारा प्रारम्भ किए गठ घमहयोग घातानन का कदापि नातिक अनुमान नही किया । पट्टामि सीतारामय्या के शान्ति म— नापतराय एक य द्वा थ मत्याग्रही नही । १ सादमन कमीशन विरोधी घा गेनन म मी उ न खल वर हिम्मा गिया या । सन १९२८ में ही सादमन कमीशन व प्रति विरोध प्रशान के समय एक गोर सार्जेंट की लाठी के छाली पर हुए घातक प्रहार से उसके कुछ हाँ नो उपरांत उनकी मृ यु हा गई । जिस दिन कि उन पर यह लाठा प्रहार हुआ था उमी दिन सध्या क समय भाषण गेते हुए उ नो कहा था मेरे ऊपर किया गया लाठी का एक एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के ताबन की कीन बनेगा ।

२६ उग्र राष्ट्रवादियों के सिद्धांत और साधन

उदरवादी नेतृत्व के विरुद्ध विरोह—जया कि हम देख चुके हैं उग्र राष्ट्रियता उदारवादा अधग नरम काग्रमी नेताओं के विरुद्ध भी उतना ही बडा विरो था तिनना कि स्वय साम्राज्यवाद के विरुद्ध । उदारवातियों के प्रतिहन उग्रवातियों का य विश्वास था हि भारत और इगनड के तितो म 'वेर केर' का सम्भव है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद क साथ चाहे कितना भी सन्धाय बयो न किया जाये उनके द्वारा भारत अपने राजनीतिक उक्षय का प्राप्त नही कर सकता । विविध च न्यान का य मन् था कि ब्रिटेन के आर्थिक हितों की दृष्टि में यह अत्यन्त आवश्यक था हि भारत पर उमका अक्रुश निरतर बना रह । उनके मत से युद्ध के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त हाना घसम्भव था ।

उग्रवातियों का राजनीतिक लक्ष्य—मम्भवत तिलक ही के पढ़ने ध्यान के जि होन कि स्वराय को राष्ट्रीय सन्प का लक्ष्य बतनाया परन्तु उनके स्वराय की मा यता दानामाई नौरोजी के 'स्वराय' घयवा मोखन द्वारा घोपित स्वायत्त शासन

की धारणा से बहुत भिन्न नहीं थी। नवि मन न निलक वा यह कहत हुए उद्धृत किया है—मन उद्देश्य क कारण नी परन उने प्राप्त करन क उपाय क कारण रूप उपवादिया की उपाधि मिनी है। निश्चयन यही एक य न ही छटा दन है जो ब्रिटिश शासन क तारकालिक और समूह उ मनन की वाग करण है। व हमम सम्पन्न नहीं वह प्रमा बहुत दूर है। १ एव जिया म चगात्रो जगात्री क। अथिच प्रातिगात्री य। व ब्रिटिश शासन का सुधार करना। उमका अन्त करना चाहिये। सर हेनरी काटन क अनुसार व भारतपर्य म सब प्रकार म मुद्रा और मन्त राष्‍ट्रीय शासन प्रणाली की स्थापना करना चाहिये। विपिन चम्पाल का औरनिवधि म्पराज्य में कतई विश्वास नहीं था यशकि उनक मन म धीमानराज म्पराज्य जग प्राने स्वराज्य के धारण म मा कों अथिच प्राधायनिय था। व जिन क माथ म्पराज्य तां दन की कल्पना करण थ यद्यपि उनका यह विचार अशुभ था कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने क वा म्पराज्य भारत के लिए अनन्त का मित्र बन कर रहना सम्भव हो सकता है।

उपवादियों क उपाय—पपने राजनतिक मद्य को प्राप्त करने के लिए उप जाने जिन उपायों और साधनों का समर्थन करने के उनी दृष्टि म्पराज्य और उदारवादियों में आकांग शान्त का अंतर था। उपराधी ब्रिटिश जनता की साहसिकता क प्रवृत्तता म्पराज्य रक्ताथ। उनका विचार था कि विपुल धननिष्ठाव का प्राप्रय म्पराज्य भारत की स्वतन्त्र किया जा सकता है। उपरा। एन म्पराज्य की धारण प्रवचन क प्रतिरिक्त कुं न म्पराज्य थ। उपवादियों का यह सब का बिभारत जम पराधीन राज्य में अधानिक प्राधायन क द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने का स्वप्न दायता अपने धारकी धाना दना है। अधानिक प्राधायन इग रण्य म्पराज्य हा सकता है क्योंकि वही का शासन जो शासन है वह जनता का निधिजन है और अन्तरी गत्वा यों की जनता क प्रति उत्तरदायी भी होता है। भारत में अधानिक धा शासन कम सकन होण ? यों का शासन विपनी है, स्वधायारी है नदृ जनता क प्रति उत्तरदायी न्परा ? जनता चाहे कितना भा गुन म्पराज्य में न म्पराज्य उनक धारों में जू भी न्परा रोगा। तिलक न्पराज्य म्पराज्य के माथ म्पराज्य बनने का निपथ किया। उन्होंने कहा कि विपनी शासन एक अधिगाय है और नोहरगाया का नाव की क्षिपने के लिए म्पराज्य निभर य स्वतन्त्र काय करने की प्राधायनता है। विपिन चम्पाल का मठ था कि म्पराज्य स्वाधायन क म्परा ही प्राधायन है। १ उप राष्‍ट्रवादी

१ विपिन—दी रू म्पराज्य दन इण्डिया पृष्ठ ७२।

टिप्पणी—विपिन चम्पाल कहा करने थ कि हूमें अपनी राष्‍ट्रीय म्पराज्यों का शासन इग प्रकार में करना चाहिये कि विपिन 'काई भी वह म्पराज्य जा हमारे विपन्न नहीं हा हमारी इच्छा क सम्पुन मुद्रन की विधा हो जाए।' पुन उनका कथन

उत्तरवाशिया द्वारा प्रतिपादित विचारों प्रायःनामों स्मरण तथा और प्रतिनिधि मण्डल की नीति में अनुमान या विश्वास न करत थे वस्तुतः व उन राजनीतिक मिश्रावृत्ति के नाम से पुकारत थे। वाष्टन के वाटरग प्रतिवेगन (१६ १) व पत्रपर पर सला राजपतराय न कहा था कि अत्र अग्रज की मिश्रारी में बनी धृणा और विरोध होती है। मरा विचार है कि मिश्रारी है ही इस वाक्य कि उगम धणा का जाए। इसलिये हमारा वक्तव्य है हम अग्रज की देखा दें कि हम मिश्रागी नहीं हैं। तिलक न उग्रवादी दृष्टिकोण का निम्न प्रयोग में दखत किया हमारा अग्रज तथा याचना नहीं आत्म निम्नता है।' शासकों व साथ राजमंत्रि पूण्य स योग वरन के बजाय उग्रवादियों न निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) का विद्यात्मक प्रयोग राष्ट्र के सम्मुख रखा।

बहिष्कार स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा—बहिष्कार और स्वदेशी आ आन ब्रिटिश शासन व प्रति निर्भीक विरोध का नतन प्राण धारा के प्रतीक थे। वस ता बहिष्कार आदान की मुख्य प्रवृत्ति वि शी वस्तुओं व नी विरुद्ध निर्दिष्ट था पर तु उममे सरकार के साथ असत्याग और सरकारी नौकरियों प्रतिष्ठाओं तथा उपाधिया का बहिष्कार भी शामिल था। उग्रवा न नेता हतापूर्वक स्वदेशी में विश्वास करते थे और जन साधारण म उनका प्रचार वरन क उद्देश्य से उठोने दश यापी आ आेन का संगठन किया था। राजपतराय इमको स्वदेशी की मुक्ति का भाग समझने थे। उनको मांगता थी कि बहिष्कार विदगी शासन का प्रातःठा क ऊपर एक सीधा आघात है। इसके अन्तर्गत उनका यह भी विचार था कि दूकानदारों की जाति को नतिकता के ऊपर आश्रित तर्कों की अपेक्षा व्यापार में घाटा होने की बात अधिक प्रभावित कर सकती है।

बहिष्कार और स्वदेशी आ दोलती को अमनपव सफलता प्राप्त हुई। कलकत्त के एक एंग्लो इण्डियन समाचार पत्र दि इग्निशन ने लिखा था यह बिल्कुल सत्य है कि कलकत्त क गोठारों म कपडा इतना मरा हुआ है कि वह बेचा न जा सकता। बहुत सी भारवाडी फर्मे बिल्कुल नष्ट हो गई है और कई बड़ी म बड़ी यूरोपीय निर्यात दुकानों की या तो बंद कर रना पडा है अथवा उनका व्यापार बहुत ही मंद गति पर आ गया है। बहिष्कार क रूप में राज के शत्रुओं ने देश म ब्रिटिश िता पर कुशराघात करने का एक अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र पा लिया है।' इसक साथ ही साथ आ आन न भारतीय उद्योग को अपुव बल प्रदान किया और कपडा बुनन के उद्योग या कि यदि सरकार मर पास आकर कहे कि स्वराज्य ले तो तो मैं उपहार के लिए धन्यवाद देते हुए उसम बहूना कि मैं उम वस्तु को स्वीकार नहीं कर सकता जिमको प्राप्त करने की सामर्थ्य मरे हाथो म नहीं है।

१ ए० पार० देसाई द्वारा उद्धृत सीमान बरपाउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनल लिज्म पृ० २०७।

की सहायता से न के लिए एक राष्ट्रीय कोष संगठित किया गया। कब तक ही सावजनिक सभा मसून्नाथ बनर्जी का तुरन्त का तुरन्त ७० ००० ७० एकत्रित करने में सफलता मिली।^१ बिहार और स्वदेशी का जन्म था। इन राष्ट्रीय धनना क विकास में एक महत्वपूर्ण घटना है। यह था। इन धनसाधक को दालन का भ्रष्टाचार था जिसकी कि वास्तव में महात्मा गांधी ने शुरू किया था। इन सिद्ध किया कि राजनातिक दृष्टि में भारत चत य हो चुका है।

बहिष्कार और स्वदेशी का दोलनों की महत्ता—बहिष्कार और स्वदेशी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को मजबूत एक जनता को लाने के रूप में परिवर्तित कर दिया। बहिष्कार और स्वदेशी का इन जनता का सप्रिय सहायता पर आधारित था। लाला लाजपत राय ने इन आन्दोलन की मन्ता की निम्न था। मे व्याख्या की हम सरकारी भवना में धन मुन्नी को हटा कर जनता की भागदंडा का धार करना चाहते हैं। जहाँ तक सरकार में धनान करने का सम्बन्ध है। अपने मुन्नी की न्यव करना चाहते हैं और उद्योगिक जनता में एक नई धरोत्र करने के लिए कामना चाहते हैं। यहाँ बहिष्कार का आन्दोलन का मनाविनाल है यहाँ उद्योगिक जनता और आध्यात्मिक महत्ता है।^२ स्वदेशी आन्दोलन ने यह किया किया कि उद्योगियों के पास एक विध्यात्मक और स्वनात्मक प्राप्ता है। इन में ही उद्योगिकों ने सत्तेप नहीं माना। उद्योगिकों ने कहा कि धनान द्वारा नियंत्रित शिक्षा प्रणाली के विधान वातावरण में पत्र कर भारतीय नवयुवकों का मन्तिक अधिकाधिक दापतामय जाता जा रहा है। भारतीय नवयुवकों का अधिका शिक्षा के इस रूपमाय में बचान के लिए उद्योगिकों का एक एक राष्ट्रीय प्रणाली का योजनावित्त किया जो कि राष्ट्र के द्वारा नियंत्रित है। इन के लिए न के धनान हो और नवयुवकों में राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विकास कर।

उद्य राष्ट्रीयता और हिन्दू-मुन्दयान—वर्तमान समाजी के प्रारम्भिक वर्षों के उद्यराष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वह धार्मिक भावना के साथ समाहित था। धर्म के न धोरणा को राष्ट्रीयता एक धर्म है और वह ईश्वर के पास में आता है। उद्यवादा नत्तमा के मन्तिकों पर हिन्दू धर्म के गौरव के पुनरुत्थान की महती धार थी। उद्यवादी नेतृता ने हिन्दू धर्म के धार्मिक धर्मों के अन्तर्गत और धर्मों के स्वर्णम दुगा राणा प्रणा एवं निवाजी के धोरतापूर्ण कृत्या तथा सन १८५७ की नयी धर्मों की राता सधमीबाई के दण प्रम की स्मृति को पुन ताजा किया।^३ यह हम पहले ही दण चुके हैं कि महाराष्ट्र में तिनके ने जो कि पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध

१ जी० एन० मिह— 'वैद्यमरम द्वा इण्डियन कमिटीयून्नाल एण्ड नानन देवमन्ने' पृ० १६२।

२ युव गारा उद्यमन— 'राष्ट्र धार्मिक इण्डियन मिन्तिकों के नानन' पृ० १४६।

३ ए० धार० नवाई— 'सोन्ना बकना' धार इण्डियन नानन' पृ० १०।

ये और भारत की गौरवमयी सभ्यता से प्रेरणा ग्रहण करना चाहते थे शिवाजी और गणपति मन्त्रालय का पुनरुद्धार किया। विभिन्न प्रकार के राष्ट्रिय धनना के पुनर्जागरण को शक्ति-पूजा के प्राचीन धारणा का ही पुनर्जागरण समझना था। उदाहरण के लिए काली जगन्नाथी मठानी आदि हिन्दू शक्ति पूजा द्वारा प्रयुक्त गमना प्रतीकों से नूतन धारणा ग्रहण किया है। उन सभी पुरातन और परम्परागत धर्म दस्तावेजों को जो आधुनिक मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालें थे और भारतवर्ष की आत्मा और मस्तिष्क पर एक नूतन ऐतिहासिक राष्ट्रीय निर्वाचन सहित पुनर्प्रतिष्ठापित किया गया है।^१ अरविन्द के मत से हमारा सभी आन्दोलन मस्तिष्क ही जावन का ध्येय है और हिन्दू धर्म ही हमारी आत्माशाखा की पूति कर सकता है।

हिन्दू धर्म और विचार दर्शन पर यह जो विशेष बल दिया गया उसे सधया निर्दोष गही कहा जा सकता। उसमें कई प्रतिया थी। जहाँ इसने हिन्दुओं को देश प्रेम की प्राणवारा का संचार किया वहाँ उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति मुसलमानों में उत्साहनता लायी। सरकारी कर्मचारियों ने मुसलमानों के सूत्र कान मर उनसे कहा कि यह जो ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन संचालित किया जा रहा है इसका उद्देश्य हिन्दू राज्य की स्थापना करना है। मुस्लिम जनता विदेशी नौकरशाही के इस बहुकवे में आगे बढ़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति बहुत कुछ निरपेक्ष थी रही। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार उग्र राष्ट्रीयता सामाजिक रूप से निश्चित प्रतिश्रियावादी थी।

२७ उग्र राष्ट्रीयता और वाप्रस

इसने राष्ट्रीय आन्दोलन का क्षेत्र विस्तृत किया—वने तो उग्र राष्ट्रीयता वाप्रस आन्दोलन के एक अविभाज्य अंग के ही रूप में उदभासित हुई थी परन्तु उग्रवाणियों का इस संगठन में था अल्पमत ही तथापि वे राष्ट्रीय आन्दोलन के वायपन को प्राप्त बनाने में समर्थ हुए। वे राष्ट्रीय आन्दोलन का बगवती धारा में मध्यम वर्गों का समाविष्ट करने में कृत्य कृत्य हुए और उन्होंने जनसाधारण के बीच राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करने में सहायता दी। विभिन्न प्रकार के गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय एक नूतन अर्थ में लोकनायक थे। १९०८ में तिनके को गिरफ्तार करने और उनके साथ किए गए अत्याय ने जनता का इतना विश्वास कर दिया था कि वे ही जगह दगे हो गए। बम्बई की मिलों के मजदूरों ने सरकार के इस कार्य के विरोध में एक आवाज उठाई। लेनिन ने इस हस्ताल को भारत के श्रमिकवर्ग की पहली राजनीतिक वायवाही बताया था। वाप्रस के अन्दर रह कर उग्रवादियों ने इस बात की चेष्टा की कि संगठन ब्रिटिश शासन के प्रति अपने स्वयं में परिवर्तन करे कुछ उग्र रूप धारण कर और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति सशक्त विरोध की वे आत्म निर्भरता की नीति अपनायें। वाप्रस के अन्दर कोई क्रान्ति नाने में तो वे असफल सिद्ध हुए परन्तु बनारस अधिवेशन (१९०५) के अवसर पर उन्होंने अपने अद्वितीय प्रयत्नों के फल-

१ जी० एन० सिंह द्वारा उद्धृत—लण्डन मास इन इण्डियन कान्ट्री
थ्यूनल एण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट पृ० १६५ ६६।

स्वल्प कांग्रेस को चङ्किार और स्वदेशी का प्राप्ताप स्वीकार करने के लिये तयार कर लिया । यहाँ तक कि मोहन ने भी स्वदेशी के बारे में एक महत्वपूर्ण वक्तुता दे डाली । उक्त वक्ता मातृभूमि के प्रति प्रबल भाव जो कि स्वदेशी में उच्चतम रूप से सुरतिष्ठि है एक पत्राव है—'तथा गुरुगम्भीर मौर इतना उत्तम कि इसका विचार मान ही स्फुरण का नेता है और इसका मयाप सशक्त अंगित व मन सिगर को उच्च म उच्च कर देता है ।'

स्वराज्य—२०वीं कांग्रेस (जनवरी १९००) ने बहिष्कार और स्वदेशी के अर्थन अनुमादन को दुहराया और समापति दादाभाई नौरोजी ने 'उपनिवेशों में तु प स्व शासन अथवा स्वराज्य' को कायस का लक्ष्य घोषित किया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह उपराज्यो के ही स्वाव का फल था परन्तु उपराज्यो गता स्वतन्त्रताय गणिय मयप का नवृत्त करन का प्रस्तुत नहा थ । व वनमान शासन-व्यवस्था में सतत सुधार के द्वारा अथानिक उपाया से स्व शासन के अर्थन को प्राप्त करने के अर्थन पूज विश्वास पर अहित रहे । इसके प्रतिकूल उपराज्यो ब्रिटिश शासन के समल उच्छ्रान्त का प्रतिपादन कर्त थ के केवन शासन सम्बन्धी सुधारो से ही अनुत्प नही थ । कांग्रेस के इन शानो प शो के बीच म राजनानिक आदश का प्राप्त करन के उपायो के सम्बन्ध म जो मतभे था वह बराबर बढ़ता ही चला गया । अमे ता १९०६ म ही कांग्रेस के अर फूट पड जाता परन्तु बहुता दादाभाई नौरोजी की प्रतिष्ठा और चतुरता का फल था कि उस अवसर पर असे-नने करके यह बला टन गई । परन्तु दूगर वप पर मतभे परकाष्ठा पर पहुँच गया ।

मूरत विस्फोट (१९०७ — उपराज्यो १९०७ के कांग्रेस अधिवेशन (मूरत) का समापति तिनक को बनाना चाहते थ, परन्तु उपराज्यो तिनका कि कांग्रेस म बहुमत था इस प्रस्ताव के विरुद्ध थ । उ होने अने बहुमत का प्रयोग कर अर्थन मनोनीत डा राम विद्वागे घोष को कांग्रेस का सभापति बनान में गफलता प्राप्त था । उपराज्यो को प२ प्रबल आशया था कि उनने विरुद्धो बहिष्कार और स्वदेशी पर पाम तिन म्प पहन वप के प्रस्तावो को मुनानम करन चाहते हैं । दाना ही पया में उपराज्यो की वृद्धि जानी गई और मममोन के मार प्रयास निष्कत हुए । अधिवेशन बड गुनगपाडे के आनावरण म प्रारम्भ हुआ । अधिवेशन के दूगरे तिन को आशया पुलिन को उपस्थिति म सम्पन्न हुई परन्तु समापति अमी अने आरण का ठीक से शुरू मा नहीं कर पाये थ कि प्रतिनिधिपण म म एक प्रतिनिधि न अपना अज्ञता उठा कर फेंका, जो मुदे-त्रनाय बनर्षी की छात्रा हुआ मर फिराबहाह महता की मगा । फिर क्या था मानों एक मुठ प्रारम्भ हो गया बुलिया फेंकी गई और इन्हे चलने लग बिनसे कांग्रेस उम दिन के तिए सतत हो गई । पुलिन को बल प्रयोग के शरय पञ्जान जानी करना पडा । इसके बाद मरम दल के नेता अमा हुए, उन्होंने एक पृथक 'कनव-शन' का निर्माण किया और कांग्रेस का एक एग नूउन विधान बनाया कि उपराज्य के लोग इस सगठन के

या ही म मत्र । पन्त उपाय व माग बांधेण व धार तिज नये धोर व इग मन्त्र व धा र तइ मत्र नामित मरा हुण तइ मत्र नि १९१६ म मन्त्रा मन्त्रा व धीप पुन मेण म मन्त्रि न , म म ।

२८ उग्र राष्ट्रीयता और शासन

उग्र राष्ट्रवादियों का मपोडन और दमनमूलक कार्यों का निर्माण उ अरबी बांधियों के प्रति मा शासन किसी प्रकार का धनियुक्त गति-गुण प्रशंसित करता रहा परन्तु उग्रवाद का बढती गानी को निगमना उमर निय ड माये था । उग्रवाी सुतल मपोडन के माभन था । नातिनारियों का ममन करे म जा नीनि दम की सरकार न धनार्थ धी धर्पातु तिन पर नातिनारी हान का धलुमान भी म ह हाता उग्र गतिधियों म भर भर कर मा री या व धर्पाते म तनों मे भज दिया जाता था करीब करीब व । नीनि भारत म उग्र राष्ट्रवादियों का ममन करने म प्रितिग शासन न धनार्थ ।

शासन न कितन ही मगभवतो का मनिर्वागन का दण्ड दिया और एसा करने म जनता की मावनामा का कोई ध्याय नही रया । जोरशाही न इग बाव का पकडा नि-चय कर दिया था नि जमे भी हो सक उग्र राष्ट्रीयता को फीजानी पजे से कुचल दना है । भी मन्त्रा को धपन सामन रते हुये सरकार न धपन दमन शम्भावार को कई नूनन यानूना का निर्माण कर परिपूण किया । जसा कि हम पहले ही कह चुके हैं तिलक व प्रथम कारावास के पश्चात् एण्डियन पीनल कोड में १२४ ध और १५३ ध धाराए जाडा गई । जब कि मगाव विमाजन विरोधी मन्त्रोन्नत नून पकड रहा था और देश क विभिन्न भागो मे धातववादी हतचला का जोर बढता जा रहा था सरकार की धार स एक म एक बढतर दमनमूलक कानूनों का निर्माण भी जोर जोर से हान लगा । एक विशेष धपराध धधिनियम (Crimes Act) ने धधिकारियों को यह धधिन दी कि व तिन राजनीतिक सगठनो की राजनीतिक प्रवृत्तियों को सदेहास्पद समने उन पर प्रतिबन्ध लगा दें । इन्हें राजनीतिक धपराधियों की सक्षिप्त मुनबाई (Summary Trials) करने का भी धधिकार दिया गया । १९७ में लाड मिण्टा न ममाधो व नियम व धध्यामन को तावजनिक समाए करने क धधिकार का पतित क्रम करते हुए धापित किया । १९१ का प्रस विधेयक भी एक एसा दण्डनापूण कृत्य था जिसने नि स्वयन्त और स्वस्था प्रस के विज्ञास माग को धधरद कर दिया ।

मार्ते मिण्टो मुधार—सरकार नस बात को जानती थी कि राष्ट्रीय धाेउन बढतमात्र दमन से ही नही कुचला जा सकता । जब से सरकार ने यह धनुमन किया कि उग्रवादियों से किसी प्रकार भी मल नहीं किया जा सकता तो मुस्लिम साम्प्रदाय बाधियों और उग्र राष्ट्रवादियों को उसन धपनी और करने धपना इष्ट ताधन करना बाहा । १९०६ के इण्डियन बीसिलस एक्ट को जा कि मार्ते मिण्टो मुधारो के नाम से धधिक प्रख्यात है पाम क-व उसने इस धादस की पूडि की । उदारवादियों ने स्वशासन

मन का घोर एत हूँ पर पग ब र्ण म इन मुपारा का स्वागत किया । प तु इन तथा
 कथित मुपारा न साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सूत्र बन करके राष्ट्रीय सचय का
 जन्म बन गया । इस प्रकार नौकराणा न मन्त्री न सभा पत्नी मारने का
 योग्यता का । उमा स्मरवाणिया का घोरनी घोर करण घोर राष्ट्रीय प्राणेन के
 19 म मुक्तिम साम्प्रदायिकता का उनक विरोध म मया करण नम दयन करन
 की बला की ।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद पर एक दृष्टि

२६ क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति और साधन प्रणाली

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद और राजनीतिक उद्योग-प्रस्तुत प्रणाली के प्रारम्भ में
 हम मारन म क्रांतिकारी राष्ट्रवाद प्रणाली मानवजाती के अनेक की वृद्धि पर एक तर
 मरा निगाह डाल चुके हैं । मानवजाती उद्य राष्ट्रवाद का जो एक पहलू था यद्यपि माधन
 प्रणाली की दृष्टि म वह निरन्तर विविधता पात और राजनैतिक क राजनीतिक उद्य
 बाण म मयथा निरूप था । उद्येन दो उद्य राष्ट्रवाणिया की राजनैतिक मिश्रावृत्ति की
 नीति म समजुत था । उनका विचार था कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्राप्ति के लिए कुछ
 सो । तथाका का सम्भवन पावश्यक है । परन्तु य विविध साम्प्रदायिक विरोध
 तन्त्रि म्प्राय का विनाश करने थे । तन्त्रि यद्य मध्य क्रांतिकारी नीति स हान का
 का घोर रूप मिया की शक्ति स्थान न था । हमारे दिग्दर्शन के लिए राष्ट्रवाद का
 ये कि साधन रचन थे ।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का साधन प्रणाली-क्रांतिकारी राष्ट्रवाद उदा पारणों
 का परिणाम था जिसे कि राजनैतिक उद्योग का उद्योग किया । मन उन नावक
 मुक्ती का । इस प्रकार राष्ट्रवाणिया के उद्योगमूर्तकी दृष्टिकोण से सहमत न्दा ५ और
 साध ही साम्प्रदायिकता द्वारा प्रतिपादित क्रांतिकारी प्राणेन की माधन प्रणाली
 में भी विश्वास न था । रणत प मयती घोर प्रावृत्त किया । क्रांतिकारिया का विचार
 था कि साम्प्रदायिक मन पर आधारित साम्प्रदायिकता को हिया के बिना जह स उताह
 पना समभव है । विविध मरकार की प्रतिनिधिता की घोर समनूनन नीति न
 उनक दम विचार का घोर दुष्ट कर दिया था । उद्येने यूरोप के क्रांतिकारी प्राणेनको
 की काय प्रणाली का अध्ययन किया और य नारकालीन रण क मुक्त क्रांतिकारी
 मगटना की विनाशित स विषय रूप स प्रभावित हुए । उनका प्रमुख कायकन हिंसक
 कायनाहिकी घोर राजनैतिक हत्याएं करता था । एसा करने से व समन्त थ कि
 निरिण मधिकारियों घोर उनक भारतीय विद्यतगुणों के रूप में घातक उद्योग हा
 जायगा घोर ममस्त कामा यन मन्त्र शक्त हो जायगा । मयन प्राणेन का बलात्

क लिए सरकारी सजाएँ सूट लेना और सशस्त्र हथियारों डालना यम गिराना व हिंसात्मक पटयन रचना भी उनके कार्यक्रम में शामिल था।

३० फ्रान्तिकारी राष्ट्रवाद का प्रथम चरण

महाराष्ट्र में फ्रान्तिकारी राष्ट्रवाद-फ्रान्तिकारी राष्ट्रवाद का गवत प्रारम्भिक केन्द्र महाराष्ट्र था जहाँ उमा स्वयं की १८६६ में रण्ड और घायल की ११ वीं वृत्तियों में ध्वस्त किया। श्याम जो कृष्ण यमा की ही० सावरकर और उनके मार्ग गणेश सावरकर व चापेकर व धुन्ध इत था लेन व नेता थ। उनका कृता था प्राण देने से पूर्व प्राण 'त लो'। यह प्रतीत होता है कि रण्ड की हत्या में श्याम जो कृष्ण वर्मा का हाथ था। व इस हत्या के तुरन्त बाद ही तन्त घन गय। सावरकर व धुम्प्रा न फ्रान्तिकारी अभिनव भारत समाज की स्थापना की। १८६६ में विनायक दामोदर सावरकर तन्त पहुँचे और वहाँ श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ बटाने लग। उन्होने तन्त से अपने मा गणेश को जो महाराष्ट्र में आंदोलन का कार्य कर रहा था हथियार भेजने की कोशिश की हथियारों का पासल रवाना कर दिया गया लेकिन इनके पूर्व वि वृ गणेश के पास पहुँचा गणेश का सभा के विरुद्ध युद्ध छाने के अपराध में भाजीवन देश निकाले का दण्ड द दिया गया। प्रतिशोध की भावना से अभिनव समाज के एक सदस्य ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० जकसन की अपनी गोली का निशाना बना डाला। अभिनव समाज कई वर्षों से भरपूर क्रियाशील था और पडोसक कई राज्यों व पश्चिमी भारत के बहुत से भागों में उसकी शाखाओं का एक जाल सा बिछा हुआ था।

बंगाल में आतंकवाद-बंगाल के विभाजन ने बंगाल में आतंकवाद का विस्फोट कर दिया। प्रान्त में बकारी पहले से ही फली हुई थी विभाजन ने भाग में धी का काम किया और भावन युवक बंगालियों को हिंसा पथ का पथिक बना दिया। इस था लेन के नेता वारीन्द्र धोप और भूपेन्द्रनाथ दत्त थ। उन्होने हथियार उठाने और विदेशी शासन से युद्ध करने के लिए बंगाल के युवक वग का आह्वान करत हुए जोरदार फ्रान्तिकारी प्रचार किया। उनका कथन था 'स देश में अपजों की सरपा १५ लाख से अधिक नहीं है। प्रत्येक जिल में अपज पनाधिकारियों की सख्या कितनी है? यदि आप अपने सकल में हठ है तो एक ही दिन में ब्रिटिश शासन का अंत कर सकते हैं। अपने प्राण दे दीजिये लेकिन पहले प्राण ले लीजिये। उन्होने अनुशोलन समिति का संगठन किया जिसका मुख्य कार्यालय ढाका और कलकत्ता में था व जिसकी शाखाएँ सम्पूर्ण बंगाल में फली हुई थी। बंगाल में आतंकवादी आंदोलन ने एक समय बहुत जोर पकड़ लिया था और इसके फलस्वरूप कई राजनीतिक हत्याएँ हुई थीं।

पञ्जाब में- १९०७ में आतंकवाद की अग्नि शिला पञ्जाब में भी धमक उठी। महा धरदार अजीतसिंह माई परमानन्त, उनके अनुज बाल मुकुन्द व साता हरदयाल ने फ्रान्तिकारियों का संगठन किया। १९१२ में ताह हाडिग के प्राण हरण का प्रयास

इहीं प्रान्तिकारियों का काय था। पत्राक्ष में प्रान्तिकारी हलचलों को धमरिका स वादस धाये हुए कुछ मिकरा ने भीर भी मजबूत किया।

विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारी—(१) इंगलण्ड में—भारत के बाहर भी भारतीय प्रान्तिकारी सक्रिय थे। इंगलण्ड में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दण्डिया होम एन्ड सोमाइटी स्थापना की और इण्डियन सोशियोमोजिस्ट नामक एक मानिक पत्र निकालना शुरू किया। उन्होंने प्रान्तिकारियों का एक छोटा सा मुक्तकटिन दल बनाया जिसका नाम 'इण्डिया हाउस' था। बाद में वी०डी० सावरकर भी उनका हाथ बटान के लिए इंगलण्ड पहुच गये। उन नवयुवकों ने भारत में काम करने दान प्रान्तिकारियों का हृदयार व प्रान्तिकारी साहित्य भेजने का प्रयास किया। पहली जुलाई १९०६ को इस दल के एक सम्मेलन मदनमाल द्वीपदा ने 'इण्डिया हाउस' के सर विनियम बिना की हुरपा कर डाली। अधिकारियों के सुरन्त हा काम सडे हो गए और उन्होंने इन युवक प्रान्तिकारियों का पीछा करना शुरू कर दिया व इस छाट स दल को छिप्र मित्र करने में सफलता प्राप्त की।

(२) यूरोप में—श्यामजी कृष्ण वर्मा के नेतृत्व में भारतीय प्रान्तिकारी यूरोप के भ्रम देनों में भी प्रियागीत थे। उन्हें यूरोप की कतिपय विमूर्तिता का भी समझन प्राप्त था। परिस की महम कामा का नाम इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महम कामा बन्ने मातरम् का सम्पादन करती थी। ये प्रान्तिकारी भारत में काय करने वाले प्रान्तिकारियों का पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ धानि भेजा करते थे ताकि शिथिल युवकग में प्रान्तिकारी विचारधारा का सधार किया जा सके।

(३) अमेरिका में—अमेरिका में माता हरदयाल ने प्रान्तिकारियों का संगठन किया व १९१३ में मात प्रान्तिकी से 'गदर' नामक एक पत्र निकालना शुरू किया। यद्यपि परिस्थितियों से धिक्का हा माता हरदयाल को अमेरिका छोडकर स्वित्जरलण्ड चला जाना पडा लेकिन गदर आन्दोलन में शिथिलता नहीं आने पाई और प्रान्तिकारी अमेरिका में रहने वाले भारतीयों के बीच सुद प्रचार करते रहे। (गदर आन्दोलन पत्राक्ष में भी सक्रिय था। यहाँ उसका नेतृत्व बाबा गुरुदत्तसिंह और अमेरिका स लोट कर धाये हुए दूसरे प्रान्तिकारियों ने किया)। सर बल्लभान शिरोल ने 'इण्डो अमेरिकन एसोसिएशन' और यग इण्डिया एसोसिएशन' नामक दो संस्थाओं की भी चर्चा की है। इनमें पहली ठा एक प्रचार संस्था थी और 'दी हिन्दुस्तान' नामक पत्र निकालती थी व दूसरी एक मुक्त संस्था थी जो आयरलण्ड के प्रान्तिकारी दलों की पद्धति पर बनी हुई थी। सर बल्लभान शिरोल का कपन है कि इन दोनों ही संस्थाओं का भारत की समस्त राजद्रोही संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित था।

३१ क्रान्तिकारी आन्दोलन का उत्तरकाल

साधारण के सम्मुख आतंकवाद की निष्पत्ता—भारत के राजनीतिक धन में अज्ञानता वाली के अन्तर्गत के प्रान्तिकारी सम्प्रदाय की प्रथम अन्वेषित शुरु कर थी।

गांधीजी का टक्की ने देशमित्र भारतीयों का प्रति प्रभावित किया और भारत का निष्पक्ष कर दिया। जंगल का प्रभाव न था कि प्रतिभा के अभाव में वायव्यो ने तापुण उदारा कर दिया। जंगल का भी भावना मत्ता समाप्त हो गई और समय समय पर अनुपातिक रूप में समाज गठन में राजनीति का भावना की तरफ ही हुई हावना में उसका विस्फोट हुआ था। गणित में निष्पक्षता का निष्पक्ष रिपब्लिकन पार्टी ने कुछ समय तक वायव्य किया और जंगल का भावना का सामना करने की कोशिश की। सरदार भगतसिंह का भावना और राजनीति का नाम जंगल राष्ट्रीय स्वतंत्रता के एनडिग सापका। न सिद्धि साधना का भावना करने की धमक चला में अपना रावण स्वाहा किया।

यह ठीक है कि ब्रिटिश साम्राज्य का विरुद्ध भावना गांधी के शांतिमय भावना ने भारत की जनता को बहुत बड़े धमक पर अपनी और भारत का लेकिन फिर भी हिंसा या उसकी धमकी राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि में सख्त निषेधाने रहा। और उसने भ्रष्टाचार का भारत छोड़ने का विचार विचार करने में निष्पक्षता का भाव लिया। १९४२ को जंगल मुआवजा का भावना हिंसा की स्वतंत्रता का भाव और भारतीय नौ सेना के विद्रोह ने इस बात का स्पष्ट चतावनी दे दी थी कि यदि भ्रष्टाचार समय रहते स्वच्छता से भारत छोड़कर नहीं चले जाते तो उन्हें नानि विस्फोट द्वारा भारत में निकाल दिया जाता।

धीमधीम सदा के प्रारम्भ में एक नवन उपचार की उद्भव बना। इसमें भारत के राष्ट्रीय रगमच पर नूतन नेताओं का प्राबुभाव हुआ। जन साधारण के भावना का भावना ही रहा था उसका उद्भव यन्त्रिया। वे उदारवादादवा द्वारा प्रति पानि राजमन्त्रिवाद और धार्मिक भावना का भावना में विश्वास नहीं करने थे। वे सहयोग प्राधान्य और भावना के उपायों का विरोध करते थे और उन्हें राजनीतिक मिश्रावृत्ति का नाम से पुकारते थे। वे विश्वी भावना को जड़ से उखाड़ फेंक देने के लिये सक्रिय सधप का समर्थन करते थे। कुछ स्थानों में उग्र राष्ट्रीयता के भावना का भी स्वरूप धारण किया।

उग्र राष्ट्रीयता की उदभावना कई कारणों का परिणाम थी। नौकरशाही कुशासन दुर्मिष्ट और जंगल जंगली प्राकृतिक भावनाओं बुद्धिजीवी बग के भाविक भावनाओं विकासो-मुक्त मध्यमवर्ग का प्रभाव और धार्मिक पुनरुत्थान ने जनता के भावना में विशेषी शासन का प्रति घोर घृणा का भावना उत्पन्न कर दी। साठ वजन का दमन मलक दुष्टवृत्तों ने जनता के प्रचण्ड रोषाना पर घत छिडक देने का वायव्य किया। उन्होंने १९०५ में जनता की भावनाओं की धरुमात्र भी परवाह न करते हुए बगल को दो हिस्सों में बाट दिया। इससे विरुद्ध सार देश में भावना का एक रूपाने उठ खड़ा हुआ और वह तब तक शांत नहीं हुआ जब तक कि १९११ में बगल का पुनरुद्भव कर दिया गया। ब्रिटिश सरनिबंधों में भारतीयों के साधु ज

दुश्चरहार किया जाता था उससे भी शशासिका व राष्ट्रीय प्रतिभा पर चोपहुबली थी । १८९६ में अंग्रेजियों ने हाथों में घोर १८०५ में जापा व हाथों में पराजित हुआ । इस विरोधियों की प्रजयता की कथा नष्ट हो गई । इन अन्तर्गत्रीय घटनाओं ने भारतीयों का प्रयुज उ माह प्रान किया ।

सब प्रथम उग्रवाण प्रमुखत तिनक व काम के फलस्वरूप महाराष्ट्र में विरहित हुआ । तिनक महान श्रमजन थे और उ होने स्वतन्त्रता के पर चोपहुबली विरहित किए । उ होने केपरी और मगठा वना का म रादिवृत्तिया और इनके द्वारा राष्ट्रीयता का नूना प्राण धारा का प्रसारित किया । उ होने गणपति उत्सव (१८६३) और शिवाजी उत्सव (१८६५) प्रारम्भ विये । इन उत्सवों के द्वारा तिनक ने महाराष्ट्र के नवयुवकों को शिक्षा मगन्ति और अनुमानित किया व उनमें दग दिन के लिए बद्ध परिवर रहने की कथायमया भावना का माररण किया । तिनक का कर्म धार कारावाण का दण्ड मित । तिनक एक मम्मीर विद्वान चतुर राजनीति और जनता के द्वाय वि सभाट थे । उ होने जनता को अग्रजो स कृपाकोर की सिगा मंगिन व अत्राय आत्म निभरता और स्वत व कामवादी का पाठ पढ़ाया । उनका उग्रवाण उह गोला व विरोध म रचता था ।

बंगाल में उग्रवाण जनता द्वारा प्राणपण म विराय किए जाने व वाक्य में अन्वयर, १९ ५ में प्रात को दा मागो म विभाजित कर देन क फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था । बंगाल व दोना मागो म एक तीव्र आन्दोलन उठ सदा हुआ । बहिष्कार और स्वदेशी का नामक अग्रभग विरोधी आन्दोलन व ही जात थे । विपिनचन्द्र पाल अग्रविष्य धीय और अद्विनीकुमार दत्त बंगाली उग्रवाण व प्रमुख नेताओं में स थे । पत्राव केवरी साता सात्रपतराय एक दूयरे महत्कण्ठ उग्रवाणी नेता थे ।

उग्रवाद उम उग्रवाणी नृत्त के प्रति जो ब्रिटिश जाति की पाय निष्ठा म विश्वास करना था और अपनी राजमक्ति का घोषणा करन न शकता था एक महान क्रांति थी । उग्रवाणियों का विश्वास था कि व विगुण वधानिक उपाय के ही शरा भागन के राबनीतिक सत्य को प्राप्त कर सका है । उग्रवाणी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध मन्त्रि विराय का समयन करने थे और के स्वतन्त्रता के मन्त्र व वाक्य थे । उग्रवाणियों द्वारा प्रारम्भ किए गए बहिष्कार और स्वदेशी व आन्दोलनों ने भारत के राष्ट्रीय इतिहास में एक नूतन अध्याय की मृच्छ की । उन्होंने सिद्ध कर दिया कि भारतीय दासता व व यनों में बंधे रहने व लिए सपार नहीं है और व भान रात्र नीतिक अधिकाओं व लिए सपान करने की बद्ध परिवर है । उग्र राष्ट्रीयता का द्विदू पुनरुत्थान स अनिष्ट सम्बन्ध था हम बारण उमका स्वरूप बुद्ध-बुद्ध प्रतिप्रियावाणी-ना ही गया था ।

उत्तरवादिओं और उपवादिओं के बड़े हुए मतभेदों की ही कारण १९०७ में गूरत विच्छेद हुआ।

उप राष्ट्रवाद का एक पहलू जर्मन राष्ट्रवाद था। जर्मन राष्ट्रवादियों का शांतिपूर्ण आन्दोलन में विश्वास नहीं था। वे हिंसक कार्यक्रम को अनुयायी थे। यह आन्दोलन सबसे पहले म्बाराष्ट्र में प्रकट हुआ। स्वामीजी वमा और गावरकर ने गुमान्दालका संगठन किया। वमान्दाल में स्वामी विस्तार से प्रयोग करने लगे। यारी-घोष और भूरे स्वामी दत्त हमारे शक्तिशाली नेता थे। स्वामी स्वयं स्वामी राम पंजाल में भी क्रान्तिकारी समिति का स्थापित हुए। भारतीय जर्मन राष्ट्रवादियों ने भारत के बाहर यूरोप और अमेरिका में भी काम किया। भारत के राष्ट्रवादियों का जीवन के क्षण में महात्मा गांधी के अविरोध होने पर जर्मन राष्ट्रवादियों का जीवन और और समाप्त हो गया।

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का प्रवेश

३२ फूट ऊँचा घोर राज्य करो औपनिवेशिक शासन का आधार

यदि भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता की जड़ें तो भारत के अवाञ्छित राजनीतिक जीवन का विप्लव साम्प्रदायिकता भा विद्विग राज की ही प्रसूति था। भारत में विद्विग साम्प्रदायिकता के प्रतिनिधित्व में राष्ट्रीय महामत्सा (इन्डियन नेशनल काँग्रेस) की स्थापना न इस शासन में प्रोत्साहित किया था कि भारतीय जनता में भा भारतीय युवक राज है और जो बालांतर में एक नयकर विस्फोटक शक्ति का स्वरूप धारण कर सकता है। उसे नियंत्रित करना ही एक ही मकदम है और जो नए समय में सभी विषय धरना का ध्यान हीन में रोका जाए। उनका विश्वास था कि ये शासन का प्रयोग एक ठेके मुक्तता में (Safety valve) के रूप में कर देंगे जिससे कि किना शासन में घोर ही यह विस्फोटक में विद्विग शासन की रक्षा हो गई परन्तु नोकरशाही का यह धारणा मान्य सिद्ध न हुई। काँग्रेस ने शीघ्र ही सरकार की बड़ा धाराचक्रा शुद्ध कर दो घोर युद्ध सभी मामलों प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया जो सरकार के लिए बड़ी समुद्रियाजनक था। फलतः विद्विग शासन को मात्रा बलकर प्रकृत हीन नहीं। फलस्वरूप धर नये हुए बात की धारणयोजना का धनमय भीन तथा कि कोई समांतरकीय का जाए जिससे कि राष्ट्रीयता के बगवान् प्रवाह में विद्विग पड़े घोर उभवा भाग प्रवाह में जाए। इन विषयगत उद्वेग को पूर्णतः कि लिए उनमें पूरे हाथों घोर राज्य करा (Divide and Rule) के उभ परम्परागत सिद्धांत का ही धारणय किया जा कि मध्य ही औपनिवेशिक राज्य का आधार रहा है। भारतवर्ष में धरन शासन का जडा की जडाध रघन के लिए धरना ने इन पूरे विद्विग का प्रारम्भ में ही प्रयोग किया था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच विद्विग मत में का विद्विग धरिधारियों ने यथेष्ट स्थान उभगा घोर राष्ट्रीयता के प्रभाव को कम करने के लिए उनका उपयोग किया। कतिपय विद्विग उभका न एका शासन का जार समाहर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतवर्ष में साम्प्रदायिकता के विप्लव का गहरनाय विद्विग शासन का धरना ही मो दायो नहीं है। उभारणाय धरमण्ड का कथन है न तो विद्विग न य... धरन मुक्तता ही घोर न यह उस पूर्णभूत रघन का ही दानवीय धरन करता रहा है। यह कहना भी ठाक नहीं है कि साम्प्रदायिकता के उभमय घोर विद्विग का शासन का भासा धर ही धरना के तर मडा जा सकता है

परन्तु जना प्रवण्य कृपा जाता है कि भारतीय राजनीति के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के उभय धोर विचार का मुख्य उद्देश्य अग्रजो के शासन पर ही आधारित होता है। विशेष गणना परिषद के अग्रज पर मतदाता का ही ध्यान ही तथा विचार साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समस्या है। १) अग्रजो का एक दूसरे के साथ मिलजुब कर नियाम करना तथा कायम शासन के विचारों और मुसलमानों के एक दूसरे के अनुकरा बन और एक दूसरे के प्रति विश्वास की स्वस्थ भावना की सुविधागित तरतियाँ। यद्यपि कभी कभी १९वीं शताब्दी में मत मुसलमानों ही जाता था फिर भी दोनों की जातिवादी एक दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का एक साम्प्रदायिक सुविधागित तरतियों संपन्न प्राप्त कर ली थी। अग्रजों ने स्वयं का एक शासन का स्वरूप कायम करना कर लिया। अपने समस्त विधायक कोशक के साथ जिसमें कि हमी हान तथा उकी नृत्नीति का शासन में सर्वाधिक शक्तिशाली बर्णन रखा था अग्रज शासन ने अपने आपका विचार और मुसलमानों के मध्य में बना करके एक ऐसे साम्प्रदायिक विभुवन का रचना का निश्चय किया जिसके आधार व स्वयं रहे। २

३३ ब्रिटिश शासन में भारतीय मुसलमानों की अग्रयोगति

ऐंग्लो हिंदू सहयोग का युग—भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना एक देश में मुसलमानों की स्थिति पर एक महान कृशाराधान था। अग्रजों की प्रभुता के पूर्व मुसलमान ही इस देश के मुख्य विधाता थे अपनी वस्तुगौर पूर्ण स्थिति से यह स्थिति ही गयी और तिर तर निघनता और अग्रयोगति के महाएतन में डूबने गए। अपने शासन के प्रारम्भ से ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी मुसलमानों से भय जाती थी और उस आशंका थी कि मुसलमान अपनी अग्रदृष्ट सत्ता को पुनः प्राप्त करने का स्वप्न देखते हैं। फलतः ब्रिटिश शासन का न जय भी हो सका हरसमय अपना स मुसलमानों का दमन करने की चष्टा की और व अपने प्रशासन के सचालनायक हिंदुओं की सहायता और राजमन्त्रि पाने की और अधिकाधिक उद्युक्त हुए। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन का प्रथम युग ऐंग्लो हिंदू सहयोग का युग था। ३ १९वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक अग्रजों ने हिंदुओं के ऊपर अपनी कृपावश का वषण किया और जानबूझ कर मुस्लिम विरोधी नीति अपनाई। नोमन के अनुसार ब्रिटिश अधिकारियों ने यह निश्चय कर लिया था कि अपनी वृत्त शक्ति के विस्तार और विविधता के लिए एकमात्र उपाय यही है कि मुसलमानों का दमन कर दिया जाय और उन्हे जानबूझकर एसी स्थितियों का आश्रय ग्रहण किया जा जिनका उद्देश्य ही यह था कि मुसलमानों में बौद्धिक जडता आ जाये उनका अग्रपतन

१ कूपल— दो इण्डियन प्रॉजेम (१८३३-१९३५) पृ ६५ ।

२ महता और पटवधन— दा कम्पूनल ट्रायगल पृ ५२ ।

३ डी० सेन— रेवाल्पूशन वाई कसेट पृ १६६ ।

के धार्मिक विनाश हो जाय। १ भारतवर्ष में अपने शासनकाल में पहले दौर में ब्रिटिश अधिकारियों ने मुसलमानों का विरोध करने और हिन्दुओं के साथ व्यवहार करने की जो नीति अपनाई या उसका सत्यता पाठ एतन्वय के रूप में सच स भी प्रकट होती है मुसलमानों जति मोतिर रूप से हमारे विरुद्ध है और इसलिए हमारी सब्धी नीति हिन्दुओं का प्रसन्न करने की है। २

भारतीय मुसलमानों का धार्मिक विनाश—हिन्दुओं को शपथ प्रस्तुत और मुसलमानों का दमन करने की ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति ने अपना मन्वादिन परिणाम प्राप्त किया। इससे मुसलमानों के धार्मिक और ना-वृत्ति-मय पक्ष का पक्ष प्रकट हुआ। १८७१ में सर विनियम हुटर ने लिखा था— धार्मिक दृष्टि से वे (भारतीय मुसलमान) ब्रिटिश शासन में एक खिलौना जानि है। ३ उनका दायीय दावा का उभरने निम्न प्रकार में बख्त किया है— १७५५ वष पूर्व अठारह शतक में उत्पन्न मुसलमान या गरीब होना असम्भव था जब उभरना शम्भार उन रहना असम्भव है। ४ बंगाल में भूमि के खाई बन्धन ने मुसलमानों के धार्मिक भावों पर धार्मिक प्रभाव डाला। भारतीय दस्नकारियों का शपथ वतन हुआ गया। ब्रिटिश शासन ने मुसलमानों के लिए सरकारी नौकरियों का द्वार बन्द कर दिया। इससे उनको गरीबी में और मा-लीवगति में वृद्धि होने लगी। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पूर्व शासन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर मुसलमान ही धार्मिक थे और मेना में भी उनका हा जा रहा। परन्तु भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की स्थापना ने इस स्थिति को उलट डाला। ऊँचे ऊँचे पक्षों पर तो यूरोपियों का प्रतिष्ठा की गई और छोटे पक्षों पर हिन्दुओं का। सभी धृत्वाओं में मुसलमानों की शपथ हिन्दुओं के ऊपर अधिक अनुग्रह प्रदान किया जाता था। जब कभी कोई जगह जाती होती थी बहुधा यह बात स्पष्ट कर दी जाती थी कि इन जगहों पर कबल हिन्दुओं की ही नियुक्त किया जाएगा। ५ इस सम्बन्ध में मोमन ने स्पष्ट भावों लिए हैं। १८७१ में बंगाल में २२११ गजट पक्ष थे। इनमें से १०३० पर यूरोपियन नियुक्त थे। ७११ पर हिन्दू नियुक्त थे और मुसलमान कबल ५२ पर। ६ यह स्पष्ट है कि अद्यत् इस साम्राज्यवादी उद्यम में हिन्दुओं को बेवत छात्र शास्त्री दारों के रूप में ही प्रयुक्त कर रहे थे उद्योग विख्यात और महत्त्व के समस्त पक्षों से हिन्दुओं का कामो दूर रखा था। बंगाल में आई० सी० एम० के समस्त २६२ पक्षों

१ मोमन—मुस्लिम इन्डिया पृ० २३।

२ आई० सी० एम० द्वारा उद्धृत— शासन बंधनार्थ भाव इन्डिया नेशनलिज्म' पृ० १५५।

३ सर विनियम हुटर— दो इन्डियन मुसलमान' पृ० १५५।

४ सर विनियम हुटर— दो इन्डियन मुसलमान' पृ० १५५।

५ कलकत्ते के सार्वजनिक पत्र (इन्डियन प्रिन्सिपल) ने मुस्लिम के कथित रूप में भारतवर्ष में भेदभाव की इन नीतियों पर आपराध होने का उद्धरण किया था।

६ मोमन द्वारा उद्धृत— मुस्लिम इन्डिया' पृ० २१।

पर केवल यूरोपिया ही नियुक्त थे। वाय विभाग व ४७ उच्च पों पर भी उन्ही ही मुप्रतिष्ठा थी। पर तु मुगलमान बठोर अघाय र भाजा थ। उ० ता म जो कि उनको आदर जीवन वृत्ति रही थी वार् भी अ छी नीकरी न्हा मितनी था। ह्टर न विचा है कोई भी मुगलमान पीज म प्रथन ग्हा कर भवता। कुछ मगलमान गवनर जनरल व बमीगत द्वारा अवश्य पुा तात है पर तु ग्हा ता में समभता हू महागात व कमागत द्वारा एा मा न्हा।^१

अग्रजो गि ता और मुस्लिम अयोति—अग्रजो गि ता पद्धात व मूवगत ने मुगलमाना व अघिय और अम्वृतिर अय पतन लो और भा तोय कर रिया। महता और पटवघन व मठ म मुपनमाना व साय मयस अघिव अघाय गि ता व मामले म चिया गया।^२ १८ ३ म अरबी और फारसी व म्यान पर अघता अघनना भापा हो गर्। एस परिवहन व मुगलमानो ता वट्टन ता पट्टेया। नण र्कना और वाविजा म भी परम्परागत मारताय शिक्षा प्रणाती वा सय प्रकार की सहाय र ग वाचन कर दिया गया। भारतवर्ष म ज्ञानान काख से यह रिवाज चरग घाना था कि यहा क राजा शिक्षा और देश सेवा व लिए वुद्ध भूमि अन्तु तन म अवश्य े त्त थ। मि० जम्न घाष्ट एक लगान पन्नाधिकारी क अनुसार जब अग्रजा न रगाल का नामन मून मग्हाला प्रा त वा चरुर्थाग गक्षणिक उद्देशो व विण मदिरो और मस्जिदो क अघिकार मे था।^३ यह भूमि जा मदिरा और मस्जिदा न अघिकार म रहनी थी उसन जा अघ होता वह शिक्षा क बागो मे भगता था अघ मरि रो और मस्जिदा को मिला मम्पूण भूमि को अग्रजो न अघन आधान कर लिया। फतत य पुराना शि तण सस्याएँ अघिक वृष्टि से अघाहिज हा गइ। मकतबो और पाठशालाओ को भूम रत्न रख कर मार डानने का एमस अघिक प्रभाववाय अघ कोई उपाय नही हो सकता था। दानशाल मुगलमान पहन जो दान परम्परागत स्लामो शि ता क प्रधारण चिया करते थे अग्रजा न उ ह यह पाठ पन्नाया कि ये उनका नूतन निमिन स्कूना और वाविजो क सधारण व लिए दें। ब्रिटिन अघिकारियो व इस आचरण मे भी भारतीय मुगलमाना को कुचल डानने का उद्दय शिवाशाल था। एत प्रकार क

१ ह्टर—दी इन्डियन मुगलमा व पृ १५६।

२ महता और पटवघन— दी कम्प्युनल ट्रायगल पृ ८७।

३ महता और पटवघन— दी कम्प्युनल ट्रायगल पृ० ५२।

एकत्रित दान द्वारा हा हुगली कालिज प्रारम्भ हुआ ।^१ स्पष्ट है कि इस कालिज से जिसका सि सस्थापन और सधारण उस काय से होता था जो कि मुसलमानों के हित का दृष्टि से दान में लिया गया था मुसलमान बहुत ही कम लाभ उठाते थे । यद्यपि कि १८७२ में जो उम कालिज में मुसलमान विद्यार्थी बसल तीन ही थे जबकि उससे पहले मात्र कुल छात्रों का संख्या तीन सौ थी ।^२ नूतन शिक्षा ने जिन संयोगों की मूर्ति की था मुसलमान उनसे लाभ उठाने की बहुत कम उत्सुकता प्रदर्शित करते थे । इसका कारण कुछ तो उनकी पुण्य शिक्षा थी और कुछ श्रिष्टि भागकों के प्रति राय का भावना । एक विवरण कि नूतन शिक्षा के प्रति मुसलमानों का दृष्टि ही था । यही कारण है जिनमें मा धीरे-धीरे समय के साथ मुसलमानों की अपेक्षा कि नूतन शिक्षा का प्रचार । वास्तव में मुसलमान १५२ और १८६८ के बीच में २४० देगा यकीनो को बतलाता है कि वास्तव में प्रचलित किया गया । इनमें मुसलमान बहुत ही कम ही थे ।^३ यही सब कारणों ने ही शिक्षा में राजनीतिक चेतना का विकास मुसलमानों की अपेक्षा की अपेक्षा प्रगति में ही गया । मसलम प्रिंटिंग शाखा में मुसलमानों की प्रगति कर ही तोयत के ही ने लिया जाति ही उसारी की वृद्धि और मुसलमानों के लिए प्रचार माग बढ़ कर इन का उत्तरदायी था । मसलम उनको मर्तों बहुत ही परिमित ही बना यही के क्षेत्र में उन्हें पग और प्रगति कर दिया था ।^४

इस प्रकार मुसलमानों का प्रभुत्व दमन किया गया उमर के श्रिष्टि भागकों के प्रति पार धम राय का भावना से धारणा कि नूतन शिक्षा । १८५७ का विद्रोह ही इस दम तोय कर प्रवृत्तिकरण का ही पर न उठने पूरा बहाया ही गयन के रूप में ही वह व्यवस्था हुआ ।

१ टिप्पणी—हुगली ट्रस्ट की स्थापना हाथी मा १८५८ माधिका और उनकी बहुत ही विनाश घनगति में हुई था । यो निर्धारित किया गया था कि ट्रस्ट की आय शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रयुक्त का जाय । १८५७ में ट्रस्ट का नियंत्रण सरकार ने अपने हाथों में ले लिया और ट्रस्ट की आय में हुगली कालिज का सधारण किया । १८५७०० का मन्विन काय मन्विन निर्धारित मन्विन किया गया । ५००० पीठ की वापिस आय का मन्विन के सधारणार्थ प्रयुक्त किया जान उगा । यन्विन मन्विन ही जान के परवत्त मन्विन शिक्षा के एक छात्र मन्विन के लिए बँधन ३१० पीठ ही प्रवृत्ति कर न के । मनु काण्ड मन्विन और परवत्तन के साथ उठत किया गया है ।

दो सम्बन्धित दायगत पृ ८३ ८८ ।

२ पृ० १०० जाउन—सम्बन्धित पृ० ८८ ।

३ मेहता और परवत्तन—सम्बन्धित दायगत पृ० ४५ ।

४ मानन—मृत्तिसम्बन्धित पृ० १६ २३ ।

नियुक्त हुये थे। ब्रिटिश शासन के प्रति उनके हृदय में प्रशंसा का भाव था। सर सत्यद ग्रहम^१ का राजमन्त्र बनकर वह परन्तु अपने सावधानी जीवन के प्रारम्भिक भाग में ब्रिटिश राष्ट्रवादी भी था। बिरोह के परवान् उठोने ईनाद्यों और मुसलमानों के बीच धार्मिक सामीप्य लाने के लिये धनधन परिश्रम किया। उन्होंने अपने सह-धर्मियों को ब्रिटिश शासन के प्रति राज मन्त्रित का दृष्टिकोण अपनाते और धर्म प्रामाण्य का सरक्षण तथा अनुग्रह प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया। इन उद्देश्यों की निष्ठा के लिये उन्होंने अलीगढ़ छात्रोत्थान प्रारम्भ किया और मोहम्मदैन एंग्लो ओरियण्टल कॉलेज की स्थापना की। परन्तु यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि सर सत्यद ग्रहम^२ का अपनी दृष्टि में उन राज मन्त्रित को रखते थे जो ब्रिटिश शासन की धार अधीनता से नहीं अपितु अष्ट शासन के लक्ष्यों की निष्पट प्रशंसा से उत्पन्न होती है।^३ वे नौरशाही नीतियों की कठोर आलोचना करने से नहीं डरते थे और भारतीयों के प्रति ब्रिटिश अधिकारियों के दुर्व्यवहार की कठोर रूप से मत्सना करते थे। एक बार उन्होंने घोषणा की इन अधिकारियों का मत यह है कि कोई भी भारतीय सत्जन नहीं हो सकता।^४ वे विधान मण्डलों में भारतीयों के प्रवेश का प्रदिपान करते थे और जनता से कहते थे कि वह मय को त्याग दे और पुरुषोचित रूप से स्पष्टता और सत्यतापूर्वक धर्मो से कह दे कि उनकी क्या कठिनाइयाँ हैं।^५ सर सत्यद ग्रहम^६ का हिन्दू मुस्लिम एकता के भी समर्थक थे और इन दोनों जातियों को भारत माता की दो भ्रातृ बतते थे।^७ इसी प्रकार के विचार उन्होंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका समा में व्यक्त किये और अपने एक भाषण में यहाँ तक कहा कि हिन्दू धर्म में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाविष्ट हैं।^८ इसका कारण उन्होंने यह^९ बताया कि दोनों ही हिन्दुस्तान के निवासी हैं। २७ जनवरी १८८४ को गुणदासपुर

१ जी० एन० सिंह—लण्डनमास इन इण्डियन कास्टीट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेंट पृ० १९९।

२ मेहता और पटवर्धन—'द कम्प्युल ट्रायल इन इण्डिया' पृ० २३।

३ मेहता और पटवर्धन—वही पृष्ठ २३।

४ राष्ट्र शब्द में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को सम्मिलित करता है क्योंकि इनका केवल यही वह धर्मिण्य है जिसे मैं ग्रहण कर सकता हूँ। मैं इस बात को विचारने योग्य नहीं समझता कि उसका धार्मिक विश्वास क्या है क्योंकि हम इसमें ऐसी कोई भी नहीं देखते। हम देखते हैं वह यह है कि हम एक ही देश के निवासी हैं हम एक ही शासन के आज्ञा हैं साम के स्रोत सबके लिए एक से हैं और अन्धकार की पीड़ाओं को भी हम सब समान रूप से भोगते हैं। यही के विभिन्न कारण हैं जिनके आधार पर मैं इन दोनों ही जातियों को जो हिन्दुस्तान में निवास करती हैं, हिन्दू शब्द से धर्मिण्य करता हूँ यह कहने का धर्मिण्य यह है कि वे हिन्दुस्तान के निवासी हैं।^{१०} मेहता और पटवर्धन द्वारा उद्धृत।

में गिये गये एक सावत्रनिक मापण में उन्होंने कहा था 'हम (हिंदुओं और मुसलमानों को) एक मन एक प्राण हो जाना चाहिए और मिर दूर कर काय करना चाहिए । यदि हम संयुक्त हैं तो एक दूसरे को सम्मान सकते हैं । यदि नहीं तो एक का दूसरे के विरुद्ध प्रभाव दोनों का ही भ्रष्ट पतन और विनाश कर देगा ।'

जब कांग्रेस की स्थापना हुई और भारत की राष्ट्रीयता ने एक मत रूप धारण किया तब सर सत्यदत्त प्रहमद साँ के विचारों में अस्मान् ही घोर परिवर्तन हो गया । वह कांग्रेस में पृथक ही नहीं रहे अपितु उन्होंने सुनमन्वुल्ला उमका विरोध किया । उन्होंने इस बात की भी चप्टा की कि मुसलमान इस राष्ट्रीय आन्दोलन को सहायता देने में कतई हाथ लायें । निःसन्देह यह एक महान परिवर्तन था । यह कसे हुआ ? भारतीय राजनीति के मयस्त विद्याद्वियों के सम्मुख यह एक जटिल समस्या रही है । परंतु अब इस समस्या का समाधान हो गया है । सर सत्यदत्त प्रहमद साँ के इस आन्दोलन के पीछे ब्रिटिश नौकरणादी का हाथ क्रियाशाल था । जिस व्यक्ति ने सर सत्यदत्त प्रहमद साँ को राष्ट्रीय आन्दोलन में विमुख करके उन्हें एक पृथक्तावादी आन्दोलन का अधकूत बना दिया वे एम० ए० ए० सी० कालिज के सवपथम प्रिन्सिपल मि० जे० थ० ।

१८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई । यद्यपि कायेम का वायमराय लाड डफरिन का अनुमोदन प्राप्त हो गया था और उसकी मर्गि भी बहुत नरम थी फिर भी ब्रिटिश सरकार और उसके पिठठमों को उनमें विरोध की चेष्टाएँ धार अमन्तोप की काना फूमियाँ और निश्चित रूप से नहीं चुनोतियाँ दिखाई पसती थी । जिस बात से उन्हें सबसे अधिक परेगानी हुई वह मर्गि का अधिकार पत्र महा अपितु वह सगठित सामुदायिक स्थान था, जिसकी प्रतीक कांग्रेस थी ।^१

भाष्योप राष्ट्रीयता के प्रति मार (Counter weight) के रूप में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का सगठन—ब्रिटिश साम्राज्यवादी की कांग्रेस अपने लिए एक सम्भावित यतरा जान पसती थी । प्रति तोलन (Counter Poise) के सिद्धान्त पर धारण करते हुए उत्साही पदाधिकारियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति मार (Counter weight) के रूप में मुस्लिम-साम्प्रदायिकता का सगठन करना प्रारम्भ कर लिया ।

'पूट बातो और राग्य करो' के इस धेन में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हें सर सत्यदत्त प्रहमद साँ के से प्रभाव और प्रतिष्ठा वाले अनुष्य के सहयोग को प्राप्त करने में अग्रुव सफलता प्राप्त हुई । उन्होंने सर सत्यदत्त प्रहमद साँ को यह विरशास लिता दिया कि 'अधकों और मुसलमानों का गठन-पन मुसलमानों का दशा को उलट करने में सहायक होगा और उनका राष्ट्रवादिओं से मिलना उन्हें पुनः धम और अधु में डुबा देगा । फलतः उनके (सर सत्यदत्त प्रहमद साँ के) अनुसनाय प्रभाव का उपयोग मुसलमानों का विरुद्ध रूप से उत्तरी भारत में कांग्रेस से विमुक्त रखने में किया

१ जी० एन० सिंह—सै० इन इ० का० एड ने० ड०" पृष्ठ २०० ।

२ जी० जे०—'रेवेन्सुबन बाई काप्सेट' पृ० १९१-७० ।

गया। 'ब्रिटिश अधिकाधिकारियों' सर सत्यम प्रहम' गी के जो ग' क' कर गा' गने कि वांग्रम ता एव'ि दू' ग' है' यह बात बि'कु'न ग'त थी। उता ध'न उ'ग्या और अती' और न अ'नी र'चा' र'ी विचार से वांग्रम ग'त'ि' ग'ग्या क' रूप म' वि'सित' ६'। वांग्रम क' प्रथम अधिव'ग' म'ल' ही म'ग'मा' प्र'तिनि'ि' सम्मि'न' हू'य' थ'। पु'न' द'ग'े अधिव'ग'न' म'कु'न' प्र'तिनि'धिया' की स'ग्या ४४ थी' गिन'में ३ म'स'ल'मान' थ'। १८६० म' कु'न' प्र'तिनि'धियों'का स'ग्या ७०२ थी' गिन'म' १५ म'स'ल'मान' थ'। वांग्रम क' गृनीय अधिव'ग'न' क' स'मा'प'ति' ए'क' म'ग'त'मान' ब'द'र'हा'त'प'ब' गी' थ'। उ'सी' व'प' म'र' श्री' हू'मा'य' जा'ह'र' वांग्रम' को ५००' र' क' द'ान' रिया'।^१ उ'स' प'र' भी' सर' स'य्य' न' अ'प'न' म'स'ल'मान' सा'पि'यो' को' च'ता'व'नी' दी' कि' वांग्रम' ने' म'र'त'व'प' म' ब्रिटिश' ब'ढ'ति' क' प्र'तिनि'ध्या'त्म'क' शासन' की' मा'ग' की' हैं' उ'म'म' म'स'ल'मानों' को' बि'र'कु'न' स'ह'या'ग' न'ही' द'ना' चा'ह'िये'। म'र'त'व'प' म' प्र'तिनि'ध्या'त्म'क' शासन' का' अ'भि'प्रा'य' है' ब'म्ब'न' का' शासन' और' ब'म्ब'न' के' शासन' का' अ'भि'प्रा'य' है' सि'न्धु'का' शासन'। सर' स'य्य' अ'प'न' गी' का' त'ज' प'ा' कि' चू'नि' हि'न्'दा' का' अधि'र'तर' भा'ग' म' ब'हू'म' है' अ'त' व'ही' म'स'ल' ग'ता'र'ह' र'ग' और' म'स'ल'मा'नों' का' उ'न'की' आ'धी'न'ता' स'ह'ना' प'ड'गी'। मौ'लाना' सि'य'नी' क' अ'नु'मा'र' प्र'वृ'ति' उ'ह' (सर' स'य्य' का') स'म्पू'र्ण' म'र'त'व'प' का' न'ता' द'ना'ना' चा'ह'ती' थी' प'र'तु' उ'न'की' परि'स्थि'तिया' और' बा'ता'वर'ण' न' उ'ह' म'ग'ल'मा'नों' को' रा'ष्ट्रीय' आ'ी'न'न' म' आ'ग' ग'ने' से' पी'तु' खी'च'न' का' सा'धा'न' ब'ना' रिया'। उ'स' अ'व' ए'क' स'ला' र'स्य' है' कि' इ'म' प्र'कार' की' परि'स्थि'तिया' और' बा'ता'वर'ण' के' नि'र्मा'ण' म' जि'ने' कि' ए'क' रा'ष्ट्र'ग'ानी' का' प'ष'क'ता'वा'ी' ब'ना' रिया' सि० ब'क' का' ब'हू'त' व'। ह'थ' प'ा'। यह' भी' अ'व' स'ह'स'ती'त' है' कि' सि० ब'क' ने' जो' बु'द्ध' भी' यह' वा'य' किया' उ'म'म' गि'टि'ग' अधिका'रि'या' का' उ'त्क' री'श' प'र' ब'र'द' ह'स्त' र'ता'। ए'क' अ'व' क' ला'ग' भा' जि'ने' कि' म'र'त'व'प' म' ब्रिटिश' साम्रा'ज्य' क' नि'र्मा'ण' म' र'नि' थी' उ'न'क' ए'क' वा'य' स' अ'न'मि'त' न'ही' थ'। १८६२' मे' जब'कि' सि० ब'क' की' मृत्यु' हुई' ए'र' जान' स्ट्र'ची' ने' त'त्'न' टा'इ'म' म' उ'त्क' नि'म्न'गि'तित' प्र'दा'ज'ति' म'ेंट' की' थी' ए'क' ए'मे' अ'ग्र'ज' का' जो' ए'क' ए'स' सु'दूर' देश' म' साम्रा'ज्य' नि'र्मा'ण' के' वा'य' म' अ'स्त' था' दे'हा'व'सान' हो' गया' है'। उ'म'न' व'त' ए' प'र' उ'ट' र' कर' ए'क' स'निक' की' मृत्यु' पाई' है'। म'स'ल'मान' स'श'या'तु' भोग' हा'ते'। उ'हो'ने' शुरु' म' सि० ब'क' को' ब्रिटिश' भ'दिया' स'म'भ'कर' उ'न'का' वि'रोध' किया' प'र'तु' उ'न'की' (सि० ब'क' की') नि'ष्क'प'ट'ता' और' नि'स्वा'प'ता' ने' उ'ह' म'स'ल'मा'नों' का' विश्वास' प्रा'प्त' कर'ने' म' स'फ'ल'ता' प्रा'प्त' की'।^५

१ म'र'ता' और' प'ट'व'धन— दी' ब'म्बु' ट्रा' इन' इ'ण्डिया' प' २३।

२ ए'न' आ'क'डो' को' कृ'प'न'ण्ड' व'त— दी' इ'ण्डियन' प्रो' वे'म (१८ ३-३५) प' ३३ से' उ'द्ध'त' किया' गया' है'।

३ मे'ह'ता' और' प'ट'व'धन—व'ही' प' ४।

४ मे'ह'ता' और' प'ट'व'धन' द्वा'रा' उ'द्ध'त—व'ही' प' २४।

५ जी' ए'न' सि'ह' द्वा'रा' उ'द्ध'त—पृ' २ १-२०२।

मुसलमान रक्षा-परिषद—मि० बेक के निरपट और निस्वार्थ प्रयत्नों का फल १८८७ में स्पष्ट हुआ जबकि सर मग्यद पहमद खाने सुल्तान खुला कांग्रेस की आलोचना की। १८८६ में जब भारतवर्ष में प्रतिनिध्यात्मक शासन की स्थापना के उद्देश्य से ब्रिटिश पार्लियामेंट में चार्ल्स ब्रेडला का बिल उपस्थित हुआ उसने विरोध में मि० बेक ने मुसलमानों का संगठन किया। उन्होंने इस आधार पर कि भारतवर्ष में प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त का मूलपात अनुपपुक्त है, क्योंकि भारतवर्ष एक राष्ट्र नहीं मुसलमानों की ओर से बिल का विरोध करते हुए एक स्मृति-धन उभार किया। १८९३ में मुसलमान ऐंग्लो ओरिएण्टल रक्षा परिषद (Moham-dan Anglo-oriental Defence Association) की स्थापना में भी मि० बेक का बहुत बड़ा हाथ था। मि० बेक स्वयं इस सस्था के सेक्रेटरी बने। इस सस्था का उद्देश्य मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना था परन्तु यह तो केवल दितावा मात्र था। वस्तुतः इस सस्था का वास्तविक उद्देश्य मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से रोकना था। इस कथन की पुष्टि मि० बेक के एक निबन्ध से भी होती है जो किसी मद्राज पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने लिखा था— कांग्रेस का उद्देश्य यह है कि देश का राजनीतिक प्रभुत्व मद्राजों के हाथों से हिन्दुओं के हाथों में आ जाये। मुसलमान इन माँगों से कोई सहानुभूति नहीं रख सकते। मुसलमानों और मद्राजों के लिए यह बाधनीय है कि वे इन आन्दोलन कर्त्तियों से सजने और देश की आवश्यकताओं व परम्पराओं का अनुपपुक्त लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का स्थापना का रोकने के उद्देश्य से परस्पर समुक्त हो जाए इसलिये हम शासन के प्रति राज मन्त्रि और ऐंग्लो-मुस्लिम सहयोग का समर्थन करते हैं।^१

बगाल का विभाजन—इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटिश शासकों की नीति में धानूष परिवर्तन ही हो गया। वहाँ तो उनका बरदहस्त हिन्दुओं के शीर्ष पर था और मुसलमान उनकी दृष्टि में राजद्रोही थे और वहाँ अब उन्होंने अपना बरदहस्त मुसलमानों के शीर्ष पर रखा और हिन्दू उनकी दृष्टि में राजद्रोही हो गये। बगाल का विभाजन “देववासियों के विरुद्ध देववासियों के सम-वत” (Counter Poise of natives against natives) के कार्यक्रम में एक दूसरा कदम था। इसमें तो कोई शक नहीं कि कर्जन ने शासन सम्बन्धी सुविधाओं के आधार पर बगाल विभाजन का औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा की, परन्तु सत्य तो यह है कि बगाल विभाजन के मूल में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विभाजन की सारी खोदकर राष्ट्रीयता की प्रवाह मान धारा को धरदर करने की नीति काम कर रही थी।

मुस्लिम रिप्रेजेंटेशन और पृथक निर्वाचन (Separate Electorate) की माँग—१९०६ के दण्ड में उपवासियों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। अब वे इस बात

१ मेहता और बटवर्धन दो कम्युनिज द्वारा १९०६ ई. में लिखा, पृ० १८-२।

२ मेहता और बटवर्धन वही पृ० १९०।

का प्राणोत्पन्न करने लगे थे कि ब्रिटिश शासन का शोषणप्रतिरोध घटने ही जाना चाहिये। उनकी गति को प्रयत्न करते थे कि सरकार का यत्न धारण्य प्रयोग होने लगा कि उन पर राष्ट्रवादियों को वैधानिक गुणों को एक और तरफ विचार दी जाय और एक प्रकार उन्हें सन्तुष्ट रखा जाय। अक्टूबर १९०६ में प्राणागरी के नेतृत्व में, मुसलमानों का एक शिल्पमण्डल तत्काल गवर्नर जनरल काट मिश्र की सेवा में उपस्थित हुआ। शिल्पमण्डल ने मुसलमानों को भारतीय शासन में जनसंख्या के अनुपातानुसार उही वस्तु उनकी धार्मिक महत्ता और साम्राज्य की रक्षा में उनकी सेवाओं के आधार पर स्थान देने का आग्रह किया और इस बात पर जोर दिया कि उन्हें स्वयं अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन का अधिकार देना चाहिये। शिल्पमण्डल ने इस बात का भी आग्रह किया कि दंग की नीरवस्था में मसजिदों का अधिक प्रतिनिधित्व होना चाहिये वायसरॉय की नीरवस्था में हिन्दुस्तान में मसजिदों की नियुक्ति के समय उनकी हितों की रक्षा तथा एक मुस्लिम विरवविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए। शिल्पमण्डल ने यह विश्वास जताया कि सरकार मुसलमानों के हितों की वृद्धि करके उनकी राजमन्त्रियों को और भी अधिक दृष्ट बनाने लगे। एक शिल्पमण्डल का वायसरॉय की सभा में उपस्थित होने का अभिप्राय था कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मद की खाइ निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। पर तु उनके लिए भी भारत ब्रिटिश नीकर शक्ति और उन पक्षतावादी तत्वा के विरुद्ध ही खड़ी है जो कि उनके हाथों में सिलोने बनकर खत। १९२२ में मौजाना मोहम्मद प्रजा के टोक हा बना था कि यह शिल्पमण्डल सरकारा आदेशानुसार निर्मित हुआ था। इस सारी वायवाली का प्रवचन मि० आर्चिबाल्ड ने जो कि मि० ब्रुक के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे और जिनके कर्णों पर मि० ब्रुक के अधूरे काय को पूरा करने का उत्तरदायित्व था पना था किया था। मि० आर्चिबाल्ड और वायसरॉय के प्रोड्रिक्ट सेप्टरी बनने इनकेप स्मिथ ने आपस में सारा लिखा पनी कर रली थी। शिल्पमण्डल के सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रवचन की जो बातें थी, उन सबको इन व्यक्तियों ने आपस में अच्छी तरह से सत्य कर रखा था। उन दोनों ने यह भा निश्चित कर लिया था कि शिल्पमण्डल को वायसरॉय से क्या कहना है। यह भा वेना स्वाभाविक है कि वायसरॉय भी इन सारी व्यवहारिया स अनर्भिन नहीं थे। १ अगस्त १९०६ के अपने पत्र में मि० आर्चिबाल्ड ने नवाब मोरशिनू-मु की सारा हिताने दे दी थी। १ इनके अनुसार ही शिल्पमण्डल वायसरॉय का सेवा में उपस्थित हुआ। वायसरॉय का प्रत्युत्तर पूणत सहानुभूतिमय था। २ उन्होंने तुरन्त ही उनकी माँगों को स्वीकार कर लिया। अपने उत्तर में उन्होंने बनपूर्वक इस बात का समाश्रयण दिया कि मुसलमानों के राजनीतिक हितों की अवश्यमेव रक्षा की जाएगी। उन्होंने गुण्मार की भाग को पूणत स्वीकार किया और कहा— आपका यह दावा न्याययुक्त है कि आपकी स्थिति का मूल्यांकन आपकी सक्ष्य शक्ति के आधार पर नहीं

१: कूपलण्ड— दी इण्डियन प्रान्सेम १८३३-१९३५ पृ० ३५।

२ टिप्पणी— अपने पत्र में मि० आर्चिबाल्ड ने लिखा— हिज एक्सेलसी दी

अपित् प्रायरी जाति का राजनीति मन्त्रा और उम्मेदवा क आधार पर जा उभन
माघ्राय क प्रति की है, हाता चात्रि । में घ्रापन पूर्ति सहमत ह १ नाड मिल्पा
न य न कहा नि हूँ प्राप । मानि एन वात का सूण विशवाग है कि भारतयप
म चलाई गई को नी निवाचन प्रगानी उपवात्पर धमकनता को प्राप्त हागी यि
वह एत महाप्राय की जनसाया द विभिन्न दों क विशवाता और परम्पराया का
अपत्तता करके जनता को ए-विनगत निर्वाचनाविचार प्रदान करती । ३

मिण्टो साइप्रदायिकु निर्वाचन के वास्तुस्थि जमनाता थे—भारत मत्री लाड
माने के साथ निय गप अपने पत्र-द्वयवहार म दापमराय न इस वात पर बारम्बार
जोर दिया था कि मुगलमाना का सनुष्ट करन का एकमात्र उसाय पृथक निर्वाचन हा
है । माले उभारमानी इन्डिबोर्ण क यकित थ । साम्प्रदायिक निर्वाचना के सम्बन्ध म
लाड मिल्पो की नाति म व सनुष्ट रही थ । उनका विचार था कि एम नीति से

दापमराय क प्राइवट सभारा बनन इननप स्मिय ने मुक तिला है कि हिा एक्सेलसी
मुहितम गिष्ट मान म में करन क निर प्रस्तुत है । उनका राय है कि नीमान को
एक घोषचारित्क पत्र निर त्ना चात्रिय जिसम कि उनस उनका मेमा म उपस्थित हान
की प्राणा मागी जाए । एम विषय म में कतिपय मुन्नाय उपस्थित करना चाह्या ।

घोषचारित्क पत्र का मुत्तनमानों क कतिपय प्रतिनिधिया क इम्नादारों मन्ति भेजा जाना
चाहिए । इन्ड मन्त्र म मना प्रातो क प्रतिनिधि हाड चात्रि । हागरी विचारणीय
वात प्रतिवन्त का विषय है । में यहाँ यह मुभाव दना चाह्या कि प्रतिवन्त क प्रारम्भ
म राजमन्त्रि का गभीर समासागत जाना चाह्या है । रजमान ता गिया मे एर

एम् दान क सरकारा विषय की प्रन्ता हाती चाहिए परन्तु अपना इस घ्रागरा
का इन्क कर त्ना चाहिए कि यलि निर्वाचन क मिण्डात का सूचना कर दिया जाता
है ता व मन्त्रिम घ्राप मन क ढिनों म वापर तिड हागा । अरदात विनयपूर्वक यह

मुभाव हाता चाहिए कि मुस्लिम मोहमद का जानन क निर पम क घ्रापार पर
गोनपन (Nomination) या प्रतिनिधित्व का सूचना हाता वांछनाय है । हूँ यह
मी कह त्ना चाहिए कि भारत का देग म जमभारा क मना का गादी बजन दना
घ्रापना है परन्तु हा एर इन्डिबोर्णों म में पृष्ठभूमि म ही र; इस वात का घ्राप

मन्त्र ध्यान रखें । म घ्रापना धार क घ्रापने घ्रापयत है । में घ्रापने गिष्ट प्रतिवन्त का
घ्रापय त्ना कर मरगा; या उनका गोपन कर सकता हूँ । यलि यह धक्कद में
धवार किया जाता है ता उी में पूरा दान भरना हूँ । यह ता घ्राप जानने हा है कि
एन धीमों का टीक-डीन माया में कतनयदकर इन का मुभ जान है । हमार पाप

करना चाहते हैं ता हूँ प्रतिवन्त काय करना चाहिए ।
१ मेरगा और पटवपन — ५५० कम्पुनन ट्रापणन इन इटिया पृ० ६२ ।
२ वा० एन० गिहू — अन्तमाधत इण्डियन कान्टाटपून्त एण्ड नानक
गवसतमाट" पृ० २०८ ।

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वमनस्य की वृद्धि होगी। अतिगत रूप से ये ऐसे मिले जुले निर्वाचनों के पक्ष में थे जिससे कि मुसलमानों को भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाये परन्तु इसके साथ ही साथ साम्प्रदायिक विद्वेष भी नहीं बढ़े परन्तु यह भारत का दुर्भाग्य था कि उन्होंने साइ मिण्टो की योजना को स्वीकार ही कर लिया वे अपनी बात पर घबड़े नहीं। ६ सितम्बर १९०६ के अपने पत्र में साइ मॉर्ले ने साम्प्रदायिक निर्वाचन और उनके कुपरिणामों के लिए साइ मिण्टो का ही उत्तरदायी ठहराया था। उन्होंने लिखा था मुसलमानों के भगडे में मैं पुनः आपका अनुसरण नहीं करूँगा। मैं आपको एक बार फिर सिर्फ इतना याद दिलाए देता हूँ कि उनका (मुसलमानों के) प्रतिरिक्त दावों के बारे में आपका ही एक प्रारम्भिक भाषण था जिसने कि उन्हें हमक लिए साक्षात्कृत कर दिया। मुझे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि मेरा ही लिए सब प्रयत्न था। अपनी इस आशातीत सफलता पर मोरारशाही ने जो खोसकर खशियाँ मनाई। साम्प्रदायिक निर्वाचन का बीजबपन ब्रिटिश अधिकारियों की दृष्टि में एक बहुत बड़ी विजय थी। १ मिण्टो को अपनी योजना की सायकता पर प्रपूर्व हृय हुआ था। जिस दिन मुस्लिम शिष्टमण्डल उनमें मिला था उसे उन्होंने भारतीय इतिहास का एक युग विधायक दिन कह कर सम्बोधित किया था। यद्यपि बा० म लाड मार्ले ने पृथक् निर्वाचनों की योजना को बहुत कुछ मुक्तिमूलक करने की चेष्टा की थी परन्तु अब यह बात अच्छी तरह से ज्ञात है कि इस योजना के जन्मदाता साइ मिण्टो ही थे।

एक सहानुभूतिपूर्ण वायसराय से प्रोत्साहन पाने पर मुस्लिम शिष्टमण्डल के नेताओं ने ३ दिसम्बर १९०६ को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की (भारतीय मुसलमानों के प्रथम साम्प्रदायिक राजनीतिक संगठन की) स्थापना की। इस संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार लिखित थे।

(१) भारतीय मुसलमानों में अग्रजी सरकार के प्रति राजमन्त्रित बढ़ाना।

(२) भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना, और उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को नम्र भाषा में सरकार के ध्याने रखना और

(३) यथासम्भव (१) और (२) के अतिरिक्त उल्लिखित उद्देश्य से बिना सभ्य के मुसलमानों तथा अन्य भारतीय जातियों में मन्त्री स्थापित करना।

१ टिप्पणी—वायसराय के उच्च पदाधिकारी ने उनकी इस सम्बन्ध में जो सन्देश भेजा था उसमें समस्त रहस्य स्पष्ट करते हुए उसने लिखा था— मेरे लिये श्रीमान् की सेवा में एक पवित्र लिखकर भेजना अतीव आवश्यक है कि आज एक बहुत बड़ी घटना घटित हो गई है। राजनीतिज्ञता का एक ऐसा काय हो गया है जो कि भारत और भारतीय इतिहास को कई वर्षों तक प्रभावित करता रहेगा। ५ करोड़ २० लाख अल्पसंख्यकों को राजद्रोही विरोध में सम्मिलित होने से थोड़े ही घबराया गया है। सेबी मिण्टो की दायरी पृ० ४७-४८।

१६०६ के साले मिण्टो सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन लागू हुए—साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर मुस्लिम लीग का ध्यान अमकाल से ही बहुत हटपमों का दर्पिकाण रहा है। पृथक निर्वाचनों और नीतियों में ज्यादा हिम्स के लिए १६०८ में माग की गई थी १६०६ में उसको दुहराया गया। ताब मां ईन मार्गों के विरुद्ध यह उद्देश्य धन्युल करने के लिए मिण्ट मण्डल ग्यरपड भज गए। ताब मिण्टा की सनिय सहायता के द्वारा एम उद्देश्य म भा सक्ताता प्राप्त हो गई। राष्ट्रवादी नेताओं ने इस नीति का धोर विरोध किया। रमज मकदालत के धनुवार कुछ दूरदर्शी मुसलमान भी इस बात का धनुमव कर रहे थे कि यह कदम गलत दिशा की ओर उठाया गया है। उनमें से बहुतों ने इस यात्रना की कट्टा धालोचना का धोर कहा कि उनका कुछ नला मिनिम धधिकारियों के हाथों म कठपुतली की तरह नाक रहे हैं। परंतु यह सारा विरोध निरथक साबित हुआ। भारत का राष्ट्रीय एवता को भंग करने पर तुल हुए ब्रिटिश अधिकाारी एम से मस नहीं हुए। उन्होंने १६०६ के इण्डियन कॉन्सिल एक्ट (माले मि टो-सुधार) में पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर भारतीय राजनीति के शार में साम्प्रदायिक विष का इ-जवगन सगा दिया।

३५ साम्प्रदायिकता के उद्भव का सामाजिक धार्मिक पहलू

प्रारम्भ से ही ब्रिटिश शासकों ने भारतीय समाज के एक बग को दूसरे बग से सटाया और इस प्रकार से धन्य हित को सुरमित रमा। पहले-पहल उन्होंने मुसलमानों के सामाजी और ध्यावर्थाविक बगों की स्थिति को पतना-मुक्ती करने के लिए हिन्दू पुरी-पतियों और बुद्धिजीवियों को धन्ये काय-मायन में प्रयोग किया। इसका बाद जब उन्होंने देखा कि धीधोगिक पू-जीवितियों की उत्पति हो रही है, तो उमे रोहन के लिए माम भी हितों को बीच में सा लका किया। जब राष्ट्रवादी कश्चित्तों ने अधिकाधिक बल पकटना प्रारम्भ किया तब ब्रिटिश शासकों ने मुस्लिम पृथकता की नीति को जन्म दिया। एकर के बाद सरकार की मुस्लिम विरोधी और हिन्दू परस्ती की नीति बिस पर वह १८७० तक चलती रही 'बग धाधार' पर मेना का पुनगठन बगाल का विभाजन और साम्प्रदायिक निर्वाचनों की स्वीकृति धालि रूप 'पू-शाली और राज्य करो' की ही नीति के साथ-के। इन सार कायों के करने में शासकों का उद्देश्य यही था कि ब्रिटिश साम्राज्य पर किसी प्रकार की धाब न धान पाए वह निरन्तर सुरमित बना रहे। सशोक मेहता और धन्वुत पटवधन के शरों में 'पृथकतावादी प्रवृत्तियों को उद्योगपूर्वक उत्पन्न किया गया और ब्रिटिश राज की सुरता को समावस्त करने के लिए कु-सहायक प्रयुक्त किया गया।' भारतवर्ष में जहाँ भन्माव ध, ब्रिटिश शासकों ने वहाँ उन्हें शीर किया और जहाँ ये-माव नहीं ध, वहाँ उन्हें उत्पन्न किया। भारतीय और सांस्कृतिक सन्तरेण की प्रतिधिया भारतवर्ष में शताभियों से चल रहा की धधकों ने उसमें काधा पट्टेवाई। धधकों ने भारतवर्ष के एक बग को

दूगरे धम के सितारण एक विरागी को दूगरी विरागी व विराग और एत जाति को दूगरी जाति व विराग दिया जाँ मान्य म सहाया और उगमे नाम उगाकर ब्रिटिश शासन को लड़ो को मजदूर किया। उदात्त साम्राज्य विरोधी एक समुदाय राष्ट्रीय मोर्चे व निर्माण का रास्ते व लिए आगलौ घरायशा द्द दुषा मुगलमानों तथा सूर्यया घरायशों व बीच धम की प्राणिरें गणा कर ग। १

इस प्रकार भारतीय राजनीति व क्षम म साम्राज्यविरोध व विप-यात्र बावत उतरतायित्त मुख्य रूप म घप्रजा ग हा सिर उठना है। परन्तु इनका कर्तव्य से ही भारतीय राजनीति को सम-जतिन समस्या का समाधान न। हा जाता। साम्प्रदायिकता बचन एत राष्टीतिक सभ्यता ही नही है म एत सामाजिक सभ्यता भी है। घप्रजा को एक समुक्त राष्टीय भवना व विकास को घवरद्ध करने व घपन प्रदरतो म भारत व सामाजिक प्राविष जीवन व वनिरय ततो स मा सभ्यता मितो।

हिं-प्रों और मुसलमानों के विद्वांस में भेदभाव—य एत सत्य है कि ब्रिटिश शासना तमन प्रशासन व्यवसाय वाणिज्य और उद्योग व क्षत्र म हिन्दू मुगलमानो स घाग बढ गये थे। यद्यपि यह हूमा दोना जातियों का अपनी अपनी नीति व ही कारण को- विमो व निकट दोषो नहा या—परन्तु घप्रजा न इस चीज म नाम उठाकर मुसलमानों को राष्टीय आ-वेन म सम्मिलित हान स रोने का चष्टा की। सर सय्यद अहमद खाँ न धून नौररशाही व मोहक सगीत को मुता और य विश्रान कर लिया कि मुस्लिम जाति का हित काग्रस के साथ मिलकर विष्णी साम्राज्य को उन्नाड फेंकन म नही प्रविनु ब्रिटिश सरकार की कृपा और प्राप्न करन में है। साम्प्रदाय की भावना न मुसलमानो को ब्रिटिश सरकार नारा भीस म डाने गए रा। व टुनडो को लेने की और प्ररिन किया। सर सय्यद अहमद खाँ ने अपने प्रमुयायिया स कहा— सेना म हम ऊच पर मिलें सरकार हमारो त्त माँग की और अरय घ्यान देगी। आवश्यकता सिफ इस बात की है कि हम एसा कोई काय न कर जिससे कि सरकार को हमारा राज भक्ति से क्लिष्ट प्रकार का भी स-देह हो। २

१ टिप्पणी—प्रतिभार की ब्रिटिश नीति व ऊपर ए भार० देसाई ने लिखा है गदर व बाद राजाघो और जमींदारो ने प्रतिभार व रूप मे काम किया। लाड लिटिन ब्रिटिश राज को भारतीय कुनीनवग लो सहायता क ऊपर आधारित करना चाहते थे। लाड डफरिन ने जन विप्लव की बढ़ती हुई शक्तियों का रोक्ने क लिए उदार बुद्धिजीवी बग का जो भारतवष मे त्रिजमित हो रहा था प्रयाग करना चाहा और उस काग्रस को स्थापना करने म सहायता दी। तथापि उ ह शीघ्र ही मनमव हूमा कि काग्रस राजशोही होतोजा रही है। मिष्णो न बन्प हुए मुस्लिम यावसायिक बगो म उग्रराष्ट्रवादिया क विरुद्ध नितम क मुसुपत ि द्द यावसायिक बग और काग्रस के मध्यवग समाविष्ट ये प्रति भार प्राप्त किया— सौजन बकपाउण्ड आफ इण्डिया नशनलि-म पृ० ३६।

२ हिन्दुस्तान रिब्यू जनवरी १९०६ पृ ५३।

उद्य राणीयता और हिन्दू विचारधारा पर दल—१६ वीं शताब्दी के अन्त में काश्मीर के अन्तर्गत जिम उग्रवादी पक्ष ने बहुत अधिक जोर पकड़ा वह मा हिन्दू और मुसलमानों के बीच की भद्रभाव की खाड़ी का चौका करने में सहायक सिद्ध हुआ। निलक पात्र अरविन्द प्राय और लाजपतराय प्रादि उग्रवादी नेता केवल प्रसार दशमकत ही न थे वे कट्टर हिन्दू भी थे। जयानन्द और विवेकानन्द की शिक्षाओं का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था हिन्दू सम्कृति और हिन्दू धर्म के गौरव का बरतान करते उनकी वाणी न बदती था। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म रामा के ऊपर हम प्रचार में बड़ा पैना मुसलमानों के लिए रचिकर नहीं था। यहाँ कारण है कि वे राष्ट्रीय आंदोलन को बहुत कुछ शका की दृष्टि से दखन लगे। उन्होंने माचा कि ब्रिटिश शासन की नष्ट कर देने का अभिप्राय हिन्दुओं के शासन का स्थापना करना है। यह सत्य है कि उग्रवादीयों का कोई सकारण साम्प्रदायिक लक्ष्य नहीं था परन्तु ब्रिटिश नीतियों की राष्ट्रीय आन्दोलन का मिथ्या राति से बलान करने में क्या परिणाम हा सकती थी जब कि एका करन से उनका अपना स्वायत्त सिद्ध होता है? उन्होंने मुसलमानों के सब का भरे। उन्होंने कहा रामा आन्दोलन का उद्देश्य हिन्दुओं की सर्वोच्चता का प्रतिष्ठापना करना है। कुछ तो मुसलमानों को स्वतः ही शका की धमकी के पान भरते न रही स। कमा की भा पूरा कर दिया। इन्हीं कारणों से उग्रवादीयों के स्वार्थी और बहिष्कार आन्दोलनों ने भी मुसलमानों के बीच बहुत ही कम उत्साह जागृत किया। हिन्दू उद्योगपतियों ने ही उनसे अधिकतर प्राथिक लाभ उठाया। अन्त में अग्रजों ने जिनके कि प्राथिक हितों को स्वदेशी से सीपा लागत उत्पन्न हो गया था मुसलमानों को अपना धार फाटने में कुछ उठा न गया। उन्होंने मुसलमानों को बहुराया कि ऐसी मुदिसम हित परस्पर एक रूप है और हमारे वे राष्ट्रीयों के विरुद्ध हैं।

सारांश

मद्रास माधी के दलों में भारतवर्ष की साम्प्रदायिक समस्या ब्रिटिश-शासन की सामाजिक है। अग्रजों ने प्रारम्भ से ही देववाणियों के विरुद्ध दशवासियों के सम-सम की नीति पर धारण किया। भारतवर्ष में अपने शासन के प्रथम चरण में उन्होंने उच्चवर्गीय हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त किया और मुसलमानों का दखन किया। उस समय वे मुसलमानों का सम्बन्ध की दृष्टि से दखल थे उन्हें धारण की कि मुसलमान अपने तोए हुए मुसल साम्राज्य को पुनर्स्थापित करने का स्वतः दंगत है। अन्त में अग्रजों और अन्त से मुसलमानों को बहिष्कार रखा गया सामाजिक दृष्टि से नष्ट प्राय कर दिया गया। विद्रोह के तुल्य बाँटा अग्रजों की मुदिसम विरोधी नीति धार की स्पष्ट निर्णय देन सगे की।

१८७० के पक्ष में अग्रजों के दृष्टिकोण में बाबूद परिवर्तन निर्णय देने सगा। भारतीय राष्ट्रीयता के उदभव न साम्प्रदायिकता को का विवका कर दिया कि वे

मुसलमानों का प्रतिभार के रूप में प्रयोग करें। एम० ए० घो० कॉलिज के प्रथम प्रिन्सिपल मि० बेक ने इस काय में प्रमुग भाग लिया। सर सय्यद अहमद साँ को राष्ट्रीयता के पक्ष से विमुक्त कर ब्रिटिश साम्राज्यवाणियों का मुसोपजीवी बना देने में मि० बेक का महत्वपूर्ण हाथ था। उनके धनवरत प्रयत्नों के फलस्वरूप सर सय्यद अहमद साँ ने कांग्रेस व विरोध करने का धीर धपने प्रभाव का प्रयोग कर मुस्लिम समाज को उससे दूर रखने का काय धपने जिम्मे ले लिया। १८६३ में उन्होंने मुस्लिम रक्षा परिषद् की स्थापना की। मि० बेक भी इसके एक मात्रो थे।

बंगाल का विभाजन मुस्लिम पृथक्तावाद को दृढ करने की दिशा में जानबूझ कर उठाया गया एक क़दम था। मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने की उद्दी के द्वारा माँग कराने के लिए वायसराय के निजी मंत्री जनरल डनलप रिमथ ने स्वयं अलीगढ़ कॉलिज व तत्कालीन प्रिन्सिपल आर्चबोर्ड को मुसलमानों का एक निष्ठा मन्त्र वायसराय के पास भेजने को लिखा। तदनुसार आगा साँ की अध्यक्षता में भारत के विभिन्न प्रान्तों से आए ३५ मुसलमानों का एक निष्ठा मन्त्र अक्टूबर १९०६ में वायसराय से मिला और उसने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की बड़ी माँग की जिसको कि वायसराय साह मिण्टो ने सह्य स्वीकार कर लिया। तत्कालीन भारत मंत्री साह माले इस नीति के विरुद्ध थे वे सयुक्त निर्वाचनों और कुल रक्षित स्थानों के पक्ष में थे परन्तु साह मिण्टो ने उह धपनी बात पर राजी कर लिया। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग (स्थापित १९०६) ने पृथक्तावादी माँग को चालू रखा और कांग्रेस व कई दूरदर्शी मुसलमानों के विरोध के बावजूद भी १९०९ के माले मिण्टो सुधारों के अंतगत साम्प्रदायिक निर्वाचनों को भारत के ऊपर लागू कर दिया गया।

इस प्रकार साम्प्रदायिकता के उद्भव के लिए मुख्यतः धपजों की ही फूट बालो और शासन करो की नीति उत्तरदायी थी तथापि यह भी स्मरण है कि धपजों को इस नीति में जो सफलता प्राप्त हुई उसका बहुत कुछ कारण ब्रिटिश शासन के अंतगत दोनों जातियों के धपजों और मुसलमानों का विषम विकास भी है। इससे मुसलमानों के हृदय में आत्म रक्षा की भावना जागृत हुई। ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों की इस भावना का लाभ उठाकर उन्हें राष्ट्रवाद के विरुद्ध सा लड़ा कर दिया। इसके अलावा कांग्रेस में जिस उग्र राष्ट्रीयता का विकास हुआ और जिसके नेता तिलक विपिनचंद्र पाल और नाजपतराय थे वह भी राष्ट्रीय आंदोलन से मुसलमानों को विमुक्त करने में सहायक हुआ। उक्त उग्रवादी नेता बहुर हिंदू व और हिंदू धम तथा हिंदू सभ्यति के गौरव का बखान करते न पकते थे। मुसलमानों ने समझा कि राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य हिंदू राज्य को स्थापना करना है। धपजों ने उनके खूब कान भरे और उन्हें बहकाया कि ऐंग्लो मुस्लिम हित परस्पर एकरूप हैं और इसलिये वे राष्ट्रवादियों के विरुद्ध हैं। इसलिये धपजों की कुटिल नीति के कारण भारत का सारा राजनैतिक वायुमंडल दूषित हो गया और १९४७ ई० में देश का बटवारा करने पर भी न सुधरा।

अध्याय ९ मार्ले-मिण्टो-सुधार

३६ सुधारों का उद्देश्य

(क) भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति का सामना करने की चेष्टा— १८६२ के इण्डियन कॉन्सिल एक्ट के पास होने के पश्चात् भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति में बहुत परिवर्तन हुआ था। १८६१ के एक्ट के अन्तर्गत जिन व्यवस्थापिका समारोहों का निर्माण हुआ और १८६२ के एक्ट के अन्तर्गत जिन्हें बढ़ा दिया गया था उनमें उदार राष्ट्रवादी भी संतुष्ट नहीं थे। १८६२ के पश्चात् भारतवर्ष की राष्ट्रीय परिस्थिति में भी प्रचण्ड रूप धारण कर लिया था। जनसाधारण के ऊपर उपवासियों का प्रभाव दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता जाता था। वे सब इस बात को सुल्लभ सुला कहने लगे थे कि ब्रिटिश शासन भारतवर्ष के लिए एक श्रेष्ठतम अभिशाप है जितनी शीघ्र इसका अन्त हो जाए उतना ही भारतवर्ष की जनता के लिए हितकर है। धातकवादी धारा भी फल रही थी। ये सब चीजें भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के लिए भयकर खतरों की संकेत थीं। इनकी अवहेलना नहीं जा सकती थी। लार्ड मिण्टो जो लार्ड कर्जन के पश्चात् भारतवर्ष के वायसराय नियुक्त हुए थे भारतीय राजनीतिक मनोवृत्ति के इस परिवर्तन से अनभिज्ञ न थे। १९०६ के मार्ले-मिण्टो-सुधार भारतवर्ष की इस परिवर्तित राजनीतिक परिस्थिति का सामना करने के लिए ब्रिटिश ब्रूटनीतिज्ञों की एक प्रभावशाली चेष्टा थी। इन सुधारों के द्वारा लार्ड मिण्टो उच्च राष्ट्रवादीयों को दबाना नरम राष्ट्रवादीयों को उनमें विरुद्ध प्रतिनार के रूप में प्रयुक्त करना चाहते थे।

(ख) बड़ती हुई राष्ट्रीय एकरता पर कुठाराघात—भारतवर्ष की राष्ट्रीय शक्तियों को दुबल करने के लिए बड़ती हुई राष्ट्रीय एकरता पर भी कुठाराघात करने का निश्चय किया गया। भारत-सरकार के उत्कामीन श्रद्धमन्त्री सर हेराल्ड स्ट्रुमट के हस्ताक्षरों सहित प्रकाशित प्रथम-सुधार-योजना ब्रिटिश दरारों को स्पष्ट रूप से सूचित करती थी। यह स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि जिससे भारतीयों के प्रभाव के विरुद्ध एक प्रति-वजन (Counter-poise) को प्राप्त किया हो जाना चाहिए, तथाकथित प्रतिद्वन्द्वियों की परिपक्वता में के प्रति लक्ष्य से जाए गए वगैरे साम्राज्यवादी प्रतिनिधित्व में शोका गया।^१ मन्त्रालय सरकार ने जो योजना सामने रखी वह इसमें भी धार्ये बढ़ गई। उससे न केवल जातियों के ही लिए, अपितु विरादरियों और व्यवसायों के लिए भी पृथक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव किया। लार्ड मिण्टो स्वयं भी

१ सी० आई० सिंघाणाण—'इण्डियन पार्लियामेंट सिंस १९०६ की स्मृति' पृ० २४।

बांधा व विरुद्ध एक उन्नत प्रतिभार (Count r weight) की गन्ता में थ । अपने २८ मई १९६६ व पत्र में उ ।। ताह मा रें को लिगा या बांधग व उद्देश्य व विरुद्ध एक प्रतिभार व विषय म रें कुछ समय ग व का माच में रना ह । मरा विचार है कि एक राज परिषद घण्टा एक त्रिा वीमित में त्रिगमन कयन रे ती नरेग ही घणितु कुछ और वडे साग भी सम्मिति ह। व त्रिगनी कयन मान नर म एक बार एक सप्ताह या प र त्रिन व निग त्रिा म हमा कर हम म समस्या का समाधान पा गदो ह । १ तथात राज परिषद व विचार न उम समय मूतक धारण नहीं किया पन्तु जमा कि हम विद्या अध्याय म दग पुन है ताह दिना बांधग व उद्देश्य व विरुद्ध एमने (राज परिषद म) व । अधिक सतिनशाली प्रतिभार का निर्माण करने म सफल हुए । यह थी मुम्तिम साम्प्रदायिकता । १९०६६ सुधारों न इस विषयीज के सवडनाथ पृथक निवाचनों और प्रतिनिधित्व म सुधार व र्ना म अधो-स्थापी लागू दो । सक्षम न सुधारा स त्रिा ग स र्कार व दा उद्देश्य गिद्ध हुए । एक और तो क्दान उदारवाणिया स मन कर उग्रान्तियों को दवा की चष्टा का । दूसरी और इान मुम्तिम पृथकतावा को र्द कर भारतवष म त्रिटिग साम्राय की रक्षा का समुचित प्रवय कर दिया ।

३७ १९०६ के एक्ट के मुख्य उपबन्ध

१९०६ का इण्डियन कौंसिल एक्ट जो कि कतिपय क्षेत्रों की सम्मति में भारतीय प्रशासन के इतिहास में एक सीमा चिह्न था २ १८६२ के एक्ट से अवश्य कुछ भाग बना हुआ था । इस एक्ट के अधीन कौंसिलो व सभ्यो की सख्या वृद्धि की गई प्रशासन के अधिकार का बढ़ाया गया और सभ्यो का बजट के ऊपर प्रस्ताव उपस्थित करने की अनुमति मिल गई । प्रांता म सरकारा सभ्यो का बहुमत स्थापित किया गया । ३ नीच न बातों पर कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डाला जाता है ।

१ विधान मण्डल का विस्तार (क) प्रतिरिक्त सदस्यों की सख्या में वृद्धि— नए एक के अनुमार विधान मण्डलो म और अधिक विस्तार किया गया । गवर्नर जनरल का व्यवस्थापिका सभा म प्रतिरिक्त सभ्यो की सख्या १६ से बढ़ाकर ६० कर दी गई । बम्बई (पूर्वी) बंगाल और पू पा का व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की सख्या अधिक स अधिक ५ और बमा व पजाब की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यो की सख्या अधिक से अधिक ३ रकी गई । प्रत्येक विधान मण्डल तीन प्रकार

१ सही मिण्टो— इण्डिया मिण्टो एण्ड माले पृ० २८ २६ ।

२ एम धार० पान रे— इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन पृ ३३ ।

३ सी० वाई० विल्नामणि— इण्डियन पार्लिटिवम सिस दी म्पुटिनी

कायल व विरुद्ध एक उतसूत्र प्रतिभार (Counter weight) की जलाग में था। अपने २८ मई १९०६ के पत्र में उन्होंने उहा ताड मा रें का विगाया कायल व उतसूत्र का विरुद्ध एक प्रतिभार व विषय में कुछ मभय न व का माध में रहा है। मरा विचार है कि एक रात परिषद का एक दिन कोमिन म विगमन करन में नरग हो घवितु कुछ और वड़े साग को मम्मिन न। व विगवो बठक मान नर म एन वार एन सप्ताह का ५ दिन क निग लिने म हुप्रा र ० म न म मस्या का समाधान पा सका है। तथापि रात परिषद विचार न उग मभय मूतका कारण नहीं किया परन्तु। मा कि हम विद्या यध्याय म दय पुन है ताड मिग। कायल व उतसूत्र का विरुद्ध इसी (राज परिषद में) का घवित घमिनशाओ प्रतिभार का निर्माण करने म सकत हुए। यह जो मुस्लिम साम्राज्यिका। १९०६ के सुधारो न इस विषयीज व सवदनाव पृथक निवाचनों और प्रतिनिधित्व म सुनार व रूप म धाँछी खासी कराक नी। सधानत न सुधारो त विटिण सरकार क दो उद्देश्य मिड हुए। एक धार ता कान उतारवाणिया स भन करके उतारवाणिया का दशा की चटा का। दूसरी धार इहान मुस्लिम पृथकतावा का उठ करन भारतवप म विटिण साम्राज्य की रक्षा का समुचित प्रबंध कर दिया।

३७ १९०६ के एक्ट व मुख्य उपबन्ध

१९०६ का इण्डियन कॉमिन्स एक्ट जो कि कतिपय नेतवों की सम्मति में भारतीय प्रशासन के इतिहास में एक सीमा चिह्न था १९०६ के एक्ट स प्रवश्य कुछ भाग बढ़ा हुआ था। इस एक्ट के प्राचीन कोसलो क स स्यो की सख्या वृद्धि की गई प्रशासन के अधिकार को बढ़ाया गया और सस्यो का बजटो के ऊपर प्रस्ताव उपस्थित करने की अनुमति मिल गई। प्राता म सर सरकार सदस्यो का बहुमत स्थापित किया गया।^१ नीच न बातो पर कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डाला जाता है।

१ विधान मण्डल का विस्तार (क) अतिरिक्त सदस्यों की सख्या में वृद्धि— नए एक्ट के अनुसार विधान मण्डल में और अधिक विस्तार किया गया। गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका सभा में अतिरिक्त सस्यो की सख्या १६ से बढ़ाकर ६० कर दी गई। बम्बई (पूर्वी) बंगाल और सू० पा० की व्यवस्थापिका सभाओ के सदस्यो की सख्या अधिक-से अधिक ५ और बर्मा व पंजाब की व्यवस्थापिका सभाओ के सदस्यो की सख्या अधिक-से अधिक ३ रखी गई। प्रत्येक विधान मण्डल तीन प्रकार

१ खड़ी मिण्टो— इण्डिया मिण्टो एक्ट मान पृ० २८ २९।

२ एम० धार पान— इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन पृ ३३।

३ सी० वाई विन्नामणि— इण्डियन पालिटिकल सिस्टम दी म्युटिनी

इस प्रकार के प्रस्ताव को उपस्थित करना के अधिकार का होना न होना बराबर ही था। यदि ये प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा में पास हो जाते तब भी उनका लागू किया जाना अवश्यम्भावी न था। उन्हें कबल सिफारिश ही समझा जा सकता था। इसके अभाव में यदि अल्पसंख्यक समझना कि अमुक प्रस्ताव आवश्यक नहीं है तो वह उसे रोक सकता था।

(ग) प्रश्न और पूरक प्रश्न—१८९२ के एक्ट में प्रश्न करने का अधिकार स्वीकार कर लिया था। माले मिण्टो-सुधारों ने व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को पूरक प्रश्न करने का और अधिकार देकर उक्त अधिकार में वृद्धि कर दी। यदि किसी सदस्य को अपने मौलिक प्रश्न का उत्तर से संतोष न होता तो वह पूरक प्रश्न उत्तर के स्पष्टीकरण की मांग कर सकता था तथापि सम्बद्ध कायकारणी परिषद को इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। अध्यक्ष को भी यह अधिकार था कि वह प्रश्नों को रोक दे।

कायकारणी परिषदों में भारतीयों की नियुक्ति—१९०६ के इण्डियन कौंसिल एक्ट के अनुसार भारतवासी सबसे पहली बार इण्डिया कौंसिल और गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य नियुक्त किए जाने लगे। भारतवर्ष में लोकशाही ने इस सुधार का घोर विरोध किया। परन्तु लाड मिण्टो ने इस सुधार को दो कारणों से स्वीकार कर लिया। एक कारण तो सुधार के अस्वीकृत किए जाने पर भारतवर्ष में तीव्र आंदोलन का सूत्रपात हो जाने का भय था। दूसरा कारण यह था कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने इसे अवसम्मति से पास किया था। इसके दबाव के कारण भी लाड मिण्टो ने इस सुधार को स्वीकार कर लेना ही उचित समझा। फलतः ए० पी० सिन्हा को (बाद में लाड सिन्हा) गवर्नर जनरल की कायकारणी-परिषद का विधिसभ्य नियुक्त किया गया। दो वर्ष पूर्व अगस्त १९०७ में दो भारतीयों को भारत मंत्री की कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया जा चुका था।

३८ माले मिण्टो सुधारों के दोष

व्यवस्थापिका सभा कायकारणी पर नियंत्रण स्थापित करने में असमर्थ थी—कुछ लोगों की धारणा थी कि १९०६ के सुधारों के द्वारा भारतवर्ष को महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार दिए गए हैं। कांग्रेस के नरम नेताओं का भी प्रारम्भ में यही विचार था। शुरू शुरू में तो उन्होंने इन सुधारों का स्वागत किया परन्तु कुछ ही दिनों बाद उन्हें भी इन सुधारों के खोखलेपन का पान हो गया। माले मिण्टो सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए भारत सरकार ने जिन नियमों उपनियमों की सृष्टि की वे

१ इनमें से एक हिन्दू (के० जी० गुप्त) और दूसरे मुसलमान (सय्यद हुसैन बिनशामी) थे।

मुघारों के भाषारमृत सिद्धान्तों के इतने विद्वद् थे कि उन्होंने मुघारों का सफल होना कठिन कर लिया। भारतीय नेताओं ने इन नियमों और उपनियमों को ही प्रस्तावना की। मुझे इनायत बनने में न घोरणा की कि मुघारों को कामरूप में परिणत करने के लिए निर्मित नियमों और उपनियमों ने तो व्यावहारिक रूप में मुघार योजना का सफल प्रयत्न ही कर डाला है। उनका प्रयत्न था—भारत नौकरगाही न अपना गतिमर उन अधिकारों का प्रतिहार करके अपना बन्ना लिया है जो हमें मुघारों से मिल है।^१ लेकिन कवल नियम और उपनियम ही दोषी न थे। मुघारों में स्वयं भी कई बड़े दोष थे। वस तो इस एका न, कतिपय घणों में भारतवासियों को भी प्रासन काय में भाग दिया परन्तु उससे दश के राशुवाणी तरवों को बिल्कुल छतोप नहीं हुआ। इस एका ने व्यवस्थापिका समामों में विस्तार ता कर दिया परन्तु उनकी घसली प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं किया वह वमी की वमी बनी रहा। उन्हें घमी सम नहीं धवितु दरवार ही समझा था।^२ वे कार्यकारिणी को कवन सलाह ही-मनाह न सकती थी यह आवश्यक नहीं था कि कार्यकारिणी उनकी सलाह को मान ही स। कार्यकारिणी की नीतियों पर उनका किसी प्रकार का प्रभुत्व न था। वे कार्यकारिणी सलाह के हाथों में विनोना थीं उससे कार्य और गति पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था।^३ चूकि उनके अधिकार बहुत सीमित थे अतः वे अनुसूचीरणी कार्यकारिणी के किसी कार्य में रोकथाम नहीं डाल सकती थी। वे प्रत्येक प्रयत्न में परन्तु कार्य कारिणी को उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। इससे अनायास अल्पकाल इस अधिकार में कमी कर सकता था। यदि वह उचित समझता तो प्रश्नों को रोक सकता था। व्यवस्थापिका समाने प्रस्ताव पाम कर सकती थी परन्तु उनका लागू किया जाना बिल्कुल आवश्यक नहीं था। सरकार यदि चाहती तो उन्हें ताक में रग सकती थी। व्यवस्थापिका समाने बजट पर वाद विवाद कर सकती थी परन्तु केंद्रीय सरकारों या प्रांतीय सरकारों को एका रूप की भी प्रायः या व्यव उत्तरक नियंत्रण में नहीं था।^४

गर सरकारी बहुमत प्रभाव रूप था—सरकार को कानून पास करने के लिए व्यवस्थापिका समाने अनुमादन की आवश्यकता होती थी परन्तु इस प्रकार का अनुमान प्राप्त करने में सरकार को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़ता था सरकारी और धनीनीत गर सरकारी सन्धियों में किसी प्रकार की पूर नहीं हो सकती थी। वे हमेशा सरकार का साथ देते थे अतएव कार्यरूप में व्यवस्थापिका समामों में गर सरकारी सदस्यों का उत्तम प्रभाव न हो सका जिसकी कि नरम नेताओं को धारा

१ एनो कीर्सेट— हाउ इन्डिया राईट फोर फोडम'—पृ० ४६५।

२ कृष्णमण्ड—'दी इन्डियन प्रान्सेय १८३३-१९३५' पृ० २३।

३ पाल्मरे—'इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' पृ० ३३-३४।

४ पाल्मरे—'इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' पृ० ३५।

थी। इस विषय में सन १९१० में स्वर्गीय गोकर्ण ने भारतीय धर्मस्थायिता समाज में सम्मुक्त करने विचारों का एक प्रकार प्रकट किया था— मार्च १९०६ हम लोग इस बात से अनभिज्ञ परिचित हैं कि जब सरकार किसी विषय में अपना रास्ता निश्चित कर लेती है तो गर सरकारी सम्मेल्य चाह कुछ हा यथा तब वह अपने रास्ते से जरा भी नहीं हटती।

साम्प्रदायिक और विशेष निर्वाचन—माले मिण्टे सरकार का सबसे बड़ा दाव यह था कि उन्होंने साम्प्रदायिक निर्वाचन को रद्द किया। भारत में इस विषय में न भारतीय राजनीति के क्षेत्र में अत्यन्त विनाशकारी काय किया। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में हिन्दुस्तान के मविष्य पर यह एक असर डालने वाला चीज थी। मविष्य में मुसलमान सिर्फ पृथक् मुसलमान निर्वाचन क्षेत्रों से ही खड़े हो सकते थे और चुने जा सकते थे। उनके चारों तरफ एक राजनीतिक दीवार खड़ी कर दी गई और उनका बाकी हिन्दुस्तान से अलगाव कर दिया गया। उस तरह भारत में घल मिन कर एक ही जाति की बड़े प्रश्रिया जो सत्रिया में चल रही थी और जो यथानिक प्रगति से राजिमी तीर पर तज हो रही थी अब उन्नत दी गई। यह दीवार शुरू में छाती से थी क्योंकि निर्वाचन क्षेत्र समुचित या उचित जस जैसे मताधिकार बढ़ना गया यह दावार बनना गई और उसमें सावजनिक और सामाजिक जीवन के मार टांचे पर इस तरह अनर पडा मानों सारे ढांचे में धन लग गया है। इसमें म्युनिसिपल और स्थानाय स्वयंशासन संस्थाओं में जहर फला और आखिर में बहूद जनन ढग का विभाजन हुआ। काफ़ी बड़ा पृथक् मुस्लिम अधिकांशों विद्यार्थी संघों और पाठशालाओं की स्थापना हुए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र मुमनमाना से शुरू हुए और बाद में दूसरे अधिसूचनाओं और दूसरे समुदायों में भी फैल गया। यह तब कि भारतवर्ष का एक भ्रमण हिस्से का एक जमपट्ट बन गया। उनसे हर ढग का अनहूरी की प्रवृत्तियाँ पैदा हुईं और आखिर में भारतवर्ष के ही घटवारे की मीग की गई है। मोधाजी न उचित ही कहा था कि यदि यह अधिनियम पारित नहीं होता तो हम (हिंदू मुस्लिम) स्वयं इन जातिगत मामलों का समाधान कर लेते। भारतवर्ष में ऐसे अधिष्ठित स्वार्थों की कमी नहीं थी जिनको कि ब्रिटिश सरकार ने जान बूझ कर पदा किया और उनकी रक्षा करने एना करने में उसका सत्य अपना स्वाध था। अब पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों का भी भविष्यवाणी स्वाध पदा किया गया जिसका उद्देश्य यह था कि अहिन्दूओं की भावना को बढ़ावा देने और राष्ट्रीय एकता की उन्नति में बाधा पड़े। इसी उद्देश्य को सामने रखकर यूरोपियनों जमींदारों उद्योगपतियों और व्यापारियों आदि विशेष वर्गों के लिए भी पृथक् निर्वाचन स्वीकार किया गया। स्पष्ट है कि इस योजना का वास्तविक उद्देश्य यही था कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विटठनों की शक्ति को बढ़ाया जाय और इस प्रकार राष्ट्रीय तरंगिणी की गति को अवरुद्ध कर दिया जाय।

परिस्थिति का सामना करने की दृष्टि से हुआ था। इन सुधारों को प्राप्त करने में सरकार का उद्देश्य यह था कि कांग्रेस के नरम नेताओं को मुक्त कर लिया जाय और साम्प्रदायिकता की भावना को दृढ़ करके उग्रवादी और धातकवाद की राष्ट्रीय शक्तियों को कुचल दिया जाय। उग्रवादी नेताओं की धारणा थी कि इन सुधारों के द्वारा कौंसिल में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ जायगी। प्रारम्भ में तो इन सुधारों का नरम नेताओं ने महत्व स्वीकृत किया परन्तु कुछ ही काल के उपरान्त यह हथकड़ी विवाद में बन्नी गयी। इस एक्ट ने मुसलमानों, जमींदारों, उद्योगपतियों और व्यापारियों के लिए पृथक निर्वाचनों की सृष्टि की। इस प्रकार सुधारों ने एक हाथ से जो चीज दी दूसरे हाथ से वही ले ली।

नये एक्ट ने व्यवस्थापिका, समाजों के अधिकार और काय दोनों में वृद्धि कर दी। १९६६ के एक्ट ने १८६२ के एक्ट में निहित अप्रत्यक्ष चुनावों का अन्त कर लिया और प्रत्यक्ष चुनावों की परिपाटी को जन्म दिया। प्रांतीय व्यवस्थापिका समाजों में गर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया। १९०६ के एक्ट के अनुसार व्यवस्थापिका समाजों को बजट पर वादा विवाद करने सावजनिक हित के विषयों पर प्रस्ताव उपस्थित करने और पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार मिल गया।

परन्तु ये सुधार प्रगतिशील होने के स्थान पर प्रतिगामी ही अधिक थे। १८६१ में भारतवासियों को शासनकाय में सम्मिलित करने की जिस नीति का सूत्रपात किया गया था १९०६ का एक्ट उस नीति का किंचित विस्तार मात्र ही था और वह ऐसा विस्तार जो कि सरकार का अनिच्छापूर्वक परिस्थितियों की बाध्यता के कारण करना पड़ा था। कांग्रेस के सम्मुख भारतवर्ष में ससदीय प्रणाली की स्थापना करने का उद्देश्य था। इस एक्ट में इस उद्देश्य को और बन्दई ध्यान नहीं रखा गया उसे परों तले डाल दिया गया। इस एक्ट के अनुसार जो नई व्यवस्थापिका समायें बनीं वे भी दरबार ही थीं ससद नहीं। अनुत्तरदायी कार्यकारिणी का उन पर कोई नियंत्रण नहीं था। व्यवस्थापिका समाजों का सरकारी दल सदैव सरकार का साथ देता था। उसमें फूट और मतभेद को कोई स्थान न था। गर सरकारी सदस्यों में एका था। अन्त व्यवस्थापिका समाजों में गर सरकारी सदस्यों का कोई विशेष प्रभाव नहीं था। व्यवस्थापिका समाजों को जो नये अधिकार मिले थे उन पर प्रतिबन्ध इतने अधिक लगा दिए थे कि उन अधिकारों का मिलना न मिलना बराबर ही था। इन सुधारों का सबसे बड़ा दोष यह था कि उन्होंने पृथक व साम्प्रदायिक निर्वाचनों की सृष्टि की जिन्होंने कि भारतवर्ष के सावजनिक जीवन को विघात कर दिया। असहृदगी की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया और अन्त में भारतवर्ष के बटवारे की मांग को जन्म दिया। अन्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि १९०६ के सुधार अपने तारकालिक उद्देश्य (भारतीयों को अनुभूत करने) में असफल रहे।

अध्याय ७

प्रथम महायुद्ध के बीच भारतीय राजनीति

३६ भारतीय राजनीतिक जीवन का शांत स्वर

भारतीय राजनीति का शान्तिवास—मार्ने मिण्टो-मुघारों के उद्घाटन और तिलक तथा एनी बेसेण्ट द्वारा प्रवर्तित होमरूल आन्दोलन के बीच के वर्षों में भारतीय राजनीतिक जीवन का ज्वार उतार पर था। इसका कारण यह नहीं था कि मुघारों ने भारतवर्ष में साकल-शासन का सूत्रपात कर लिया हो और यहाँ के देश-भवतों को सन्तोष हो गया हो। असली बात यह है कि नीकरशाही तो इस समय भी पहुँचे की तरह बलवान थी और इन मुघारों के प्राचीन जिन परिपन्नों का निर्माण हुआ था वे भी वास्तविक बलवों से अधिक महत्व नहीं रखता था। जनता के वे निवाचित प्रतिनिधि, जो कि इन परिपन्नों में पहुँचने से अब भी अपनी असहायता का भावना का निवारण न कर पाते थे वे सरकार की आलाचना कर सकते थे परन्तु उस नियमित नहीं कर सकते थे उनका विरोध निष्पन्न और निवृत्त था। दूषलण्ड का कथन है कि बहुधा सरकारी दवाव कायकारिणी के कार्यों का प्रभावित करता था, परन्तु इस बात को वह भा स्वीकार करता है कि बहुधा का अधिप्राय सत्य नहीं है और प्रभाव का भासन नहीं कहा जा सकता।

राजनीतिक क्षेत्र से उपस्थितियों का निरोहण—इस युग की भारतीय राजनीति में जो निष्पन्नता सी घा गई थी, उसका मुख्य कारण यह है कि मूल विच्छेद (१९०७) के परवानु का प्रसंग की बागडार पुर तपक से नरम दल वालों के हाथ में घा गई थी। तिलक माण्डन में निर्वासित करने का जीवन बिता रहे थे। बंगाल के बहुत से उपवासियों का दण्ड निदान की सजा दे दी गई थी। भारतीयों ने राजनीतिक जीवन से सत्याग्रह प्रहारा कर लिया था और अब वे पाण्डोचेरी में माग भासन कर रहे थे। उपवासियों ने अतुपस्थिति में कोपेन धरने यथानिश्चय के पुराने दरों पर चल पड़ी थी। इस काल में कांग्रेस का नेतृत्व गोपने मेहता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी १० मन्ममाहून भारतीय और ठेक बहादुर सयू जब उभार राष्ट्रवाधियों के हाथों में था। यद्यपि वे मार्ने मिण्टो मुघारों का दुबलताओं से अक्षयत से साम्प्रदायिक निर्वाचनों का उन्नीने सुतकर विरोध किया उन्हें सोरठान और राष्ट्रीयता शानों का दुर्मन बताया था और उन्हें समाप्त कर देने के लिए भारतीय व्यवस्थापिका में एक प्रस्ताव भी उपस्थित किया था। फिर भी वे इन मुघारों की सत्ता की भावना के साथ कारीन्वित कर रहे थे।

साह हाडिंग की सोमनस्य स्थापित करने की नीति—भारतीय राजनीतिक क्षय की इस शांति का दूसरा कारण यह था कि साह मिण्टो के उत्तराधिकारी साह हाडिंग ने जिस नीति को अपनाया वह सोमनस्य स्थापित करने की नीति थी। हाडिंग ने कांग्रेस की मांगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के बहुत भेदों जानता था और इस बात को जानते थे कि यूरोप युद्ध की मार पग बढ़ा रहा है। सडाई में इन सब को कांग्रेस समयन की बहुत आवश्यकता थी। दूरदर्शी हाडिंग ने कांग्रेस के समयन को प्राप्त करने का रास्ता साफ कर दिया।

देहली दरबार (१९११) और यगभग का रद्द होना—उनके शासन-काल में सम्राट् जाज पंचम भारत पचारे और उन्होंने देहली दरबार में घोषित किया कि अब भारत की राजधानी बलरत्ते से हटाकर दिल्ली स्थानान्तरित की जाती है और बंगाल विभाजन को रद्द किया जाता है।^१ इस राष्ट्रीय आघात के निराकरण का अंग्ल ब्रिटिश सम्बन्ध पर बहुत घट्टा प्रभाव पड़ा। इससे उदार राष्ट्रवादी बहुत प्रभावित हुए जोने सम्राट् की मूरि मूरि प्रशंसा की और अपनी राजमन्त्रि की भावना को व्यक्त किया। सम्राट् जाज पंचम का स्वागत बड़े जोरो से हुआ और उन्हें भारत का 'मुक्तिदाता' कहा गया।

इस युग के बीच कांग्रेस का दृष्टिकोण और उसकी मांगें— इस युग के उदार यान्तिया का क्या दृष्टिकोण था अश्विनाचरण मजूमदार के निम्न शब्दों से उस पर समुचित प्रकाश पड़ता है प्रत्येक हृदय ब्रिटिश राजनीतिज्ञता के प्रति पुनश्चागर्हित कृतज्ञता व विश्वास से परिपूर्ण होकर भविष्य और श्रद्धा के समुक्त स्वर में ब्रिटिश सिंहासन के गुणगान कर रहा है। हममें से कुछ लोगों ने ब्रिटिश आघात और सत्यता की अन्तिम विजय में अपनी भाशा बदाभि विसर्जित नहीं की। अपनी परीक्षाओं और बलेशो के तमत्तम से भरे हुए दिनों में भी यह निश्चय यह भाशा यह विश्वास हमारे हृदयों में निरन्तर बना रहा कि ब्रिटिश आघात और सत्यता एक-एक दिन अवश्य ही विजयी होगी। मद्रास कांग्रेस में भी यही भावना दृष्टिगत हुई। गवर्नर ने जब पण्डाल में प्रवेश किया तब सम्पूर्ण समाज खड़े होकर उनका जयघोर किया। समाज की वायवाही रोश दी गई और सुरे द्रनाम बनर्जी ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति कांग्रेस की राजमन्त्रि के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया।

सर्वापि कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की अपर्याप्त मुधार देने की नीति का विरोध बन्द नहीं किया। भारत की राजनीतिक प्रगति के प्रति ब्रिटिश सरकार जिस अपेक्षा कृति से काम ले रही थी कांग्रेस ने उसकी निरन्तर बठोर आलोचना की। कांग्रेस ने स्वामाविक रूप से १९११ के भारत सरकार-पत्रक का स्वागत किया। इस पत्रक में

१ विभाजन की समाप्ति के साथ ही साथ बिहार को बंगाल से पृथक् कर दिया गया।

२ पट्टाभि सीतारामय्या— दी हिस्ट्री आफ कांग्रेस' पृ० १०१।

प्रांतीय क्षेत्र में स्वशासन के शान्तिपूर्ण विस्तार करने की सिफारिश की गई थी। कांग्रेस ने इस सिफारिश का निवचन इस प्रकार किया कि प्रांतीय सरकारों के ऊपर न बल के द्वारा नियंत्रण बम होता चाहिए, वरन् प्रांतीय परिषदों का नियंत्रण बढ़ना चाहिए। स्पष्ट है कि कांग्रेस को इस उल्लेखी शासन की भाषा में सोचना प्रारम्भ कर लिया था। यद्यपि गोलने यह कहने के लिए तयार थे कि उत्तरदायी शासन को प्राप्त करने की मजिल बहुत सम्बन्धी और भारवाही होगी।^१ परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि इस दिशा में पग उठाने के लिए यह उचित समय है। १९१३ में कांग्रेस ने यह मांग की कि भारतीय व्यवस्थापिका परिषदों में सरकारी सदस्यों का भी प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होना चाहिए। उसने इस बात पर बल दिया कि प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषदों का 'कार्यकारिण' शासन के ऊपर प्रभावशाली नियंत्रण होना चाहिए।^२

40 होमरूल आन्दोलन

श्रीमती श्रीमती—१९१४ में भारतीय राजनीतिक जीवन ने पुनः करवट बदली। जब तक भारतीय राजनीतिक जीवन सरकार की 'दमन और सुधार की जड़ों' नीति^३ के कारण जो निरस्त और निष्प्राण पड़ा हुआ था उस पुनः भगडाई देकर उठ बैठा। १९१४ में तिलक अपने कारावास से छुटकारा पाकर स्वदेश वापस आ गए। इस समय उनकी लोकप्रियता का कुछ ठिकाना नहीं था कि भारतीय जन जीवन के हिये हार बने हुए थे। उन्होंने तुरन्त ही नेशनलिस्ट पार्टी का पुनर्गठन करके कांग्रेसियों में नव प्राण फूँटना प्रारम्भ कर दिया।

इसी वर्ष श्रीमती ए.बी.सेण्ट भी भारत के राजनीतिक घाटों में बूट पड़ी और उन्होंने भारतवर्ष के राष्ट्रवादी आन्दोलन में नूतन प्राणधारा का संचार किया। विभागाधिकार आन्दोलन के नेता के रूप में उनका नाम पहले से ही विपन्न विपन्न ही पुरा था। भारतवर्ष के धार्मिक, शैक्षणिक और सामाजिक पुनर्जागरण के लिए जो काम उन्होंने किया उसने कारण उनका नाम देश के पर पर में रोजगार हो गया। वे भारतवर्ष की अपनी मातृभूमि के रूप में मानती थी। भारतवर्ष के राजनीतिक पुनरुत्थान के लिए समय करने के उद्देश्य को सम्पूर्ण स्वरूप में कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। इस प्रकार श्रीमती श्रीमती ने अपने सम्पूर्ण पतु गूनीय कायनम रखा। वे इनके लिए समय उपयुक्त थीं। उनकी प्रतिभा बहुमत्या थी। उनकी विज्ञान भवाह थी और बुद्धि प्रतीक। उनकी इच्छा शक्ति हिमायत की तरह चल और चल थी। उत्तरो से जूझना उनका स्वभाव था और सहन उनका शान्त का गापी था। उनमें

१ रूपलण्ड— दी इण्डियन प्रान्सेस' पृ० ४५।

२ आनिवास शास्त्री— सत्य गवर्नमेंट और इण्डियन प्रान्सेस की प्रिटिंग प्रसंग' उपयुक्त पुस्तक में उद्धृत पृ० ४५।

३ श्री० एन० मिह—पही, पृ० २६३।

साहू हार्डिंग की सौमनस्य स्थापित करने की नीति—भारतीय राजनीतिक दाय की इस नीति का दूसरा कारण यह था कि साहू मिणो के उत्तराधिकारी साहू हार्डिंग ने जिस नीति को अपनाया वह सौमनस्य स्थापित करने की नीति थी। हार्डिंग ने कांग्रेस की मांगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के बहुत अच्छे जाना थे और इस बात का जानते थे कि यूरोप युद्ध की घोर पग बना रहा है। सट्टाई ने इंग्लैंड को कांग्रेस समर्थन की बहुत आवश्यकता थी। दूरदर्शी हार्डिंग ने कांग्रेस के समर्थन को प्राप्त करने का रास्ता साफ कर दिया।

देहली दरबार (१९११) और बंगभंग का रद्द होना—उनके शासन-काल में सम्राट् जाज पंचम भारत प्यारे और उन्होंने देहली दरबार में घोषित किया कि अब भारत की राजधानी बलकत्त से हटाकर दिल्ली स्थानान्तरित की जाती है और बंगाल विभाजन को रद्द किया जाता है।^१ इस राष्ट्रीय आंदोलन के निराकरण का भांगल ब्रिटिश साम्राज्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इससे उदार राष्ट्रवादी वृत्त प्रभावित हुए उन्होंने सम्राट् की भूरि भूरि प्रशंसा की और अपनी राजभक्ति की भावना को व्यक्त किया। सम्राट् जाज पंचम का स्वागत बड़े जोरों से हुआ और उन्हें भारत का 'मुक्तिदाता' कहा गया।

इस युग के बीच कांग्रेस का दृष्टिकोण और उसकी मांगें— इस युग के उदार दार्शनिकों का क्या दृष्टिकोण था अम्बिकाचरण मजूमदार के निम्न शब्दों से उस पर समुचित प्रकाश पड़ता है प्रत्येक हृदय ब्रिटिश राजनीतिज्ञता के प्रति पुनर्जागरित वृत्तज्ञता व विश्वास से परिपूर्ण होकर भक्ति और श्रद्धा के सयुक्त स्वर में ब्रिटिश सिंहासन के गुलगान कर रहा है। हममें से कुछ लोगो ने ब्रिटिश आंदोलन और सत्यता की अन्तिम विजय में अपनी आशा बंदाबि विसर्जित नहीं की। अपनी परीक्षाओं और क्लेशों के तमतीम से भरे हुए दिनों में भी यह निश्चय यह आशा यह विश्वास हमारे हृदयों में निरंतर बना रहा कि ब्रिटिश आंदोलन और सत्यता एक-न एक दिन अवश्य ही विजयी होगी। महात्मा कांग्रेस में भी यही भावना दृष्टिगत हुई। गवर्नर ने जब पण्डित में प्रवेश किया तब सम्पूर्ण समाज खड़े होकर उनका जयकार किया। समाज की वायवाही रोक दी गई और गुरे दनाथ धनगों ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति कांग्रेस की राजभक्ति के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया।

तथापि कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की अपर्याप्त सुधार देने की नीति का विरोध बंद नहीं किया। भारत की राजनीतिक प्रगति के प्रति ब्रिटिश सरकार जिस अपेक्षा धृष्टि से काम ले रही थी कांग्रेस ने उसकी निरन्तर कठोर आलोचना की। कांग्रेस ने स्वामाविक रूप से १९११ के भारत सरकार-पत्रक का स्वागत किया। इस पत्रक में

१ विभाजन की समाप्ति के साथ ही साथ बिहार को बंगाल से पृथक् कर दिया गया।

२ पट्टाभि सीतारामय्या— दो हिस्ट्री आफ् कांग्रेस पृ० १०१।

प्रान्तीय सदन में स्व-गायन के अन्तर्गत विस्तार करने की विचारणा का प्रारम्भ भी। काग्रम न केवल सिफारिश का निवचन केवल प्रकार सिद्ध कि प्रान्तीय सरकारों के ऊपर न बलन के अन्तर्गत नियम प्रणयन का हाना चाहिए, बल्कि प्रान्तीय परिषदों का नियन्त्रण बढ़ाना चाहिए। स्पष्ट है कि काग्रम न केवल उत्तराखण्ड गणराज्य का भाग में आकर प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि गांधी ने यह कहने के लिए तैयार थे कि उत्तराखण्ड गणराज्य का प्राप्त करने की मजिल बहुत उम्मीद थीर नारवाहा हाना।^१ पण्डित ने यह भी कहा कि इस दिना में पर उठान के लिए यह उचित समय है। (१९११) न काग्रम न यह माग का कि भारतीय व्यवस्थापिका परिषद में पर सरकार सभ्यों का और प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषदों में निवाचित सभ्यों का बहुमत हाना चाहिए। उमने इस बात पर बल दिया कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों का "आयकारण" गणराज्य के अन्तर्गत प्रभावशाली नियन्त्रण हाना चाहिए।^२

40 हामरल घादोलन

श्रीमती धीमेष्ट—१९१४ में भारतीय राजनयिक भ्रमण न पुन करवट बन्नी। अब तक भारतीय राजनयिक जीवन सरकार की "अनन्य" और सुरक्षा का जन्म नाति - के कारण का निस्वत और निराण पर हाना था, अब पुन अन्तर्गत लेकर उठ बडा। १९१४ में त्रिपुल अने कागनाम न छुटकारा पाकर स्वतन्त्र कागम था गए। अब समय उनकी नासप्रियता का कुछ सिद्धांत न था व भारतीय जन जीवन के हित हार बन टूट था। उन्ने सुरक्षा की नासप्रियता का पुनगण करके उन्नतिका न नव प्राण कूटना प्रारम्भ कर दिया।

उन्ने वर्ष श्रीमती एनाबीष्ट भी नागद के राजनीतिक भ्रमण में पर परी और उन्ने भारतवर्ष के गणराज्य का भ्रमण में नूतन प्राणप्राप्त का संचार किया। थियामासिजल घादोलन के नता के रूप में उन्ने नाम कागम न था किन्तु विमुक्त का पुता था। भारतवर्ष के धार्मिक अन्तर्गत और सामाजिक पुनर्जागृत्य के लिए जो काय उन्ने किया उमके कागम उन्ने नाम का के कर पर में रागन हा गय। वे भारतवर्ष का अनेकी मातृ भूमि के रूप में मानता था। नागद के राजनीतिक पुन-रुमान के लिए नास करके उन्ने की सम्मुख रखकर न कागम न सम्पन्न हुआ गय। इस प्रकार आन्तक कागम न अनेक सम्मुख अनुपुनीय कागम गय। वे उन्ने लिए सबका उन्नत न थी। उन्ने प्रतिभा बहुमुग्धा था। उन्ने विद्वान् अन्तर्गत की और बुद्धि अन्तर्गत। उन्ने अन्तर्गत अन्तर्गत ही उन्ने अन्तर्गत था। उन्ने स जूकना उन्ने स्वभाव था और सहन उन्ने सग का गदी था। उन्ने

१ काग्रम— दा इण्डियन प्रान्स' पृ० ६५।

२ आनिवात शास्त्री— "संकट कालमें और अन्तर्गत अन्तर्गत का विचारण पत्र' उन्ने उन्नत पुस्तक में उद्धृत पृ० ५५।

३ श्री० एन० सिद्ध—परी, पृ० २६१।

काय करने की अनयक शक्ति थी और वे उस समय तक विश्राम करना नहीं जानती थीं जब तक कि उद्देश्य सिद्ध न हो जाए। इन गुणों के साथ-ही साथ उनकी प्रतितीय और अनुलनीय वनृत्व बला सोने में सुगणिय का काय करती थी। उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक चुम्बकमय था। वस्तुतः वे शक्ति की साक्षात् प्रतिमा थीं।

भायारलण्ड में उस समय जो होमरूलन का गोलन चल रहा था एनीबीसेण्ट उससे बहुत अधिक प्रभावित हुई थीं। उन्होंने नौररशाही के इस तत्व का कि भारतीय स्वशासन के योग्य नहीं है घुलकर विरोध किया। उनका कथन था कि भारतवर्ष अब वह शिशु नहीं रहा जो कि साम्राज्य की शिशु शाला में पनता रहे। उनका विश्वास था कि देश को जितनी शीघ्र स्व शासन प्राप्त हो जाए उतना ही अच्छा है। वाग्रस का काय जिस मात्र गति से चल रहा था उससे वे सतुष्ट न थीं।^१ और उन्होंने वाग्रस से निवदन किया कि वह होमरूलन का दोलन को प्रारम्भ करे। परन्तु उन्होंने देखा कि नरम दल के नेता तो पराड मुक्त शक्तानु स्वभाव के हैं वे होमरूलन का दोलन को चलाने में अक्षम होते हैं। इसलिए उन्होंने प्रोपनिवर्तित स्व शासन प्रपवा डोमीनियल होमरूलन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक पृथक् सगठन का निर्माण करने का निश्चय किया। तिनक का तरह उनका भी यह विश्वास था कि मुद्रालय इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वधानिक का गोलन प्राप्त करने का प्रत्येक समुपयुक्त अवसर है। एनीबीसेण्ट ने गरम दन और नरम दन में भग करान के लिए भी अनयक उद्योग किया। परन्तु जब तक गोलने जीविन थे उनको भ्रान उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। १९१५ में गोवले का स्वगवास हुआ। इस वष के वाग्रस प्रविशान में रामती बासेण्ट को वाग्रस सविधान में एसा सभाधन प्राप्त करवाने में जिससे कि तिनक और उनके अनुयायी पुन सस्या में आ सके सफलता प्राप्त हुई। १९१५ में वाग्रस के दानो दानो में पुररत्व स्थापित हो गया।

तिलक और बीसेण्ट का सहयोग के वाग्रस द्वारा का गोलन का अनुमोदन— एनीबीसेण्ट ने पत्नी सितम्बर १९१६ को मद्रास में अविल भारतीय होमरूलन लीग की स्थापना की। इसके छ मास पूर्व तिलक गणराष्ट्र होमरूलन लीग की स्थापना कर चुके थे। इसका के द्र पूना था। तिलक ने एनीबीसेण्ट को पूरा सहयोग दिया और दोनों नेतामा ने अपने सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कथे स कथा मिलाकर काय किया। सितम्बर १९१६ में वाग्रस और मुस्लिम लीग ने सुधारो की एक सामान्य योजना का ग्रहण किया। उन्होंने अपनी योजना को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए होमरूलन लीग के उपयोग करने का निश्चय किया।^२ तिलक और एनी बीसेण्ट ने न्य साध्य के लिये अनयक गति में काय किया।

होमरूलन का दोलन के उद्देश्य—होमरूलन का गोलन के प्रवर्तको ने अपने का गोलन को उसके उद्देश्यो और भादशों को अधिकधिक लोकप्रिय बनाने के लिये

१ पट्टाम सीतारामय्या— दी हिस्ट्री ऑफ वाग्रस' पृ० २१२।

२ बी० एन० सिंह—वही पृ २६५।

अपूव उत्साह और प्ररणा से काय किया। एनीबीसेण्ट के दैनिक पत्र 'यू इण्डिया और साप्ताहिक पत्र 'कामन वोल' ने इस दिशा में विशेष सेवा की। होमरूल लोग ने बड़े घडाके के साथ काम किया। श्रीमती बीसेण्ट ने सारे दश का सूफानी दौरा किया। अपने जोरदार भाषणों से 'गन्ता के अन्दर एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी। वे भारतवप को उसकी युग-युग यापी निद्रा से जगाना चाहती थी। 'मैं भारत में बतालिका का काय कर रही हूँ उन्ोंने घोषणा की और सोन वाला का जगा रही हूँ ताकि वे उठ बैठें और अपनी मातृभूमि के लिये काय कर सकें।' दैनिक के पत्रों दैनिक केसरी और साप्ताहिक मराठा ने भी महाराष्ट्र में उठकर प्रचार काय किया।

होमरूल प्रादोलन एक यवानिक सघष था। जिस समय यह चल रहा था उस समय महायुद्ध जारी था और भारत सुरक्षा प्रध्यादन भी कियाशिल थे। प्रादोलन का यह उद्देश्य नहा था कि सरकार को सामंजस्य परेशान किया जाये यथवा उसके युद्ध प्रयत्नों में बाधा डाली जाये। सच तो यह है कि एनीबीसेण्ट और तिनक दोनों ने ही भारतीयों को इस बात का परामश दिया था कि वे अपनी के खिलाफ सरकार की यथासम्भव सहायता करें पर तु उन्ोंने इस बात पर भी निरतर बल दिया कि स्वशासित भारत माझा यवा के लिये अधिक महायक हा सवेगा। एनीबीसेण्ट ब्रिजिग साम्राज्यवाद को शत्रु नहीं थी। उस समय उग्राल यानिपय को और भुव रहा था और वह यान्तिकारिया के साथ गठबन्धन स्थापित करने के लिये प्रवृत्त हा रहा था। श्रीमती बासेण्ट ने उस यानिपय में अलग किया। उनकी योजना यह थी कि उग्रवाणी भारतवप का साम्राज्य में ही बनाये रखने को राजी हो जाए। उग्राल और भरमदल में पुन ऐक्य हा तथा वे समुक्त बाधम में मिलकर साथ साथ काम करें यह भी उनका उद्भव था। इस उद्भव को सिद्धि के लिये उन्ोंने प्राणुपण से काय किया और हमम उ हें सक्नता भी मिली। श्रीमती बासेण्ट की यह आकाशा थी कि इगलण्ड और भारत एक दूसरे के समीप आए एक दूसरे को समझें। परन्तु उन्ोंने इस बात पर बल दिया कि साम्राज्य का फायदा भारत के माध्य के साथ जुडा हुआ है और भारत को होमरूल श्वर उस सन्तुष्ट कर ता ब्रिटिश शासकों के निय बुद्धिमानों की बात है।

श्रीमती बीसेण्ट का कथन था होमरूल भारतवप का अधिकार है और राज भक्ति के पुरस्कार के रूप में उन प्राप्न करने को मान कहता। मूलतःपूण है।'

१ हा जकरिया— रनमण्ड इण्डिया प १६५।

२ टिप्पणी— भारतवप ने अपने पुरों और पुत्रियों के रक्न को इमनिए न्ोंने बहाया है कि समक बन् में उस स्वतन्त्रता मिल अधिकार मिले। यह मोन्वाजी नहीं है। भारत एक राष्ट्र की हैमियन से साम्राज्य की जनता के बीच याय पान के अधिकार का दावा करता है। भारतवप ने इसे युद्ध के पूव मांगा था भारत इसे युद्ध के बीच मांगता है भारत इसे युद्ध के बाद मांगेगा पर तु यह इसे एक पारितापिक के रूप में नहीं अधिकार के रूप में मांगता है।

हाउ इण्डिया रॉट फॉर फ्रायम पु १७५-१७६।

एनीबीसेण्ट के होमरूल का लक्ष्य वही था जो कि दादा भाई नौरोजी के स्वराज्य या स्वशासन' का था। उन्होंने 'कॉमनवील' के प्रथम अर्थ में ही अपने लक्ष्य की व्याख्या की। उन्होंने निरूपाया— राजनीतिक दृष्टि में हमारा उद्देश्य ग्राम परिषदों से डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्डों तथा प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा एक राष्ट्रीय सदन तक जो कि शक्तिशाली में उपनिवेश की स्वशासित विधान सभाओं के तुल्य हो पूरा स्वशासन का निर्माण करना है। हमारा यह भी लक्ष्य है कि जब 'म्पोरियल पार्लियामेण्ट' का अधिवेशन हो और उसमें साम्राज्य के स्वशासित राज्यों के प्रतिनिधि भाग लें तब भारतवर्ष को भी सीधा प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये।^१ एक प्रकार होमरूल कोई नया आदेश नहीं था साम्राज्य के अन्तर्गत स्वाशासन के उत्तम लक्ष्य के लिये कवल एक नया नाम पालिया गया था। 'समसे को' सन्देह नहीं कि इस नये नाम की प्रेरणा मायरलण्ड के स्वतन्त्रता सभाम से प्राप्त हुई थी।

नौकरशाही का दमनचक्र और एनीबीसेण्ट की नजरबंदी—१९१७ में होमरूल का दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। यद्यपि यह कांग्रेसी विधुदत्त अधानिक था और उसके नेताओं ने इस आन्दोलन को व्यापक बनाने में शांतिपूर्ण उपायों का ही अवलम्ब किया, परन्तु फिर भी इसके प्राणवान प्रचार सभ्य ने जनता के बीच एक नूतन हलचल पैदा कर दी। सरकार इससे घबरा उठी और उसके आन्दोलन को कुचल डालने का निश्चय किया। तिलक और एनीबीसेण्ट के कार्य-कलापों के ऊपर कई कठोर प्रतिबंध लगा दिये गये। १९१६ में तिलक से कहा गया कि वे साल भर तक बिलकुल शांत रहें। उनको कुछ मारी जमानतें जमा करने का भी आदेश दिया गया। परन्तु बाद में जब तिलक की ओर से हार्दिकी में अपील की गई तब इस आदेश को वापस ले लिया गया। हामरूल प्रचार की रोकने के लिये दमनमूलक प्रस एक्ट का खुलकर प्रयोग किया गया। श्रीमती बीसेण्ट से जिनका 'यू इण्डिया' नामक दैनिक और कामन वील नामक साप्ताहिक पत्र होमरूल आन्दोलन का खूब धड़ले से प्रचार कर रहा था प्रस और पत्र के लिये २० ०) की जमानत मांगी गई और वह जमानत भी करनी गई। परन्तु इन दमनकार्यों से कांग्रेसी दबा नहीं वह और प्रचण्ड हुआ। १९१७ के प्रारम्भ में लाडपेण्टलण्ड की सरकार ने सरकारी आज्ञापत्र नं ५५६ के अनुसार विद्यालयों को राजनीतिक आदान में भाग लेने से रोक दिया। हामरूल की सभाओं में उपस्थित होना उनके लिये वर्जित कर दिया गया।^२ सरकार का दमनचक्र उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया जबकि तिलक को पञ्जाब और दिल्ली में प्रवेश करने का मनाही कर दी गई और श्रीमती बीसेण्ट को उनके दो घनिष्ठ सहयोगी जी एस एरेण्डल और बी पी वाणिया सहित नजरबंद कर दिया गया। सरकार ने तो समझा कि श्रीमती

१ एनीबीसेण्ट—'इण्डिया वाउण्ड आर फ्री ?' प १६२-१३३।

२ जी एन सिंह—वही प २६६।

बीरुष्ट की गिरफ्तारी से होमरूल या गलत ठण्ठ पड जायगा परन्तु नतागा इमजा बिलकुल उल्टा हुमा । एसने ' दश के एक कान स लकर दूमरे कोन तक विराध श्रीर रोप का तूपान खडा कर दिया । सार दश म ध्यामता बासण्ट की नजरवन्ती क विरोध में समाए हु । व राष्ट्रीय नेता जो कि अब तक हामरूल आगोलन से अलग रह प होमरूल लीग के सदस्य हो गय श्रीर उहोने उसम उत्तरदायी पदा कामभूता । एनीबीसेण्ट के छुटकारे क लिये सारे देश में प्रचण्ड आगोलन हुमा । तिलक ने सत्पायद तक प्रारम्भ करन का प्रस्ताव किया । परन्तु घटनावरु बडा तबा स घूमना गया श्रीर २० अगस्त १९१७ की घोषणा ने जिसम कि भारत म उत्तरदायी शासन के जन जन विकास का वचन दिया गया था भारतीय राजनीति की हजा क रल को एकदम से बदल दिया श्रीर धीरे धीरे होमरूल आगोलन बिलकुल मरभा गया । एनीबीसेण्ट का यश इस समय अगन सदी-च गिल्लर पर पहुच गया था श्रीर उन्हे १९१७ क काग्रस अधिवेशन का सभापति निर्वाचित किया गया ।

२। हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों में एक सुलकर अध्याय

भारतीय मुसलमानों का राष्ट्रवाद की ओर झुकाव—मार्ते मिणो मुघार-काल में एक श्रीर महत्वपूर्ण बात हुइ श्रीर वह यह कि भारतीय मुसलमानों की नई पीढी राष्ट्रीयता की आरंभुकी । हम देख चुक हैं कि मुस्लिम लीग की स्थापना १९०६ में हुई थी श्रीर इसकी स्थापना में ब्रिटिश नौकरशाही का बहुत बडा हाथ था । मुस्लिम लीग की स्थापना का उद्देश्य यहो था कि मुसलमानों की राष्ट्रीय आगोलन से पयक रखा जाए । शुरू के सालों में मुस्लिम लीग के ऊपर अलीगड क अड्ड सामंती श्रीर पयकतावाद राजनीतियों के स्कूल का ही पण नियंत्रण रहा था । पर तु १९१२ के पश्चात् से शिक्षित नवयुवक मुसलमानों क दृष्टिकोण में परिवर्तन होन लगा । उनका हृम देशभक्ति की भावनामा मे आगोलित हो उठा । फगत व राष्ट्रवाद की आरंभ कृष्ट हुए । इसक कारण मुस्लिम लीग के रग-रूप म भी थोडा परिवर्तन हुमा । यद्यपि मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य तो मुसलमानों के हितों का संरक्षण करना ही रहा परन्तु उत्तरदायी शासन क प्रान पर, वह काग्रस के समीपतर आ गई । परिणामस्वरूप दोनों सगणों के बीच बहुवपुण सहयोग का एक सक्षिप्त युग प्रारम्भ हुमा । १९१६ का काग्रस लीग समझौता हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों क एक सुख कर अध्याय का अरम गिल्लर है ।

मुद्य कारण टर्की की न्मिति—मुसलमानों में इस राष्ट्रवाद की भावना के विकास के कारण भी अनेक थ । डा कारणों म सबसे प्रमुख कारण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ । इगनण्ड श्रीर एस टर्की के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति का अनुसरण कर रहे थ । इससे भारतवप के मुस्लिम बुद्धिजीवी वप को बहुत थक्का पहुँचा । टर्की क मुन्तान पञ्चल हामिद क द्वारा प्रास्ताहित पान—'स्तामिक आगोलन' ने भारत के मुसलमानों

के ऊपर बहुत गहरा प्रभाव डाला था। मुल्तान हामिन् इस्लाम के सन्धीका भी था। इन सब कारणों से टर्की इस्लाम की महानता का प्रतीक बन गया था। १९१२-१३ के बल्कान-युद्धों ने भारतवर्ष में टर्की के प्रति सहानुभूति को एक शक्तिशाली सहर बना कर दी। डाक्टर अंसारी भारतवर्ष से टर्की को एक मेडिकल मिशन ले गए।

कांग्रेस के प्रति सरकारी दृष्टि में परिवर्तन—टर्की के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण ने भारतीय मूलनमानों के बीच ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ उत्पन्न कीं। ये भावनाएँ युद्ध के बीच और भी प्रबल हो गईं जबकि टर्की ब्रिटेन और अपने मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ा। जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं— अन्तिम बची हुई मुस्लिम शक्ति के समाप्त हो जाने का खतरा उत्पन्न हो गया था उनके विश्वास का मुख्य आधार डॉक्टरों हो रहा था।^१ ब्रिटेन इस्लाम के गन्तु के रूप में प्रकट हुआ और अपने पेशेवर मुस्लिम मस्तिष्कों को उत्तेजित करना प्रारम्भ कर दिया। एक और कारण जिसने वि साम्प्रदायिकता को रोका और भारतीय मूलनमानों का कांग्रेस के नजदीक ला दिया यह था कि कांग्रेस के प्रति सरकारी रुख में परिवर्तन हो गया। यद्यपि मार्ने मिष्ठा सुधारों में कतिपय दोष थे फिर भी कांग्रेस उन्हें कार्यादिन करने की पथा-शक्ति देना कर रही थी। नए गवर्नर जनरल लार्ड हाडिंग का कांग्रेस के प्रति सहाय्युत्तम दृष्टिकोण था। लार्ड हाडिंग की मेन-जोल की नीति का फल यह हुआ कि मुस्लिम पृथक्तावाद में पहन का-सा जोर नहीं रहा और वह घोमा पड़ गया। इन्हीं अलावा १९११ में बग-मग का रद्द कर दिया गया। अन्ते मूलनमानों के ऊपर बहुत असर डाला। सरकार ने बग-मग को रद्द करने का निश्चय करने में एक मूलनमानों से परामश तथा भी नहीं किया फलतः वे अत्यन्त रष्ट हुए अग्रजों की नेकनीयती में उनका जो विश्वास था उसकी जड़ें हिल गईं। इस कारणों का फल यह हुआ कि मूलनमानों की राष्ट्रीय आन्दोलन में शरीक हो गए।

नए नेताओं का प्रभाव—अबुल कलाम आजाद-मस्लिम राष्ट्रवाद के उत्कर्ष का तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण कारण अबुल कलाम आजाद अनी-ब धुप्रो मोहम्मद अनी विन्ना हा अंसारी और हुकीम अन्नमल खाँ जमे नए नेताओं का प्रभाव था। अबुल कलाम आजाद उस समय नवयुवक ही थे। उनकी गम्भीर विद्वत्ता और भारत से बाहर की इस्लामी दुनिया के पान की सवत्र धाक अभी हुई थी। उन लहादों में ने जिनमें टर्की फिर गया था उनकी गहरी रुचि और सहानुभूति को उत्तेजित किया। फिर भी उनका रास्ता पुराने मुस्लिम नेताओं के रास्ते से भिन्न था। उनका व्यापक और बुद्धिसंगत दृष्टिकोण न उह पुराने नेताओं के सामन्ती सङ्कुचित धार्मिक व पृथक्तावादी दृष्टिकोण से अलग रखा और उन्हें सिर से पर तक भारतीय राष्ट्रवादी बना दिया था।^२ १८१२ में अबुल कलाम आजाद ने उद्द साप्ताहिक अल-हिस्साल की

१ जवाहरलाल नेहरू — दी डिस्क्वरी आफ इण्डिया पृ० २८९।

२ जवाहरलाल नेहरू — दी डिस्क्वरी आफ इण्डिया पृ० २८६।

ये। १९१५ में उन्होंने लीग की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया। मुस्लिम लीग की भागदोर मोहम्मद अली जिन्ना के हाथों में आ गई।

मौलाना गिबनी मोहानी—मौलाना गिबनी मोहानी उच्चकोटि के राष्ट्रवादी थे और सर सय्यद खाँ के सहयोगी रह चुके थे। बाद में सर सय्यद अहम खाँ साम्प्रदायिकता की ओर झुक गए और उन्होंने मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रखने की चपटा की। मौलाना गिबनी मोहानी को सर सय्यद अहम खाँ की यह नीति बिलकुल पसंद नहीं आई। उन्होंने इसकी कठोर आलोचना की। बतहा करने पर कि मुसलमानों को राष्ट्रीयता की मुख्य धारा से पृथक् रखने के लिए नीकरशाही ने सर सय्यद अहम खाँ के नाम का अनुचित उपयोग किया है। भारतीय मुसलमानों के बीच राजनीतिक जागृति का विकास करने के लिए उन्होंने अपनी समयी के द्वारा राष्ट्रीय महायत्न में जो भागीदारी दी उसके कारण भारत की राष्ट्रीयता के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

लीग का प्रेस सहयोग की ओर—उत्तर का प्रसन्न नेताओं ने मुस्लिम लीग की इस नई प्रवृत्ति का हार्दिक स्वागत किया। १९१३ के अपने अधिवेशन में का प्रसन्न ने लीग के स्वराज्य के नूतन ध्येय की मुकव्वठ से सराहना की। इस्लामी विश्व के प्रति अपनी सद्भावना का परिचय देने के लिए का प्रसन्न ने टर्की और फारस की स्थिति के सम्बन्ध में गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। अब यह प्रतीत होने लगा था कि भविष्य में का प्रसन्न और लीग मिल जुल कर काम करेंगी और सामान्य राजनीतिक लक्ष्य को हस्तगत करने के लिए डटकर सघन करेंगी। १९१४ के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में राष्ट्रवादी मुसलमानों का प्रभाव सलक्ष्य था। इस अधिवेशन में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सद्भाव कायम रखने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। हिन्दू मुस्लिम एकता के बढ़ते हुए चिह्न को देखकर प्राग्ल भारतीय समाचार पत्र घबरा उठे। परन्तु यह श्रद्धा काय रूका नहीं बराबर चलता रहा और राष्ट्रवादी नेता इस बात के लिए निरंतर प्राणपण से चेष्टा करते रहे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़े और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों मिलकर सामान्य राजनीतिक लक्ष्य की ओर शक्तिशाली पग उठाए तथा एक ऐसे महान् भारत का निर्माण कर सकें जो कि अशोक कालीन भारत से कहीं अधिक महत्तर और अधिकतर कालीन भारत से कहीं अधिक वृहत्तर हो।

का प्रसन्न लीग सम्भोता १९१६—१९१५ में राष्ट्रवादी मुसलमानों ने मिन्टर जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग के ऊपर पूरा नियन्त्रण स्थापित कर लिया। उस वर्ष

१ एनी बेसेण्ट ने एक प्राग्ल भारतीय समाचार पत्र के निम्न लेख को उद्धृत किया है—य साग दोनों जातियों को क्यों एक करना चाहते हैं यदि यह उन्हें एक करना शासन के विरुद्ध नहीं है? — हॉउ इण्डिया राइट फार फ्रीडम पृ ५३१।

मुस्लिम लीग के अधिवेशन में महात्मा गांधी पण्डित मन्मथादन मानवीय और सरोजिनी नायडू जैसे कांग्रेस के सुप्रतिष्ठित नेता भी सम्मिलित हुए। मि० जिन्ना ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसमें भारतवर्ष के लिए राजनीतिक सुधारों की एक योजना तयार करने के लिए एक ऐसी समिति की नियुक्त करने को कहा गया था जो कि कांग्रेस के साथ मिलकर काम करे। यह प्रस्ताव पास हो गया। फलतः १९१६ में संयुक्त कांग्रेस लीग योजना तयार हुई—यह इतिहास में ललनऊ समझौते के नाम से प्रख्यात है। पूर्व वष की तरह १९१६ में भी कांग्रेस और लीग के वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थान पर (ललनऊ) और एक ही समय में हुए। दोनों ही मस्यौदा ने कांग्रेस लीग योजना को स्वीकार किया और उस माँगों के अधिकारपत्र के रूप में अधिकारी-वर्ग के सम्मुख उपस्थित किया। 'ललनऊ-पत्र' को या सवधानिक सुधारों की कांग्रेस लीग योजना को भारतीय राष्ट्रवादी की एक बहुत बड़ी विजय कहा गया है।^१ परंतु यह बात सच नहीं है। यह ठीक है कि ललनऊ-पत्र हिंदू मुस्लिम एकता का प्रतीक था। वह इस बात का द्योतक था कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस साथ-साथ मिल कर स्वशासन के लक्ष्य की ओर एक ठोस कदम उठाएंगी। एक आवाज के साथ कांग्रेस और लीग ने यह माँग की कि साम्राज्य के पुनर्गठन में भारतवर्ष की पराधीनता की कड़ी से ऊपर उठाया जाकर आत्मशासित उपनिवेशों की भाँति साम्राज्य के कामों में बराबर

१ यह पत्र मुख्यतः उन सुधारों पर धारित था जिनका कि ममारण्डम थाक नाइण्डिन (१९ का आवेदन पत्र) में सुझाव दिया गया था। इस आवेदन-पत्र को इम्पीरियल (केन्द्रीय) व्यवस्थापिका सभा के १९ भारतीय सदस्यों ने तयार किया था। ललनऊ-पत्र के मुख्य उपबन्ध ये थे— (१) प्रांतों को जिनका अधिष्ठ सम्भव हो सक प्रशासन और वित्त के क्षेत्र में केंद्राय नियंत्रण से स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। (२) केन्द्रीय और प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं के ४/५ सदस्य निर्वाचित और १/५ मनोनीत होने चाहिए। (३) केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों के कम से कम आधे सदस्य अपनी अपनी व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा निर्वाचित होने चाहिये। (४) जब तक कि कौंसिल द्वारा पारित किये गये प्रस्तावों पर गवर्नर जनरल अथवा सपरिषद गवर्नर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग न करें, प्रांतीय और केन्द्रीय सरकारों को उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिए। (५) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा को भारत सरकार के सैनिक बजेटिक और राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने का जिन में कि युद्ध की घोषणा अथवा संधि करना भी सम्मिलित है कोई अधिकार न होना चाहिए। (६) भारत मंत्री के भारत सरकार के साथ वही सम्बन्ध होने चाहिए जो कि अधिनियमिक मंत्री के डोमोनियन की सरकारों के साथ होते हैं।

रूपसंद— दो इण्डियन प्रांसेस १८३३-१९१५' पृ० ४८।

सारमूल मात्रा में स्व शासन प्राप्त हो सके। इन योजनाओं में एक योजना १९' का आवेदन पत्र था।^१ इस योजना को साम्राज्यीय व्यवस्थापिका तथा के भारतीय सदस्यों ने तयार किया था।

नाइजीरिया मेमोरेण्डम—१९ के आवेदन पत्र के ऊपर जिन सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे उनमें ५० मदन मोहन मालवीय मोडम प्रो. जिन्ना और सेज बहादुर सप्रू भी सम्मिलित थे। दूसरी बातों के साथ-ही साथ आवेदन पत्र में इस बात का भी प्रस्ताव किया गया था कि प्रांतीय और साम्राज्यीय सभी कार्यकारिणों परिषदों में सभी सदस्य भारतीय सदस्य की हानी चाहिए भारतवर्ष की सभी व्यवस्थापिका समार्षों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का सारमूल बहुमत होना चाहिए, जनता के मतदान के अधिकार को विस्तृत कर देना चाहिए अल्पसंख्यक वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए भारत मंत्री की परिषद को समाप्त कर देना चाहिए प्रांतीय क्षत्र में स्वायत्तता की स्थापना होनी चाहिए और भारतवर्ष को स्थानीय स्वशासन पूरी मात्रा में प्राप्त होना चाहिए। १९ के आवेदन पत्र में इस बात पर भी जोर दिया गया था कि भारतीय नवयुवकों को भी सभा में वे ही सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो कि यूरोपियनों को प्राप्त होती हैं।

कांग्रेस लीग योजना—कांग्रेस लीग योजना जिसका कि हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं १९' के आवेदन पत्र पर आधारित थी तथाकि कांग्रेस लीग योजना १९' के आवेदन पत्र से अधिक 'यावक' थी और इसमें साम्राज्यिक निर्वाचनों के प्रश्न पर अधिक महत्त्व दिया गया था। परंतु इन सुधार-योजनाओं में से किसी ने भी भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की स्पष्ट मांग नहीं की थी। उस पहली योजना को जिसने कि भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की शान शान स्थापना को नूतन सुधारों का आधार बनाया वह गणेश राउण्ड टेबिल ग्रुप में तयार किया था। गणेश राउण्ड टेबिल ग्रुप उन अग्रज कार्यकर्त्ताओं का एक समुदाय था जो कि भारतीय समस्याओं में प्रगाढ़ रुचि रखते थे। इस ग्रुप के नेता मि. बटिस ने समाचार पत्रों में कई लेख लिखे और उनमें उत्तरदायी शासन व प्रतिनिधिक शासन के अर्थ को स्पष्ट किया। उनका यह मत था कि भारतवर्ष में प्रतिनिधिक शासन की तो गुरत स्थापना की जा सकती है परंतु उत्तरदायी शासन की स्थापना शान शान ही हो सकती है। उन्होंने कहा कि भारतवर्ष की अशिक्षित जनता धम नहन और

१ टिप्पणी—१९१५ में एक सुधार योजना मद्रास के गवर्नर लार्ड विलिंगडन के आदेशानुसार गोखले ने तयार की थी। यह प्रलेख जो कि गोखले के राजनीतिक टेस्टामेंट के नाम से प्रख्यात हुआ अगस्त १९१७ में प्रकाशित किया गया। इसका मुख्य ध्येय यह था कि प्रांतीय सरकारों को स्वायत्तता प्राप्त हो और व के द्वीय नियंत्रण से स्वतंत्र हों। इस योजना में कार्यकारिणों के व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व के प्रश्न को नहीं लिया गया था।

बिरालरी आदि की प्राचीरों से आपस में बटी हुई है वह उत्तरदायी शासन के योग्य नहीं है, उसे इसके लिए शिथिल करना पड़ेगा। ब्रिटिश अधिकारियों व ऊपर इस याजना की अच्युती प्रतिश्रया हुई। काप्रस लीय याजना म ली भारतीयों को तरकान ही बहुत स अधिकार ले दन की माग की गई जो कि ब्रिटिश अधिकारियों के लिए अहचिकर थी पर तु वस याजना म ऐसी कोई माग नही थी।

ड्यूक आवेदन पत्र—उत्तरदायी शासन का विचार ही ड्यूक आवेदन पत्र का सार था जिसे १९१६ म इण्डिया कौंसिल के एक सदस्य व० मि० कटिस के एक मह योगी सर विलियम ड्यूक ने तयार किया था। ड्यूक आवेदन पत्र में कहा गया था कि अब भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला म सिद्धहस्त करने का समय आ गया है। यह इस प्रकार किया जा सकता है कि कुछ सुरक्षित विभाग को (शिक्षा स्थानीय स्व शासन स्वच्छता आदि) प्रातीय सरकारी के अधीन कर दिया जाए तथा इस पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का नियंत्रण स्थापित किया जाए। तथापि इस आवेदन पत्र में यह भी स्पष्ट कर लिया था कि पुलिस जैसे अत्य महत्वपूर्ण विभागों की सुरक्षा व निपुणता की दृष्टि में जनता क निर्वाचित प्रतिनिधियों व हाथों में न दिया जाए। इस प्रकार ड्यूक आवेदन पत्र ने द्वय शासन प्रणाली की स्थापना का सुभाव दिया। द्वय शासन प्रणाली का अमिप्राय यह था कि प्रातीय शासन को दो भागो म बाँट दिया जाए अर्थात् सुरक्षित विभाग तो कायकारिणो परिपदा के हाथो म रह और व केवन गवर्नर के प्रति हा उत्तरदायी ह। वसक विपरात हस्तातरित विभाग जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथो म आ और वे व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी ह। ड्यूक आवेदन पत्र और राजण्ड टबिन ग्रप की सिफारिशें ही माटेग्यू चेम्सफाड सुधार योजना को मूलम त्र बनी और १९१९ का भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट भी मुख्यत ही क ऊपर आधारित था।

भारत मन्त्री के पद पर माटेग्यू को नियुक्त—प्रथम महायुद्ध के जमान म मसोपोटामिया म युद्ध का प्रन्ध अच्युता नही रहा था। इस सम्बन्ध म इगण्ड की सोक-समा म एक बहुत जोरदार बहस हुई। बहस म मि० माटेग्यू ने मि० आस्टिन चम्बरलन को जो कि भारत मन्त्री थ, बुरी तरह आडे हाथो इसलिए लिया कि मसोपोटामिया मे सामग्री तथा सिपाही न पहुचन के फलस्वरूप ही यह गढबनी हुई थी। इसी के परिणामस्वरूप मि० चम्बरलन ने अपने पद से इस्तीफा द दिया और उनके स्थान पर मि० माटेग्यू भारत मन्त्री नियुक्त हुए। मि० माटेग्यू १९१२ मे भारत भा चुके थे और यहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उह भारत का सच्चा शुभाकांक्षी समझा जाता था। भारतवष के प्रति मि० माटेग्यू के हृदय म अगाध सहानुभति थी। मि० माटेग्यू का भारत मन्त्री बना दिया जाना भारतवष ने अपनी एक बहुत बड़ी विजय समझी। मि० माटेग्यू का बयन था कि हम भारतवष पर वहाँ की जनता की सहमति से शासन करना चाहिए। स्वभावत एस राजनीतिन की भारत मन्त्री के पद पर नियुक्त होने से भारतीयो के हृदया में ऊची ऊची आशाए जाग्रत हो गई।

२० अगस्त, १९१७ की घोषणा-भारत मन्त्री के पद का काय मार सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त १९१७ को मन्त्रिमण्डल की ओर से मि० माटेग्यू ने निम्नलिखित घोषणा की— सम्राट सरकार की यह नीति है और उससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे धीरे विकास हो जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व शासन प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। उन्होंने यह तय कर लिया है कि इस दिशा में जितना शीघ्र हो ठोस रूप से कुछ काम आगे बढ़ाया जाय। घोषणा में यह भी कहा गया था इस नीति में प्रगति क्रमशः ही अर्थात् सीढ़ी दर-सीढ़ी होगी। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार ही जिनके ऊपर कि भारतीयों के हित और अनति का भार है इस बात की निष्ठापूर्वक हाजी कि कब और जितना कदम आगे बढ़ाना चाहिए।

मि० माटेग्यू की भारत यात्रा— २० अगस्त १९१७ की घोषणा का भारतवर्ष में सबसे स्वागत किया गया। उसे भारतीय मगना पार्टी के नाम से पुकारा गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा 'मंगल भारतीय इतिहास के पृष्ठ टूटी हुई प्रतिभाओं के खण्डों से भरे पड़े हैं परन्तु अब शायद एक नूतन अध्याय प्रारम्भ होने को था।' १ नवम्बर १९१७ में मि० माटेग्यू देश के प्रमुख राजनीतिज्ञों के साथ विचार विनिमय करने के लिए भारत पधारे। उन्हें अपने काम की महत्ता का पता था और उनके हृदय में भारतीयों के प्रति सच्ची सहानुभूति थी। मेरी भारत यात्रा का तात्पर्य यह है कि हम कुछ करने जा रहे हैं कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने जा रहे हैं। मैं इंग्लैंड को खाली हाथ या कोई साधारण वस्तु लेकर नहीं लौट सकता। जिस वस्तु को लेकर मैं लौटूंगा उससे नए युग का निर्माण होना चाहिए अथवा मेरे प्रयत्न निष्फल होंगे। उस वस्तु को भारतवर्ष के भावी इतिहास की कुर्जी के समान होना चाहिए। २ मि० माटेग्यू और उनके सहयोगियों ने ६ महीने तक सारे देश का दौरा किया परन्तु जब अन्तिम रूप से यात्रा तयार होकर सामन आई तब मि० माटेग्यू में वह उत्साह नहीं रहा था जिसका प्रदर्शन उन्होंने भारतवर्ष में आने के समय किया था। तथापि उनकी भारत यात्रा एक और दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही। उनके भारत आने से पूर्व श्रीमती एनीबीसेण्ट की नजरबन्दी के ऊपर सारे देश में काफी असन्तोष छाया हुआ था और काग्रस सत्याग्रह प्रारम्भ करने के प्रस्ताव पर सोच विचार कर रही थी। माटेग्यू ने भारतवर्ष में पदार्पण करते ही देश की राजनीतिक हवा के रूप को पलट दिया। उनके पारदर्शी सहानुभूति ने भारतवर्ष के बहुत से महत्त्वपूर्ण नेताओं का समर्थन प्राप्त किया। एनीबीसेण्ट जो कि पहले बहुत उग्र थीं,

१ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी— ए नेशन इन दी मेकिंग पृ ३०३।

२ बी० एन० सिंह द्वारा उद्धृत—वही पृ० ३०८।

अपनी सारी तेजी भूल बठीं और एकदम नरम हा गईं । सत्याग्रह के विचार को ठुकरा दिया गया । मि० माट्यू इस बात का ठीक ही दावा कर सकते थे कि उन्होंने महायुद्ध के एक बहुत ही सफटकालीन अवसर पर भारतवप को ६ महीने तक बिलकुल शान्त रखा ।

माट्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन—' भारतीय वधानिक सुधारों के ऊपर संयुक्त माट्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन के प्रकाशित हाते ही भारतीय राजनीतियों को बहुत गहरा धक्का पहुंचा । यह एक निराशाजनक प्रलेख था । इसमें इस बात पर बल दिया गया था कि भारतीय जनता का विशाल बहुमत अभी बहुत पिछड़ा हुआ है भारतवप का विभिन्न जातियों में काफी मतभेद है हिन्दुओं की वण-व्यवस्था लोकतंत्र क सबथा विरुद्ध है और भारत इस योग्य नहीं है कि केन्द्रीय सरकार में कोई महत्वपूर्ण अन्तर किया जाए । साम्प्रदायिक निर्वाचनों का इस प्रतिवेदन में घोर विरोध किया गया था ।^१ परन्तु फिर भी उसने साम्प्रदायिक निर्वाचना को न बवल मुसलमानों तक ही सीमित रखा, अपितु सिक्खों क ऊपर भी उन्हें लागू करने की सिफारिश की । उसम प्रान्ता म उत्तरदायी शासन के प्रयोग को करने का सिफारिश की गई परन्तु जनता के प्रतिनिधियों को पूण उत्तरदायित्व देने से इनकार कर दिया । उसन द्वय शासन प्रणाली की पुन स्थापना का प्रस्ताव किया । जहा तक केन्द्र का सम्बन्ध है प्रतिवेदन न कार्यकारिणी को पूर्ववत् ही अनुत्तरदायी रखने की आवश्यकता पर बल दिया, परन्तु उसन इस बात का सिफारिश की कि व्यवस्थापक मण्डल क दो सदन होने चाहिए और दोनों ही सभना म निर्वाचित प्रतिनिधिया का बहुमत होना चाहिए । प्रतिगामियों की शक्तियों का और हृद्ध करन के उद्दय स एक नरेन्द्र मण्डल की स्थापना का प्रस्ताव किया गया । यद्यपि-काग्रस लोग योजना की साम्प्रदायिक सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया और उन्हें बना भा दिया गया था परन्तु सारी योजना को बहुत अधिक क्रांतिकारी बताया गया ।

माट्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन के प्रकाशन न भारतीय जनमत का गहरा धक्का पहुंचाया । युद्धकाल म भारतीय नेताओं ने जिन बड़ी बड़ी भाशाओं का पाल रखा था व सब दह गइ । पाडे से उदारवादियों और मांगल भारतीयों को छाड कर भोप समी

१ वर्षों तथा बर्गों द्वारा विभाजन का अभिप्राय ऐसे राजनीतिक गुणों की सृष्टि करना है जो कि एक दूसरे के विरुद्ध हों । यह मनुष्यों को नागरिकों क रूप में नहीं पणमागियों क रूप में विचार करना सिखाता है । बहुधा ब्रिटिश सरकार पर दोषारोप किया जाता है कि उसने भागमियों पर शासन करन के लिए उनमें फूट डाल दी है । परन्तु यदि वह अनावश्यक रूप से उनमें उस समय फूट डालती है, जब कि उसका इरादा उह स्व शासन के पथ का पथिक बनना होता है, उसे दम्नी तथा अदूरदर्शों के दोषारोप का सामना करना कठिन मालूम पडेगा । मॉटफोर्ड रिपोर्ट ।

मे उसकी एक स्वर से निन्ना की। मुस्लिम लीग। तक ने उतना विरोध किया और वीरस लीग योजना का पुनः अनुमोदन किया। एनाकारण न करने पर यू. इण्डिया ने निन्ना कि यह योजना देना इंग्लैण्ड के लिए असोमन और भारतवर्ष के लिए इसका स्वीकार करना अपमानजनक था।

सारांश

मार्ने मिण्टो सुधारों के तुरंत बाद ही वा युग प्रारम्भ हुआ यह भारतीय राजनीति के उतार का समय था। उपवासियों का राजनीतिक क्षेत्र से लगभग बहिष्कृत सा ही कर दिया गया था फलतः यह शांति का समय था। नए गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने काग्रस के प्रति जो कि मार्ने मिण्टो सुधारों को त्रियाचित करने की भरसक चेष्टा कर रही थी मन जान की नीति बरती। १९११ में सम्मेलन का प्रथम भारत भाए। उनका खूब जार शोर से स्वागत किया गया। उन्होंने बंगाल को रद्द किया इससे भारत में हूप की और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति प्रशंसा की एक नहर दौड़ गई। परन्तु काग्रस सरकार की निरंतर झालोचना करती रही और इस बात पर बल देती रू कि भारत का स्वयं शासन प्राप्त होना चाहिए। काग्रस ने इस बात की मांग की कि प्रतिनिधिक शासन की दिशा में कुछ ठोस कर्म बाने चाहिए और प्रान्तीय परिषदा की यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे कायकारिणी शासन के कृत्यों पर नियन्त्रण स्थापित कर सकें।

१९१४ में तिलक जल से छुट कर घा गए और एनी बीसेण्ट ने भारतीय राजनीति में पदापण किया। इसके बाद भारतीय राजनीतिक जीवन पुनः भगडाई लेकर उठ बठा। इन दोनों नेनाओं ने होमरूल का दालन को सडा किया। यह आन्दोलन दावानस की तरह चारों ओर फल गया। सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल डालने के लिए दमन के हथकण्डों का प्रयोग किया और २ अगस्त १९१७ की घोषणा के पश्चात् यह आन्दोलन धीरे धीरे समाप्त हो गया।

मार्ने मिण्टो सुधारों के युग में हिन्दू और मुसलमानों के बीच भी सहयोग और सोहाद की घाशचयजनक वृद्धि हुई। अबुल कलाम आजाद मोहम्मद अली जिन्ना और अली बाघुओं जैसे नए नेताओं ने मुस्लिम लीग में राष्ट्रवाणी भावनाओं का सन्निवेश किया और १९१६ के काग्रस लीग सम्मेलन का पयप्रशस्त किया।

प्रथम महायुद्ध के बीच भारत ने जमनी के खिनाफ इंग्लैण्ड की तन मन धन से भरसक सहायता की। भारतवर्ष का आर्थिक सहयोग प्राप्त करने की वाछा से ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इस प्रकार की घोषणाएँ कर दी कि अब भारत की समस्या को एक नए दृष्टिकोण से देखा जाएगा अब इंग्लैण्ड और भारत के सम्बन्ध में ५०

नूतन अध्याय की मृष्टि होगी। भारतीय राजनीतिक नेतारों ने नए गामन सम्बन्धी मुद्धारों के लिए कुछ रचनात्मक मुझाव दिए। २० अगस्त १९१७ को मि० मांटग्यू ने अपना ऐतिहासिक घोषणा की और इस बात का बचन दिया कि ब्रिटिश नीति का अंतिम ध्येय भारत में प्रथम उत्तरायी गामन का स्थापना करना है। घोषणा के कुछ ही समय पश्चात् मि० मांटग्यू ने भारत की यात्रा की। इस यात्रा के लिए उन्होंने कहा कि वे भारत में एक नए युग का निमाण करने वाली कुछ चीज करेंगे। परन्तु भारत सरकार के असहानुमतिमय दृष्टिकोण के कारण मि० मांटग्यू को अपनी घोषणा में सफलता नहीं मिली। जब मुद्धारों की अन्तिम योजना तयार हुई मि० मांटग्यू का सारा उसाह शिथिल पड़ गया। मांटग्यू प्रतिबन्धन न भारत की बहुत हानि पहुँचाई। उसने साम्प्रदायिक निर्वाचनों को न केवल मुमकिनमानो तक ही सीमित रखा बल्कि उन्हें सिगों के ऊपर भी लागू कर दिया।



भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट १९१६

४३ माटेग्यू चेम्सफोर्ड योजना के मूलमंत्र

प्रस्तावना—भारतीय सवधानिक सुधारों के ऊपर माटेग्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन ८ जुलाई १९१७ को प्रकाशित हुआ था। इस प्रतिवेदन की सिफारिशों १९१६ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट में संसदन कर ली गई। इस एक्ट को ब्रिटिश संसद ने १८ दिसम्बर १९१९ को पारित किया और पांच दिन पश्चात् सम्राट ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। एक्ट की प्रस्तावना में १९१७ की घोषणा के सारांश को दुहराया गया था।

मूलभूत सिद्धांत—मोटफोर्ड प्रतिवेदन ने जो कि नूतन सविधान एक्ट का आधार बना घोषणा में वही हुई नीति को कार्यान्वित करने के लिये चार मूलभूत सिद्धांतों को निर्धारित किया। वे सिद्धांत निम्नलिखित थे—(१) जहां तक हो सके स्थानिक सत्याग्रहों में जनता का पूर्ण अधिकार हो। उनका नियंत्रण उसी के द्वारा हो और बाह्य नियंत्रण से उनको अधिकधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। (२) प्रांतीय सरकारों को सत्ता का विधान और प्रांतों में प्राथमिक उत्तरदायित्व का सूत्रपात (३) भारत सरकार की ब्रिटिश संसद के प्रति अनवरत उत्तरदायिता पर तु के द्वीय विधान मण्डलों का जिन्हें कि शासन पर प्रभाव डालने का अधिक भवसर दिया जाए विस्तार (४) गृह सरकार के नियंत्रण का शिथिलीकरण। भारतवर्ष के सवधानिक ढांचे में नूतन एक्ट द्वारा जो परिवर्तन किए गए उनका आधार ये ही मूलभूत सिद्धांत थे।

मुख्य विशेषणाएँ (१) गृह सरकार के नियंत्रण का शिथिलीकरण—सबसे पहली बात तो यह है कि सुधार एक्ट का उद्देश्य भारतीय मामलों में गृह सरकार के नियंत्रण को शिथिल करना था परन्तु उसमें भारत में जो के अधिकारों में किसी प्रकार का औपचारिक परिवर्तन नहीं किया। इस सम्बन्ध में केवल यह पवित्र आशा व्यक्त की गई थी कि उचित अनुसन्धानों की वृद्धि के साथ ही साथ यह शिथिलीकरण अपने आप सम्पन्न हो जाएगा।

(२) केन्द्रीय सवधानिकता को अनुत्तरदायी रखा गया परन्तु केन्द्रीय सवधानिकता को उसे प्रभावित करने के लिए अधिक अधिकार दे दिए गए—दूसरी बात यह है कि केन्द्रीय शासन में उत्तरदायिता के तत्त्व की पुनः स्थापना नहीं की गई। सपरिपन् गवर्नर जनरल का पूर्ववत् केन्द्रीय व्यवस्थापिका के नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त रखा गया। नूतन केन्द्रीय व्यवस्थापिका में दो सदन थे प्रत्येक सदन में निर्वाचित बहुमत किया गया। इसके अलावा केन्द्रीय व्यवस्थापिका के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई जिससे कि

वह वायपालिका को यदि नियंत्रित नहीं तो प्रभावित अवश्य कर सके इस प्रकार यह एक्ट का विरोधी वस्तुओं का समर्थन था। केंद्रीय क्षेत्र में इस एक्ट ने स्वेच्छाचारी वायपालिका और किंचित लोकतन्त्रात्मक व्यवस्थापिका का वाच समन्वय से जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती थी उन्हें दूर करने के उद्देश्य से गवर्नर जनरल को कुछ विशेष अधिकार दिए गए। यदि वह भारतवर्ष या उसके किसी भाग की सुरक्षा शांति अथवा उसके हितों के लिए कही कानूनों को आवश्यकता समझता तो वह उन्हें व्यवस्थापिका की सहमति के बिना भी अपने इन विशेषाधिकारों के जोर से अधिनियमित कर सकता था।

(३) विकेंद्रीकरण—नीमरी बात यह है कि इस एक्ट ने विकेंद्रीकरण की उस नीति को, जो ब्रिटिश राज के शासन काल में अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी मम प्ल कर दिया। प्रांतीय और राजस्व व कृषि विषयों का विकेंद्रीकरण बंद किया गया अर्थात् उन्हें केंद्रीय सरकार के नियंत्रण से हटाकर प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में दे दिया गया। विकेंद्रीकरण और प्रांतीय स्वायत्तता का नीति को प्रांतीय म उत्तरदायी की स्थापना करके भी अभिवृद्धि किया गया।

(४) प्रांतों में प्राथमिक उत्तरदायित्व—इस शासन—एक्ट ने प्रांतों में एकदम से ही उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं कर दी। उसने प्रांतीय शासन को तो भाग्य में बाँटा। एक भाग में सर्वप्रथम विषय सम्मिलित थे। इन विषयों का अटल अचल वायवारिणी परिपदों के अधीन रखा गया जो अर्थात् गवर्नर के ही प्रति उत्तरदायी थे और व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रित नहीं किए जा सकते थे। दूसरे भाग में हस्तारित विषय सम्मिलित थे। इन विषयों को मंत्रियों की आश्रीतता में रखा गया। ये मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही चुन जाते थे और अपने कार्यों व नीतियों के लिए पूर्णतः सदन के प्रति उत्तरदायी थे। इस एक्ट के अधीन विधान सभा का लोकतन्त्रात्मक बनवाया गया। उनमें पर्याप्त विचार किया गया निर्वाचित सदस्यों का सारमूल पहुँचाने रखा गया और उनका अधिकारों में वृद्धि कर दी गई।

(५) निर्वाचन और मतदाताधिकार पाचवें इस एक्ट ने प्रत्यक्ष निर्वाचनों का सूत्रपात किया और मतदाताधिकार को वृद्धि किया। निर्वाचन नियमों के अनुसार भारतवर्ष की वयस्क जनसंख्या के लगभग 10% भाग का मतदान का अधिकार दिया गया। यह स्मरणीय है कि इस एक्ट ने न केवल भागों में सुधारों के अंतर्गत एक मात्र मुख्य भागों के लिए पुनः स्थापित पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन की ही वाद में रखा अपितु इस पद्धति को पञ्जाब में सिक्खों के लिए तीन भागों को छोड़ कर बाकी सब प्रांतों में सुगोरीयों के लिए दो प्रांतों में अर्थात् भारतीयों के लिए और एक प्रांत में भारतीयों के लिए और एक प्रांत में भारतीयों के लिए आसानी से किया। इस प्रकार मोंटगु प्रतिक्रम के अर्थव्यवस्थाओं द्वारा निर्मित दोषों को उस विधान में और भी अधिक बढ़ा चढ़ा कर सम्मिलित किया गया जिसका कि निर्माण उनकी सिफारिशों के अनुसार ही किया गया था।

(६) प्रयोगशालीन व सञ्चारिकीय उपाय—छठी वा यह है कि १९१९ वा एक्ट स्पष्टतः एन प्रयोगशालीन व सञ्चारिकीय उपाय था । २० अगस्त, १९१९ की घोषणा में तो वायदा कि गये व उनकी जायगीत करने काय प्रथम प्रयोग था । उस समय भारत में जो गौरवपूर्ण प्रमाणित विद्यमान था इस एन ने उमम घोषणा सा मुधार करने की चष्टा की यद्यपि यह मुधार प्राप्ति ही था । द्वय गामन स्तम्भ फल था । साइ मेस्टा के फल में स्वच्छातन्त्र उग समय तक हाथ में हाथ मिला कर साथ साथ चलन व विण बाध्य थ जब तक कि ताकतन्त्र स्वय चतना व मोक्ष व और अकेला चतने के विश्वास योग्य न हो जाय । माफोड मुधारो ने १० वष वा नई योजना के प्राधीन की गई उनति वा अन्वयन करने के लिए और मट निचन करने के लिए कि पूण उत्तरदायी शासन के न्य की और एक वरम और प्राग बनाया जा सकता है या नहीं एक रायल कमिशन की नियुक्ति का विधान करके स्वतः हा अपनी प्रयोगशालीन व सञ्चारिकीय प्रकृति का परिचय दिया था ।

गृह-सरकार

४४ गृह-सरकार का आशय

सरकार के दो भाग—१९१९ के भारतीय गामन सम्बन्धी एन का विस्तृत विश्लेषण करने से पूर्व उस एन के प्राधीन स्थापित शासन की एक प्रमुख विशेषता की ओर इंगित कर देना बहुत आवश्यक है । यह प्रमुख विशेषता भारतीय की शासन का दो भागों में विभाजन जिनमें से कि एक भाग तो इंग्लण्ड में काय करता था और दूसरा भारत में । यह द्वधवां भारतवर्ष में ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के अनासेपन का अन्विवाय परिणाम था । भारत के पूर्ववर्ती विजता (उदाहरणार्थ मुसलमान) यहाँ स्थायी रूप से बस गए उन्होंने इसी दग की अपनी मातृभूमि और पितृभूमि बनाया । वे किसी विदेशी सत्ता के दबाव में नहीं रहे । फलतः यहाँ उन्होंने जिस शासन प्रबन्ध की नाक डाली, वह किसी भी विदेशी सत्ता के आदेश या नियन्त्रण की प्राधीनता में नहीं था । अग्रज विजताओं ने भारतवर्ष को अपना स्थायी घर बनाना स्वीकार नहीं किया । यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने यहाँ अपनी जड़ जमा ली थी परन्तु फिर भी जो अग्रज उसकी सवाध आने थ वे केवल कुछ ही समय यहाँ टहरते थे व भारतवर्ष को अपना दश कदापि नहीं मानते थे उनकी आँखें सदैव इंग्लण्ड की ओर ही लगी रहता थी और व यहाँ जैसे हा अपना काय पूरा कर लेते इंग्लण्ड की राह पकड़ते थ ।

(५) इंग्लण्ड में द्विप्राप्ति गृह सरकार—साम्राज्य की सम्पूर्ण सत्ता का स्नायु केन इंग्लण्ड हा बा रहता था । भारतीय प्रशासन की सम्पूर्ण प्रणाली यहीं से नियन्त्रित होती थी । इंग्लण्ड में विस्थापित सन्स्थापना का स्नायु नाम गृह सरकार था । इसके पाँच मह्य अंग थ—सम्राट मन्त्रिमण्डल सतद भारत में भी और उनकी कौंसिल । परन्तु भूवि गृह सरकार प्रशासन के वास्तविक दृश्य से बहुत दूर थी अतः उसका नियन्त्रण और निरीक्षण अत्यन्त साधारण प्रकृति का था ।

(ख) भारत में प्रियाशीम क्षेत्रीय और प्रांतीय सरकारें—भारतजप के तिन प्रतिनि के प्रशासन का काय स्वभाविक रूप से क्षेत्रीय और प्रांतीय सरकारों के पदाधिकारियों के द्वारा संचालित किया गया था। ब्रिटिश सरकार का यह भाग भारतजप में ही यह सरकार के अधिकारों के रूप में काय करता था।

४५ भारत मन्त्री Most

पद की प्राप्ति—भारत मन्त्री के पद का सृष्टि १८५८ में हुई थी जबकि ईस्ट इण्डिया कंपनी को समाप्त कर दिया गया था और भारत का शासन प्रबन्ध सीधा ब्रिटिश शासन के हाथों में चला गया था। बोट ग्रॉफ डा रेक्स और बोट ग्रॉफ कंपनीय पक्ष शासन सहायी तिन तिन अधिकारों का उपयोग करते थे भारत मन्त्री ने उनको उत्तराधिकार में प्राप्त किया। वह राज्य का एक प्रमुख मन्त्री ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का मुख्य होता था। इसका अभिप्राय यह था कि वह लोक-मन में बहुमत वाले दल का समर्थक होता था। वह अपने पद का उस समय सम्पादन था जबकि दल अपने मंत्रिमण्डल का निर्माण करता था। भारत मन्त्री अपने पद की दो ही परिस्थितियों में यागता था—या तो उस समय जबकि मंत्रिमण्डल लोक सदन का विश्वास प्राप्त था उस समय जबकि लोक सदन उससे पूर्व अपने यथाक्रम जीवन के अन्त पर वह (मंत्रिमण्डल) भंग हो जाता। भारत मन्त्री का पद मुख्यतः उत्तर-दाक्षिण के मिडल क के अनुकूल था। भारत-मन्त्री पूर्णतः ब्रिटिश संसद का एक अधिकारी या मेम्बर था वह अपनी नीतियों और कर्तव्यों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश-संसद भारत मन्त्री के द्वारा ही भारत प्रशासन का निष्पादन व निरीक्षण करती थी।

१९१६ के एक्ट ने एक असंगति को दूर कर दिया—ब्रिटिश संसद के एक अधिकारी अथवा संसद के रूप में भारत मन्त्री का पद का ऊपर जो बलान दिया गया है उससे यहो निष्पत्ति निकलता है कि भारत मन्त्री का बतल अपने स्वामी अर्थात् ब्रिटिश संसद में ही भिन्नता पाहिए परन्तु १९१६ के भारतीय शासन सन्वधि एक्ट के पारित होने के पूर्व ऐसा नहीं था। उस समय तक भारत मन्त्री एक उसके विभाग के अन्तर्गत भारत ब्रिटिश-संसद बतल नहीं करती था अर्थात् वह भारत के ही मन्त्री पदता था। यह बात नीति विरुद्ध थी और नीति विरुद्ध भी। इस पदनिर्देश के अन्त में यह तर्क दलील उपस्थित की जाती थी कि चूंकि यह व्यय भारतीय प्रशासन के निरीक्षण में आया जाता है अतः इसका भार भारत के ही कंधों पर पड़ना चाहिये। यह विरुद्ध अनिर्वाहवादा था और उक्त रूप में इस तथ्य की पूर्ण उपेक्षा कर दी गई थी कि भारत का और भारतीय जनता का उस मन्त्री पर जिसके लिए उस प्रतिबन्ध लागू रूप की शक्ति व्यय करनी-पड़ता थी तिनके नीचे नियम नहीं था। यह बात निषेध विरुद्ध थी क्योंकि अन्तर्गतियों (Dominions) और उपनिवेशों के लिए जो मन्त्री नियुक्त होते थे उन सबको ब्रिटिश राजकीय से अन्तर्गत मिला था। इस कृत-भेदमात्र का भारतीय लोकमत ने सख्त विरोध किया था। १९१६ के एक्ट ने

इस भ्रष्टगति को दूर कर दिया और निर्धारित किया कि भारत मन्त्री का वेतन उसके उपमन्त्रियों का वेतन और उसके विभाग के अन्य व्यय भारतवर्ष की आय में से चुकाने से बचाय ससद द्वारा प्रदत्त राशि में से चुकाए जा सकते हैं और भारत मन्त्री का वेतन इसी प्रकार चुकाया जायगा। इस सम्बन्ध में जायगा और सकते हैं। शर्तों का प्रयोग अत्यन्त ही धीरे-धीरे किया जा सकता है कि जन्मे ही एकट्ठ प्रियारूप में परिणत हुआ भारत मन्त्री का वेतन तो ब्रिटिश आय में से चुकाया जाने लगा परन्तु विभाग के खर्चों के लिए ब्रिटिश राजकोष ने १५० ००० पौंड वार्षिक का ही अनुमान निश्चित किया। परन्तु इनकी अल्पराशि से भारत मन्त्री के विभाग का सारा खर्चा नहीं चल सकता था फलतः बाकी सारा खर्च भारत के रुपये पड़ना था।

✓ परिवर्तन का अध्यात्मिक महत्व—अध्यात्मिक दृष्टि से हम परिवर्तन का बहुत अधिक महत्व था। इसका अर्थिप्राय यह हुआ कि भारत मन्त्री के ऊपर ब्रिटिश ससद का सीधा नियन्त्रण स्थापित हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कम से कम मर्यादित दृष्टि से ब्रिटिश ससद को भारत के मामलों में हस्तक्षेप करने का और भारत मन्त्री व उसके विभाग की नीतियों की देखरेख करने तथा उन्हें निर्देश देने का सदन ही अधिकार प्राप्त था। परन्तु यह नियन्त्रण उस समय जबकि ससद का भारत मन्त्री के वेतन और उसके विभाग के लिए कुछ धन प्रदान करने की नीयत धार्मिक प्रत्यक्ष और नियमित हो गया। वार्षिक बजट में इस प्रयोजन के लिए जो राशि स्वीकृत की जाती थी उसके मतदान के अवसर पर भारतीय मामलों में स्वभावतः ससद के ध्यान को अपनी ओर अधिकधिक आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया।

भारत मन्त्री के अधिकार—जसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारत मन्त्री ब्रिटिश ससद का अधिकारता था। उसका कर्तव्य यह था कि वह भारत के शासन और राजस्व से सम्बन्धित समस्त क्रिया कर्माणि का निरीक्षण व नियन्त्रण करे। १९१६ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट ने उल्लिखित रूप से इसको उपबोधित किया। इस एक्ट ने भारतवर्ष के गवर्नर जनरल के लिए और उसके माध्यम से प्रांतीय गवर्नरों के लिए यह आदेश्यक कर दिया कि वे सभी महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में भारत मन्त्री को निरंतर सूचना देते रहें व उनका आदेशों का उचित रूप से पालन करे। भारतवर्ष में साम्राज्य जितनी भी नियुक्तियाँ करत थे वे सब भारत मन्त्री के परामर्श के अनुसार करत थे। भारत मन्त्री को यह अधिकार प्राप्त था कि वह जिसको चाहे अपने पद से हटा करे। उसकी स्वीकृति के बिना विनिश्चित महत्त्व से ऊँचे वेतन वाले किसी भी पद का न तो निर्माण हो और न उन्मूलन ही किया जा सकता था। अखिल भारतीय सभाओं की भरती और उनके नियन्त्रण का दायित्व भी उसी के कंधों पर था। व्यवस्थापिका क्षेत्र में भी अन्तिम सत्ता का वही उपभाग करता था। भारतीय व्यवस्थापिका अधिकांश प्रांतीय विधान सभाओं में कोई भी महत्वपूर्ण कानून उसकी अनुमति के बिना पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता था। यही बात विदेशी विषयों के ऊपर भी लागू होती थी। व्यय या कर के कोई भी नए मुद्दे भारतीय बजट या

प्रान्तीय बजटों में उसकी सहमति के बिना पुनर्स्थापित नहीं किए जा सकते थे। यस्तुत भारत मन्त्री का वित्तीय नियंत्रण इतना अधिक व्यापक था कि बहुधा यह कहा जाता था कि उसकी स्वीकृति के बिना भारतवर्ष में एक घाना तक भी खर्च नहीं किया जा सकता था।

१९१६ के एक्ट के अधीन भारत मन्त्री की सत्ता का शिथिलीकरण—कानूनी दृष्टि से १९१६ के एक्ट ने भारत मन्त्री को भारत के शासन व राजस्व विषयक मामलों में पूरा स्वामी बना लिया था। तथापि प्रा. तों में उत्तरदायी शासन व प्राथमिक सूत्रपान व भारतीय (के. पी.) व्यवस्थापिका के अधिकारों का विस्तार को दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि भारत मन्त्री की सत्ता को कुछ विधिल कर दिया जाए। हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया कि जहाँ तक सम्भव हो भारत मन्त्री किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। सरलित और केन्द्रीय विषयों के सम्बन्ध में भी यह स्पष्ट कर लिया गया कि यदि भारत सरकार और भारतीय व्यवस्थापिका समझे किसी विशुद्ध भारतीय विषय में एक मत हो तो भारत मन्त्री उनको अपनी स्वीकृति के बिना करने से और कुछ आवश्यक अवसरों को छोड़कर उनके कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। मस. के दोनो मन्त्रों की संयुक्त प्रवर समिति ने विनोद स्थायित्व अधिनियम का अंगीकार करने की सिफारिश उपस्थित की। यह सुझाव दिया गया कि आदान निदान करों के बारे में भारत की व्यवस्थापिका व सरकार समझौते के द्वारा उन करों को लागू करने के लिए ब्रि. व ब्रिटिश सौदागरों के हितों की अपेक्षा न रखते हुए भारतीय सौदागरों व उपभाषियों के हितों में आवश्यक समझौते का स्वतंत्र हानी चाहिये। इस अधिनियम की सिफारिश इस मन्त्रों को कि भारतवर्ष की वित्तीय नीति इंग्लैण्ड के वित्तीय के हित में हानि न होना प्रभावित की जाती है दूर करने के दृष्टिकोण से उपस्थित की गई थी।

भारत मन्त्री का गवर्नर जनरल के साथ सम्बन्ध—भारत मन्त्री के अधिकारों के उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कानूनी दृष्टि से यह भारतीय प्रशासन के प्रमुख गवर्नर जनरल का अधिपति होता था। गवर्नर जनरल के लिए यह आवश्यक था कि यह भारत मन्त्री के आदेशों का उचित रूप से पालन करे। परन्तु उन दोनों के सम्बन्ध

१ मुद्रा— दो इण्डियन कास्टीट्यूशन भाग २ पृ. ५२३।

यह देवना बहुत युग्म है कि ब्रिटिश मन्त्रों के प्रति प्रत्यक्ष उत्तरदायी भारतीय सरकार (अर्थात् गवर्नर जनरल और कार्यकारिणी परिषद) और भारतीय लोकमत का प्रतिनिधित्व करने वाली भारतीय व्यवस्थापिका मन्त्रों को प्रियता के सम्बन्ध में जा भारतीय वित्तीय के अनुकूल और ब्रिटिश वित्तीय के प्रतिबन्ध पड़ते थे प्रकृत एकमत नहीं हो पाती थी। अतः यह पवित्र सिफारिश जितनी दमने में मान्य पड़ती थी उमसे दूनतर युग विधायिनी थी।

बहुत कम कानून के अन्तर्गत अनुष्ठान होने थे। गान्धेय जनरल भारत में ही उपस्थित रहता था यहाँ दार्शनिक और व्याख्या के माध्यम से उत्तराधिकारियों को उभारने की योजना पर था और यह सम्भव था। यदि वह भारतीय में मान सम्मान की दूरी पर विराजमान भारत मंत्री के हाथों गान्धेय विचारों को प्रस्तुत करता। प्राथमिकता में वाप्य होने पर गहन में काम करने के समय ही साधन विचार कर करने पड़ने थे। भारत मंत्री ने भी उम्मेदों को बाध करने की पर्याप्त स्थिति में देखी थी। गान्धेय मंत्री एसा करने के लिए तैयार था। यह भारतीय में मनुष्य के सम्मान की नींव के फायदे पर ध्यान स्थित रह कर देश के शासन का पुनर्गठन निश्चित करने में असमर्थ था। हम सम्भव में गहन कुल व्यवस्था तत्पर पर भी निर्भर रहना था। यदि भारत मंत्री कोई एक स्वयंसेवक का पुत्र होता उम्मेदों को पाम कोई निश्चित नीति होती जिससे वह काम निश्चित करना चाहता तो वह गवर्नर जनरल को अपने अधिकारों के रूप में प्रयुक्त कर सकता था। हमें विपरीत यदि भारत मंत्री गवर्नर स्वयंसेवक का वह गवर्नर जनरल प्रमत्त होता तो भारत मंत्री गवर्नर जनरल के कार्यों में विशेष स्थान देकर करता था उसे मनचाही नीति बरतने देता था और उम्मेदों के दस निष्कर्षों में से नौ में हमी भर देता था। हम प्रकार यदि भारत मंत्री के प्रति गवर्नर जनरल की आधीनता के तथ्य का विरोध नहीं किया जा सकता तो प्रत्यक्ष रूप से ही जा सकता है कि वे एक ही ऊँचे पद पर पड़े होने वाले साथी व सहयोगी थे परन्तु उनके धारणों में थोड़ा सा अंतर था।

४६ इण्डिया कौंसिल

इसकी सृष्टि जब और क्यों की गई—इण्डिया कौंसिल की सृष्टि १८५८ में ईस्ट इण्डिया कंपनी के भाग होने के पश्चात् की गई थी। जमा कि हम ऊपर कह चुके हैं भारत मंत्री उन सब शक्तियों का उत्तराधिकारी बन गया जिनका वह पहले बोर्ड आफ कंट्रोल व कोर्ट आफ डायरेक्टर्स प्रयोग करते थे। सत्त के सर्वोच्च व अन्तिम नियंत्रण के अधीन भारतीय प्रशासन के निरीक्षण व संचालन का काम उसके सुपुत्र किया गया। यह आवश्यक था क्योंकि भारतीय सरकार एक विदेशी नीतिशाही थी जिसके ऊपर भारतीय जनता का प्रभुत्व भी नियत नहीं था। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत भारत मंत्री का निरीक्षण व नियंत्रण ही इस नीतिशाही को निरन्तर स्वेच्छाचारी बनने से रोक सकता था। परन्तु यह स्पष्ट था कि भारत मंत्री के पद पर किसी एक व्यक्ति की नियुक्ति भी संभव सम्भाव्य थी जिससे भारत के बारे में बहुत कम ज्ञान हो या बिल्कुल ही ज्ञान न हो। यदि उम्मेदों अपने मूल्य अधिकारों का ठीक ठीक प्रयोग करना था तो यह आवश्यक था कि उम्मेदों को ऐसे व्यक्तियों की सहायता मिलना कर जिन्होंने भारत की दशा के बारे में उच्चकोटि का ज्ञान हो जो भारतीयवप में काफी समय तक रह चुके हों काम कर चुके हों।

ये विशेषण भारत मंत्री का माग-दण्ड कर सकते थे, उसे परामर्श दे सकते थे ताकि वह अपने कर्तव्यों का उचित रूप में पालन कर सकें। इस प्रकार इण्डिया कौंसिल का उद्भव हुआ।

इण्डिया कौंसिल का संज्ञित इतिहास—१८५८ के एक क उपन्यास के माध्याम इण्डिया कौंसिल में १५ सदस्य होते थे जिनमें से कम-से-कम ९ न भारतवर्ष में १० वर्ष तक काम या निवाम किया हो और अपनी नियुक्ति की तिथि १० वर्षों से अधिक के पूर्व भारत का न होना था। वे थोड़े आचरण परत अपने पत्र पर नियुक्त रहते थे और १२०० पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन पाते थे। कौंसिल का वाय यह था कि वह भारतीय सरकार के माध्यम से पत्र-व्यवहार हो व इंग्लैण्ड में भारतीय सरकार से सम्बन्धित जो कुछ भी कार्य जापार हो उन सबका भारत मंत्री के आदेशों के अनुसार प्रवृत्त करे। कामल की मन्ताह में एक बार बैठक हानी थी और भारत मंत्री उसका अध्यक्ष होता था। कुछ उल्लिखित विषयों की छोड़कर भारत मंत्री कौंसिल के बहुमत के निर्णय का उल्लेखन कर सकता था। हाँ उसे उन कारणों की व्याख्या आवश्यक करनी पड़ती थी जिनके फलस्वरूप कि उसने ऐसा किया। इसके अन्तर्गत भारत मंत्री गावनायक आवश्यक प्रपत्तियों को जो कि भारत सरकार से सम्बन्धित है बिना कौंसिल के समझ उपस्थित किए ही भेजा या प्राप्त कर सकता था।

१८८६ में इण्डिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या को १५ से कम कर १० कर देने का निर्णय किया गया। १९०७ में इसमें पुन परिवर्तन किया गया। अब की बार यह निर्धारित किया गया कि कौंसिल के सदस्यों की संख्या १५ से अधिक और १० से कम नहो होना चाहिए। नए एक न प्रत्येक सदस्य का कार्य काल ७ वर्ष निर्दिष्ट किया व वार्षिक वेतन १६०० पौ० से घटाकर १००० पौ० कर दिया। उसी वर्ष सप्रेम्यम बार दो भारतीयों को इण्डिया कौंसिल में नियुक्त किया गया।

माटफाट सुवारा के पश्चात् इण्डिया कौंसिल में परिवर्तन—१९१६ के एक के माध्याम इण्डिया कौंसिल के संविधान में और भी परिवर्तन किए गए। (१) अब सत्सक सत्स्यो की संख्या ८ से कम नहीं और १२ से अधिक नहो रखी गई। इन सत्स्यो में कम से कम आधे ऐसे होते थे जिन्होंने कम से कम १० वर्ष तक भारतवर्ष में कार्य या निवाम किया हो और इस दश की अपनी नियुक्ति की तिथि के ५ वर्ष पूर्व न छोड़ा हो। (२) इस पत्र का वाय-काल ७ वर्ष से घटाकर ५ वर्ष का कर दिया गया। (३) प्रत्येक सदस्य की वार्षिक माय पुन बढ़ाकर १२०० पौ० कर दी गई। प्रत्येक भारतीय सदस्य को ६०० पौ० का अपर मत्ता मिलता था। (४) भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ३ कर दी गई। सन् १९१६ के एक के अनुसार भारतीय हाई कमिश्नर का एक नया पद बनाया गया। हाई कमिश्नर इंग्लैण्ड में भारत सरकार के एजेंट की हैसियत से कार्य करता था। भारतीय हाई कमिश्नर सपरिपद् गवर्नर जनरल के माध्याम था। (५) कौंसिल का बैठकें अब सत्साह में एक बार नहो अपितु महान में एक बार

लिए हुए परिवर्तनों का क्या प्रभाव होता है यह न मान्य हो। इस बीच भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् को परिवर्द्धित किया जाएगा और इसमें जाना के अधिक प्रतिनिधि जान का यत्न किया जाएगा तथा शासन प्रबंध पर प्रभाव डालने का सत्ता अधिक प्रवृत्त दी जायेगी। इस प्रकार नूतन एक्ट न जिग का यह व्यवस्थापिका को सृष्टि की वह मात्रों मिष्टो सुधारा के अधीन यत्नमान व्यवस्थापिका से अधिक लोकतन्त्रवादी थी। परन्तु इस परिवर्द्धित और अधिक प्रतिनिधिक व्यवस्थापिका को कार्यकारिणी अर्थात् सपरिषद् गवर्नर जनरल पर नियंत्रण स्थापित करने का अधिकार नहीं दिया गया। कीय कार्यकारिणी अब भी ब्रिटिश सत्ता के ही प्रति उत्तरदायी बनी रही। वही किसी भी प्रकार भारतीय जनता व्यवस्थापिका में उसके प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं थी।-

४६ गवर्नर जनरल Most

एक्ट का इतिहास—१९१९ के एक्ट न भारतवर्ष की कार्यकारिणी शक्ति सपरिषद् गवर्नर जनरल में स्थित करनी। भारतवर्ष के गवर्नर जनरल के एक्ट की सृष्टि १७७३ के रजुलेंट एक्ट के अधीन की गई थी। इसके पूर्व बंगाल बम्बई और मद्रास की तीनों प्रसीडेंसिया एक दूसरे से पृथक् था उनका एक एक गवर्नर होता था। भारत में अंग्रेजों के अधीन जो प्रदेश था उनका नियंत्रण व शासन प्रबंध करने के लिए कोई एक केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। परन्तु इस प्रकार क्या तक काम चल सकता था? एक केन्द्रीय सत्ता का स्वरूप और नुरत आवश्यकता थी। १७७३ के एक्ट न इस आवश्यकता की पूर्ति की। इस एक्ट के अनुसार बंगाल का गवर्नर बंगाल का गवर्नर जनरल बना दिया गया और उन तीनों प्रसीडेंसियों के शासन प्रबंध का निराक्षण व नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त हो गया। एकीकरण की इस प्रक्रिया ने बहुत धीरे धीरे सफलता प्राप्त की क्योंकि जो प्रसीडेंसिया पूर्व स्वतंत्र थी उन्हें केन्द्रीय सत्ता के नियंत्रण का अभ्यस्त होने में कुछ समय लगा। १७८४ के एक्ट न मुद्रा नीति और प्रशासन के मामलों में तीनों प्रसीडेंसियों के ऊपर बंगाल के गवर्नर जनरल की सर्वोच्च सत्ता व नियंत्रण का और भी अधिक बलपूर्वक प्रतिपादन किया। १८३३ के एक्ट ने बंगाल के गवर्नर जनरल का नाम बतल दिया। अब बंगाल के गवर्नर जनरल का भारत का गवर्नर जनरल कहा जाना लगा। इस एक्ट के अनुसार सपरिषद् गवर्नर जनरल को कम्पनी के समस्त भारतीय प्रश्नों के लिए नियम बनाने का आदेश देने का और उनका नियंत्रण व संचालन करने का अधिकार मिल गया। परन्तु बंगाल के शासन प्रबंध का सीधा उत्तरदायित्व अब भी उसके ही सिर रहा। १८५४ के एक्ट द्वारा उस इस भार से छुटकारा मिला। एक्ट ने बंगाल के लिए एक उप गवर्नर जनरल की नियुक्ति कर दी। एक्ट के पश्चात् एस्ट एजिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत का शासन प्रबंध ब्रिटिश क्राउन के हाथों में चला गया। इसके कारण भारतीय गवर्नर जनरल की स्थिति में भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। अब वह वायसराय हो गया तथा भारत में ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से काम करने लगा।

मोटपोट सुधारों व अग्रगत गवर्नर जनरल की विमुक्ति पत्रावधि और चेतन—१८५८ व १८५९ के पश्चात् अर्थात् जिनमें भी एका अधिनियमिन एका प्रथम से किसी ने भी गवर्नर जनरल की सत्ता व शक्ति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है कि मोटपोट सुधारों में प्राप्त मन्त्रिक उत्तरदायित्व की पुनः स्थापना के अन्तर्गत गवर्नर जनरल की शक्ति में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं किया। भारत के गवर्नर जनरल का पद महान् उत्तरदायित्व धारण करने वाला परिपूर्ण था। गवर्नर जनरल की नियुक्ति सम्राट् ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का सलाह पर किया करते थे। इस सम्प्रदाय में प्रधान मन्त्री भारत में जो स परामर्श ले लिया करते थे। साधारणतः उसका कार्यकाल पाँच वर्ष का होता था। गवर्नर जनरल को २५६,००० रु० वार्षिक वेतन व रहने के लिए बिना किराए का आवास मिलता था। इसका अलावा उसे १,७२,७०० रु० वार्षिक मन्त्राधिकार के विभिन्न भत्त प्राप्त होते थे। वायून निर्माण, वित्त व प्रशासन के क्षेत्र में उसके अधिकार बहुत बढ़े थे। भारत के शासन सम्प्रदाय की पूरी जिम्मेदारी उसके कंधों पर थी। देश के मन्त्रिक व नागरिक शासन का संचालन निरीक्षण व नियंत्रण करने का उन पूरा अधिकार प्राप्त था। अन्तर्गत मन्त्रिक और बम्बई व गवर्नर की छोटकर बाकी सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ वही करता था। भारत मन्त्री द्वारा नियुक्तियाँ की जाने की स्थिति में भी गवर्नर जनरल का परामर्श लिया जाता था और साधारणतः उसका अन्तर्गत स्वीकार की जाती थी।

गवर्नर जनरल का विधायिकी शक्तियाँ—गवर्नर जनरल की विधायिका शक्ति का विषय भी। व्यवस्थापिका समाप्ता व मन्त्रिकों का आदेश करना उनका अधिकार था और उनका कार्यपालक अन्तर्गत मन्त्रिकों का सलाह लेना था। व्यवस्थापिका समाप्ता व निर्वाचन विधायक और स्थान का भी वह अधिकार रखता था। उसे व्यवस्थापिका समाप्ता में मापण देने का अधिकार था। वह चाहता तो ऐसा मन्त्रिक अन्तर्गत मापण ले सकता था और चाहता तो उसे व मन्त्रिक अधिकार में मापण दे सकता था। कोई राज टांग न था। अन्तर्गत एक विषय (सांख्यिक अन्तर्गत भारत की शासन समाप्ता वदिक मन्त्रिकों द्वारा मापण विषय अन्तर्गत समाप्ता) व जिनके अन्तर्गत गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना व्यवस्थापिका समाप्ता में कोई प्रस्ताव पेश न किया जा सकता था। यदि वह किसी विषय या उसकी दृष्टि धारण का देश की शक्ति व सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता तो उन पर विचार करना ले सकता था। व्यवस्थापिका द्वारा पारित प्रत्येक विधायक व अन्तर्गत उसका स्वीकृति आवश्यक होती उसका स्वीकृति के बिना कोई भी कानून मन्त्रिकों द्वारा पेश न किया जा सकता था। यदि व्यवस्थापिका किसी विधायक को अन्तर्गत अन्तर्गत परन्तु गवर्नर जनरल उस ब्रिटिश भारत की शक्ति व सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक समझता तो वह अन्तर्गत अन्तर्गत द्वारा ही उस विधायक का कानून पारित कर सकता था। वायमराय (या गवर्नर जनरल) की इस शक्ति की प्रमाणीकरण की शक्ति कहते थे। इस प्रकार गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका व अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत (नियेव १८५८)

प्राप्त था। गवर्नर जनरल अध्यादेशों को जारी करने का नून निर्माण के अपने प्रत्यक्ष अधिकारों का प्रयोग कर सकता था। अध्यादेश एक विशेष प्रकार का कानून होता था जिसे कि घापातों में ६ मास के लिए पारित किया जाता था। जब वह अध्यादेश होता तो उसका वही जोर होता था जो कि व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी कानून का।

गवर्नर जनरल की वित्तीय शक्तियाँ—गवर्नर जनरल की वित्तीय शक्तियाँ भी बहुत व्यापक व प्रभावशाली थीं। ब्रिटिश राज्य परिषद् और व्यवस्थापिका सभा में एक ही समय गवर्नर जनरल की अनुमति से उपस्थित किया जाता था। दोनों सभों को बजट पर वाद विवाद करने का अधिकार था परन्तु उनकी सभों पर विधान-सभा (निम्न सदन) में ही मत लिये जाते थे। बजट की मदें दो प्रकार की होती थीं। पहली वे जिन पर व्यवस्थापिका सभा का कोई अधिकार न था और दूसरी वे जिनका नियंत्रण वह सभों द्वारा करती थी। सर्वे की निम्नलिखित मदों पर सदन को वोट देने का अधिकार न था—भारतीय ऋण का सूँ ऐसा खर्च जिसकी रकम कानून से निर्धारित की गई हो उन लोगों को पेंशन या तनखाह जो सम्राट द्वारा प्रथम सम्राट की अनुमति से भारत में आने द्वारा नियुक्त किये गये हो चौकसमिश्रों प्रथम जमीनदार कर्मियों का वेतन व खर्च जिसे सपरिषद् गवर्नर जनरल ने धार्मिक राजनीतिक प्रथम सेना सम्बन्धी ठहराया है। गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना व्यवस्थापिका व सदस्य इन सभों पर वाद-विवाद तक भी न कर सकते थे। यह स्मरण है कि ८०/बजट पर मतदान न हो सकता था। इसका अभिप्राय यह हुआ कि गवर्नर जनरल बजट व इतने भाग को व्यवस्थापिका के अनुमोदन के बिना भी मन चाहे ढंग से खर्च कर सकता था। गवर्नर जनरल का अधिकार था कि वह व्यवस्थापिका सभा द्वारा अस्वीकृत माँगों को अपनी प्रत्यानयन की शक्ति द्वारा स्वयं मजूर करके व्यवस्थापिका सभा का निश्चय रद्द कर दे। इस प्रकार हम देखते हैं कि गवर्नर जनरल करीब करीब पर तरोचे से भारत का राजकोष का स्वामी था।

गवर्नर जनरल की वायफारिणी परिषद—ऊपर गवर्नर जनरल को जिन व्यापक शक्तियों का उल्लेख किया गया है उनका प्रयोग करने में उसकी वायफारिणी परिषद उसे सलाह व सहायता देती थी। तथापि परिषद केवल एक परामशदात्री समिति—मात्र ही थी। अधिकतर परिषद गवर्नर जनरल के इशारे पर नाचा करती थी। यदि वह कभी गवर्नर जनरल के विरुद्ध भी जाती तो गवर्नर जनरल उसके नियंत्रण को ठुकरा सकता था।

गवर्नर जनरल एक धार्मिक शासक नहीं अपितु स्वैच्छाचारी शासक था—भारतीय गवर्नर जनरल एक अनुशासक नौकरशाह था। उसके साधारण और असाधारण दोनों तरह के व्यापक अधिकारों ने उसे सामर्थ्यवान् सत्ताधारी पुष्ट बना दिया था। भारतवर्ष का शासन प्रबंध में उस का अधिकार प्राप्त थे वे उन अधिकारों से बहुत बढ़ चढ़े थे जिनका कि उपयोग अमेरिका के राष्ट्रपति और इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री

अपने अपने दशों में करते थे। वह भारत में वयार्थिक शासन की तरह नहीं
 अनिनु स्पेसिफिकरी की तरह शासन करता था। यह सही है कि ब्रिटिश सम-
 भारत मंत्री व द्वारा उस पर अपना नियम नग्न रखता था परन्तु जता कि हम ऊपर वह
 चुके हैं इस नियम का वाक्यद भी गवर्नर जनरल का पराम्प स्वतंत्रता प्राप्त थी।
 चूंकि वह मन्त्रालय का प्रतिनिधि था इसीलिए उसका राजकीय गौरव व दबदबा बहुत
 बढ़ा था। जिस दूसरे राज्यों व प्रमुक्तों को क्षमा और प्रबलम्बन करने का अधिकार
 प्राप्त होता है उस हा भारत व गवर्नर जनरल को भी यह अधिकार प्राप्त था।
 अपने कार्यों के सम्बन्ध में वह पूरा कानूनी विमुक्ति का उपयोग करता था। काय-
 कारिणी जा कि उस सलाह व सहायता देने व लिये था, उसका हाथों म तिलोना प्राप्त
 थी। वह उसके नियमों की स्वतंत्रता पूरा कर सकता था। व्यवस्थापिका में
 निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत था लेकिन गवर्नर जनरल उसकी इच्छा को भी रद्द
 कर सकता था। मत्र तो यह है कि किसी भी उत्तरदायी यहाँ तक कि अनुत्तरदायी
 वायकारिणी को भी अपने प्रबुर अधिकार प्राप्त नहीं थे जितने कि भारत के गवर्नर
 जनरल को प्राप्त थे। यह कहा जाता था—“इंग्लण्ड का सम्भार शासन करता
 है परन्तु शासन नहीं करता अमेरिका का राष्ट्रपति शासन करता है परन्तु शासन
 नहीं करता फ्रांस का राष्ट्रपति न शासन करता है न शासन करता है परन्तु भारत का
 गवर्नर जनरल शासन और शासन दोनों करता है।”

५० गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी-परिषद

१०१९ व एक्ट के अधीन किए गए परिवर्तन—बंगाल बम्बई और मद्रास का
 तीन प्रभागीयों को एक व्द्वारा सत्ता के अधीन करने व लिए जब गवर्नर जनरल के
 पर की शक्ति की गई उसी समय गवर्नर जनरल का सहायता व पराम्प देने व शक्ति
 कोण स १७७३ व रगुवर्ति एक्ट व अंतगत एक वायकारिणी परिषद का भी
 निर्माण किया गया। कार्यकारिणी-परिषद् के सचिवाय व दियति में निरन्तर परि-
 यतन होता रहा। १७८६ के परवान् स गवर्नर जनरल का परिषद् के बहुमत का
 प्रमाण करने का अधिकार प्राप्त हो गया था यदि वह इस अधिकार का प्रयोग
 करना भारतवर्ष का शांति सुव्यवस्था व सुशासन के लिए आवश्यक समझता।
 १८१६ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट ने वायकारिणी-परिषद् की रचना म कनि-
 पय परिवर्तन उपस्थित किए। उसमें सत्ता की सत्ता के ऊपर जा अनुविहित
 बर्तनी थी, उसे हटा दिया गया। परन्तु यह निर्दिष्ट किया गया कि कौमिन व कम
 म कम तीन सदस्य ऐसे हों चाहिए जो दस वर्ष तक भारत म सरकारी नौकरी
 कर चुके हों और कम से कम एक मन्स्य ऐसा प्रवश्य होना चाहिये जो इंग्लण्ड या
 स्वातन्त्र्य का बरिस्टर अर्थात् भारतवर्ष का वकील रहा हो और वर्ष छ हम दस
 वर्ष तक किसी हाइकोर्ट में बकालत करता रहा हो। यदि परिषद् की बैठकें प्रांतीय
 गवर्नरों के अधीनस्थ प्रान्तों में हानीं, तो वे उसमें भागधारण सत्ता के रूप में नहीं
 बैठ सकते थे।

कायकारिणी परिषदों की नियुक्ति कायचि और वेतन—कायकारिणी परिषद के सदस्य भारत मन्त्री की सलाह पर सभा के द्वारा नियुक्त किए जाते थे। उनके वेतन की अवधि पाँच वर्ष की थी परन्तु उन्हें पुनर्निर्भूत किया जा सकता था। प्रत्येक कायकारिणी पाप के द्वाय व्यवस्थापिका के दोनो सभना म म विगा एन के लिए मनोनीत किया जाता था। परन्तु कायकारिणी परिषद के सम्म्य सभन के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे यदि सभन उनके ऊपर अवशिष्ट का प्रस्ताव भी पारित कर देता तब भी उन्हें हटाया नहीं जा सकता था। कायकारिणी परिषद के सम्म्य म से एक की नियुक्ति गवर्नर जनरल करना था। गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त सम्म्य परिषद के उप सभापति के रूप में कार्य करता था। गवर्नर जनरल और प्रधान सभापति (कमाण्डर इन चीफ) को छाडकर प्रत्येक कायकारिणी परिषद का सम्म्य ८० ० र प्रतिवेतन वतन प्राप्त करता था।

कायकारिणी पापद की शक्तिय व कृत्य—सपरिषद गवर्नर जनरल का काय भारतवप मे शांति सुवस्था व सुशासन का संचालन करना था। काय कारिणी के पापद पोर्टफोलियो पद्धति के अनुसार कार्य करता था अर्थात् प्रत्येक पापद के अधीन एक या एक से अधिक विभाग रहते थे। भारतकाड सुपारा के दरम्यान कायकारिणी परिषद मे गवर्नर जनरल व प्रधान सभापति का मित्राकर वुन ६ सदस्य सम्मिलित थे। वैशिक व राजनीतिक विभाग गवर्नर जनरल व अधीन व और सुरक्षा व सभा विभाग प्रधानमन्त्री की अधीनता में थे। अवशिष्ट विभाग म गृह विभाग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते थे अर्थात् पाप व हाथ म रख गते थे और भारत व सदस्य का शिक्षा स्वास्थ्य तथा धर्म विभाग से ही सभाप प्रहण करना पडता था।

पोटफोलियो प्रणाली—पोटफोलियो परिषद के सम्म्य के बाध गवर्नर जनरल के द्वारा वितरित किए जाते थे। पोर्टफोलियो पद्धति के सन्दर्भ में सभन विभाग से सम्बद्ध सभी मामलों को प्रत्येक सदस्य स्वयं प्रतापवक निबटालता था। उन विषयों को जो कि अधिक महत्व के थे और प्रांतीय सरकारों के दृष्टिबिधुओं का प्रत्याश करने के गवर्नर जनरल की सलाह से निश्चित किया जाता था। परन्तु वे सब विषय जो कि बहुत ही अधिक महत्व के होते थे और जनता प्रभाव दो या दो से अधिक विभागों पर पडता था पूरी कायकारिणी परिषद के सम्म्य विचाराय उपस्थित किए जाने थे।

कायकारिणी परिषद की बटके—गवर्नर जनरल का प्रमुख—साधारणतः कायकारिणी परिषद की बटके एक सप्ताह में एक बार हुआ करता थी। बटके गवर्नर जनरल के द्वारा प्राकृत होती थी। बटके की अध्यक्षता गवर्नर जनरल करता था और उसकी अनुमति म उसके द्वारा मनोनीत उप सभापति। गवर्नर जनरल बटके के लिए कायक्रम का निश्चित करता था। परिषद के निश्चय समेत के साधारण

पर होते थे, परन्तु गवर्नर जनरल को अधिकार था कि यदि वह देश की शान्ति व सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता तो परिषद् के निष्णयो के प्रतिकूल भी जा चाहता मो कर सकता था। तब तो यह है कि गवर्नर जनरल परिषद का पूरे तरीके से स्वाधी था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी व ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में आकाश-पाताल का अन्तर था। परिषद व सदस्य गवर्नर जनरल के सहयोगी नहीं, सेवक मात्र थे। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्य प्रधानमंत्री के सेवक नहीं सहयोगी होते हैं।

कार्यकारिणी परिषद व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी—ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और कार्यकारिणी परिषद में एक और बड़ा अन्तर था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के रूप में कामनसभा के प्रति उत्तरदायी होता है और उसके द्वारा ही है। इसके विपरीत भारतीय कार्यकारिणी परिषद व सदस्य सदस्यों में से नहीं चुने जाते थे। चूंकि कार्यकारिणी परिषद व गवर्नर जनरल की सलाह पर भारत मन्त्री करता था अतः उनमें किसी भी प्रकार की उत्तरदायिता नहीं होती थी। इसके सिवा परिषद व सदस्य सामुदायिक या व्यक्तिगत रूप से सरकार के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। कोई भी सदस्य चाहे उसके कार्यक्षेत्र में कितना ही बदनाम क्यों न हो व्यवस्थापिका के द्वारा अपने स्थान से हटाया जा सकता था। दूसरे शब्दों में कार्यकारिणी परिषद सिर से पर तक एक नीकरशाही निकाय थी। उसका सदस्य गवर्नर जनरल के मांग पर बनता था, जो कि वस्तुतः एक अधिनायक होता था कार्य करते थे।

✓ ५१ केंद्रीय व्यवस्थापिका

निम्नलिखित पद्धति का सूत्रपात—१९१६ के एक्ट व अनुसार भारतीय व्यवस्थापक मण्डल में अन्तः परिवर्तन किए गए। यद्यपि केंद्रीय कार्यकारिणी केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी परन्तु केंद्रीय व्यवस्थापिका में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि करके उसका स्वरूप को और अधिक लोकतांत्रिक बनाने की चेष्टा की गई। अन्ततः भारतीय व्यवस्थापिका का केवल एक ही सदन था, अब उसके दो सदन कर दिए गए। एक का नाम बौमिल आफ स्टेट्स अथवा राज्य परिषद था और दूसरे का नाम लजिस्लेटिव असम्बली या विधानसभा था। यह पद्धति विश्व के अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में प्रचलित पद्धति के अनुरूप थी। परन्तु भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार एक और विचार से प्रभावित हुई थी। चूंकि अब लोकतन्त्र में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत था, अतः सरकार एक ऐसे कुनीत-नीच सदन की स्थापना के लिए उत्सुक हो गई थी जिससे कि निम्न सदन अथवा लोक-सदन के प्रतिहार के रूप में प्रयुक्त किया जा सके।

दोनों भवनों की रचना (क) राज्य-परिषद्—राज्य परिषद् नूतन व्यवस्थापक मण्डल का उच्च सदन था। १९१९ के एक्ट व अनुसार उसके सदस्यों की संख्या ६० थी। इन सदस्यों में से एक का नियुक्त गवर्नर जनरल समापन के रूप में करता था

अवशिष्ट सदस्यों में से ३४ प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीनुसार साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा चुन जाते थे (२० साधारण निर्वाचन क्षेत्रों से १० मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों से एक सिक्खों द्वारा और ३ यूरोपियनों द्वारा) परिषद् के १६ मनोनीत सरकारी सदस्य होते थे और ६ मनोनीत गैर सरकारी सदस्य होते थे । १५

(ख) भारतीय विधान सभा—विधान सभा के १४४ सदस्यों में से १०३ सदस्य निर्वाचित सदस्य थे और ४१ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत । मनोनीत सदस्यों में से अधिक से अधिक २५ ही सदस्य सरकारी पदाधिकारी हो सकते थे । एक्ट ने यह भी निर्धारित कर दिया कि विधान सभा का प्रथम अधिवेशन गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त एक ऐसा गैर सरकारी सदस्य होगा जिसका कि ससद अनुभव बहुत बड़ा था हो । ३ ३

दोनों सदनों के लिए मताधिकारी—राज्य-परिषद् के लिए बहुत सकुचित मताधिकार उपबंधित किया गया था । मताधिकार मुख्यतः बहुत ऊँची सम्पत्ति अर्हताओं पर आधारित था । राज्य परिषद् के लिए मतदान का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को प्राप्त था जो १०,००० रु० से लेकर २०,००० रु० तक की वार्षिक आय पर कर देते थे अथवा ७५० रु० से लेकर ५०,००० रु० तक का वार्षिक भूमि लगान देते थे । मतदान का अधिकार उन व्यक्तिओं को भी दिया गया जो कि

(१) नगरपालिकाओं जिला निकायो या क्षेत्रीय सहकारी बनों के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष रह चुके हैं ।

(२) भारत के किसी विधायक निकाय के सदस्य रहे हों ।

(३) सरकार द्वारा सम्मूह उलेमा या महामहोपाध्याय जसी प्राच्य पाण्डित्य सम्बन्धी उपाधियों से विभूषित किए गए हों ।

१ मोटफोर्ड रिपोर्ट ने एक एस उच्च सदन का सुझाव दिया था जिसके कि कुछ सदस्यों की संख्या ५५ हो इन सदस्यों में से २६ तो सरकार द्वारा मनोनीत हों और शेष सदस्य मुख्यतः प्राचीन व्यवस्थापिकाओं के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों । उसका विचार एक ही सीनेट की प्रवृत्ति के उच्च सदन का निर्माण करना था जो सरकार की उन आवश्यक कानूनों के पारित कर देने में समर्थ कर दें जिनको कि प्रतिनिधिक निम्न सदन ने अस्वीकार कर दिया हो । परन्तु संयुक्त ससद समिति ने इस विचार को अस्वीकृत कर दिया और राज्य परिषद् को सच्चा द्वितीय सदन बनाने के पक्ष में फसला किया । अन्त में राज्य परिषद् को पुनर्निर्माण करने वाला एक ऐसा सदन बनाने का फसला किया गया जिसके पास कि अद्वितीय व्यवस्थापन में विधानसभा के तुल्य ही अधिकार हों ।

२ सर फ्रेडरिक हॉवर्ड मनोनीत अध्यक्ष थे । असेम्बली के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष मुविस्वात वी० जी० पटेल थे ।

१९२५ में राज्य परिषद के लिए ब्रिटिश भारत से कुल मतदाताओं की संख्या १५,००० में कम थी। निर्वाचित क्षत्र साम्प्रदायिक आधार पर निर्मित हुए थे प्रत्येक प्रांत को एक इकाई माना जाता था। स्त्रियों को मतदान व अधिकार से वंचित रखा गया था। अति तब पहुंची हुई ऊंची सम्पत्ति विषयक अहताओं ने राज्य परिषद को अस्त स्वाधों का एक अ तृ ग बना दिया तथा दूसरी निर्वाचन विषयक अहताओं ने यह निश्चित कर दिया कि उसमें बुद्धिजीवी व सावजनिक व्यक्तियों का उपस्थिति बहुत ही कम रह सकेगा।

असम्पत्तियों के लिए मतधिकार तब कम प्रतिबंधित था। मतदाताओं के पास निम्नलिखित अहताओं में से एक का होना आवश्यक था —

(१) कम से कम २,००० रु० से लेकर ५,००० रु० तक का वार्षिक आय पर आयकर देना।

(२) ५० रु० से लेकर १५० रु० तक का वार्षिक भूमि कर देना।

(३) कम से कम १५ रु० से लेकर २० तक के प्रतिव्यय म्युनिसिपल कर देना।

(४) १५० रु० वार्षिक के विराए के मूल्य वाले मकान का अधिवास या स्वामित्व।

विभिन्न प्रांतों में आर्थिक या राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर में कारण मतदान का अहताओं में घाटा बहुत उलट फेर करना आवश्यक हो जाता था। १९३४ में भारतीय व्यवस्थापिका सभा के कुछ मतदाताओं की संख्या १,४१५,८६२ थी जिनमें कि सभा मतदाताओं की कुल संख्या ८१,६०२ थी।

भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के अधिकार व शक्त (क) कानून-निर्माण सम्बन्धी—केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल को केवल उन विषयों को छोड़कर, जिन्हें कि प्रांतीय सभा जाता था अथवा सब प्रकार के विषयों पर कानूननिर्माण का अधिकार प्राप्त था। तथापि उसके अधिकार प्रयोग के ऊपर वह प्रतिबंध लग हुए थे। भारतीय व्यवस्थापक मण्डल को किसी सदन के कानून को जो भारतवर्ष के ऊपर लागू हो सकता था अंगीकृत या रद्द करने का अधिकार नहीं था। भारत मंत्री के समक्ष व बिना वह एसा भी कानून को पारित नहीं कर सकता था जो कि किसी उच्च न्यायालय का उन्मूलन करता हो। कुछ विधेयक (घातक विषय या रीतिमा जल पल्लभ सेनाए प्रांतीय विषयों का नियंत्रण किसी प्रांतीय नियम को रद्द करने वाले प्रस्ताव गवर्नर जनरल के एक और अध्यादेशों से सम्बंध रखने वाले प्रस्ताव इत्यादि) ऐसे थे जिन्हें गवर्नर जनरल का पूर्व अनुमति के बगैर व्यवस्थापिका सभा में पुनःस्थापित नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा यदि गवर्नर जनरल किसी भा विधेयक को, या उसकी किसी धारा को भारत की शान्ति सुरक्षा व व्यवस्था में बाधक समझता तो उसके अंगीकार को तुरन्त रोक सकता था। व्यवस्थापिका द्वारा

पारित प्रत्येक विधेय पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्य ही लागू होती थी तदनंतर ही वह कानून बन सकता था। गवर्नर जनरल जिस कितने विधेयक को चाहता व्यवस्थापिका के पास पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता था। अथवा उसे मन्नाट के सोचने विचारने के लिए रद्दित रग सकता था। अपने प्रमाणीकरण के अधिकार द्वारा गवर्नर जनरल का भारतीय व्यवस्थापिका के निर्णयों के उल्लंघन करने के विद्यार्थक अधिकार भी प्राप्त थे। यदि व्यवस्थापिका किसी विधेयक को अस्वीकार कर देता और गवर्नर जनरल उस ब्रिटिश भारत व उसके किसी भी भाग को शांति गुरदा एव दत्त्याण की शक्ति से आरक्षण सम्भना ता उस अपन इच्छाशर व अधीन ही पारित घोषित कर सकता था। इस रीति से पारित विधेयक मन्नाट की स्वीकृति के बिना लागू नहीं हो सकता था। इसके अलावा इन की शांति व गुरदा के लिए गवर्नर जनरल का अग्र्याणैण जारा करने का अधिकार था। व अद्यथा १६ माम से अधिक काच के लिए लागू नहीं हो सक्त थे।

(ख) वित्तीय अधिकार—भारतीय व्यवस्थापिका को कुल नाममात्र की वित्तीय शक्तिया प्रदान की गई थी। सम्पूर्ण व्यय का आय व्यय का अनुमानित आ-जाया गवर्नर जनरल व्यवस्थापिका के सम्मुख उपस्थित करते थे। साधारण रूप में बजट के ऊपर वाद विवाद किया जा सकता था। पर तु मन्नाट बजट के छोड़े ही भाग पर हो सकता था। बजट का अधिकतम भाग (८०% व अधिक) तैरा था जिस के ऊपर कि व्यवस्थापिका मन्नाट का मतदान का अधिकार हा न था। जिन विषयों पर बजट का ८०% में अधिक धन खच होता था उन पर व्यवस्थापिका गवर्नर जनरल की पूर अनुमति के बिना वाद विवाद भी नहीं कर सकती थी। सर्व की निम्नलिखित मन्नाट पर व्यवस्थापिका का मत देन का अधिकार न था—गवर्नर जनरल व उनके कार्यकारी परिषदों के वतन भारत में भी और मन्नाट द्वारा सिद्ध वक्तियों का वेंशन और तनदवाह श्रीक कमिश्नरी अथवा जुडीसियल कमिश्नरी का वतन वह पक्ष जिस कि सरिपद गवर्नर जनरल न सामिक राज नातिक अथवा सत्ता सम्बन्धा टोराया है। जहाँ तक उन मन्नाट का प्र न है जिन पर व्यवस्थापिका की मतदान का अधिकार प्राप्त था वह उनका अनुमान वगने उनका अस्वीकार करत अथवा उनमें वमी करने के लिए अधिकृत थी। पर तु पता भी गवर्नर जनरल का सत्ता अथवा थी। उस अधिकार था कि वह व्यवस्थापिका द्वारा अस्वीकृत मन्नाट की स्वय मन्नाट करके व्यवस्थापिका का निश्चय रद्द कर दे। विशय परिस्थितियों

१ १३१ करोड के कुल जोड में से (रेलवेज को बाहर रखते हुए) केवल १६ करोड ही मतापकी हैं। पुनश्च इस मतापकी राजि में से ६७ करोड सनिक व्यय के लिए हैं। पट्टाभि सीतारामय्या वृत्त का हिस्ट्री आफ कायस में ५० मोतीला न रोड और सी० भार० दाड के दक्षव्य से उल्लंघन पृ० ४५६।

में वह ऐसे सत्रों को भी मञ्जूर कर सकता था जो उसकी राय में देश की रक्षा और शान्ति के लिए आवश्यक था।

कायकारिणी को प्रभावित करने के अधिकार—अद्यपि कायकारिणी व्यवस्थापिका के प्रति अनुत्तरदायी ही रही परन्तु व्यवस्थापिका कायकारिणी को नीतियों और कार्यों की कई तरह में आलोचना कर सकती थी। व्यवस्थापिका के सम्बन्ध कायकारिणी से प्रश्न कर सकते थे। वे किसी गृहस्वपूण विषय पर प्रस्ताव पाम कर सकते थे और प्रस्ताव पाम करके समाप्त क अधिकारों को स्थगित करा सकते थे। उनको यह भी अधिकार प्राप्त था कि किसी विभाग की आर्थिक मांग को स्वीकार न करें या अपना विरोध प्रकट करने के लिए उनमें नाममात्र की कमा कर दें। तथापि व्यवस्थापिका की पूर्वोक्त बातों का मानना शान्त विभाग के लिए प्रति दाम न था।

नेतों मन्त्रों के बीच सम्बन्ध—भारतीय प्रबन्धपालिका मण्डल के दोनों मन्त्र समान अधिकारों का उपयोग नही करते थे। अ त्रिलीय विधानों की स्थिति में राज्य परिषद और असेम्बली नेतों के अधिकार एक दूसरे के बराबर थे। एम किसी विधेयक को विभाजित एक सदन में उपस्थित किया जा सकता था परन्तु वह वातुन तब तक नहीं बन सकता था जब तक कि उन दोनों मन्त्र पारित न कर दें। न ही यह अवश्य था कि गवर्नर जनरल दाना सदनो में न किसी के द्वारा प्रस्तुत विधेयक को प्रमाणी-युक्त कर सकता था। तथापि त्रिलीय विधानों की स्थिति में राज्य परिषद के अधिकारों का सर्वाधिकार प्रबन्धपालिका के दर्जे में नीचा था। यह सत्रया स्वाभाविक भी था। अधिकार पारचात्य दोनों में द्वितीय मन्त्रों का सर्वाधिकार सदनो की तुलना में निम्न ही माना जाता है। राज्य परिषद का जन प्रायोगिक न कोई सम्बन्ध नहीं था। अतः राज्य परिषद को असम्बन्धता के समर्थन ही दर्जा देना मवधा अपायकर होता। बजट के ऊपर दोनों ही मन्त्र वाद विवाद कर सकते थे परन्तु मतापन्नी सदनो (Votable Items) पर मन्त्रालय का अधिकार बसल निम्न मन्त्र का ही प्राप्त था। यदि मन्त्र मन्त्रालय में मन्त्रों पर निम्न मन्त्र का मतदान हो सकता तो उन फिर उच्च मन्त्र के समक्ष उपस्थित न किया जाता था परन्तु चूकि अ त्रिलीय विधानों के निर्माण के क्षण में दोनों मन्त्रों को पुनः अधिकार प्राप्त थे अतः यदि वे किसी विधेयक के ऊपर मतदान न हो पाते तो उक्त स्थिति में अतिरिक्त उपाय होने की सम्भावना रहती थी।

गतिरोधों को दूर करने का उपाय—अतिरिक्त मिटान के लिए तीन विभिन्न उपायों की व्यवस्था की गई थी। वे उपाय थे—

(क) मधुवन समिति—किसी सत्र में पारित होने के पूर्व विधेयक को यदि वे महत्त्व हो जाए तो दोनों सभाओं की एक मधुवन समिति के विचारार्थन कर देना। इससे असन्तुष्ट मन्त्रों के दावों का पता चल सकता था और अतिरिक्त म होने वाले सपथ के मतदानों को दूर किया जा सकता था।

(स) समुक्त सम्मेलन—द्वारा उपाय यह था कि यदि राज्य पार्लमन्ट सभ्य (Originating house) द्वारा विधेय के पारित किए जाने के परन्तु उदात्त होना तो उस स्थिति में दोनों सभ्य करने मनभे को एक समुक्त सम्मेलन के लिए महामत होकर दूर कर सकते थे। समुक्त सम्मेलन में दोनों सभ्य के बराबर बराबर प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। यदि समुक्त सम्मेलन द्वारा विवाद करके किसी एक समझौते पर पहुँच जाता, उस स्थिति में वह दोनों सभ्य के पास कुछ तिसारिणों के जना था कि साधारण स्वीकार कर लिया जाता था।

(ग) समुक्त अधिवेशन—यदि समुक्त सम्मेलन में कोई समझौता करने में असफल रहता तो गवर्नर जनरल दोनों सदनों का समुक्त अधिवेशन करा सकता था। समुक्त अधिवेशन में राज्य परिषद का अध्यक्ष समापति का भासन प्रणु करता था और प्रत्येक निम्न उल्लिखित सदस्यों के बहुमत के द्वारा होता था। अधिवेशन के बहुमत द्वारा पारित विधेय को दोनों सदनों के द्वारा पारित मान लिया जाता था। चूँकि समुक्त अधिवेशन में असेम्बली के सदस्यों की संख्या राज्य परिषद के सदस्यों की संख्या से अधिक होती थी अतः असेम्बली की ही इच्छा के कार्यान्वित होने की अधिक सम्भावना रहती थी।

५२ मोटफोर्ड के अधीन केन्द्रीय व्यवस्थापिका का मूल्यांकन

प्रतिगामी राज्य परिषद के वावजूद भी केन्द्रीय व्यवस्थापिका अधिक लोकसत्तात्मक थी—१९१९ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट ने निश्चित रूप से ही केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल को अधिक लोकसत्तात्मक स्वरूप प्रदान किया। १९१९ के सुधारों के पूर्व भारतीय व्यवस्थापक मण्डल एक दरवार या बनावटी सभ्य के ही मूल्य था। इन सुधारों ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका में अनिश्चित प्रतिनिधियों का प्रभाव शाली बहुमत करके व उसके वित्तीय व वाद-विवाद सम्बन्धी अधिकारों को बढ़ाकर उसे जनमत की प्रतिनिधिक संस्था बनाने का प्रयास किया। १९१९ के एक्ट के अन्तर्गत जिस प्रतिगामी राज्य परिषद की मृष्टि की गई उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। संपरिषद गवर्नर जनरल की विशेष शक्तियाँ काफी बढ़ी-चनी थी। वह लोक सदन की प्रत्येक एसी चेष्टा को जिस कि वह अनुचित समझता अपनी इन विशेष शक्तियों के द्वारा निष्फल कर सकता था। यह सही है कि व्यवस्थापिका अटन और स्वच्छाचारों कायकारिणी के समग्र बिलकुल निस्सहाय थी, तथापि यह भी सही है कि नई व्यवस्थापिका नीवरशाही कायकारिणी के बिनाकुन अधीन भी नहीं थी।

व्यवस्थापिका कायकारिणी को प्रभावित कर सकती थी—वह उन अनुष्ठानों को अस्वीकार कर सकती थी जो कि शासन यंत्र के कुछ पहलियों के सचालनार्थ आवश्यक थे। उसे कायकारिणी द्वारा वांछित कानूनों को अस्वीकृत कर देने का भी अधिकार प्राप्त था। यह सही है कि गवर्नर जनरल व्यवस्थापिका द्वारा अस्वीकृत

प्रत्येक अनुदान को अपनी विशेष शक्तिय के प्रयोग द्वारा मजूर कर सकता था और व्यवस्थापिका द्वारा प्रतिषिद्ध प्रत्येक विधेयक को वा सर्टीफाई कर सकता था। परन्तु इन असाधारण शक्तियों के बारम्बार प्रयोग से तो यही पता चलता था कि सरकार और जनता के बीच बहुत भारी अंतर है। हमारे अलावा केंद्रीय व्यवस्थापिका प्रश्नोत्तरी व स्थान प्रस्तावों आदिक द्वारा भी कायकारिणी के ऊपर अप्रत्यक्ष रीति से पर्याप्त प्रभाव डाल सकता थी। सरकार सच हा हम प्रभाव की अवहलना नहीं कर सकती थी। यह सत्य है कि वह लोकमत के प्रति उत्तरदायी नहीं बनी, परन्तु वह लोकमत को सबदा ठुकराती भी नहीं रह सकती थी।

कायकारिणी व्यवस्थापिका के नियंत्रण से स्वतंत्र रही— १९६ के एकट में एक बड़ी भारी श्रुति और थी और वह यह कि कायकारिणी उसके नियंत्रण से मददा स्वतंत्र थी। लोकतंत्र के अनुसार यह आवश्यक है कि कायकारिणी व्यवस्थापिका के द्वारा नियंत्रित हो। परन्तु १९१६ के सुधारों में इन बात की और बिनकुल ध्यान नहीं दिया गया। हम एक के अधीन कायकारिणी जन्म चाहती तब व्यवस्थापिका की इच्छा का ठुकरा सकती थी इसके ऊपर व्यवस्थापिका का कोई अंकुश न था।

व्यवस्थापिका के पास प्रभुत्व शक्ति का अभाव था—स्पष्ट है कि केंद्रीय व्यवस्थापिका प्रभुत्व-शक्ति में पूर्णतः वंचित रह गई थी। उसकी शक्तिया बहुत परिमित थी। उनके ऊपर बड़े-बड़े प्रतिबंध लग हुए थे। वह ब्रिटिश संसद सर्वोच्च शक्ति के अधीन था और वह हमें किसी मन्त्र के वादन का जो कि भारतवर्ष के ऊपर लागू हो सकती हो, सशोषित या रह नहीं कर सकती थी। इसके अलावा देश का धाय का ४/५ भाग एमा था जिसके ऊपर व्यवस्थापिका वाद-विवाद में न कर सकती थी और अवशिष्ट १/५ भाग भी पूर्णतः उसके नियंत्रण में नहीं था। यह माना जा सकता है कि केंद्रीय व्यवस्थापिका एक प्रभावशाली विधाय थी परन्तु बीटो और प्रमाणीकरण की विषय शक्तियों में उसकी स्थिति विष-प्रत हीन सच न तुल्य कर दी थी।

प्रांतीय सरकारें

५३ केंद्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के सम्बन्ध

प्रान्तों का विकास, तीन प्रसीडेंसियों की स्वतंत्रता केन्द्रिकरण की श्रुति— ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यावसायिक बस्तियाँ सबसे पहले बम्बई मंगल और कलकत्ते के तीन समुद्र तटीय नगरों में स्थापित हुई थीं—१७६५ में बंगाल की शाहानी की हस्तक्षेप करने के परवात उसकी स्थिति में अन्तर हो गया। अब वह अपने अधीनस्थ प्रदेशों की राजनीतिक प्रभु हो गई। जमे-जमे कम्पनी ने और प्रदेशों को विजित किया वह उन्हें उन बस्तियों के साथ जोड़ती गई जिसके कि ये सामान्य में पढ़ते थे। इस प्रकार तीन बड़ी प्रसीडेंसियों का विकास हुआ। इसमें से प्रत्येक प्रसीडेंसी एक गवर्नर

की अधीनता में थी। गवर्नर सार्वभौमिक प्रशासन के रूप में प्राचीन प्रांतीय प्रशासनिक प्रतीकियों का शासन करते थे। प्रारम्भ में ये प्रतीकियाँ एक दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र थीं व सीधे सदन में शासन होती थीं। परन्तु एक सम्बन्ध में कई स्वतंत्र नित्तिय थे। उस बात की मूर्ति प्रायशः प्राचीन मान्यताएँ तथा कि प्रतीकियों को भारत में ही वेणीय सत्ता के निरोधण के लिए लगे में रखा जाय। फरवरी १७७३ के रगुलिंग एक्ट से वेद्वान्तरण का प्रथम प्रारम्भ हुई।

नूतन प्रांतों की सृष्टि—१७७३ के रगुलिंग एक्ट के अन्तर्गत बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल का नाम दिया गया और उस तीनों प्रतीकियों का निरोधण व नियंत्रण करने का अधिकार दे दिया गया। यह बंगाल के ऊपर १८५४ तक सीधे शासन करता रहा। इसके बाद बंगाल के शासन प्रत्येक के लिए एक उप-गवर्नर की नियुक्ति की गई। इसी बीच भारतवर्ष में ब्रिटिश अधीनस्थ प्रांतों का निरन्तर विस्तार होता रहा था। प्रतीकियाँ बढ़ती बढ़ती गई थीं उनमें कई प्रांतों में बांट दिया गया और फिर बाँट में इन प्रांतों को भी उप-विभाजित कर दिया था। इन प्रकार उत्तर पश्चिमी प्रांत (जिसे कि बाद में आगरा और अवध का संयुक्त प्रांत नाम दिया गया) को बंगाल से अलग किया गया। १८५६ में पंजाब की सृष्टि हुई। कुछ समय बीतने पर मध्य प्रांत बना आसाम और उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत का निर्माण किया गया। यह प्रथम १८३५ तक चलता रहा। १८५६ में उड़ीसा का विहार से और सिंध का बम्बई से अलग कर दिया गया।

प्रांतों के भेद—नए प्रांतों की सृष्टि में किसी योजना के अनुसार कार्य नहीं किया गया। उनमें मसकृति व भाषा नियंत्रण सम्बन्ध प्रतीकों को उपेक्षा की दृष्टि में देखा गया था। इस प्रकार के प्रत्येक विभाजन में कबन एक ही सिद्धांत के अनुसार कार्य किया गया था और वह सिद्धांत या शासन की सुविधा का प्रश्न। फलतः ब्रिटिश भारत बमल इकाइयों का एक जमघट मा बन गया। रेगुलेशन और नान-रेगुलेशन प्रांतों के बीच भेद किया गया। पुनः नए प्रांतों को गवर्नर के प्रांतों उप गवर्नर के प्रांतों और चीफ कमिश्नर के प्रांतों में भी बाँटा गया।

प्रांतों में एक रूपना—नए प्रांतों में कबन एक ही प्रकार की प्रशासनात्मक थी और वह यह था कि वे सब एक ही वेणीय सत्ता की पूर्ण अधीनता में थे। १७७३ के पश्चात् से ब्रिटेन के द्वीयकरण का प्रथम का सूत्राव हुमा था वह प्रांत कबन के शासन काल में कति तक पहुँच गई। यह प्रांत कबन प्रायशः वेणीय थी। प्रांत केन्द्र के प्रशासनीय अधिकारों—मात्र ही रह गए। प्रशासनीय व्यवस्थात्मक और वित्तीय विषयों में केन्द्र का प्रांतों के ऊपर पूर्ण अधिकार था।

विकेंद्रीकरण के प्रति नूतन प्रवृत्ति—मॉडर्न सुधारों के अधीन केन्द्र के प्रांतों के बीच सम्बन्ध—नए प्रथम के विकेंद्रीकरण के फलस्वरूप वेणीय सरकार का कार्य कठिन हो गया। १८७० के पश्चात् जबकि भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की

जहाँ काफी मजबूत हो गई। आदेश व नियंत्रण विषयक एक रूपना का आवश्यकता भी घट गई। फलतः अब विकेंद्रीकरण के प्रति एक नूतन प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। केंद्र के नियंत्रण को धीरे धीरे शिथिल कर लिया गया और कुछ उचित शक्तों में प्रांतों को भी थोड़ी सी स्वतंत्रता दे दी गई। परन्तु सत्ता का यह विभाजन शासन प्रणाली का विषय था। फिर भी सवधानिक दृष्टि से केंद्रीय सरकार ही सवशक्तिशाली रही। १९१९ के सुधारों के अधिनियमन तक प्रांतों के पास सच्ची स्वायत्तता नहीं थी। उस दिशा में माटकोड सुधारों ने एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। चूंकि प्रांतों में प्रांतिक उत्तरदायी शासन की स्थापना का गर्भ अब केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के सम्बन्धों में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

केंद्रीय और प्रांतीय सूचियों—१९१९ के एक एक्ट ने सारतन्त्र्य में सघीय राज्य तंत्र की स्थापना नहीं की। वस्तुतः इस विचार को थोड़े से आकलन के पश्चात् अस्वीकार कर दिया गया। तथापि यह बात निस्संदेह है कि प्रांतों का आंशिक स्वायत्तता प्रदान की गई। विधान नियमों के अधीन व्यवस्थापन और राजस्व के शापका का भी सूचियों में जोड़ा गया (क) केंद्रीय सूचियों में मुख्य विज्ञान और राजनीतिक सम्बन्ध आगमशुल्क डाक और तार मुद्रा नमक वर आयकर अफीम व्यवहार विधान और दण्ड विधान तथा जनगणना गान्धि विषय सम्मिलित थे। (ख) प्रांतीय सूचियों में महत्वपूर्ण विषय निम्नलिखित थे—पुत्रिम धारा तन शिखा स्थानाय स्व शासन सावजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता दवाखानों का प्रबंध भूमिकर मिर्चा और जंगल आदि। १९१९ के एक एक्ट के अधीन कोई समवर्ती सूची नहीं थी और ममस्त अचिष्ट सत्ता अर्थात् व सब विषय जो कि प्रांतीय सूचियों में सम्मिलित नहीं किए गए थे केंद्रीय सरकार के अधीन रखे गए थे। यदि केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच किमा विषय का बहस विवाह उठ जाता होता उस स्थिति में गवर्नर जनरल ही यह निश्चित करता था कि वह विषय प्रांत की अधीनता में है या केंद्र की। तथापि यह स्मृत्य है कि महात्मा का उक्त विवरण पूर्ण स्वरी नहीं था और केंद्रीय सरकार कई उपायों में प्रांतीय शक्तों को आजात बन मङ्गी था। तथापि यह निश्चित कर लिया गया था कि प्रांतीय सरकारों को 'हस्तांतरित' विषयों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिए। इन हस्तांतरित विषयों की निश्चित मरिचियों की अधीनता में रखा गया था जो कि प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं के प्रति उत्तरदायी थे।

द्वितीय विधान—केन्द्र और प्रांतों के विस्तार शक्तों का भी १९१९ कएक्ट में जातजातमक कर दिया गया। भूमिकर मिर्चा अतः पुत्र, जंगल खान मुहर तथा पञ्जीयन और आयकर के एक भाग की रसीने पाने के अनाया जिह्वा कि केंद्रीय सरकार एकत्रित करती थी प्रांतीय सरकारों अरनी आय की प्रति करने के लिए कुछ उचित शक्तें करनी केंद्रीय सरकार की बिना अनुमति के लिए भी लागू करने के लिए

अधिकृत थीं। प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रसार के कुछ कार्य करों के प्रांतीय सरकार को अनुमति लेकर लागू कर सकती थीं। पुनरावे गवर्नर जनरल व भारत मंत्री का अनुमोदन पाकर प्रमश भारतवर्ष में और विदेशों में गायत्रिजिज्ञाणा भी प्रचलित कर सकती थीं। राजस्व को मंत्रों के विनियोजन के पक्षधर बनने में उत्सुक हो गया कि केन्द्रीय सरकार धार्मिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं रह सकेगी। केन्द्रीय सरकार के १० करोड़ ६० के वार्षिक घाटे का पूरा करने के लिए यह निर्धारित किया गया था कि प्रांतीय सरकारें उस कुछ वार्षिक अनुदान लिया करेंगी।

प्रत्येक प्रांत का ठीक ठीक अनुदान मॉन्टगु के अनुसार निर्दिष्ट किया गया। परन्तु प्रांतीय सरकारों ने मॉन्टगु रिपोर्ट की निरन्तर गिकायतों की फलत प्रांतीय अनुदानों की पद्धति को १९२० में समाप्त कर दिया गया। १९१९ के एक्ट के अन्तर्गत वित्तीय विषयों के अन्तर्गत में सबसे बड़ा दाव यह था कि प्रायः के विस्तार शील व दमनशील खोना का केन्द्रीय सरकार के अधीन रखा गया। इससे विपरीत प्रांतीय सरकारों के वंश पर राष्ट्र का निर्माण करने वाले कर्तव्य का भार रखा गया परन्तु उसकी प्रायः के खोना भूमिकर और अन्तःशुल्क आदि अत्यन्त अप्रिय व अनमनशील थे। परन्तु फिर भी यह बात निर्विवाद है कि १९१९ के एक्ट ने संघर्ष की ओर एक निश्चित पथ बनाया। १९३५ के भारतीय शासन सम्बंधी एक्ट में इसी को प्रतिपक्ष सुधारों व संशोधनों के सहित विचारित किया गया।

५४ प्रांतीय कार्यकारिणी—द्वय शासन प्रणाली

प्रांतीय स्वायत्तता की दिशा में प्रथम पग—कीय के अनुसार मॉन्टगु-सुधारों की नवीनता इस बात में सन्निविष्ट थी कि उन्होंने दोनो ही अर्थों—अर्थात् केन्द्रीय सरकार नियंत्रण के शिथिलीकरण व प्रांतीय कार्यकारिणी के व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व से प्रांतीय स्वायत्तता की पुनः स्थापना की। २० अगस्त १९१७ की घोषणा में जिस उत्तरदायी शासन की स्थापना का वचन दिया गया था १९१९ का एक्ट उस दिशा में प्रथम पग था। इस अध्याय के प्रारम्भिक खण्ड में हम देख चुके हैं कि भारतीय संवैधानिक ढांचे की एकात्मक प्रवृत्ति में कोई विशेष अन्तर किए बिना ही १९१९ के एक्ट के प्रांतीय क्षेत्र में सीमित स्वायत्तता की स्थापना की। यद्यपि भारतीय सरकार के नियंत्रण को भी पूरा नहीं हटाया नहीं गया फिर भी प्रांत अपने कार्य स्वयं कर सकें इसकी इच्छा योड़ी सी स्वतंत्रता दे दी गई।

द्वय शासन एक मध्यम माग—प्रांतीय कार्यकारिणी को प्रांतीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बनाने के दृष्टिकोण से मॉन्टगु सुधारों ने द्वय शासन प्रणाली का सूत्रपात किया। यह उपाय पूरा नौकरशाही और उत्तरदायी शासन के मध्य का माग था। स्पष्ट है कि ब्रिटिश अधिकारी वगैरह प्रांतों तक मंजूर प्रजातंत्र की स्थापना करने के लिए तैयार नहीं था। सच्ची उत्तरदायी सरकार के लिए यह आवश्यक है कि कार्यकारिणी यथा सम्भव विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित व्यवस्थापिका

के अधीन हो। १९१६ के एक्ट के अधीन इसको उपबन्धित नहीं किया गया। उसने वस्तुतः जो किया वह यह था कि प्रांतीय सरकार का दो भागों में विभाजित कर दिया।

प्रांतीय कार्यकारिणी के दो भाग (सरक्षित और हस्तांतरित विषय)—एक भाग जिसमें कि गवर्नर और उमका परिषद् शामिल थी पुलिस, पाय जन राजस्व सिंचाई और सावजनिक सेवाओं आदि विषयों को नियंत्रित करता था। प्रांतीय सरकार का यह भाग पूर्ववत् ही नीररणाह बना रहा। यह भाग गवर्नर के प्रति ही उत्तरदायी था। सरकार के दूसरे भाग में गवर्नर और मंत्री सम्मिलित थे। मंत्री हस्तांतरित विषयों, अर्थात् शिक्षा, कृषि स्थानीय स्वशासन सावजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता अतःशुल्क और उद्योगों आदि का प्रबंध करते थे। मंत्रियों को स्वयं गवर्नर प्रांतीय व्यवस्थापिका के निवाचित सदस्यों में से नियुक्त करता था। मंत्री लोग अपनी नीतियों और कार्यों के प्रति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। व्यवस्थापिका अपने अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा उन्हें अपने पदों से हटा सकती थी।

विभागों का बेटगा वितरण—कानूनी दृष्टि से प्रांतीय सरकार के दोनो भाग एक-दूसरे से बिल्कुल अलग अलग थे उनमें से प्रत्येक विभाग अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र था। परन्तु यह विचार किया गया था कि जब एक दूसरे को सहाय्य करके कार्य करेंगे। यथाक्रम उनका नियंत्रण में जा विभागों में उनका एक-दूसरे के ऊपर प्रभाव पड़ता था। इस दृष्टिकोण से उनमें बात बहुत आवश्यक थी। सरक्षित और हस्तांतरित शीपको के प्रधान विभागों का वितरण बहुत बेटगा था। उदाहरणार्थ कृषि का तो हस्तांतरित खण्ड में रखा गया और सिंचाई का सरक्षित खण्ड में। इस प्रकार के दोषयुक्त प्रबंध में इस बात की पर्याप्त सम्भावना रहती थी कि कृषि अधिकार के प्रश्न का लेकर एक विभाग का दूसरे विभाग के साथ झगडा न हो जाए। इसलिए यह उपबन्धित किया गया कि मंत्रियों के सचिवों की स्थिति में अन्तिम निर्णय गवर्नर का ही मान्य होगा।

राजस्वों का वितरण—१९१८ के एक्ट में सरकार के दोनो भागों के बीच प्रांतीय राजस्वों के वितरण का भी विधान किया। यह सुझाव दिया गया था कि यह वितरण सामान्य बुद्धि के तर्कसंगत आन्तक प्रणाली की सरल प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होगा। तथापि यह निश्चित किया गया कि यदि कहीं मतभेद उत्पन्न होंगे तो गवर्नर को इस बात का अधिकार होगा कि वह राजस्वों का सरक्षित और हस्तांतरित विभाग के बीच बाँट दे। सावजनिक श्रेण एकत्रित करने के प्रस्तावों पर शासन के दोनो भाग संयुक्त रूप से विचार करते थे परन्तु निर्णय उनमें से हरेक अलग अलग करता था।

५५ गवर्नर

निर्भूत और परामर्श—दूसरे शासन प्रणाली में गवर्नर का स्थान बड़ा महत्त्व का था। वह कार्यकारिणी का प्रधान था और इसकी शक्तियाँ बहुत विस्तृत थीं।

प्रसीडिसिभो के गवर्नरो की नियुक्ति भारत में भी की जाती है वे अनुसार सम्राट् करते थे । सामंतों पर जिन व्यक्तियों को प्रसीडिसिभो का गवर्नर बनाया था वे उच्चतम अथवा अग्रज होते थे उनका सामान्य जीवन का काफी गहरा अध्ययन होता था । दूसरे प्रांतों के लिए सम्राट् गवर्नर जनरल की सलाह से अनुसार गवर्नर नियुक्त करते थे । दूसरे प्रांतों के लिए सामंतों पर जो गवर्नर नियुक्त किए जाते थे वे ऊँच नागरिक सेवा में सहाते थे । साधारणतः एक गवर्नर का कार्यकाल पाँच वर्षों का होता था ।

गवर्नर और उसके कार्याचारिणी परिषद्—गवर्नर सरक्षित विषयों का शासन प्रबंध एक कार्यचारिणी परिषद् की सहायता से करता था । इस कार्यचारिणी परिषद् में अधिक से अधिक ४ और कम से कम दो सदस्य सम्मिलित होते थे ।^१ १६१६ के एक्ट से अनुसार कार्यचारिणी में कम से कम एक एक सदस्य का होना आवश्यक था जो कि भारतवर्ष में कम से कम १२ वर्षों से सिविल सर्विस करता रहा हो । दूसरे सदस्य साधारणतः सरकारी भारतीयों में से लिए जाते थे । अभिसमय के द्वारा परिषद् के अग्रज सदस्यों और भारतीय सदस्यों का दर्जा एक दूसरे के बराबर रखा जाता था । सदस्य सम्राट् के द्वारा पाँच वर्षों के लिए नियुक्त किए जाते थे । व्यवहार में उनका चुनाव में गवर्नर का बहुत हाथ रहता था । यद्यपि कार्यचारिणी परिषद् के सदस्य प्रांतीय प्रबन्धाधिकारियों के भूतपूर्व सरकारी सदस्य होते थे तथापि वे उनके प्रति उत्तरदायी नही होते थे । कार्यचारिणी परिषद् की बैठकों में गवर्नर समापति का शासन ग्रहण करता था समापति की स्थिति में उस एक नियुक्त मत के द्वारा करने का अधिकार होता था । परंतु यदि वह अपने प्रान्त या उसके किसी भाग की शांति व सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता तो कार्यचारिणी परिषद् के बहुमत के नियम का भी उल्लंघन कर सकता था । कार्यचारिणी परिषद् प्रबन्धाधिकारियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था । प्रबन्धाधिकारियों समाप्त तो उन्हें अपने स्थान से ही चुन कर सकती थी और न उनके मत में ही किसी प्रकार की बंधी कर सकती थी । अपने कार्यों के लिए कार्यचारिणी परिषद् गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थी । इस प्रकार गवर्नर ही स्थिति का स्वामी होता था ।

गवर्नर का अधिकारों के साथ काम करना—हस्ताक्षरित विषयों का शासन प्रबंध गवर्नर के हाथों में था जिस कि वह अधिकारों की सहायता से सम्पन्न करता था ।

१ १९२१ में यू० पी० पंजाब बिहार और उड़ीसा सी० पी० तथा आसाम पूर तरीके से गवर्नर के प्रांत हो गए । १६२१ में बर्मा की और उसके एक वर्ष पश्चात् उत्तर विश्वमी प्रांत को यह प्रस्थिति प्राप्त हो गई ।

२ केवल तीन ही प्रसीडिसिभो एसा था जिनमें कि गवर्नर की कार्यचारिणी परिषद् में ४ सदस्य होते थे । शेष समा प्रांतों में से परिषद् में २ सदस्य होते थे इन सदस्यों में से एक अग्रज सिविलियन होता था और दूसरा सरकारी भारतीय ।

एकट ने प्रांतीय मन्त्रियों की कोई सख्या तो निश्चित नहीं की परन्तु व्यवहार में बड़े प्रांतों में वह तीन होती या भीर छाटा म दा । मन्त्रियों का नियुक्ति गवर्नर करता था । मन्त्री या तो वे लोग होते थे जो कि प्रांतीय व्यवस्थापिका के निर्वाचित सभ्य होते थे अथवा वे लोग होते थे जो कि अपनी नियुक्ति के ६ महीने के भीतर ही भीतर प्रांतीय व्यवस्थापिका के सदस्य निर्वाचित हो जाते थे । किसी व्यक्ति का मन्त्री पद पर नियुक्त करने से पहले गवर्नर को यह देखना पड़ता था कि वह व्यवस्थापिका के विश्वास को प्राप्त करने और अपने दायित्व का सम्पन्न निवहन करने में समर्थ हो सकता या नहीं । मन्त्रियों का स्थिति वही जो कायकारिणी के पापनों की था । मन्त्रियों का भी वही वतन मितता था जो कि कार्यकारिणी के पापदा का परन्तु उनकी स्थिति में व्यवस्थापिका का उपलब्धिया म कमी कर देने का अधिकार था । सम्बन्ध में वस्तुतः ऐसा ही किया गया । मन्त्री प्रत्येक मन्त्री का वतन ६४,००० रु० प्रति वर्ष से घटा कर ४८,००० रु० प्रति वर्ष ही कर दिया गया । जब व्यवस्थापिका सभा भग होनी मन्त्रियों को अपना पत्र त्याग करना पड़ता था । परन्तु व्यवस्थापिका सभा मन्त्रियों के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उन्हें इसका पूरा ही पञ्च्युत कर सकती थी । दूसरे मन्त्री में मन्त्री व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे । इसका माय ही साथ एक और ध्यान देने योग्य बात है वह यह कि मन्त्री गवर्नर के प्रस्ताव पर ही अपने पत्र पर नियुक्त रहते थे । यदि गवर्नर चाहता तो बिना किसी कारण का अध्यापक किए भी उन्हें अपने पत्र से हटा सकता था ।

साधारणतः गवर्नर से यह आशा की जाती थी कि वह मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करे परन्तु उन मन्त्रियों के निश्चयों में हस्तक्षेप करने का व्यापक अधिकार प्राप्त थे । वह यदि उचित समझता तो किसी भी मन्त्री के परामर्श को ठुकरा सकता था । वह मन्त्री जिसके कि परामर्श की इस प्रकार अवहेलना का जाती अपने पद का त्याग कर सकता था । आपात की स्थिति में मन्त्रियों के रिक्त स्थानों का पूर्ति न करने के लिए गवर्नर स्वतंत्र था । उस स्थिति में वह हस्तान्तरित विभाग का प्रबंध सीधे अपने ही हाथों में ले सकता था ।

गवर्नर के व्यवस्थापक अधिकार—ऊपर का कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि गवर्नर किसी प्रकार वधानिक प्रमुक्त है न था उसको जितने व्यापक अधिकार प्राप्त थे उनका कारण उसकी स्थिति एक स्वच्छाचारी शासक के तुल्य हो गई थी । इस बात को हम तथ्य से ही समझा जा सकता है कि वह न केवल कार्यकारिणी परिषदा का ही अपना अधीनता में रख सकता था अपितु प्रांतीय व्यवस्थापिका की इच्छा को भी बहुत अंशों में कुचल सकता था । इसके अलावा व्यवस्थापिका द्वारा पारित सभी कानूनों पर वह अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था । कुछ ऐसे विधेयक थे जिन्हें कि उनका पूरा अनुमति के बिना व्यवस्थापिका में पुनः स्थापित तथा ना नहीं किया जा सकता था । यदि गवर्नर किसी विधेयक को अध्यापक समझता और व्यवस्थापिका उस पारित करना अस्वीकार कर देती तो उस स्थिति में गवर्नर अपनी प्रमाणीकरण की शक्ति के प्रयोग द्वारा उस विधेयक का पारित पापित कर सकता था । उसे गवर्नर अन्तर्ल की अनुमति प्राप्त करके अध्यापकों की विनिति का भी अधिकार प्राप्त था ।

गवर्नर के वित्तीय अधिकार—गवर्नर के वित्तीय अधिकार भी इसी प्रकार बहुत विशाल थे। सरकारी विषयों की स्थिति में व्यवस्थापिका द्वारा प्रपोज़िशन या पेटाई गेई 'प्रांट' की भी वह जमी की तमो देण सकता था। हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में भी व्यवस्थापिका के विरोध के बावजूद भी गवर्नर यह कह कर जिता भी पय का प्रमाणोद्धृत कर सकता था कि वह प्रांट की शान्ति और सुरक्षा प्रयत्न प्रमुख विभाग के शासन प्रयत्न के लिए आवश्यक है।

५६ प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल

प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों की नूतन स्थिति—१९१६ के एक्ट में प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों की रचना के शक्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। उनका अधिकार में पर्याप्त वृद्धि की गई और उन्हें अधिक लोकतांत्रिक बनाया गया। प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल में निर्वाचित सदस्यों का सारमूल बहुमत रखा गया और उन्हें जनता की अधिक प्रतिनिध्यात्मक संस्थाएँ बनाने के दृष्टिकोण से मताधिकार का भी विस्तार किया गया। १९१९ के एक्ट के अधीन प्रांतीय व्यवस्थापिकाएँ निर्मित हुईं। उनकी स्थिति पूर्वकाल की व्यवस्थापिकाओं से बिल्कुल भिन्न थी। अब वे कानून निर्माण के प्रयोजन के लिए कार्यकारिणी के हाथों की खिलोना मात्र ही नहीं रह गई थीं। अल्पसंख्यक विपक्षों को अब वे स्वतंत्र संस्थाएँ थीं और कार्यकारिणी के ऊपर विचारित नियंत्रण भी स्थापित कर सकता थीं।

उनका बड़ा हुआ अधिकार—प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों का अधिकार अलग अलग प्रांतों में अलग अलग था परंतु यह उपरार्थित किया गया कि सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक २/३ और निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम से कम ७०/१०० होनी चाहिए। अर्थात् सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत गर सरकारी सदस्य होंगे। विभिन्न प्रांतों में व्यवस्थापिका समायोक्त का वास्तविक रचना और निर्वाचित सरकारी और गर सरकारी मनोनात सदस्यों का प्रतिशत संख्या निम्न तालिका में दी गई है—

प्रांत	निर्वाचित सदस्य	सरकारी सदस्य (भूतपूर्व परिषदों का सम्मिलित करके)	मनोनीत गर सरकारी सदस्य	कुल जाइ
मद्रास	६८	७ जमा ४	२३	१३२
बम्बई	८६	१५ जमा ४	९	११४
बंगाल	११४	१२ जमा ४	१०	१४०
संयुक्त प्रांत	१००	१५ जमा २	६	१२३
पंजाब	७१	१३ जमा २	८	९४
बिहार और उड़ीसा	७६	१३ जमा २	१२	१०३
मध्यप्रान्त	५५	८ जमा २	८	७३
आसाम	३६	५ जमा २	७	५३
बर्मा	८०	१४ जमा २	७	१०३

मताधिकार और निर्वाचन—१९१६ के सुधारों के अधीन मताधिकार के क्षेत्र को माले मिण्टो सुधारों की उपस्था और व्यापक कर दिया गया। परन्तु इतने पर भी वह रहा काफी सकुचित। १९२० में ब्रिटिश भारत में २४१ करोड़ (Million) की कुल जनसंख्या में केवल ५ करोड़ ३३ लाख लोगों को अथवा वयस्क जनसंख्या के केवल ६ प्रतिशत भाग को ही मतदान देने का अधिकार प्राप्त था। मतदाताओं की बहुतायत अलग अलग प्रान्तों में अलग अलग थी। साधारणतः नगर निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान के अधिकारी वे ही लोग हो सकते थे जो मा तो कम से कम २००० रुपए धार्मिक भाय पर आयकर देते हों अथवा ऐस किंसा मकान में रहते हों जिसका किराया कम से कम ३६ रुपए प्रतिवर्ष हो अथवा कम से कम ३ रुपया प्रतिवर्ष के म्युनिसिपल उपशुल्क देते हों। देहाती निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान के अधिकारी वे ही लोग हो सकते थे जो कि कम से कम १० रुपए प्रतिवर्ष से लेकर ५० रुपए प्रतिवर्ष तक का भूमि कर देते हों। जमादार निर्वाचन क्षेत्रों से विहित की गई बहुतायत थी कि जो लोग ५०० रुपए प्रतिवर्ष (पंजाब में) से लेकर ५००० रुपए प्रतिवर्ष (यू० पी० में) तक का भूमि कर देते हों वे ही मतदान के अधिकारी हो सकते हैं। विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्रों में ७ वर्षों का स्टूडिंग वाले रजिस्टर्ड प्रजुगण्ड ५ वर्षों की स्टूडिंग वाले एम० ए० और विश्वविद्यालयों के फेलो (Fellows) मतदान के अधिकारी थे। सैनिक सेवा भी एक माहता मानी जाती थी और पंजाब व मी० पी० में लम्बरनार तथा गांव के मुखिया मतदाता हो सकते थे। माटफीड सुधारों में प्रत्यक्ष निर्वाचनों की प्रणाली विहित की।

साम्प्रदायिक और विशेष निर्वाचक मण्डल—सभी निर्वाचनों का आधार 'जातिया और हितों' के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त रखा गया। मॉन्टफोर्ड प्रतिवेदन के निम्न माधारों पर पृथक् निर्वाचन मण्डलों का खण्ण किया था (१) व विभिन्न सम्प्रदायों के बीच द्वेष भाव की सृष्टि करत हैं। (२) व अल्पसंख्यक वर्गों का अनुचित दशा की यथापूर्व रखत हैं। (३) वे नागरिकता की श्रद्ध भावना व विकास में बाधा डालते हैं और (४) उत्तरदायी शासन के विकास का माग अवरुद्ध कर देते हैं। इस अलाइनमेंट में पद्धति को समाप्त कर देने के लिए ये तक काफी बज्रनगर थे। परन्तु प्रतिवेदन ने इस पद्धति का केवल मुसलमानों के लिए ही वायम रखन की अपितु उसे सिक्कों के ऊपर और लागू कर देने की सिफारिश की। १९१६ के भारतीय शासन सम्बन्ध एक्ट के अधीन जो नियम बने, वे इससे भी मागे बढ़ गए और उन्होंने भारतीय ईसाइयों यूरोपियनों तथा अंग्ल-भारतीयों को पृथक् निर्वाचक मण्डल प्रदान किए। इसके अलावा उन्होंने बहुल-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतास में असाधारणों के लिए और अल्पसंख्यक वर्गों के लिए स्पानों के सरक्षण को भी उपबन्धन किया। जमीनदारों व्यावसायिक और औद्योगिक हितों तथा विश्वविद्यालयों के लिए भी विशेष प्रतिनिधित्व की गारण्टी दी गई। एक दूसरा भेद देहाती और नागरिक निर्वाचन क्षेत्रों में किया गया। देहाती निर्वाचन क्षेत्रों को नागरिक निर्वाचन क्षेत्रों की अपेक्षा

अधिक ध्यान दिया गया। यद्यपि सरकार ने नागरिक और श्रेष्ठाभा शर्कों के बीच यही अंतर बनाया था जो कि प्रगति और जड़ता के बीच होता है। सारा सरकार की नीति यह थी कि नूतन नीतियों के अनुसार सत्ता और धन स्वार्थों का ही प्राधिपत्य रहे। दूसरे शर्कों में व्यवस्थापक मण्डल न तो प्रस्तुत होता-प्राप्त ही ये और न वे यथापन जनता का प्रतिनिधित्व ही करते थे। सरकारी और मर्यादीत गुट का प्रभाव जिसके साथ कि साम्प्रदायिक व विशेष द्वा का प्रतिनिधित्व करने वाले सत्स्य भी सम्मिलित हो जाते थे प्रा ना म साक्षरता की स्थापना के माग में बहुत बड़ी बाधा थी।

व्यवस्थापिका सभाओं का कार्यकाल-व्यवस्थापिका सभा का अध्यक्ष-गवर्नर के प्रा-तो की व्यवस्थापिकाएँ तीन वर्षों के लिए निर्वाचित की जाती थी परन्तु गवर्नर उनका भ्रमन पूरे कार्यकाल के समाप्त होने के पूर्व ही भंग कर सकते थे अथवा विशेष परिस्थितियों में वे उनके जीवन की अधिक से अधिक एक वर्ष के लिए बढ़ा सकते थे। व्यवस्थापिकाओं को गवर्नर भ्राहूत करता था उसे उन्हें कुछ काल के लिए स्थगित कर देने का भी अधिकार था। पहले चार सालों के लिए गवर्नर को अपने प्रान्त की व्यवस्थापिका के अध्यक्ष का नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त था उपाध्यक्ष के निर्वाचन पर भी अपनी स्वीकृति देने का हक था। इसलिए सभा को भ्रमना अध्यक्ष अपने भाष ही चुनना था।

प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों की व्यवस्थात्मक और वित्तीय शक्तियाँ-१९१६ के एक न प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों की व्यवस्थात्मक वित्तीय और वाद विवाद करने की शक्तियों में वृद्धि की। इसके साथ ही साथ एक न उच्च प्रांतीय कार्यकारी की एक भाग को भी नियमित करने का अधिकार दिया। परन्तु व्यवस्थापक मण्डलों की शक्तियों के ऊपर कई बड़े बड़े प्रतिबंध लगे हुए थे। उदाहरणार्थ व्यवस्थात्मक क्षेत्र में गवर्नर की वीटो और प्रमाणीकरण की शक्तियों ने प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियों को बहुत परिमित कर दिया था। यह किसी भी विधेयक अथवा उसकी किसी धारा से आंकन को अथवा उसमें संशोधन को रोक सकता था। यदि वह ऐसा करना प्रांत की शांति और सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता तो उसके इस कार्य में बाधा उपस्थित करने की व्यवस्थापक मण्डल को शक्ति नहीं थी। इसके अलावा कुछ विधेयक ऐसे थे जिन्हें कि गवर्नर की पूर्व स्वीकृति के बिना व्यवस्थापक मण्डल में पुनः स्थापित नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में भी प्रांतीय बजट का अधिकांश भाग ही मतापेक्षी था। मतापेक्षा भाग की स्थिति में भी व्यवस्थापिका द्वारा प्रस्वीकृत अथवा घटाई हुई घाट यदि किसी सरक्षित विषय से सम्बद्ध होती था तो गवर्नर उसे यथापूर्व रख सकता था। अभाव काल में यदि किसी व्यय की आवश्यकता होती तो गवर्नर उसे व्यवस्थापिका के अनुमोदन के बिना अधिकृत कर सकता था।

प्रा नाय व्यवस्थापिकाओं का कार्यकारणी से सम्बन्ध—जहाँ तक प्रांतीय व्यवस्थापिका और कार्यकारणी के सम्बन्धों का प्रश्न है, मन्त्री व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी है। मन्त्रियों के वेतन और उनके विभागों से सम्बद्ध घन के अधिकांश अनुदानों पर व्यवस्थापिका को मतदान देने का अधिकार था। वह किसी भी मन्त्री को उसके ऊपर अधिश्वास का प्रस्ताव पारित करके त्यागपत्र देने के लिए विवश कर सकती थी। परन्तु द्वयात्मक कार्यकारिणी का दूसरा भाग अर्थात् कार्यकारिणी परिषद प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं था और न व्यवस्थापक मण्डल उन्हें (नाय कार्यिणी परिषदों को) पदच्युत हो कर सकता था। परन्तु यदि व्यवस्थापिका समा इस अर्थन आधी कार्यकारिणी को नियमित नहीं कर सकती थी तो कई पराग रातिपा से प्रभावित अन्वय कर सकती थी। प्रश्नों व स्वयं प्रस्तावों के द्वारा और मरदित विभागा से सम्बद्ध उन अनुगतों को जिनके ऊपर कि उस मतदान देने का हक था मन्त्रीजन करके या घटा कर व्यवस्थापिका समा कार्यकारिणी के ऊपर काफी जोर का दबाव डाल सकता थी और कभी कभी उससे अपनी बात मनवा सकता थी।

५७ द्वयशासन प्रणाली की असफलता

द्वयशासन प्रणाली के प्रयोग का साक्ष्य वर्षों तक (१९२१-१९२७) चलाया गया परन्तु सत्य निरीक्षकों ने उस एक बहुत बड़ी असफलता बताया। यह सच है कि उनमें कुछ सफलताएँ प्राप्त की और भारतीयों का आंशिक रूप से व्यवस्थापक शासन में भाग लेने का अन्वय प्राप्त हुआ। इस काल में शिक्षा स्वास्थ्य व स्वास्थ्य आदि विभागों में कुछ महत्वपूर्ण सुधार भी किए गए। परन्तु वह अल्प मुख्य उद्देश्य प्रांतीय प्रशासन के हस्तान्तरित भाग में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने में सक्षम अमकन रही। ब्रिटिश सरकार ने द्वयशासन प्रणाली का असफलता का सारा दोष काग्रम के सिर मारने का प्रयास किया है। उनका कथन है कि स्वराज्य दल ने अहम नीति का आश्रय लिया प्रथम भारत में शिक्षा का अन्वय था इसलिए द्वयशासन प्रणाली असफल सिद्ध हुई परन्तु असफलता के अन्वय कारण तो मोटफोर्ड सुधारों के अधीन योजित उत्तरदायी शासन का अपरिचयना में ही समाविष्ट है।

सद्वान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण —द्वय शासन का सिद्धांत सद्वान्तिक दृष्टि से गलत था। शासन का प्राय एक शरीर के समान माना गया है अतः उसके विभिन्न भागों को पृथक् करने का मतलब होगा शरीर रूपी मशान का बर्त हो जाना। परन्तु द्वय शासन प्रणाली इस तथ्य की अवहेलना करती थी। हस्तान्तरित और रमित विषयों का दायित्व दो अलग अलग शक्तियों का सौंपा गया जो विरोधी उद्देश्यों से अनुप्राणित थी। सर रेजीनार्ड गार्डन ने लिखा है 'द्वय शासन एक प्रकार की वण शक्ति व्यवस्था है जो कभी सफल नहीं हो सकती क्योंकि किसी देश या प्रान्त का शासन दो पृथक् शक्तियों द्वारा सफलता पूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

गवर्नर की स्व-स्थापारी शक्तियों ने उत्तरदायी शासन की वृद्धि को ध्वस्त किया—१९१९ के एक्ट का सबसे बड़ा दाव यह था कि उसने गवर्नरों को हुम्ना-तरित विभागों के सम्बन्ध में भी इतने अधिक अधिकार दे दिए कि वे उत्तरदायी शासन की वृद्धि को अत्यन्त सफलतापूर्वक ध्वस्त कर सकते थे। गवर्नर को मंत्रियों द्वारा प्रोत्त परामर्श की अवहेलना करने का अधिकार प्राप्त था। फलतः गवर्नर मंत्रियों के साथ केवल परामर्शात्मक अवस्था में ही सम्बन्धित सत्र-रिया का साक्षात्कार करता था। शासन प्रबंध की असली शक्ति मंत्रियों के हाथों में ही थी। इन्होंने एक असंगत स्थिति की गृहीत की, मंत्रियों को ही स्वामियों की सहायता करने पड़ती थी। वह अपने पद पर 'यवस्थापिका' के विश्वास पदों पर ही स्थिर रह सकते थे। इससे साथ ही साथ जब तक कि वे पदत्याग देने के लिए प्रस्तुत नहीं हो जायें उन्हीं स्व-स्थापारी गवर्नर के अधीन भा रहना पड़ता था। बहुत से मंत्री ऐसे थे जो कि स्वतन्त्रता की अपेक्षा पद पर आरुढ़ रहना अधिक अत्यन्त समझते थे। मद्रास के एक मंत्री ने खुल्लम खुल्ला यह कह दिया था कि वह व्यवस्थापिका समा के प्रति नहीं अपितु गवर्नर के प्रति उत्तरदायी है।

मन्त्री 'यवस्थापिका' सभा के निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा सरकारी गुट पर अधिक निर्भर रहते थे—मोटफोड सुधारों में दूसरा दोष यह था कि मन्त्री एक ठोस सरकारी गुट और मनानीत सदस्यों की उपस्थिति में व्यवस्थापिका के प्रति सच्चे धर्मों में उत्तरदायी नहीं हो सकते थे। कुल मिलाकर उनका सरकारी व्यवस्थापिका समा के कुल सदस्यों की सख्या की ३०/ होती थी। परन्तु उनकी वास्तविक शक्ति इससे भी अधिक होती थी क्योंकि उन्हें जमीन और व्यवसायिक और उद्योगपतियों यूरॉपियनों के आगल भारतीयों के प्रतिनिधियों का तथा साम्प्रदायिक निर्वाचक मण्डल के आधार पर निर्वाचित कुछ सदस्यों का समर्थन सदैव ही प्राप्त हो जाता था। यदि इतने पर भी व्यवस्थापिका के अत्रिष्टि गन्म्य बहुमत में रहते थे तो वे मिलकर साथ साथ काम नहीं करते। फलतः मंत्रियों को निर्वाचित सदस्यों के समर्थन की अपेक्षा अपनी प्रयोजनसिद्धि के लिए सरकारी गुट का समर्थन प्राप्त करना अधिक आवश्यक प्रतीत होता था। यदि व्यवस्थापिका सभा में उनके समर्थकों की सख्या कम होती तब भी वह प्रतिगामी तत्वों को कि सदैव गवर्नर के इशारा पर नाचते थे की सहायता से ही अपने मंत्रिपद पर आसीन रह सकते थे। फलतः मन्त्री 'यवस्थापिका' के प्रति बिल्कुल ही उत्तरदायी न रहे। वस्तु स्थिति में वे अनुत्तरदायी और अटल अचल कार्यकारिणी के प्रति उत्तरदायी रहते थे।

संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव—मोटफोड सुधारों में तीसरा दोष यह था कि उन्होंने संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की अपेक्षा की। यह अत्यन्त अनुचित था क्योंकि संयुक्त उत्तरदायित्व के अभाव में किसी भी मन्त्रिमण्डल की गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। 'यवस्थापिका' गवर्नर मंत्रियों को बिना किसी राजनीतिक एकाधिकार (Political

homogeneity) की ओर ध्यान दिए ही चुन लेते थे। यदि सारे प्रांतीय मंत्री एक ही राजनीतिक दल के सम्बन्धित हों तो सम्बन्धित समुच्चय उत्तरदायित्व की प्रथा चल पड़ती। हुआ यह कि कमी-कमी गवर्नर ने विरोधी दलों के मित्रावित्त मददगारों को मंत्री बना दत्त था। फलतः मंत्री एक टीम के रूप में कार्य नहीं कर सकते थे। वे मंत्री थे मित्रमण्डल नहीं।^१ वस्तुतः मंत्री अपने अपने विभाग के व्यक्तिगत प्रमुख होते थे। वे उस सुमगठित टीम की तरह नहीं होते थे जो एक इकाई के रूप में व्यवस्थापिका का सामना करती है। कमी-कमी मंत्री लोग ममा मवन में ही एक दूसरे का विरोध करने लगते थे।^२ यह ठीक है कि हम समस्या के लिए कुछ हद तक राजनीतिक दल पद्धति का अभाव भी लाये थे। पर नु इस अवस्था के मुख्य उत्तरदायी गवर्नर नाग भी थे। मुझे मन्त्रालय के सामने गवाही दते हुए कई भूतपूर्व मंत्रियों ने इस लाप की जिम्मेदारी गवर्नरों के मिर मन्त्रा थी। पत्राव के सम्बन्ध में गवाही दते हुए स्वर्गीय नाग परिविगत नाग ने अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया था— 'दा म भी किसी बात पर एक साथ विचार न करते थे प्रांतीय गवर्नर मुझसे क्या करते कि नियमानुसार प्रत्येक मंत्री का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के आधार पर ही सारा कार्य करना चाहिए। जय कि व्यवस्थापिका में होने अधिक वर्षों के साम्प्रदायिक ममता को प्रतिनिधित्व द दिया गया, तो स्वस्थ दल पद्धति का विकास क्या हो सकता था? फलतः प्रांतों में उस प्रकार का उत्तरदायी शासन स्थापित न हो सका जिसकी आशा की गई थी।

हस्ताक्षरित और सरक्षित विषयों का भेद—द्वय शासन प्रणाली की असफलता का चौथा कारण हस्ताक्षरित और सरक्षित विषयों का भेद था। उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए यह मर्यादा अनुपयुक्त था। इन विषयों की अलग-अलग सूचियाँ व्यवस्था बनाई गई पर नु द्वयद्वार में इस प्रकार का विभाजन पूरा दायित्व सिद्ध हुआ। मन्त्रालय के ७०% ७०% रेहड़ी न एक बार कहा था— मैं जगलों के बिना विकास मंत्री था। मैं कृषि मंत्री था परंतु मिखाई मरे नियंत्रण में न थी। मैं उद्योग मंत्री था,

१ इस सम्बन्ध में सम्भवतः मन्त्रालय ही एक अवस्था था। वही अन्तर्दालों की अस्तित्व पार्श्व का सम्बन्ध था। उसने कुछ कुछ मध्यम उत्तरदायित्व के सिद्धांत का पालन किया। मध्यम प्रांत में था गो० बार्डे० विन्नामणि और ५० जगलनामण

परन्तु कारखानों, बिजली, जन शक्ति गारों और श्रम आदि विषयों पर मेरा नियन्त्रण न था क्योंकि वे सरक्षित विषय थे। स्पष्ट है कि हस्तान्तरित विषयों से सम्बन्धित अपने विषयों कायम मन्त्रियों का सब तक कोई सङ्गतता नहीं मिल सकती थी जब तक कि उन्हें कायकारिणी परिपदों का जिनकी कि अधीनता में सरक्षित विभागों से सहयोग न मिल जाता। परन्तु मन्त्रियों को यह सहयोग सर्व ही प्राप्त नहीं हो पाता था। फलतः यद्यपि असङ्गतता का उत्तराधिकार तो सामान्य होता था तथापि व्यवस्थापिका के द्वारा बवल मन्त्री ही दृष्टित किए जा सकते थे।

वित्तीय अंतर्गतियाँ—पौचकें वित्त के सम्बन्ध में मन्त्रियों की जा स्थिति को उस दृष्टि से भी उनका उत्तरदायित्व भूया था। प्रांतीय सरकारों के हस्तान्तरित और सरक्षित विभागों का बजट एक ही होता था। विभिन्न विभागों के लिए राजस्व का प्रतिस्थापन मन्त्रियों और कायकारिणी परिपदों के पारस्परिक विचार विमर्श के द्वारा सम्पन्न हो सकता था। परन्तु यदि वे एक दूसरे के साथ सहमत न हो पाते उस स्थिति में प्रतिस्थापन निश्चित करना गवर्नर के हाथ में था। स्वभावतः गवर्नर कायकारिणी परिपदों के दृष्टि बि दुष्प्रो को मन्त्रियों के दृष्टि बि दुष्प्रो की अपेक्षा अधिक सहानुभूति के साथ सुनता था। इस सम्बन्ध में मन्त्रियों को एक और कठिनाई का सामना करना पड़ता था। वित्त विभाग के ऊपर उनका कोई नियन्त्रण नहीं था वह पूर्ण रूप से एक कायकारिणी परिपद के हाथों में था। वित्त विभाग स्वयं के सभी नए प्रस्तावों का परीक्षण करता था। इसमें मन्त्रियों की ओर से उपस्थित किए जाने वाले प्रस्ताव भी सम्मिलित रहते थे। विभिन्न विभागों का कितना धन दिया जाय इस बात का निणय भी उसी के हाथ में रहता था। इस सम्बन्ध में यह सरक्षित विभागों के प्रति पक्षपात का परिचय देता था। सरक्षित विभागों को परामर्श करने पर ही सब चीजें मिल जाती थीं और हस्तान्तरित विभागों को आवश्यकता होने पर भी बहुत सी चीजें नहीं मिलती थीं। इस प्रकार मन्त्रियों को जिनके कि जिम्मे राष्ट्र-निर्माण का उत्तरदायित्व था वित्तीय विभाग के अनुचित हस्त-तप के कारण अपने कार्यों में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। द्वय शासन प्रणाली के अर्ध-वित्तीय प्रबंध की जा अंतर्गतियाँ थीं उन्होंने इस बात को अक्षी तरह से सिद्ध कर दिया कि जब मन्त्रियों को कोष के ऊपर ही नियन्त्रण रखने का अधिकार नहीं है तो उत्तरदायी शासन की बात करना कोई अर्थ नहीं रखता।^१

सिविल सर्विस और मन्त्रियों का सम्बन्ध—द्वय शासन प्रणाली के अंतर्गत उत्तरदायी शासन की यह वास्तविकता मन्त्रियों और उनके अधीन सरकारी कामकारिणों के सम्बन्धों में भी स्पष्ट होती है। मन्त्रियों के अधीनस्थ विभागों के स्थायी प्रमुख या सेक्रेटरी होते थे। उनमें अधिकांश पकित भारतीय सिविल सर्विस के सदस्य होते थे। उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि मन्त्री जो भी

आदेश दे उनके अधीनस्थ पदाधिकारी उन आदेशों का प्रबलम्ब पालन करें परन्तु द्वय शासन प्रणाली के अदर यह स्थिति नहीं थी। साम्प्रदायिक सभाया के ऊपर भारत मात्रा का हा नियन्त्रण बना रहा। १९१६ के एक्ट के अधीन सिविल सवियों के अधिकारों व प्राधिकारों की रक्षा करना गवर्नर का कतव्य ठहराया गया। व्यवहार में इसका अमिप्राम यह हुआ कि स्थायी पदाधिकारियों की नियुक्ति स्था नान्तरण और सरकारी पर गवर्नर का नियन्त्रण होता था न कि उस मंत्री का जिमकी अधीनता में वे कार्य करते थे। उत्तरदायी शासन की भावना के प्रतिकूल हमने बढकर और कौन सी वस्तु हा सकती थी। एन और तो अपन विभाग के सम्बन्ध शासन प्रवृत्त के लिए मात्रा व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी था और दूसरी ओर उसे कम बात की भी पूरी शक्ति नहीं दी गई थी कि वह अपन उन अधीनस्थ कमचारियों को दण्डित कर सकता जो कि उसकी नीतियों को कार्यान्वित करने में बाधक हात थे। यदि मंत्रिया और सिविल सविस के सदस्य में किसी प्रकार का मतभेद हुआ तो सिविल सविम के सदस्य मंत्रियों को अवहलना करके उत्त्तर अधिकाारिया की सहायता से अपनी ही बात ररर सकते थे। यद्यपि अधिकारा अवमरर पर सिविन सविम के सन्म मंत्रियों के साथ सहयोग करते रह फिर भी प्रत्येक प्रान्त में कुछ ऐसे अवसर अवश्य भाण जब सिविल सविम के सदस्यों ने मंत्रियों की बात न माना और यत्ि मानो भी तो बमन से। सिविन सविम और मंत्रियों के पूर्वोक्त सम्बन्ध के कारण भी द्वय शासन प्रणाली कायम्प में दोपयुक्त और असज्ज सिद्ध हुई। उस समय प्राय यह कहा जाता था कि कामकारिणी परिपद का नया सदस्य सबसे पुराने मंत्री से अधिक ऊंचा हाता है।

सारांश

१९१६ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट ने भारत की केन्द्रीय सरकार में कोई सारभूत परिवर्तन नहीं किया। उसने केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण को कुछ सिविल कर दिया और केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों की सभ्या और उनकी शक्तिया में थोड़ी सी वृद्धि कर दी। केंद्राय कामकारिणी व्यवस्थापिका के प्रति पूर्ववत् ही धनु उत्तरदायी रही। व्यवस्थापिका को इनकी शक्तिया दे दी गई जिनसे कि वह काम कारिणी को नियन्त्रित तो नहीं परन्तु प्रभावित अवश्य कर सकती थी। प्रान्तों में द्वय शासन प्रणाली के रूप में प्रांशिक उत्तरदायी शासन का स्थापना की गई। यद्यपि ब्रिटिश भारत की एकात्मक प्रवृत्ति ता पूर्ववत् ही रही, तथापि प्रान्तों की थोड़ी स्वायत्तता दे दी गई।

गृह-सरकार—भारतवष के सम्पूर्ण शासन संचालन का केन्द्र सन्म ही रहा। भारत सरकार सन्म में अवस्थित गृह-सरकार के अधीन था। गृह-सरकार में भारत मंत्री और उसकी परिपद सम्मिलित थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मग होने के परचाग भारत मन्त्री के पद की मृष्टि की गई। भारत-मन्त्री ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ क्लर्क और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की सम्पूर्ण शक्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था। भारत मन्त्री ब्रिटिश मिनिस्टर ऑफ सप्लाय होता था। भारत के राजस्व और शासन में सम्बद्ध प्रत्येक विषय कानून के संचालन नियंत्रण या निरीक्षण का उभे अधिकार था। भारतीय परिषद जो कि एक परामशदात्री समिति थी उसने काय में उभे सहायता देती थी। १६१९ के एक्ट के अनुसार भारत मन्त्री का बतन ब्रिटिश राजकोष से लिया जाने लगा। इस प्रकार इस एक्ट ने एक असाधारण को दूर कर दिया।

१९१६ के एक्ट के अधीन भारतवर्ष के लिए एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की गई। यह हाई कमिश्नर गवर्नर जनरल के द्वारा नियुक्त और नियंत्रित होता था। हाई कमिश्नर का कार्यालय लखनऊ में होता था। वह भारत सरकार के अधिकारियों के रूप में कार्य करता था। इंग्लण्ड में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों को हिन्दो की देश भान करने का कार्य भी उसने ही जिम्मे था।

भारत सरकार—१६१६ के एक्ट ने केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं की। गवर्नर जनरल भारत मन्त्री के माध्यम से ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी बना रहा। गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद एक नौकरशाही निकाय थी जिसके ऊपर केन्द्रीय व्यवस्थापिका का तन्त्र भी नियंत्रण नहीं था।

गवर्नर जनरल का पद अत्यन्त शक्तिपूर्ण और महत्वपूर्ण था। वह परात स्वच्छाचारी शासक था। भारतीय शासन प्रबन्ध में उसका स्थान सर्वोपरि था। उसकी व्यवस्थात्मक शक्तियाँ बहुत बड़ी घटी थीं। वह केन्द्रीय व्यवस्थापिका के द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक पर अपने विधेयधिकार का प्रयोग कर सकता था। व्यवस्थापिका के द्वारा अस्वीकृत विधेयको को अपने प्रमाणीकरण के अधिकार के द्वारा गवर्नर जनरल कानून का रूप देने में समय था। गवर्नर जनरल को अध्यादेश प्रख्यापित करने का भी अधिकार था। केन्द्रीय वित्त के ऊपर भी उसका ही पूर्ण अधिकार था। व्यवस्थापिका को बजट के बजट ३० भाग पर ही मतदान का अधिकार था। व्यवस्थापिका द्वारा अस्वीकृत या घटाई हुई सभी माँगों को गवर्नर जनरल कायम रखने का अधिकारी था। कार्यकारी परिषद के ऊपर भी गवर्नर जनरल का पूर्ण प्रभुत्व था। कार्यकारी परिषद किसी भी दशा में मित्र परिषद के तुल्य नहीं थी।

मोटफोड सुधारों ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका के दो सदन कर दिए। उच्च सदन को राज्य-परिषद् कहते थे। उसके सन्सों की संख्या ६० होती थी जिसमें कि ३४ सदस्य निर्वाचित होते थे। निम्न सदन को भारतीय व्यवस्थापिका सभा कहते थे। उसके कुल सन्सों की संख्या १४५ होती थी जिसमें कि ४१ सरकारी और १०४ सरकारी सदस्य मनोनीत होते थे। इन प्रकार दोनों सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होता था। परन्तु निर्वाचित सीटों की पूर्ति पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचक गणों

धीरे धीरे निर्वाचक मण्डलों के माध्यम से जानी जाये। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के पास प्रमुख शक्ति का अभाव था। यह कानून बनाने वाली मन्त्रालयों की परन्तु उसकी क्षमता के ऊपर गवर्नर जनरल की स्वेच्छाचारिता का अभाव के कारण बहुत प्रतिबंध लग हुए थे।

प्रान्तीय शासन—१९१८ के एक्ट ने प्रान्तों में उत्तरदायी शासन के प्रयोग को प्रारम्भ किया। प्रान्तीय शासन प्रबन्ध का दो भागों में बांटा गया। एक भाग में गवर्नर जनरल कायदेवारी परिषद के अन्तर्गत सम्मिलित था। यह भाग राजस्व कानून और व्यवस्थापिका के अन्तर्गत विभागों का प्रबन्ध करता था। शासन के इस भाग के ऊपर प्रान्तीय व्यवस्थापिका का बिल्कुल नियंत्रण नहीं था। दूसरे भाग में गवर्नर और मन्त्रा सम्मिलित थे। यह भाग कृषि शिक्षा स्थानात्मक स्वायत्तता इत्यादि हस्तान्तरित विषयों का प्रबन्ध करता था। मन्त्री लोग व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। व्यवस्थापिका उनका अन्तर्गत में काम कर सकती थी और उनका ऊपर अधिवास का प्रस्ताव काम करके उन्हें पत्रच्युत कर सकती थी।

गवर्नर द्वारा सम्पूर्ण प्रान्तीय प्रशासन का सूत्रधार था। द्वेष शासन प्रणाली की स्थापना ने उसे हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में भी बंधनित शासन नहीं बनाया। मन्त्रों के परामर्श को मानना न मानना उनका अधिकार था। यह उनका अन्तर्गतता कर सकता था। इसका अन्तर्गतता गवर्नर जनरल की ही तरह उसकी भी कायदेवारी विषयों की और वित्तीय शक्तियाँ बहुत बनी चली थीं।

१९१९ के एक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में व्यवस्थापिका परिषदों को काफी विस्तृत कर दिया गया। मन्त्रियों में उनमें द्वारा किए गए कार्यों का कारण पूछने का अधिकार दिया गया। परन्तु गवर्नरों की प्राथमिकता सत्ता के कारण उनकी व्यवस्थात्मक व वित्तीय शक्तियों के ऊपर प्रतिबंध लग हुए थे।

१९१० के एक्ट के अन्तर्गत जिम में शासन प्रणाली की स्थापना की गई, उसे अपने उद्देश्य में सम्मिलित नहीं मिली अर्थात् वह प्रान्तीय प्रशासन के अन्तर्गत विभागों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना न कर सकी। गवर्नर की स्वच्छाचारिता शक्तियों उत्तरदायी शासन की स्थापना में सबसे बड़ी अड़थक बाधें थी। मन्त्री मनानीत सदस्यों के गुट का सहायता में अपनी गद्दी पर जम रह सकते थे। दूसरे शब्दों में व्यवस्थापिका के प्रति वह कम उत्तरदायी रहते थे। प्रान्तीय शासन में सयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव था। सरक्षित और हस्तान्तरित शक्तियों के बीच विषयों का बाँटना बहुत बढ़ता था। वित्तीय विभाग जो कि एक कायदेवारी परिषद के अन्तर्गत में था मन्त्रियों के कार्यों में काफी हस्तक्षेप कर सकता था। इन मन्त्रियों का अपने अधीनस्थ भारतीय सिविल सर्विस के सम्बन्ध में ऊपर कोई नियंत्रण नहीं था। यदि मन्त्रियों और सिविल सर्विस के सदस्यों के बीच किमा प्रकार का मतभेद होता, तो सिविल सर्विस के सत्य मन्त्रियों की प्रवृत्तता करके, उच्चतर अधिकारियों की सहायता से अपनी बात रख सकते थे।

अध्याय ६

असहयोग आंदोलन

५८ प्रथम विश्वयुद्ध और भारतीय राष्ट्रीयता

युद्ध और राष्ट्रीयता—१९१४ ने लिगा है कि युद्ध राष्ट्रीयता को प्रवृष्ट कर देता है।^१ प्रथम विश्वयुद्ध ने इसका एक दृष्टान्त प्रदान किया। ब्रिटिश और अमेरिकन राजनीतिज्ञों द्वारा घोषित राष्ट्रीयता का मन्त्रिमय व सिद्धांत न यूरोप में एक उत्तमना उत्पन्न कर दा। उसी सिद्धांत के अनुसार कई नूतन राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना की गई। पूर्व में इससे अप्रभावित न रह सका। चीन और मध्यपूर्व में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आंदोलन जोर शोर से प्रादुर्भूत हुए। युद्ध ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का भी अप्रत्यक्ष प्रदान की। युद्ध के पचास बरस बाद भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की गति और दिशा दोनों में परिवर्तन हो गया।

आंतरिक कारण (क) आर्थिक कठिनाइयाँ—कई ऐसे आंतरिक कारणों ने भी जो कि सीधे युद्ध से सम्बद्ध थे—राष्ट्रीय आंदोलन की गति को तीव्र कर दिया। युद्धकाल में भारतवर्ष को भीषण आर्थिक कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा था। अनिवाय सामग्रियों की कमी और महंगाई के कारण जनता को बहुत कष्ट उठाने पड़े थे। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की जनता की तो मानो कमर ही टूट गई थी। चीजों के दाम बहुत ऊँचे चढ़ गये थे। दूकानदार मरपेठ मुताफा वसमत थे। अतृप्त लाभ उठाने पर अकुश उठाने अथवा बहुत जरूरी चीजों पर राशन लगाने की कोई कोशिश नहीं की गई थी। एक ओर तो भारत में भुखमरी फैल रही थी दूसरी ओर सरकार ने महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने में ज्यादाती से काम लिया। भारत सरकार ने देश की आर्थिक दुर्घस्था का तनिक भी ध्यान न रखते हुए ब्रिटेन को दस करोड़ पाउंड की भेंट दी। जनता की आर्थिक दशा इतनी शालीनी हो गई थी कि कुछ स्थानों पर मजदूरों ने हड़तालों की कड़ी कड़ी बलब हो गये और बाजार टूट लिये गये।^२ चम्पारन (बिहार) और खेडा (गुजरात) में हालत विशेष रूप से खराब हो गई थी। यहाँ की परिस्थितियों ने महात्मा गांधी का अग्रण सत्याग्रह अस्त्र का सफल प्रयोग करने का सुअवसर प्रदान किया।

१ कूपनड— इण्डिया ए रिस्टेटमेंट पृ ११७।

२ इण्डिया टुन १९१७-१८ पृ ९।

(ख) प्लेग और इन्फ्लुएजा—एक और ता घापिक बढिनाइया ही जनता क जीवन का भार बनाय द रही थीं, उस पर रोग और प्रकान ने भी हमला बाल दिया । १९१७ में बपा ठीक म नही हुई फलत अकाल की-सी परिस्थितिया पन हा गइ । अकाल के पीछे पीढ प्लेग इन्फ्लुएजा मउरिया और हैजा जनता के ऊपर बड दौडे । जनता अमका मला क्या सामना करती ? मुख पट रहने के कारण उसकी अकिनया तो पहने स ही क्षीण हा चुकी थी । लगभग ८ लाख व्यक्ति तो पन्य की भेंट बन गय और ८० लाख जाना को इन्फ्लुएजा ला गया । जनता तपकर और मून व ग्रामू पीकर रह गई ।

(ग) राजनीतिक कारण सरका का दमनचक्र—उपय बड कारणों न भारत बप म जो अज्ञाति उत्पन्न कर दी थी वह कुछ राजनीतिक कारणों स और भी बड गई । लाइ चेम्सफाड क शासनकाल में सरकार की ओर स जो अमनचक्र चला उसन राशिय आदालत का चाट वह किसी भी रूप म क्यों न हो तरह-तरह से कुबलन की चप्ट की । प्रम एकट और सेडासन एकट का खनुकर प्रयोग किया । बगाल म हालत बिगप रूप स एराब थी कथाकि बहा पर नोकरशाही दमनचक्र जनता म तीर अमन्तोप की भावना उत्पन्न कर रहा था । ग्रामती बार्सेट की नजरबंदा और अना बचुओं के विरुड सरकार की कायमाहा का हम पहच ही उत्पन्न कर चुक है । पत्राब म मर माबन का हायर न सारा राजनातिक हलचलों का अपन फीलागी पत्र स कृचन वाला । उहान तिनक और विपिनचन्द्र पान जस नेनामा क पत्राब-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया ।

महायुद्ध के लिये धन एकत्र करने और सिपाही भर्ती करने में ज्यादतियाँ—सरकार न महायुद्ध क लिए धन एकत्र करने और सिपाही भरती करने में जिन तरीकों स काम लिया वह भी मबया दापपूर्ण और अमन्तोपजनक थ । इन तरीका क कारण जिहें सरकार न दबाव और समझान क तरीक बहा था परन्तु जो दरमसल ज्यातिमा थीं, पत्राब और अय जगहों में अग्रे चनकर अयकर स्थितिया पन हा गइ ।

मोंटफोर्ड मुचारी से निराशा—मोंटफोर्ड प्रतिबन्ध में भारतयप क लिय जिन बज्ञानिक मुचारी का प्रस्ताव किया गया था उनस भारत के राष्ट्राय तत्वा म तात्र निराशा था गई । जनता के अन्तर आम धारणा यह थी कि ब्रिटिश सरकार न युद्ध-काल म का गई अपनी प्रतिनामा को तोड दिया है और भारत को बहुत हीन समझ रखा है । युद्धकाल म भारतयप न धन और जन दोनों स ही अपूव सहायता की थी, मोंटफोर्ड प्रतिबन्ध क प्रकाशित हान क परवान् मानूम पडा कि वह सब सहायता बिल्कुल बफार हो गई ।

खिलाफत प्रश्न—खिलाफत प्रश्न के ऊपर भारतीय मुसलमान अत्यन्त रूठ हुए । जब लडाई चन रही थी ब्रिटिश सरकार न उहें यह बचन देकर कि न तो टर्की-साम्राज्य का हा विघटन किया जायगा और न खिलाफत का ही अन्त किया जायगा उनकी सहायता प्राप्त की थी । परन्तु युद्ध समाप्त होने के परवान भारतय

मुसलमानों को पता चला कि अग्नेजा के ये सब बचन केवल उन्हें भुलावे में डालने के लिए ही थे। उस यात की वापी अफवाह थी कि भिन्न राष्ट्र टर्की साम्राज्य का विघटन करने और तिलापन को समाप्त कराने का निरुत्सव करने हुए हैं। सीवस को सचि ने अग्नेजा की दोहरी धार का प रीक्षण कर दिया। अतः भारत के मुसलमानों को गहरा घबरा पड़ेगा और उन्होंने तिलापन आन्दोलन को प्रारम्भ किया। राष्ट्रियता का नई मानना का उत्पन्न होना का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि १९१५ में मोहन जी मृगु होने के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व में परिवर्तन हो गया था।

उदारवादियों का अन्तर्गत और राष्ट्रीय नेतृत्व में परिवर्तन—१९१८ में उदारवादी काँग्रेस से अन्तर्गत हो गए और उन्होंने अन्तर्गत एक अलग संगठन—प्रतिष्ठित भारतीय उदारवादी सच को स्थापना की। जू कि उनका अन्तर्गत में ही विश्वास था अतः वे हामरुन अन्तर्गत की प्रकृष्टता द्वारा प्रशिक्षित राष्ट्रीय सच की नून प्रवृत्तियों के सवया अनुपयुक्त थे। परन्तु उनके काँग्रेस से अन्तर्गत विच्छेद करने का असली कारण १९१८ में प्रकाशित मार्फोड प्रतिबन्धन में निहित अन्तर्गत सुधारों का प्रति उनका अन्तर्गत दृष्टिकोण था। वे इन सुधारों को अन्तर्गत सम्मानना का अन्तर्गत मानते थे। इसके विपरीत उस समय काँग्रेस में उन्तर्गतियों का जोर था। वे मार्फोड प्रतिबन्धन से सवया अन्तर्गत थे। उदारवादियों के निकल जाना का बाद काँग्रेस महात्मा गांधी के गतिशासक नेतृत्व में अन्तर्गत और उन्होंने भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नवन दिशा और नवीन गति प्रदान की।

५८ रोलट एक्ट

रोलट एक्ट की पृष्ठभूमि—१९१८ में सरकार ने सर सिडनी रोलट की अध्यक्षता में एक कमेटी यह जांच करने के लिए नियुक्त की कि भारतवर्ष में किस प्रकार और किस हद तक अन्तर्गतकारी आन्दोलन सम्बन्धी पडयान्त करने हुए हैं और उनका मुकाबला करने के लिए कानूनों की आवश्यकता है। भारत रक्षा कानून की अन्तर्गत अन्तर्गत ही समाप्त होने वाली थी और सरकार विध्वंसक कायवायियों को कुचल डालने के लिए अन्तर्गत अन्तर्गत शस्त्र अन्तर्गत कर लेना चाहती थी। अन्तर्गत महायुद्ध अन्तर्गत समाप्त होता जा रहा था फिर भी सरकार शकाकुल थी। उसे अन्तर्गत था कि कहीं रुस का या अन्तर्गत अन्तर्गत का भारतवर्ष पर अन्तर्गत न हो। कुछ मन्त्रों का अन्तर्गत अन्तर्गत ने भारतवर्ष के ऊपर अन्तर्गत किया परन्तु उसे बहुत ही आसानी से पीछे ढकेल दिया गया। इसी बीच में जांच करके रोलट कमेटी ने अन्तर्गत रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी। इस रिपोर्ट में राजद्रोहात्मक हलचलों का दमन करने के लिए दो विधेयों के अन्तर्गत की सिफारिश की गई थी।

व्यापक विरोध के बावजूद नी रोलेट एक्ट को पास कर दिया गया—रोलेट एक्ट के विरुद्ध सार दंग में शोध की लहर दौड़ गई। उगारवाणिया न मा इसका खुल कर विरोध किया। सी० वाइ० चिन्तामणि न तिसा है इन दोनों विधायकों का विरोध परिपक्व क गर सरकारी भारतीय सन्स्थों निर्वाचित सदस्यों और नामजद सदस्य। सबन समान रूप स किया परंतु सरकार अपनी बात पर धड़ी रहा और तनिक भी नहीं झुका। रोलेट एक्ट कानून बन गया और एम बात स भारतीयों का कोई साधना नहा मिला कि उसकी अवधि कवन तीन वष हा रखा गई थी। यह एक्ट अतय कठोर था। इसस सरकार को जनता का स्वतंत्रताओं का हनन करने सदेहास्पद यक्तियों को बिना किसी वारंट क गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाए ही उन्हें हवालात म बद कर रान का अधिकार भिन गया। काप्रस न अपन टिल्ली अधिवेशन (दिसम्बर १९१८) में सरकार से यह मांग की थी कि उन सार कानूनों अध्यादेशों और रंगूलेशनों को जिनक कारण स्वतंत्रतापूर्वक राजनीतिक समस्याओं पर खुन कर वाद विवाद नही किया जा सकता और जिनक द्वारा अधिकारियों को गिरफ्तार करने, नजरबंद करने रोकने दंग निवाला देन सत्रा करने का, साधारण अंगालतों म बिना मुकदमा चलाए हा अधिकार द दिया है, खुगुन ही उखा लिया जाय और सरकार न उसका उत्तर दमनमूलक रोलेट एक्ट क रूप म लिया। रोलेट एक्ट न सरकार का दमन का जा अमानुषीय और असीमित अधिकारों की यद्यपि उनका प्रयोग तीन वष का अवधि म हुआ बिसा भी अवसर पर नहीं परंतु उन्होंने भारत म सबप्रथम सविनय अवज्ञा आन्दोलन को जन्म द दिया।

६० भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रवेश

महात्मा गांधी का १९१५ में दक्षिणी अफ्रीका से वापस लौटना—रोलेट एक्ट न भारतीय राजनीति म एक नए युग का धीगणुण किया। इमने महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति क मबवा अगम मार्ग पर ना खडा किया। महात्मा गांधी जनवरी १९१५ म दक्षिण अफ्रीका स वापस लौट आए थ। दक्षिणी अफ्रीका में उन्होंने जो बलिदान किए थ अध्यापक विरुद्ध जा सयप किया था और जो उसमे सकरना पाई था इसक कारण उनका नाम भारतवष क धर पर में प्रसिद्ध हो गया था। महात्मा गांधी अपन साथ जीवन का एक विचिष्ट दशन और एक एसा राजनीतिक टेकनीक लाए थ जिसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी था।^१

स्पष्ट घोषित राजभक्त—उस समय महात्मा गांधी स्पष्ट घोषित राजभक्त' थे। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी राजभक्ति का वह गवपूर्वक उल्लेख किया करते थ। उनका कपन था कि ' ब्रिटिश साम्राज्य क कुछ ऐसे आदम हैं जिनसे मुझ प्रेम हो गया है। सरकार न भी उन्हें कबरे हिंद स्वण-मदक प्रान कर उनकी प्रतिष्ठा की थी।

१ एच० एस० पासक— महात्मा गांधी', पृ० ६५।

भारतवर्ष में आरम्भ करने को धरना राजनीति मुद्रण किया और उसे मांग दर्शन प्राप्त किया। गोगन ने उ ह सलाह दी कि भारतीय राजनीति मूल पढने व पूर्व बुद्ध समय तक उ उमका सम्भार अध्ययन करें। महात्मा गांधी ने सन्तुष्टा दो वष के करीब सारे देश का भ्रमण करने में व्यय किए। जहाँ कहा भी महात्मा गांधी गए उनका घण उनका भागे धारो गया और जाता न सन् और और के रूप में उनका घाटन किया। अपनी इस यात्रा के काल में महात्मा गांधी ने सक्रिय राजनीति में कोई भाग नहीं लिया।

धरना—१९१७ में धरना ने महात्मा गांधी का आह्वान किया। वही नीत को खनी होती थी और अग्रज उमके मानिक थे। वे लोग किसानों पर तरह तरह के अत्याचार करते थे। महात्मा गांधी ने किसानों की कठिनाइयों के बारे में मूल्य जांच पड़ताल की और वे उनके कष्टों का दूर करने में सकल हुए। इससे गांधीजी की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।

खेड़ा—धरना वष उहोने खेड़ा में कर रही आ गेन का संगठन किया। खेड़ा में उम वष वर्ष नहीं हुई थी डगम फमल पर बहुत दुःख भर पना था। इस का दालन में ही महात्मा गांधी सरदार पटेल के निकट सम्पर्क में आए। धरना में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का जो प्रयोग किया था वह समझौते के रूप में सफल हुआ गांधीजी के अनुयायियों ने इसको धरना बहुत बड़ी विजय समझा।

अहमदाबाद—उनी वष अहमदाबाद के मिल मजदूरों ने भी महात्मा गांधी के सहायता की याचना की। वे लोग अपनी वेतन वृद्धि के लिए आन्दोलन कर रहे थे। महात्मा गांधी ने मजदूरों की सहायता का वचन दिया और मिल मालिकों से कहा कि वे उनका मांगो का पूरा करें। जब मिल मालिक नहीं माने तो गांधीजी ने धरना अग्रगण्य शुरू कर दिया। उपवास के चौथे दिन मिल मालिकों ने गांधीजी की गतों को स्वीकार कर लिया और मजदूरों के वेतन में ३५ प्रतिशत वृद्धि हो गई।

राजभरत से राजगोही—सके या रोलट एक्ट आया। इसने महात्मा गांधी की राजभक्ति की भावना को आघात पहुँचाया और उह विदेशी शासन का घोर विरोधी बना दिया। उहने रोलट एक्ट की मुक्त बठ से निन्दा की और उस इस बात का सबूत बताया कि याय की ब्रिटिश परम्परा की स्वच्छाचारी शक्ति के प्रेम ने विजित कर लिया है। मुद्रण काल में उहोने भारतीय जनता से यह आश्वासन कहा था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता करें। अग्रजों ने जो वादे किये थे उन पर उहाने सरन भाव से विश्वास कर लिया था। परन्तु रोलट एक्ट ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासक भारतवर्ष पर शक्ति प्रयोग द्वारा शासन करने के लिए हठ प्रतिष्ठ हैं। भारत स्वशासन की भाशा करता था लेकिन उसे पढ़ने बनप्रवर्तन प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी जो अब तक राजभक्त थे राजगोही हो गए। २१ मार्च —

१९१८ की रोलट एक्ट वानून बन गया। उसके तुरन्त बाद ही महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का नेतृत्व प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने इस घान्तेवतन को अपने उपवास के साथ प्रारम्भ किया। उनका कई मित्र न उर इस वत को चलावना दा थी कि दगा क्यापी पमान पर गते घान्तेवतन का प्रारम्भ करना नै न निए हिन कर नहा होगा वससे न ववस्या और अराधता फन वान का मय है। परन्तु महात्मा गांधी न किमा की नहो सुनी और वह अपनी यात्रना पर न रह। नारायण नारायण न निए इस कान कानून क विगेर म जुनम निकानन और मावजनिक ममाए करन क लिए ३० माच की तिथि निश्चिन का गई। बा न ये यर तारा न नन कर ६ अप्रन कर दी गई परन्तु न्तिना और अन्य कठ स्थाना पर उवा प्रोग्राम का दोनों ही न्ति पालन किया गया। हडता को अमृतपूव सफनता प्राप्त हुई। चारों धार ही अस्ताह और न्तवना का वातावरण छा गया।

हिन्दू मुस्लिम एकता सत्याग्रह स्वगन—' इस उस्ताह का एक दानोय लगण यह था कि हिन्दूमा और मुसलमानों क वाच अमृतपूव बाधुत्व की भावना दधी गइ। हिन्दुओं ने मुसलमाना क हाथा म और मुसलमाना न हिन्दुओं के हाथों स मावजनिक रूप न जल ग्रहण किया। इस दिन जो मनाए हई, जो जलम निकन उन सब में हिन्दू मुस्लिम एकता की ध्वनि मुनाइ वाना थी। कुछ हिन्दू नताओं का मन्जिद की वी से मापण दन क निए आमन्त्रिन किया गया।' घान्तेवतन प्रारम्भ करते समय महात्मा गांधी न जनता का नम बा न की कठो हिन्दुवत द दी था कि प्रत्येक मृत्यु पर अहिमा का पालन किया जाण। उहो न सत्याग्र का टकनाक और दान म जनता को शिगित करन क लिए बहन भा ब्रगहो दा दौरा भी किया था। तथापि कई स्थानों पर अगन हो गए। न्तिनी म जनता और पुलिम क बीच सधप हो गया। पुनिय न गानो चला दा जिसम आठ आदर्मिशा की मृत्यु हा गइ। अगई अहमदाबा क जनता नहोर और अमृतमर में भा नही तरू क अतरनाक अगडे हा गए। इन हातनों को न्तकर महात्मा गांधी का आत्मा का अपार वेग टूटा और उहोने १८ अप्रन को अरना घान्तेवतन स्थगित कर निया क्वाकि जनता अहिमा का पालन करन में अमकन रही थी। महात्मा गांधी न मारा दाप अपने सिर न निया। उहोने इस वान का पापणा कर दी कि घान्तेवतन मु न करना उनकी ममकर भूल थी। अपनी इस भून क प्रायश्चित्तस्वरूप उहान तीन दिन का उपवास रखा और जनता से भी एक न्ति का उपवास रपन का निवन्त किया।

११ पंजाब की दुघटनाएँ

पंजाब का अशांतिमय वातावरण—अप्रन १९१९ भारत क राष्ट्रीय आन्तेवतन क इतिहास म चिरस्मरणीम महाना है। रोलट एक्ट क विरोध म महात्मा गांधी न जिस सत्याग्रह घान्तेवतन का लडा किया था उतन दान में अद्वैत भयावह दातावरण उत्पन्न कर निया था। पर नु पंजाब की हानन विनाय रूप स खराब हा गइ थी। इस प्रांत में रोलट एक्ट विरोधी आन्तेवतन के सितमित में लाहौर और अमृतमर

घादि स्थानों पर कुछ हिसारमक घटनाएँ भी हो गई थीं। 'परन्तु वहाँ कोई त्रान्नि-
यारी घातक नहीं था और जनता के तथा घातक के शांतिपूर्ण व पयानिक
उपायों में विश्वास रखते थे।'

सर माइकेल ओडायर—उक्त समय पंजाब के गवर्नर सर माइकेल ओडायर
थे। वह पंजाब के लौह पुद्गल के नाम से विख्यात थे। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि
यह शासक बहुत अच्छे थे परन्तु राजनीतिज्ञता का उनमें सवया प्रभाव था।^१
उन्होंने लडाई के लिए सिपाही मरती करने और धन एकत्रित करने में जिन प्रमानुषीय
साधनों का प्रयोग किया था उनमें वह पहले ही जनता में काफी बुरा नाम हो चुके थे।
उन्होंने अपने प्रान्त में सारी राजनीतिक हनचलों का कुचन डालने का निश्चय कर लिया
था। उन्होंने पंजाब के चारों ओर ताहे का एक आवरण डाल दिया और महारमा
गांधी तथा अन्य छोटा के राष्ट्रीय नेताओं को पंजाब में प्रवेश करने से रोक दिया।
७ अप्रैल १९१९ को पंजाब व्यवस्थापिका सभा में भाषण देने हुए उन्होंने जो
घातक व समस्त सगठनकर्त्ताओं को यह चेतावनी दी थी कि वे लोग जो कुछ भी
काम काम कर रहे हैं उनका उन्हें परा पूरा फल भुगतना पड़ेगा।

डॉक्टर किचनू और डॉक्टर सत्यपाल का निर्वासन—१ अप्रैल १९१९ को
प्रातः काल ही घमृत्सर के जिला मजिस्ट्रेट न डॉक्टर किचनू और सत्यपाल को जो
विवादात्मक का सगठन कर रहे थे अपने निवास स्थान पर बुला भेजा और वहाँ से
बुधवार किसी अनात स्थान को भेज दिया। इससे सारे शहर में सनसनी फैल गई।
सब दूकानें बन्द हो गई। लोगों का एक भण्ड अपने नेताओं के छुटकारे की मांग करने
जिला मजिस्ट्रेट के बगले की ओर पना परन्तु उस चौराहे पर जो सिविन लाईन और
शहर के बीच में है फौजी सिपाहियों ने भीड़ को तितर बितर करने के लिए दो बार
गोलियाँ चलाईं। पुलिस की गोणियों से कम से-कम १ व्यक्ति ता मारे गए और कई
घायब हुए। इस पर भीड़ तिमर हो गई। शवों को अपने साथ नरर लोग शहर को
बापम हुए। पाँच यूरोपियनों का मार डाला गया। एक बकर ल गोदाम और
टाउनहॉल समेत कई सावजनिक इमारतों को जना दिया गया एक पादरी महिला मित
शरवड पर हमला किया गया और उन्हें अधमत अवस्था में छोड़ दिया गया।

जनरल डायर—यह देखकर अधिकारी बग कोप और प्रतिरोध की भावना
से धग बबला हो गया। सारा शहर जनरल डायर की अधीनता में सनिक अधिकारियों
के सुपुद कर दिया गया। जनरल डायर ने भारतीयों को एक सबक सिखाने का और
पंजाब में शांतक पदा करने का दृढ निश्चय कर लिया। १२ अप्रैल को उन्होंने यह

१ जी एन सिंह— लण्डमानस इन इण्डियन कास्टीट यूशनल एण्ड नेशनल
डवलपमेण्ट पृ० ३८२।

२ सी० वाई चिन्तामणि— इण्डियन पालिटिक्स सिन्स म्यूटिनी
पृ० १२८।

आजा जारी की कि सावजनिक समारोहों पर पाबन्दी लगाई जाती है। परन्तु मजे की बात यह है कि इस आजा को प्रकाशित करने की कोई व्यवस्था नहीं की गई।

जलियावाला हत्याकाण्ड—१३ अप्रैल को जलियावाला बाग में एक सावजनिक समा करने का आयोजन किया जा चुका था। जनरल डायर ने सबसे पहले इस समा को रोकने की कोश चढाई नहीं की परन्तु जब समा में २० हजार प्रतिभागियों से अधिक एकत्रित हो गए १०० भारतीय और ब्रिटिश सैनिकों के एक दस्ते को लेकर वह समा स्थल पर जा पहुँचा और उसने शक्तिशाली जटिलों को चेताने का एक शस्त्रों में लिए बिना भीच पर उसने १० मिनट का समय स गोना चला दी। जो परमाइ सबसे अधिक थी गालियों को उना शिवा म चलाया गया। कुल १६५० फरकिए गए और सैनिकों ने गोनी चलाया उनी समय बंद किया जस सब बानु स निवृत्त गए। सरकारी बॉम्बडा क मनुमार ३७९ बकि मरे और कम से कम १०० बकि घायल हुए। मानसप्रसन्न भीच सुरत ही तितर वितर होने लगी थी परन्तु डायर ने लगातार १ मिनट तक गालिया का बौद्धिक को मनुष्यों के उम आतंकित भुण पर जारी रखा जिम कि घुं के तुल्य विजने म पण्ड रला गया था। डायर ने हण्टर बमेटी के सामने यह कहा था मैं तो एक फौजी गाढा (ग्राम्प कार) ले गया था बकि वहाँ जानर रणा क्रि वह बाग क भातर घुम ही नही सकती था इसलिये उसे वही भातर छोड दिया था।

मासन ला और आनक पर राय—पंजाब म अविहारी बग ७ जा नृसताए की जलियावाला बाग का घटना उन सबसे मयवर थी। इस कृतघाम के ला निन बाय पंजाब क ५ दिनों म सनिक विधान (Martial law) घोषित कर लिया गया और उस अमानवीय निदयता क साथ नाशु किया गया। जनरल डायर क राय में कुछ एसी सजाए दाने का मिली जिनका स्वप्न म भा र्यान नही हो सकता था। अमृतसर के नगर म पानी बन्द कर दिया गया था और विजनों काट दी गई थी। जिम गली म मिम शरबड पर आक्रमण हुआ था उस गनी म लोगों का पट क बल रंगकर जाने का आजा था। सबके सामने बँत लगाना आम तीर पर चालू था। रेलवे स्टेशनों पर सासर दर्जे का टिकट बचन की मनाही कर दी गई था। स्कून और बालिक क छाया क लिए यह आजा था कि ब दिन म चार बार फौजी अफसर के सामने विभिन्न स्थानों पर हाजिरा दिया करे। कई स्थानों पर किसानों की भीड पर गालियों चलाई गई और हवा जहाजों से मशीनम चलाई गई। यह आजा जारी कर दिया गया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अफसर से मिले तो वह उसको सताम कर अगल सवारी म जा रहा हो या घोडे पर सवार हो तो उतर जाए अगल छाया लगाए हुए हो, तो नीचे भजा द। यह आजा इसलिये दिया गया था,

१ हण्टर बमेटी के समक्ष लिए गए सर बॉम्बडा क शिरोन के बकलम से।

साकि लोगों को मालूम हो जाए कि उनके नए मालिक धाए हैं।' यदि स्कूल और कॉलेज के सड़के साहबों को सलाम नहीं करते तो उनके बॉमन बदन पर नुगमता-पूवक बेंतों की मार पड़ती थी।

हृष्टर-कमेटी—जब पंजाब की इन दुष्टताओं का समाचार दश के दूसरे भागों में पहुंचा तो जनता में चारों ओर सनसनी-सी पन गई। यही "रबी" ने इम नौकरशाही बबरता के विरोध में अपनी तरफ की उपायों को त्याग दिया। चारों ओर से इस बात की माँग आने लगी कि पंजाब की इन सारी दुष्टताओं की जाँच पड़ताल की जानी चाहिए। सरकार ने इस सम्बन्ध में बड़ी शिथिलता का परिचय दिया। जलियाँवाला बाग की दुष्टता के चार महीने बाद उसकी जाँच पड़ताल करने के लिए साठ हृष्टर की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी के तीन भारतीय और तीन अंग्रेज सदस्य थे। भारतीय सदस्यों ने एक अलग रिपोर्ट प्रकाशित की और उमम जनरल डायर के दुष्टत्व की कठोरतम शब्दों में निन्दा की। लॉर्ड हृष्टर कमेटी की सरकारी रिपोर्ट में दण्डापादक साध्य के होते हुए भी जनरल डायर के अपराध पर लीपापोती करने की कोशिश की और उसे केवल नियम की जो स्थिति की मुक्ति-मूलक आवश्यकताओं को ठीक से नहीं समझ सका था एक भयंकर भ्रम बताया। अर्थात् डायर का आचरण कतब्य से सत्यनिष्ठ लॉर्ड जनरल डायर पर आश्रित था।

भारत मंत्री मि० माटेयू ने कहा जनरल डायर ने जसा उचित समझा उसका अनुसार बिलकुल नेकनीयती के साथ काम किया। अलबत्ता उससे परिस्थिति को ठीक ठीक समझने में गलती हो गई। ब्रिटिश संसद में एक वाद विवाद के दौरान कई सदस्यों ने जनरल डायर के काय की सराहना की। कुछ समय के बाद जनरल डायर के प्रशंसकों ने उठे एक सनवार और २०० पों की एक धली भट की। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस व्यक्ति के प्रति यह आदरभाव था जिसे भारतीय जनमत एक खूनी राक्षस के रूप में देखता था और जिसके बारे में कांग्रेस कमेटी ने यह कह दिया था कि जनरल डायर का १३ अंग्रेजों का काय निर्दोष निरीह निशस्त्र लोगों और बच्चों के जान बूझकर किए हुए नुगम हत्याकाण्ड के सिवाय और कुछ नहीं है। यह ऐसी हृदयहीन और बुजदिल पशुता है जिसकी प्राधुनिक काल में और कोई मिराल नहीं मिलती।

६२ सिलाफत का प्रश्न

अमृतसर का प्रश्न—दिसम्बर १९१६—यह बड़ा आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है कि उस समय जब कि जनता पंजाब में होने वाले प्रायार्यों के ऊपर बीखला रही थी महात्मा गांधी ने किसी जन प्राेनल का सगठन नहीं किया। इसके विपरीत

१ सर चिमनलाल सीतलवाड़ साहिबजादी मुल्तान अहमद और ५० जगद मारायण।

उन्होंने तो कांग्रेस से बाहर निकल जाने की धमकी देकर प्रमत्तसर का प्रस में एक ऐसा प्रस्ताव पास करवाया जिसमें लोगों को तरफ से हिंसा का जो प्रदर्शन हुआ था, उसकी निन्दा की गई थी लेकिन साथ-ही साथ इस बात को भी स्वीकार किया गया था कि बहुत अधिक उत्तेजित किए जाने पर ही लोग क्रोध से बावले हुए थे। हाल ही में माण्डेयू चम्सफोड सुधार एक्ट प्रकाशित हुआ था। सी० धार० दास जैसे नेता उसका पूरा बहिष्कार करना चाहते थे परन्तु महात्मा गांधी उन सुधारों की क्रियाविति में सरकार के साथ सहयोग करने का समर्थन करते थे। सुधार कानून के सम्बन्ध में पहले का प्रस में दस प्रस्ताव पास किया था कि सुधार-कानून प्रभूण प्रसन्तोपजनक और निराशापूर्ण है। लेकिन बाद में महात्मा गांधी के प्रभाव से उक्त प्रस्ताव में यह टुकड़ा और जोड़ दिया गया कि कि लोग सुधारों को इन प्रकार काम में लाएंग जिससे भारतवर्ष में शीघ्र पूरा उत्तरदायी शासन कायम हो सके। चम्सफोड ने लिखा है— 'अब भी १९१६ के अन्तिम दिनों में भी वह (महात्मा गांधी), राजभक्त थे अब भी वह अपने गुरु गांधी के शिष्य थे।

सीवर्स की सधि—परन्तु १९२० की गरमियों के दिनों में हालत बिल्कुल बदल गई। हण्टर कमेटी की रिपोर्ट और सीवर्स की सधि के प्रकाशन ने भारतीय जनता को और भी अधिक हिलाकर रख दिया। सीवर्स की सधि के फलस्वरूप टर्की को अपने प्रदेशों से वंचित होना पड़ा। प्रस यूनायन की नजर बंद कर दिया गया और टर्की-साधारण के एगियाई प्रदेशों को क्रिन्ने और फ्रान ने लीग के आजा पक्षा के बहाने घापस में बांट लिया। मित्र राष्ट्रों के द्वारा एक हार्ड कमीशन नियुक्त किया गया जो हर लिहाज से टर्की के प्रसलो शासक बना दिया गया और सुल्तान एफ कौमान रद्द गया। हम (इस बात को) पहले देख चुके हैं कि टर्की के प्रस के ऊपर भारतीय मुसलमान अत्यन्त रोषावधिन्त हो गए थे। लेकिन उन्होंने इंग्लण्ड की सहायता उन वचनों पर विश्वास करके की थी जो ब्रिटिश प्रधान मंत्री लॉयड जॉर्ज ने लिए थे। लॉयड जॉर्ज ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की थी कि 'हम टर्की को उसके एगियाई भाईनर और प्रस के प्रसिद्ध और समृद्ध द्वीपों से वंचित करने के लिए जिनकी आवाजी मुख्यतः तुर्क है सदाई नहीं लड़ रहे हैं।' लेकिन जब युद्ध समाप्त हुआ तो इंग्लण्ड ने अपने वचन को बुरी तरह भंग कर लिया। टर्की के सुल्तान के स्थान पर सनीफा पत्र के लिए मरका के हकिम और बनल सारेंग के कपा-यात्र शेख हमन ने दावों को स्वीकार किया गया और उनका प्रचार किया गया।

भारत में अस्सतीय—इंग्लण्ड के इस विश्वासघात से भारतीय मुसलमानों की तीव्र भाषात पहुँचा और देश में एक शक्तिशाली लियाफत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उनकी माँग थी टर्की साधारण का सधारण किया जाए और एक एहिक व धार्मिक समस्या के रूप में लियाफत का अविच्छिन्न अस्तित्व बना रहे। १० जनवरी १९२० को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल कायसराय से मिला और

उसने उन्हें बताया कि टर्की साम्राज्य और गरीबी को बनाए रखना किंगडम का अर्थ है। इस गिफ्टमण्डल का शासन महारमा गांधी के माग दर्शन में किया गया था। १९२० के माच में एक मुस्लिम गिफ्टमण्डल मौलाना माहम्मद अली कानुन में इंग्लैंड गया लेकिन बड़ी में निराग हाकर घोषणा की गया। घना वायु वायु में सम्मिलित हो गए और उन्होंने गिलाफन घां। उन का गुरुद्वय सम्मान किया। मुस्लिम मौलवियों और उलेमाओं ने १९१० में प्रस्ताव एक गणराज्य जमोयनउन उनमा स्थापित कर लिया था। व भी गिलाफन घां। उन में सम्मिलित हो गए। मुस्लिमों में गिफ्टमण्डल विरोधी मायनाए प्रत्येक उग्र हो गए।

महारमा गांधी द्वारा असहयोग प्रारम्भ करने का निश्चय—महारमा गांधी टर्की के प्रश्न पर मुस्लिमों के साथ पठन हुआ सब का स्थान पर चक था। कानुन राष्ट्रवादी न मा अपने मुस्लिम सत्यागियों के सुर में मर गया था। महारमा गांधी की दृष्टि में गिलाफन का प्रश्न एक एका मध्यम प्रश्न करता मानव पत्था था जिसमें हिंदू और मुस्लिमों में एकता स्थापित की जा सकता था और जो १०० वर्षों में मा हाथ नहीं आ सकता था। माधम मंच की शर्तों में मजापत करान पञ्चायत कायदा का दूर करने और भारत का साराय का और ल जान क उद्देश्य से उन्होंने असहयोग आंदोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन प्रश्न के आंदोलन के लिए इस समय भारत में बिन्दुन उपयुक्त माता रण तयार था। गिलाफन और पञ्चायत के अत्याचारों तथा मायान्त सचारा को पण्डित उग्रनी ही हिंसा का रूप धारण कर लिया। इस विधारा ने राष्ट्रिय अणताय के प्रश्न को और भी प्रबल कर दिया।^१

६३ असहयोग आन्दोलन पर कायस की स्वीकृति

कायस का विशेष अधिवेशन कसकता तिनम्बर १९२०—प्र महारमा गांधी का एक बात का दृढ विश्वास हो गया था कि विदुषा और मुस्लिमों दोनों ही समान भाव से अपने असहयोग आन्दोलन की पताया के नाच एकत्रित कर सकते हैं। तिनम्बर १९२० में कसकता में कायस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में महारमा गांधी ने अहिंसक असहयोग की नीति का अपना का प्रस्ताव उपस्थित किया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि कायस अहिंसक असहयोग की नीति पर उस समय तक चलेगी जब तक कि कथित अणताय दूर नहीं हो जाए और स्वराय की स्थापना नहीं हो जाएगी।^२ प्रस्ताव १९११ में १९२६ और विषय में १९२४ में पड़े थे। विपिनचन्द्रपाल अश्वप चितरजनदास प मदन मोहन मालवीय मि जिन्ना और श्रीमती एनीबेसण्ट ने प्रस्ताव का जोरदार विरोध किया। तिनक की ३ अक्टूबर, १९२० को मृत्यु हो चुकी थी उनके अनुयायियों ने सारण्ड के नेतृत्व में महारमा

१ पट्टामि सीतारामय्या— दी हिस्ट्री आफ दी कायस पृ० ३३५।

२ वही पृ० ३४१।

गांधी की याचना का प्राणपण्य से विरोध किया। और तो और इस अधिवेशन के अध्यक्ष लाला लाजपत राय तक भी महात्मा गांधी के इस असहयोग के प्रस्ताव के विरुद्ध थे।

नागपुर अधिवेशन, दिसम्बर १९२०—कांग्रेस का नियमित अधिवेशन दिसम्बर १९२० में नागपुर में हुआ। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी के प्रोग्राम का विधिवत् स्वीकार कर लिया गया। इस बार प्रस्ताव के पक्ष में बहुत अधिक मत पड़े। सी. आर. दास ने प्रस्ताव का जो जान से विरोध किया लेकिन उनकी एक भी नहीं चली। लेकिन जब प्रस्ताव पास हो गया तब उन्होंने महात्मा गांधी को पूरा सहयोग देने का वचन दिया।

कांग्रेस की नीति में परिवर्तन—नागपुर अधिवेशन का महत्व इस कारण भी है कि उसके बाद से कांग्रेस की नीति में परिवर्तन हो गया। नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस का ध्येय 'म तत्र स वदन' लिया गया कि उसमें ब्रिटिश सम्बंध के बंध-आन्दोलन का त्रिगम कांग्रेस प्रभा तक विश्वास करता भी कोई उत्पन्न ही न रहा। अब कांग्रेस का ध्येय 'शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना' घोषित किया गया। जनकता और नागपुर के अधिवेशनों ने इस बात को स्पष्ट रूप से बता दिया कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में अब गांधी-युग का निश्चित रूप से सूत्रबान हो चुका था। कांग्रेस के समूचे दृष्टिकोण को उसकी तज का बदलने में गांधी जी का सफलता मिली। पल जहाँ यूरोपीय देशों की प्रधानता रहती थी वहाँ अब स्वतंत्र व देश सुशामित होना था।

कांग्रेस में एक नए उत्साह का दृढ़ प्रारंभ का नए प्रस्ताव का संचार हुआ। अब तक कांग्रेस का गति में कुछ विषय जान नहीं मालूम पड़ता था। अब सचन वेगवान महानदा का रूप धारण कर लिया और वह प्रगतिस से अपने निश्चित लक्ष्य की ओर चल पड़े। पट्टाभि सीतारामय्या के शब्दों में—'नागपुर कांग्रेस में वास्तव में भारत के इतिहास में एक नया युग पया जाता है। निबल श्रेय और प्राग्रहपूर्ण प्रायनामों का स्थान उत्तरदायित्व के एक नए मात्र और स्वात्मन की एक नई भावना ने ले लिया। जनता ने अनुभव कर लिया कि यदि उसे स्वतंत्र होना है तो उस उगके लिए स्वयं प्रयास करना पड़ेगा।'^२

६४ असहयोग आन्दोलन

असहयोग का कार्यक्रम—महात्मा गांधी ने अगस्त १९२० में असहयोग आन्दोलन की प्रारम्भ किया। असहयोग का कार्यक्रम निम्नलिखित था—(१) सरकारी उपाधियाँ और पदनामिकाएँ पण छोड़ दिए जाएँ और स्थानीय सरकारी कर्मियों के मनोनीत

१ पट्टाभि सीतारामय्या— दी हिन्दी ऑफ़ दी कांग्रेस, पृ ३५२।

२ पट्टाभि सीतारामय्या— दी हिन्दी ऑफ़ दी कांग्रेस, पृ ३५३।

सदस्य भ्रष्टता स्थान रिवत कर दें। (२) न तो सरकारी उद्योगों या दरबारों में शामिल हुआ जाय और न सरदार द्वारा या सरदार के सम्मान में किए गए सरकारी या सरसरकारी उत्सवों में। (३) सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त या सरकार के अधीन स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार किया जाए और हा स्कूलों और कॉलेजों के स्थान पर राष्ट्रीय स्कूल और कालिज स्थापित किए जाएं। (४) धीरे धीरे सरकारी प्रशासन का बहिष्कार किया जाए और झगड़ों के निराकरण के लिए पंचायती प्रशासन स्थापित की जाए। (५) मजदूर कर्मी और मजदूरी पेगवान लोग ममापायामिया में काम करने के लिए मर्ती न हों। (६) सुधार योजना के अनुसार बनने वाली व्यवस्था पिका ममापो के उम्मीदवार उम्मीदवारी वापस लेने और वापस के नियम के प्रति बूल गडे हान जाने उम्मीदवारों को कोई योटर वा न न। (७) वि. गी. मान का विचार किया जाए। प्रत्येक घर में हाथ की कलाई के पुनर्जातन की जाए। वापस और खिलाफत के नेताओं ने साथ साथ मिलकर काम किया। वि. गी. मुद्दाम एकता का नारा हर जिह्वा से सुनाई देता था। जवाहरलाल ने न किया है मवय वि. गी. पुनर्जातन की जय का बालबाला था। 'महात्मा गांधी ने न के तौर पर कह दिया था कि इस आंदोलन में अहिंसा का बड़े रूप से पालन होना चाहिए। जब अली मुत्तुओं ने कुछ ऐसे मापण किए जिनसे कि इस बात का म न हा मचना था कि वह हिंसा को उत्तजित करते हैं ता महात्मा गांधी ने सावजनिक रूप से इस प्रकार के प्रत्येक इरादे को निराकरवाई जो कि हिंसा के प्रचार करने का उद्देश्य करने सामने रखता हो। महात्मा गांधी का तो केवल आत्म-बल और अहिंसा ही विश्वास था। वह इसी शक्ति के द्वारा सरकार के पाषाणिक बन का मामला करना चाहते थे।

महात्मा गांधी ने कह तो यह रखा था कि असहयोग का आंदोलन के द्वारा एक ही वय में स्वराज्य प्राप्त हो जाएगा। यद्यपि उनका यह ध्वन तो पूरा नहीं हुआ परंतु फिर भी असहयोग का आंदोलन का प्रभाव अत्यंत सरासरी पया। नई बौद्धिक का जो बहिष्कार किया गया वह अत्यंत प्रभावशाली था। वापस के आंदोलनों ने अपनी उम्मीदवारी को वापस ले लिया और २/३ से अधिक मतदाताओं ने अपने मत ही नहीं डाले। कुछ स्थानों पर तो मतदान पेटियाँ बिचकून पानी की खाली पडी रही। राज्य-निर्वाह स्कूलों और कालिजों से विद्यार्थी बहुत बने सहायक कार्य निराल हुए। महात्मा गांधी ने स्कूलों और कालिजों के बारे में कहा था कि ये तो बलक तयार करने के कारखाने हैं। कई स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की गई। काशी विद्यापीठ बंगाल और पंजाब के राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों और दिल्ली का जामिया मिलिया इस्लामिया आदि की स्थापना उसी समय की गई थी। बकीलो ने भी बहुत बड़ी तादाद में अदालतों का बहिष्कार किया। असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाले बकीलो के मरणा-दोषण के लिए सेठ जमनालाल बजाज ने एक लाख रुपये का दान दिया। कांग्रेस और खिलाफत के स्वयं सेवकों ने विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों पर विकेटिंग की। खिलाफत-परिपद् ने किसी भी मुसलमान के लिए ब्रिटिश सरकार की नौकरी

करना हराम घोषित कर दिया और एक फरमान जारी करके सहृदय मुसलमानों से यह माग की कि वे सेना और पुलिस की नीकरी को बिलकुल त्याग दें। सन्ध में ग्रसहयोग आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश भारत की जो भी राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ हैं उन सबका बहिष्कार कर दिया जाए और इस प्रकार सरकार की मशीनरी बिलकुल ठप्प हो जाए।^१

प्रिंस आफ वेल्स की भारत-यात्रा—ग्रसहयोग आन्दोलन ने जनता के उत्साह को बहुत ऊँचे जिल्वर पर पहुँचा दिया था। इस आन्दोलन ने जनता के हृदय में आशावाद स्वावलम्बन उत्तेजना और निर्भीकता का अग्रुव संचार किया था। सरकार की समझ में नहीं आता था कि इस परिस्थिति का कस मामला किया जाय। वह हैरान और परेशान थी। ग्रसहयोग आन्दोलन के प्रभाव को दूर करने के लिए सरकार ने अमन समाए स्थापित करने की चेष्टा की पर नु यह चेष्टा निता न असफल सिद्ध हुई। १९२१-२२ के जाज में प्रिंस आफ वेल्स भारत आने वाले थे। सरकार इस बात के लिए उत्सुक थी कि जब तक प्रिंस आफ वेल्स भारत में ठहरें यहाँ के आतावरण में पूरा शांति बनी रहे। लेकिन काग्रम ने निश्चय किया कि प्रिंस आफ वेल्स के स्वागत के सम्प्रघ में जो भी उत्सवादि हा उन सबका बहिष्कार किया जाए। काग्रम ने अपने इस निश्चय को कायम में भी परिशिप्त किया। प्रिंस आफ वेल्स २७ नवम्बर को भारत प्यारे शेश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक जहा कहा भी वह गये हत्तानो और थोक-प्रशानो से उनका स्वागत हुआ। यह परिस्थिति बहुत कुछ दुर्भाग्यपूर्ण थी क्योंकि वेचारे युवराज का तो कोई दोष था नो। प मन्मोहन मालवीय और मि जिज्ञान समझौते के लिए कठिन परिश्रम किया। वायसराय भी समझौता करने के इच्छुक थे वह शांति के लिये ऊनी कीमत देने को तयार थे नकिन महात्मा गांधी ने समझौते की किमी वार्ता में माग लने से इनकार कर दिया। उन समय अनी बाधु जन म थ। गांधी जी ने कहा कि जब तक सरकार अनी बाधुओं को जन स मुक्त नहीं कर देती, समझौता की वार्ता से कोई लाभ नहीं निकलगा। फलत सरकारी अफसरों और कुछ राजमन्त मारतीवों के सिवा प्रिंस आफ वेल्स का किमी न भी स्वागत नहीं किया। कुछ स्थानों पर ता पाडी सा हिंसक घटनाएँ भी हा गइ। बने आमतौर पर प्रिंस आफ वेल्स का बहिष्कार सब स्थानों पर शांतिपूर्ण रीति से हुआ। बम्बई में बलवा हा गया जिस पर महात्मा गांधी ने धोर व्यया प्रक की।

सरकार का दमन-चक्र-प्रब नोहरशाही ने घनना दमन चक्र पूरे जोणो सरोश के साथ चलाना शुरु किया। भारत सरकार न सभी स्थानीय सरकारों को इस बात का आदेश दिया कि वे ग्रसहयोग आन्दोलन को बिना किमी भिन्नता के पूरी तरह से कुचल कर रख दें। १९२२ के समाप्त होने के पूव ही जब कि महारमा गांधी के वचना-नुमार भारत को स्वराय मिलने वाला था, अधिकार नेताओं अली बाधुपा मोठीलात्

नेहरू बितरजनदास अयुक्त बलाम आजाद सासा साक्षरतराय जवाहरलाल नेहरू और गुमापचन्द्र बोस आदि को पकड़कर जेल में डूब रिया गया। अगहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों को बहुत बड़ी सजा में गिरफ्तार किया गया और कदियों को सजा शीघ्र ही ५० ००० तक पहुंच गई। सभी सावधानी समाजों पर पाबंदी लगा दी गई और राष्ट्रीय स्वयंसेवकों को घर-दानुनी निष्काय घोषित किया गया।

कांग्रेस का सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय—सरकार को इस दमन नीति की आप्रस के ऊपर यह प्रतिनिध्या हुई कि उसने अपने अहमसावा अधिवेशन (१९२१) में व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनों रूपों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव द्वारा महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का महाप्रियगी नियत किया। सच तो यह है कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन एक प्रकार से कुछ स्थानों पर पहले से ही प्रारम्भ हो गया था। १९२१ में मिर्जापुर में एक बरनी आन्दोलन का सफलतापूर्वक संचालन किया गया था। महात्मा गांधी ने वायसराय को स्पष्ट रूप से सूचित कर दिया कि व बाबदोली और गानूर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते हैं। गांधीजी ने अपने पत्र में यह भी लिखा कि अगर सरकार उन सभी कर्मियों को मुक्त कर दे जो अहिंसात्मक कार्यों के लिए जेल गए हैं और देश की सारी अहिंसात्मक हलचल के सम्बन्ध में तटस्थता की घोषणा कर दे ता मैं निश्चयपूर्वक भाव से गलाह दूंगा कि दूसरे पर अहिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चिन्त मांगों की पूर्ति के लिए और भी ठोस सोचसत तयार करे।^१

चोरी चोरा कांड और असहयोग का अंत—महात्मा गांधी ने अपनी मांगों को स्वीकार करने के लिए सरकार को सात दिन का समय दिया। लेकिन यह समय अभी पूरा भी नहीं हो पाया था कि गोरखपुर जिले के चौकी चोरा नामक स्थान पर एक एसी दुःखद घटना हो गई जिसने भारतीय इतिहास की धारा को बिल्कुल पलट दिया। ४ फरवरी को चोरी चोरा में एक काप्रसी जलूम निकल रहा था। उस अवसर पर त्रिभुवन सिंह ने २१ सिपाहियों और थानेदार को खाने में खदेड़ दिया और भाग लगा दी। व सब भाग में जल मरे। जब यह भयावह समाचार महात्मा गांधी को मिला तो उन्हें ममस्पर्शी आघात पहुंचा। उन्होंने सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का विचार तुरन्त छोड़ दिया। रचनात्मक कार्यक्रम पर अधिक बल दिया गया जिसमें कांग्रेस के लिए एक बराह सभ्य भरती करना चरते का प्रचार राष्ट्रीय विद्यार्थियों को खोजना मात्रक द्रव्य निषेध और पचायतें संगठित करना आदि शामिल था।^२ सविनय अवज्ञा और असहयोग आन्दोलन टण्ड पड़ गए।

१ पृष्ठाभि सौतारामय्या— दी हिस्ट्री आफ दी कांग्रेस पृ० ३९६।

२ वही पृ० ३६८।

महात्मा गांधी के काय का विरोध—परन्तु महात्मा गांधी ने आन्दोलन को इस आकस्मिक रूप से जो म्यगित किया था उसका कायस क छोटी के नेताओं ने विरोध किया । 'पण्डित मोतीलाल नेहरू और साता साजपतराय ने जेन के भीतर से लम्ब लम्बे पत्र लिखे । उन्होंने गांधीजी को किसी एक स्थान क पाप क कारण सारे देश की दण्ड देन के लिए भाडे हाया लिया । ' सुभाष बोस के अनुमार सी० आर० दास की इससे अपार बनेश पट्टा । ' बोम न लिखा उस समय जबकि जनता का उत्साह 'बुद्बुदाक' पर पहुच रहा था मगन छाडन का आश दे देना राष्ट्रीय दृष्टिका स कुछ कम न था । जवाहरलाल नेहरू ने लिखा 'हमने बडे आश्चय और उदग क साथ जेल म सुना कि गांधीजी ने हमारे मवप के उग्र पहलुम का राक दिया है और सविनय अवना आन्दोलन को स्वगति कर दिया है । ' मुसलमानो पर वसी काय वाही का बहुत उग्र असर हुआ व कायस से लिच से गए और पुन उस विश्वास और व धुस की प्रतिष्ठा करना अससम्भ था जिसने कि एक बार मित्रता के इस सक्षिप्त काल मे दोनो जातिया को एकता क मूत्र में प्रथित कर दिया था । '

६५ असहयोग आन्दोलन की सफलताएँ और असफलताएँ

महात्मा गांधी का कारावास—असहयोग आन्दोलन के समाप्त होने के साथ ही साथ उत्क विरुद्ध प्रतिश्रिया हानी प्रारम्भ हो गई । ४ माच १९२२ को महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिए गए । राजद्राह क अपराध म उ ह ६ वष क कारावास का दण्ड मिला । परन्तु जल म स्वास्थ्य विग्न जान क कारण उह दो वष बाद ही छोड दिया गया । कायस तारा नियन की गद सविनय अवना जाव समिति क मत में असहयोग आन्दोलन न बहुत कम सफलता प्राप्त की था । वस्तुतः उह आन्दोलन अपने ध्येयों पजाव और विनापत क अयायो के निवारण और स्वराज्य प्राप्त करन क उद्देश्य म नितात असफल सिद्ध हुआ ।

असहयोग आन्दोलन की दुबलताएँ—बहुत से राष्ट्रीय नेताओ न असहयोग आन्दोलन का असफलता का उत्तरदायित्व महात्मा गांधी क तिर मगा । सुभाष दास के अनुमार एक वष मे स्वराज्य प्राप्त करन का वचन न कवल भविष्यवपूग हा था अपितु वाचक सहज भी था । ' ५ भारतीय राजनीति म विलापत क प्रश्न को सम्मि नित करना दुर्भाग्यपूग था । लिनाफन आ दानन की सुनिवाद गलत थी इपर तो भारताय मुसलमान इस्लामी विभाजनी को पुरानो दुनिया की रुमाना परंपराएँ

- १ पट्टाभि सीतारामय्या— दी हिस्ट्री आफ द कायस ' पृ० ५६६-५०० ।
- २ सुभाष बोस— 'दी इन्डियन स्टुगल पृ० १०८ ।
- ३ जवाहरलाल नेहरू— 'सॉउटाबायभाषा' पृ० ८१ ।
- ४ एच० एम० पोतव— 'महात्मा गांधी' पृ १५३ ।
- ५ सुभाष बोस— 'दी इन्डियन स्टुगल पृ० १०५ ।

पुनर्जीवित कर रहे थे दूसरी ओर टक जिनके हित के सम्बन्ध में उनका विश्वास था कि वे यह काम कर रहे हैं दमदा मजबूत बनाने के लिए इन्हीं मध्ययुगीन मीमांसकों कहते थे।^१ 'समान पाशा के तहत' में टर्नी घम निरपेक्ष गणराज्य के रूप में प्रयत्नरहित हुआ और १९२२ में गिराफ्तार का श्रावण कर लिया गया तथा गान्धीजी को निर्वासित कर लिया गया। फलतः भारत में गिराफ्तार का श्रावण की जड़ ही पट गई।

असहयोग आन्दोलन के आरम्भिक रूप में टप हो जाना में वांगम-सींग की मित्रता भी समाप्त हो गई। 'सर्व' का सिद्ध मुक्तिम प्रकृति की भावना भी कुपित होना लगा। १९२१ के श्रावण में मन्दावार में गिराफ्तार राज्य की स्थापना के उद्देश्य से मापना वि। ह. हुआ। बकर भोगना न न कवन कुछ प्रिटिंग अधिकाधिकों को ही मार्ग प्रणितु उनमें वही प्रतिक्रिया प्रकृतियों की प्रकृति कर डाली।^२ जब महात्मा गांधी जेल में थे सार्वभौमिक सम्प्रदायिक उपान्वयन प्रारम्भ हो गए। भारतीय राजनीति में धार्मिक तत्व की वृद्धि कोई आन्दोलन नही था। इसकी वजह से देश में घर्षण बना का एसी शक्तिपूर्ण पदा हो गए जिन्हें कि वगैरे में नहीं किया जा सकता था।

असहयोग आन्दोलन की महत्ता — लखन असहयोग आन्दोलन की उक्त दुर्घटनाओं से हमें यह न समझ लेना चाहिए कि उसकी महत्ता किसी प्रकार से कम है। हमें आन्दोलन न भारत की राष्ट्रियता में नए जीवन का संचार किया। इन्होंने स्वतंत्रता और निर्भीकता की नई भावना का प्रकाश दिया। असहयोग आन्दोलन से भारतीयों के हृदय में आत्म सम्मान, आत्म विश्वास और आत्म-निभरता का भाव उत्पन्न हुआ। लोगों के हृदय में पड़ने जो डर था और घातक का भाव समाया रहता था पुलिस का सरकार का और कानून का असहयोग आन्दोलन ने मानो छूमतर उड़ा दिया और जनता का नम नम में साहस की बिजली भर दी। अपने मन की बात कहने में पहले लोग जिम भिन्न-भिन्न का अनुभव करते थे अब वह दूर हो गई। इसके फलस्वरूप असहयोग आन्दोलन सर्वे श्रेष्ठों में भारत का पहला जन-आन्दोलन था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन भी जन आन्दोलन का परतु असहयोग आन्दोलन का प्रभाव उक्त आन्दोलन में वही अधिक प्रकाश हुआ। १९१७ तक का राष्ट्रीय आन्दोलन उच्च मध्यम-वर्गीय लोगों तक ही सीमित था लखन अब यह आन्दोलन देहातो में भी पहचान गया किसानों ने इसमें जी खोलकर हिस्सा लिया और अब राष्ट्रीय आन्दोलन की जड़ें जनसाधारण के प्रतराल में जम गईं। असहयोग आन्दोलन की क्या महत्ता थी इस पर कूलनड ने निम्न शब्दों में बड़ा प्रकाश डाला है उन्होंने (गांधीजी ने) यह काम किया जिसे तिलक नहीं कर सकते थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में बदल दिया। उन्होंने उसे स्वतंत्रता

२ पीनक— महात्मा गांधी पृ० १६०।

३ साइमन्स— दी मेकिंग आफ पाकिस्तान पृ० ४७ ४८।

वे लक्ष्य की ओर बढ़ना सिखाया सरकार के ऊपर वैधानिक दबाव डालकर नहीं
 वा" विवा" और समझौते के द्वारा नही अपितु शक्ति के द्वारा और शक्ति भी अहिंसा
 की । उन्हे राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रांतिकारी ही नहीं बनाया अपितु उसे लोकप्रिय
 भी बना दिया । अभी तक वह नगर के बुद्धिजीवी बग तक ही सीमित था अब वह
 देहात की जनता तक भी पहुँच गया गांधी जी के अविनाश ने भारत के देशतों में
 जागृति पैदा कर दी थी । १

६६ स्वराज्य दल और कौत्सित प्रवेश

अपरिवर्तनवादियों और परिवर्तनवादियों के बीच रफ़्तकशी—१९२२ में
 कांग्रेस राजनीति में एक नई विचारधारा का विकास हुआ । हम देख चुके हैं कि १९१९
 में महात्मा गांधी ने भारतको मुसलमानों के प्रति सहयोग करने का उचित व्यवहार किया
 था लेकिन इस विपरीत बंगाल के महान नेता चित्तरजनराम ने उनका पूरा बहिष्कार
 करने का समयन किया था । १९० में स्थिति उन्ही हो गई । महात्मा गांधी अमर
 शोक के समयन हो गए । कांग्रेस ने अमरशोक का कार्यक्रम का स्वीकार किया, जिसमें
 श्री सनौत राय बख्शकार भी शामिल था । श्री धारणराम और मारीचान नरह इस
 प्रश्न के ऊपर अविनाशक रूप में महात्मा गांधी से मतभेद रखने के अतिरिक्त प्रस्ताव
 पाम हो गया उन्हे गांधीजी का सहयोग का आश्वासन दिया । १९२२ में
 कांग्रेस पुनः दो दलों में बँटने लगी मालूम पड़ती थी । श्री धारणराम ने अपनी
 कारावाण अवधि में स्वराज्य दल संगठित करने का योजना तयार की । १९२२ की
 गया कांग्रेस के वह समापन हुए । कांग्रेस के अतिरिक्त में परिवर्तनवादियों और
 अपरिवर्तनवादियों के बीच में जोर की चीन जान हुए । अपरिवर्तनवादी महात्मा गांधी
 द्वारा निर्धारित समझौते और अविनाशक कार्यक्रम पर ही अट रूढ़ता चाहते थे । इस
 समय महात्मा गांधी जन में थे । इस विपरीत परिवर्तनवादी असहयोग आन्दोलन को
 एक नई शक्ति बना चाहते थे । चित्तरजनराम मोताजान नरह और श्री जी० पटेल
 इन लोग थे नरह थे । उन लोगों का अभाव अन्धगी नीति की तरफ था । वे चाहते थे
 कि दोनों में प्रवेश करें और वही पर समझौते के अडग की मानि तारा भाटकाड
 सुधारों की बिलकुल नष्टघट्ट कर दें । गया कांग्रेस में अपरिवर्तनवादियों की ही
 विजय रही ।

स्वराज्य दल—गया कांग्रेस में अपरिवर्तनवादी जीत तो गए लेकिन वे अपनी
 जीत का उपयोग अरिभाल तक ही कर सके । १९२३ का "गुरु" साज में ही चित्तरज
 दल ने कांग्रेस की अध्यक्षता से त्याग पत्र दे दिया और स्वराज्य दल का संगठन करने
 का अपना निश्चय घोषित किया । इस बात के बिना अविनाशक रूप से कि असहयोग अड
 शत विधान हुआ था रहा है । सविनय अवज्ञा आन्दोलन का चालू रखना असम्भव

१ रूपसब्ध— अहिंसा, ए रिस्टेटमेंट" पृ० ११६ ।

प्रतीत होने लगा था। निःसाफल नेतार्यों का उरमाह भी टूट्टा पड़ना जा रहा था। गया कांग्रेस के पूर्व ही जमीयत उल उलेमा ने एक पत्रवा प्रकाशित किया जिसमें कौंसिल प्रवेश को हराम तो नहीं पर ममनून घोषित किया। सितम्बर १९२३ में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन का सम्पादन मौजाना अबुल कलाम आजाद थे।

कांग्रेस कौंसिल प्रवेश की अनुमति देती है—कौंसिल प्रवेश का सम्पादन करने वाले दल ने बिना कठिनता के कांग्रेस में अनुमति सूचना प्रस्ताव पाम करा लिया कि जिन कांग्रेसियों को कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उहे अगले निर्वाचनों में लड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आज्ञा है। स्वराजिस्टों ने अपनी विजय को महात्मा गांधी की अध्यक्षता में सम्पन्न बलगांव कांग्रेस में हट कर लिया। महात्मा गांधी को स्वयं स्वराज्य-दल की इस योजना में बहुत कम सन्तुष्टि थी कि कौंसिलों के अन्तर्गत विरोध का द्वारा अन्तर्गत मोटफोड सुधारों की कारा। वृत्ति में अन्तर्गत नयाया जाए। तबिन जब उन्होंने देखा कि कांग्रेस में स्वराजिस्टों का बहुमत है तो उन्होंने कौंसिल प्रवेश पर अपनी मौन अनुमति दे दी। यद्यपि महात्मा गांधी ने स्वयं को स्वराज्य-दल की सामन्त-दल चलो में बिलकुल पृथक् रखा तथापि स्वराज्य दल या संगठन कांग्रेस के राजनीतिक पक्ष के रूप में किया गया था। महात्मा गांधी ने कनाई विशेषी वस्त्रा के बहिष्कार तथा रक्षात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत पहलू पर सर्वाधिक बल दिया। स्वराजिस्टों ने इस कार्यक्रम के प्रति अपनी निष्ठा घोषित की और इस प्रकार सूरत विच्छेद की पुनर्प्राप्ति होने से बच गई।

स्वराज्य दल के सिद्धांत और कार्यक्रम—जमा कि स्वराज्य दल के नाम से ही स्पष्ट होता है उसका लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति करना था। स्वराज्य से जमाका अभिप्राय साम्राज्य का अन्तर्गत डोमिनियन स्टेट्स का उदय करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गांधीवादी जिन साधनों का सम्पादन करते थे उनमें स्वराजिस्टों का मतभेद था। अविनय ध्वजा का प्रयोग में स्वराजिस्टों का बहुमत कम विश्वास था। कौंसिलों का बहिष्कार के भी विरोधी थे। उद्योग श्रमयोग का एक नया अधिसूचना। वे चाहते थे कि विवाचना में पूरा हिस्सा लिया जाए और व्यवस्थापक मण्डलों का अधिक से अधिक सीटों पर कब्जा कर लिया जाए सरकार के साथ सहयोग करने के उद्देश्य से नहीं अपितु उसकी नीति में एकलक्ष्य अधिचिन्तन और सतत रोड़ा घटकाने के उद्देश्य से। स्वराजिस्टों का मतभेद था सरकार के कार्यों में बाधा उपस्थित करना शोके अन्तर्गत। वे कौंसिलों का अन्तर्गत प्रवेश करके मोटफोड सुधारों को बिलकुल छिन्न भिन्न कर चलना चाहते थे। १० मोरीवाल ने १९२३ और देशबन्धु बित्तरत्न दास ने अन्तर्गत शब्द की स्पष्ट कर दिया था हमने अपने कार्यक्रम में अन्तर्गत शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की संसद के इतिहास के चरित्रिक अध्याय में

नही। मातहत और सामित अधिकांश वाली कौंसिलों में उस ग्रह में श्रद्धा डालना असम्भव है क्योंकि श्रद्धा कानून के मातहत असम्भव और कौंसिल के अधीकार गिन चुन हैं। पर हम यों कह सकते हैं कि हमारा विचार श्रद्धा डालना की अपेक्षा स्वराज्य के माग में नीकरशाही द्वारा डाला गई खराबटो का मुनाबला करना अधिक है।^१

स्वराजिस्ट इस बात को दाव के साथ कहते थे कि कौंसिल प्रवेश का प्रोग्राम असहयोग के सिद्धांत के अन्तर्गत अनुकूल^२ था। उनका प्रोग्राम "अस्वाभाविक मण्डलों के अन्तर्गत असहयोग करने का था। वे चाहते थे कि नीकरशाही की नाक के नीचे उसक गठ में प्रवेश करके असहयोग के अर्थ का उच्चारण जाए। कौंसिलों के अन्तर्गत स्वराजिस्टों की याजना (१) बजटों का रद्द करने और (२) उन सब कानूनी प्रस्तावों का अस्वीकार करने की थी जिनके द्वारा नीकरशाही अपनी स्थिति को दृढ़ करने की चलावता करती थी। श्रद्धा स्वराज्य दल के कार्यक्रम का विद्यमानात्मक पक्ष था। रचना एक पक्ष में स्वराज्य दल का कार्यक्रम उन प्रस्तावों याजनाओं और विधियों की पक्ष करना था जो राष्ट्रीय जीवन की वृद्धि करने के लिए और फलतः नीकरशाही की गठ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों। कौंसिलों के द्वारा स्वराजिस्टों ने महामा गांधी के अस्वाभाविक कार्यक्रम की हार्थिक सहयोग देने का और कार्यक्रम संपन्नता के द्वारा उसे कार्यक्रम में परिणत करने का वचन दिया। उन्होंने हम बात की भी धारणा कर दी थी कि "माता हम मानते थे कि सत्याग्रह के बिना नीकरशाही की स्वाधरूपा गृहस्थाधी का सामना करना असम्भव है हम तत्काल कानूनों का छांटकर देश का सत्याग्रह के लिए तैयार करने में यदि वह स्वयं ही उस समय तक तैयार न हो सके तो उनकी (महात्मा गांधी की) सहायता करा। तब हम बिना हीन हृदय के उनके पादों हाथों और कार्यक्रम की सत्यागा द्वारा उनक अर्थ में नाच काम करके जिसमें सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस कार्यक्रम पुरा कर सकें।

स्वराज्य दल की सफलताएँ (क) अन्तर्गत—द्वय शासन प्रणाली की नष्ट होकर बनने के कार्यक्रम की अन्तर्गत सत्य और कार्यक्रम का पुरा समयन पाकर स्वराज्य दल १९२२ के चुनावों के अन्तर्गत मन्त्र पदा। चुनाव में स्वराज्य दल की शाश्वतजनक सफलता प्राप्त हुई। अन्तर्गत और मो० पा० मत्ता स्वराज्य दल का सफलता का दायरे राग दग रह गए। अन्तर्गत व्ययस्थापिका सभा में १४५ सार्वभौमिक ४५ सार्वभौमिक स्वराज्य दल के अन्तर्गत मन्त्र पदा। पन्ध्र मोतावाले नहूँ के समय नवत्व में राष्ट्रीय और स्वतंत्र अन्तर्गत का समयन के सहानुभूति प्राप्त स्वराज्य दल ने अपना काम चलाऊ बहुमत बना लिया। १८ फरवरी, १९२४ को पन्ध्र मोतावाले नहूँ से उस प्रस्ताव की पास करवाने में स्वराज्य दल ने सफलता प्राप्त की जिसमें कि एक एसी गोपनीय परिपद की मांग की गई थी कि पूरा

१ पत्रार्थ मोताराम्या— दी हिस्ट्री आफ दी काग्रस" पृ० ४५६।
२ पृ० ४२२।

उत्तरदायी शासन के सिद्धांत पर आधारित भारत के लिए एक सविधान की सिफारिश करे। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप ही माटपोट गुधारों की त्रियविति की जीव पद्धताएँ बनाने के लिए मुहीमेंन कमेटी की नियुक्ति हुई। ५० मोतीसाल नेहरू को इस कमेटी में सम्मिलित होने के लिए प्रामत्तण किया गया लेकिन उन्होंने प्रस्वीकार कर दिया।^१ स्वराजिस्टों ने कई महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर सरकार को पराजित कर दिया। इन प्रस्तावों में सरने मत्त्वपूर्ण प्रस्ताव यह था जिसमें कि कुछ राजनीतिक कर्तव्यों के छुट्टे और १८८ के रगुनशन (III) को रद्द करने की मांग की गई थी। १९२४ २५ के बजट के मतों में मांग को प्रस्वीकार कर लिया गया और सरकार को उसकी पुनर्प्रतिष्ठा करने के लिए गवर्नर जनरल के विनयाधिकार का प्रयोग करना पड़ा था। स्वराजिस्टों ने गवर्नर जनरल के उसका और भोजों में सम्मिलित न होने का नियम बना लिया था। यह ठीक है कि स्वराज्य दल सरकार की गति में घड़गा लगाने में सफल हुआ लेकिन वह उस रोक नहीं सका। स्वराज्य दल के सदस्यों का अपना विरोध प्रदर्शन करने का एक प्रिय तरीका व्यवस्थापिका सभा से वाक घाउट कर जाना था। सर तेजबहादुर सप्रू उनके इन नाटकीय प्रदर्शनों को देशभक्ति का गमनागमन कहा करते थे।

(ख) प्रा तो में—जहाँ तक प्रा तो का सम्बन्ध है स्वराज्य दल ने बंगाल और मध्य प्रांत में विशेष सफलता प्राप्त की। इन दोनों प्रांतों में स्वराजिस्टों ने द्वेष शासन प्रणाली की महीनरी को बिल्कुल टप्प कर दिया। बंगाल में स्वराजिस्टों का स्पष्ट बहुमत था। उनके नेता चित्तरजन्यास से कहा गया कि वे अपने मंत्रिमण्डल का निर्माण करें। उन्होंने न केवल स्वयं ही मंत्रिमण्डल बनाना प्रस्वीकार किया अपितु और किसी का भी मंत्रिमण्डल का निर्माण नहीं करने दिया। २३ मार्च १९२४ को सजिस्लटिव बोर्डिंग ने दो मंत्रियों के बतन का प्रस्ताव प्रस्वीकार कर लिया। प्रस्ताव के पक्ष में ६३ और विपक्ष में ६६ मत पड़े। फलतः मंत्रियों को अपना त्यागपत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा १९२५ में सी० आर० दाम न द्वेष शासन प्रणाली के कर्ण में अन्तिम कील ठोक और उसका ऊपर एक मरसिया लिखने के अपने निश्चय में सफलता प्राप्त कर लेने का दावा ही किया था। जन १९२५ में दास बाबू की मृत्यु हो गई। इस बंगाल में स्वराज्य दल के प्रभाव को गौरा धक्का लगा। लेकिन तीसरी बार भी उसने मंत्रिमण्डल के निर्माण को प्रसम्मव कर दिया और गवर्नर को सदन भंग कर देने के लिए विवश होना पड़ा। स्वराज्य दल की सफलता के सम्बन्ध में एच० एन० ब्रैक्सफोर्ड ने कहा मेरे विचार से घड़गा लगाने की नीति बिल्कुल ठीक थी क्योंकि उसने ब्रिटिश अनुदार दलवालों को भी इस बात का कायल कर दिया कि द्वेष शासन प्रणाली सम्भवहाय है।^२ ब्रैकेंहेड ने स्वराज्य दल के

१ इस कमेटी में सर तेजबहादुर सप्रू मि जिना और सर सी० पी० शिव स्वामी अय्यर सम्मिलित थे।

२ पोलक— महात्मा गांधी पृ १६५।

सम्बन्ध में कहा कि वह भारतवर्ष में सबसे अधिक सगठित राजनीतिक दल है ।

स्वराज्य दल का सहयोग की ओर झुकाव—१९२५ में दशवर्षीय वितरजन दास की मृत्यु के पश्चात् स्वराज्य दल की शक्ति का शनैः ह्रास होना प्रारम्भ हो गया । सरकार के कामों में अडगल लगाने की जिस मूल नीति का लेकर स्वराज्य दल का जन्म हुआ था उस नीति में धीरे धीरे परिवर्तन होना लगा । वैसे तो स्वराज्य दल दास बाबू का मृत्यु के पूर्व ही सतत ओर अविच्छिन्न अडगल लगाने का रास्ता से अलग हटता मालूम पाने लगा था । अक्टूबर १९२४ में स्वयं दास बाबू ने सरकार से सहयोग करने के लिए कुछ शर्तें रखी थीं । उद्घोषित किया था मैं हूँ परिवर्तन के लक्षण हर जगह देख रहा हूँ । मेरे जोत के चिह्न मुझ पर जगह दिखाई पड़ रहे हैं । सत्कार सधम से एक गया है और उसमें मुझ सजन और सगठन को इच्छा नितान्त पड़ रही है । उनकी मृत्यु के पश्चात् स्वराज्य दल सरकार के साथ सहयोग करने की दिशा में अधिकारिक भक्तता गया । व्यवस्थापक मण्डल को अन्दर से नष्ट भ्रष्ट कर देने की नीति का स्थान अथवा व्यवस्थापक मण्डल में भाग लेने उनका उपयोग करने और सरकार के साथ सहयोग तक करने की नीति लाने लगी । १९२४ में स्वराज्य दल के प्रतिनिधि स्टाल प्रोत्सवगत कम्पनी में सम्मिलित हुए । दूसरे वर्ष पंडित माती लाल नेहरू ने स्कान कमेटी की सदस्यता स्वीकार कर ली । १९२६ के चुनावों से प्रकट हुआ कि स्वराज्य दल का प्रभाव अब घटने लगा है । बंगाल और मध्यप्रान्त में स्वराज्य दल का बहुमत कम हो गया फलतः वहाँ सरकार को द्वेष शासन प्रणाली की पुनःप्रतिष्ठा करने में सफलता प्राप्त हुई । केन्द्रीय असम्पत्ती में स्वराज्य दल की स्थिति इस कारण कमजोर पड़ गई क्योंकि पंडित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपत राय के नेतृत्व में नेशनलिस्ट पार्टी ने इस बात का अनुभव किया कि हर बात में सरकार का विरोध करने का नीति हिंदुओं के लिए अहितकर है ।

प्रतिपायी सहयोगी और असहयोगी—स्वराजिस्टा के बीच ही दा दल हो गए । एक दल प्रतिपायी सहयोग करने की नीति का प्रतिपादक था और दूसरा असहयोग करने की नीति का । स्वराज्य दल के बीच उक्त मतभेद उस समय परकाष्ठा पर पहुँच गया जब कि मध्यप्रान्तोय विधान सभा के स्वराजिस्टा अध्यक्ष श्री एस० बी साम्ब गवर्नर की कार्यकारिणी के सम्मुख बन गए । नवम्बर में स्वराजिस्टा न प्रतिपायी सहयोग का सुलभ सुल्ला समझन किया । पंडित मोतीलाल नेहरू की इस धमकी ने कि वे स्वराज्य दल के रोगी अंग को काटकर फेंक देंगे मतभेद की खाई का और भी चौड़ा कर दिया । पंडित मोतीलाल नेहरू के उद्घोषित स्वर ने जयकर बल्कर और मुझे को खली उगावत करने के लिए सडा कर लिया । १९२६ का अतः हाते-हीन स्वराज्य दल की अधिकार शक्ति नष्ट हो चुकी थी ।

६७-साम्प्रदायिक तनाव की यद्धि

उपरोक्त की कहानी—गिलाफ्तन घातक घोर घमट्टयोग घातक के समान ही जाने क वा क वन भारतवर्ष के अन्तर्गत दुर्भाग्यपूर्ण घ वगति न्त वर्षों में माध्य दायित्व वि प की प्राण न मयावह रूप धारण किया । दूध बाण का हृदय न ही उत्तम कर चुक है कि महाभारत में मोरना ने घरा हिन्दू पक्षीयता का निममता म हत्या की । सन १९२२ में नर १९२३ तक हिन्दू म्पत्तिम उत वों की म्पत्ति न्पत्ती अधिप की कि उनका पत्रता का प्राप घन हो गया । स १९२२ में मुत्तान घमृत्तार म्पत्ति वान् मरत्त पानीपत जब्तपुत्र घमृत्त वरती घा म साम्प्रदायिक म्पत्ति हए । सन १९२६ में काहाट म्पत्ति १९२५ में गिना वान्पत्ता घोर ह्नाहाम्पत्ति म सन १९२६ में वरन्पत्ता में घोर सन १९२३ में मुत्तान ना गोर वरती घोर तान पुर में द्य हए । वरन्पत्ता ने साम्प्रदायिक उात्त म्पत्तिरत्तम य । द्य न्पत्ति तत्त वरन्पत्ति रह्पत्ति ६७ घात्ती मार गण घोर ४ ० म अधिप जन्पत्ति हए ।

कारण—उन उपत्ता के तात्कालिक कारण बहुत ही तुच्छ थे । वमी गोवध का सन न म्पत्ति उत्पन्न वरान्पत्ति म्पत्ति करवाना घा घोर वमी द्पत्ति व जन्पत्ति क अन्तर्गत पर म्पत्ति के नामा वान्पत्ति का म्पत्ति । वरन्पत्ति य ता उपत्ता व ऊारी कारण घ म्पत्ति कारण तुच्छ म्पत्ति व । वान्पत्तिरत्तन म्पत्ति के म्पत्ति म्पत्ति भारतवर्ष में मात्तन म्पत्ति यथाय साम्प्रदायिकता न । घी वह साम्प्रदायिकता म्पत्ति क पोछे द्पत्ति घात्ती राजनीतिक और सामाजिक प्रतिक्रिया थी । घमृत्तयोग घात्तानन की सन्पत्ति का अधिप्राय काप्रस तान म्पत्ति की सन्पत्ति था । शन शन मुस्लिम गीग प्रतिक्रिया म्पत्ति की अधिपत्ता म्पत्ति वरन्पत्ति और उनमें मुम्पत्तिमाना के बीच हिन्दू राज का ही । विवा विवाकर अधिपत्ति जट म्पत्तिवृत्त वरन्पत्ति प्रारम्भ कर दी । हिन्दू का बीच भी साम्प्रदायिक भावनाओं ने उन्न रूप धारण कर लिया । तदावधित मुस्लिम अधिपत्ति क विरुद्ध हिन्दू के अधिपत्तिरत्ता की रथा करने के निग हिन्दू म्पत्तिमाना का म्पत्ति किया गया । म्पत्ति तो यह है कि म्पत्ति दाना ही सन्पत्ति। यस्त स्वार्थों क निप वरन्पत्ति म्पत्ति । य यस्त स्वार्थ म्पत्ति पारम्परिक विराध को प्रचण्पत्ति और निपमय साम्प्रदायिक प्रचार म्पत्ति टिपाए रखते थे । गिलाफ्तन घोर घमट्टयोग घात्तानन के बीच इन प्रतिक्रिया म्पत्ति का निष्पत्ति वरन्पत्ति रहने क लिए बाध्य कर दिया गया था । अधिपत्ति के अधिन सन्पत्ति म्पत्ति मुम्पत्ति हए । वरन्पत्ति स दूग्पत्ति गुप्त एजट्टा घोर लागे ने जो कि साम्प्रदायिक म्पत्ति की म्पत्ति कर अधिपत्तिरत्ति को प्रस न करता चाहेते थे इसा परम्परा पर काम किया । १

माम्पत्ति गांधी का उपवास और एकता सम्मेलन—सितम्बर १९२४ में महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक विन्पत्ति और हत्यावण्ड का प्रायश्चित्त करने क उद्देश्य स जिसके निप कि उात्त स्वय की ही उत्तरदायी ठ्पत्ति २१ दिनों का उपवास किया । दूसरों

के पापों के लिए उठे जो जिस तपस्या को अपने ऊपर लागू किया उसका जनता के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और कलकत्ता में एक एकता सम्मेलन किया गया। काफी देर के विचार विमर्श के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय पचायत नियुक्त की गई। महात्मा गांधी इसके अध्यक्ष बने और हकीम अजमल खाँ लाला लाजपतराय जी० के० नरीमन डा एस के दत्त और मास्टर सुन्दरसिंह इसके सदस्य बने। इस पचायत का उद्देश्य अतिसाम्प्रदायिक एकता को बढ़ि करना था। एक वष के लिए उपद्रव रक गए। परन्तु साम्प्रदायिक रोग का उक्त निदान अस्थायी था। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के प्रतिगामी तत्वों ने 'भेद डालो और राज्य करो' की नीति में साम्राज्यवादियों को पुन सत्रिय सहायता देनी प्रारम्भ कर दी। भौकरशाही को अपनी इस सफलता के ऊपर सकारण गव था। कोई आश्चर्य नहीं कि सयुक्त प्रांत में एक गवर्नर ने अपने विदाई भाषण में अमिमानपूर्वक इस बात को कहा था कि उसे अपने पाँच वर्षों के शासन-काल में कम से कम २३ साम्प्रदायिक उपद्रवों का सामना करना पड़ा था।^१

सारांश

प्रथम विश्व-युद्ध ने ससार के अन्याय भागों की तरह भारतवर्ष में भी राष्ट्रीयता की भावना को तीव्र कर दिया। इसके अनावा भी अन्ध कई ऐसे कारण थे जिन्होंने कि भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवाह को अधिक बगयुक्त करने में सहायता दी। जनता की आर्थिक कठिनाइयों महंगाई, बीमारियों और शाही दमन अध्यादेश शासन और लडाई के लिए धन एकत्रित करने व सिपाही भरती करने में जिम कठोरता का बर्ताव किया गया था उन सब कारणों की वजह से जनता विन्शी आधिपत्य से अधिक आधिक असंतुष्ट होती गई। मुसलमान खिलाफ प्रश्न के ऊपर विशेष रूप से दृष्ट थे। मोटफोड मुघारों के ऊपर भी जन साधारण के बीच आम निराशा की भावना व्याप्त थी।

१९१८ में भारतीय जनमत के लाल विरोध करने के बावजूद भी सरकार ने रोलट-एक्ट को पास कर लिया। रोलट एक्ट सरकार की निमुक्त स्वेच्छाचारिता का एक स्पष्ट प्रमाण था इससे जनता की स्वतंत्रताओं के ऊपर कुठाराघात हाता था। इस दमनमूलक कानून के अधिनियम ने महात्मा गांधी को स्वतंत्रता संग्राम के अग्रिम मोर्चे पर ला लाटा किया। पहले महात्मा गांधी स्पष्ट घोषित राजमन्त से लेकिन सरकार की दमन-नीति ने उनको राजद्रोही बना दिया। रोलट एक्ट के विरोध में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह प्रांतेलन प्रारम्भ किया। कुछ स्थानों पर जनता ने हिंसात्मक घटनाएँ कर डालीं, इससे दुखी होकर गांधीजी ने सत्याग्रह प्रांदोलन को स्थगित कर दिया।

१ बवाहरमाल नेहरू—'आठदोघापी' पृ० ८६-८७।

जमी बीच में पंजाब की हातन बहुत गहरा हो गई। वर्गों की एक-दूसरे विरोधी भावनाएँ ने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लिया और एक-दूसरे का पर-दृष्टिगत करने-नाएँ भी हो गईं। जतिपावाजा भाग देना-पडने का कारण बन गया। जनता ने सरकार से इस बात की मन्तव्य माँग की कि वह पंजाब की राजशाही की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त करे। फलतः सरकार ने साहसपूर्वक विधायकता में एक जाच समिति नियुक्त की। लेकिन इस समिति की रिपोर्ट ने जनरल डायर के दुर्यत्य पर पूर्ण झालने की कोशिश की।

१९२० के दशक में सोवस की सधि प्रकाशित हुई। इस सधि ने भारतीय मुसलमानों को गहरा धक्का पहुँचाया। युद्धकाल में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इस बात का बचन दिया था कि टर्की साम्राज्य का किसी प्रकार से अस्तित्व या विघटन नहीं किया जाएगा। लेकिन युद्ध बीत जाने पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपने बचनों को भूल गए। सोवस की सधि के अनुसार टर्की साम्राज्य का विघटन कर दिया गया और सुनतान की जो कि इस्लाम का खलीफा था मान्यता की गई। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के इस विश्वासघात का जोरदार विरोध किया। उन्होंने मुसलमानों के साथ हार्थिक सहानुभूति रखी तथा खिलाफत और पंजाब के अत्याचारी के विचार-रक्षण व स्वराज प्राप्त करने के उद्देश्य से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया।

असहयोग आन्दोलन काफी जोर शोर से चला। ५०० से अधिक देशमन्त्र जेल में चले गए। बहिष्कार के कार्यक्रम को आश्चर्यजनक सफलता मिली। असहयोग आन्दोलन के काल में हिंदू मुस्लिम एकता की दृष्टिकोण से उग्र राजनीति पत्ती थी। फरवरी १९२१ में जनता को एक मीठे ने घोषणा में आकर २१ गिराफ्तारों और घानेदार को मार डाला। इस दुष्प्रकार का समाचार पाकर महात्मा गांधी को अघोर क्लेश पहुँचा और उन्होंने आन्दोलन को पुराने ही स्थिति में कर दिया। असहयोग आन्दोलन में कुछ कमियाँ अवश्य थीं लेकिन फिर भी उसने महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन ने जनता के हृदय में स्वतंत्रता व निर्भीकता की एक नूतन प्राण धारा उत्पन्न की। महात्मा गांधी के गतिशील नेतृत्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक आतिशयकारी आन्दोलन और जन आन्दोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया।

असहयोग आन्दोलन के समाप्त हो जाने के पश्चात् देशबन्धु विनयजनक से और मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्य दल का समुदाय हुआ। स्वराज्य दल कौन्सिल-प्रवेश का समझन करता था। उनका सिद्धांत था कि व्यवस्थापक मण्डलों के अन्दर पहुँचकर सरकार के कार्यों में अडगा लगाया जाय। स्वराजिस्टों का कहना था कि यह कार्यक्रम असहयोग के कार्यक्रम के सबका अनुकूल है। वे विश्वास करते थे कि हम बधानिक गत्यवरोध उत्पन्न करके मोंटफोर्ड सुधारों को नितान्त असफल सिद्ध कर देंगे।

दिल्ली के विशेष अधिवेशन (सितम्बर १९२०) में स्वराज्य दल के प्रोत्साहन पर कांग्रेस ने अपनी अनुमति दे दी। उसी वर्ष नवम्बर में चुनाव हुए। स्वराज्य-दल ने उन

चुनावों में भाग लिया और कुछ स्थानों पर विजयजनक सफलता प्राप्त की। भारतीय
 व्यवस्थापन मण्डल में उन्होंने ४५ स्थानों पर अधिकार कर लिया और बड़े महत्वपूर्ण
 प्रस्तावों पर सरकार का पराजित किया। बंगाल और मध्य प्रांत में जहाँ स्वराजिस्टा
 का बहुमत था उन्होंने द्वैध शासन प्रणाली की विधावृत्ति को विकसित रखा किया।
 १९२६ के वाक से स्वराज्य का फल पता हो गई। और उसने कुछ शिरोरत्न सदस्या
 ने सरकार के साथ प्रतियोगी सहयोग करने का रास्ता पकड़ लिया।

सहयोग का नेतृत्व और लिनाकत आन्दोलन के समाप्त हो जाने के बाद के
 वर्ष हिन्दू मुस्लिम एकता की दृष्टि से अत्यन्त शोचनीय हैं। इन वर्षों में देश के विभिन्न
 भागों में साम्प्रदायिक उपद्रव हुए। सितम्बर १९२४ में महात्मा गांधी ने अन्तःसाम्प्रदा
 यिक एकता स्थापित करने के उद्देश्य से २१ दिना का उपवास किया। महात्मा गांधी के
 वक्तव्य से कुछ समय के लिए साम्प्रदायिक विद्वेष की आग बरपाती पड़ गया लेकिन
 वह हमला के लिए टपनी नहीं हो सकी।

अध्याय १०

साइमन कमिशन से गोलमेज परिषद् तक

६८ महात्मा गांधी पुनर्भारत में

राजनीति में दूर—१९२७ का वर्ष भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास में एक विशेष महत्त्व रखता है। इस वर्ष महात्मा गांधी का प्रगल्भ विचारों के रूप में भारत के राजनीतिक रणमंच पर पुनः प्रयत्नरित हुए। १९२४ में कांग्रेस से छूटने के पश्चात् उन्होंने सत्रिय राजनीति से हाथ धोकर लिया था और अपना समय धर्म की लोकप्रिय बनाने के सारे देश में भ्रमण कर हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रचार करने और अस्पृश्यता के अन्निर्माण से युद्ध करने में व्यतीत किया था। १९२५ के अन्त में उन्होंने एक वर्ष के लिए राजनीतिक जीवन और निरवलता का प्रयत्न किया। इस अवधि में स्वराजवादी कांग्रेस के राजनीतिक नेताओं और अधिकांशों मुम्बई रचनात्मक कार्यक्रम में सलग्न रहे। सन् १९२६ तक विधानमण्डल का भीतर प्रसङ्गयोग करने की शक्तिहीन शासनयंत्र की अन्तिम निम्न करने का स्वराजवादी कार्यक्रम नष्ट प्रायः हुआ था। अन्तिम वर्ष में महात्मा गांधी का शोचनीय राष्ट्रीय मार्ग का प्रयाग पर पुनः लक्ष्य किया।

वामपन्थी विचारों की वृद्धि—त्रिसप्ततम वर्ष में महात्मा गांधी ने कार्यक्रम में नवतृत्व की बाग्यार सन्तुली राष्ट्रवादी आन्दोलन में वामपन्थी प्रवृत्ति अन्तिम होने लगी थी। समाजवादी और साम्यवादी विचारों के युवा राष्ट्रवादी युवाओं को प्रभावित करना प्रारम्भ किया था। इस में समाजवाद की सफलता और समाजवादी राज्य की स्थापना में भारत के पारितोषिकों के राष्ट्रवादियों में समाजवादी और साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रति रुचि उत्पन्न कर दी। ये कार्यकर्ता और किसानों के संगठन प्रवृद्ध होने लगे। बम्बई के गिरनी कामगार संघ का सदस्यों की संख्या १९२८ तक ६५ हजार से अधिक बढ़ गई थी। धर्मिक संघवाद और वर्ग चेतना का औद्योगिक मजदूरों के बीच शीघ्रतापूर्वक विकास हुआ और उसने १९२८-१९२९ में कई बड़ी-बड़ी हड़तालों के रूप में स्वयं को व्यक्त किया। स्वयं कार्यक्रम के भीतर जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में वामपन्थी और पकड़ने लगा। इसी काल में युवा संघों और विद्यार्थी संघों का भी जन्म हुआ। सुभाष बोस और जवाहरलाल नेहरू उनका साम्यवादी नेता थे।

१ ए० आर० देसाई— वामलोक प्रकाशक डॉ० इण्डियन मेसजलिन्ग
पृ० ३२४।

६६ साइमन कमीशन

साइमन कमीशन की नियुक्ति—५ नवम्बर, १९२७ को महात्मा गांधी तथा दूसरे भारतीय नेताओं को वायसराय का यह आमंत्रण मिला कि वे उनसे दिल्ली में मिलें करें। महात्मा गांधी उस समय मगधौर में थे वायसराय का आमंत्रण पाकर शीघ्र ही वहाँ से चले पड़े और एक हफ्ते मीन की यात्रा तय कर नाइ इंग्लैंड से मोंट कारन के लिए लिखी पत्रों का साइ इंग्लैंड ने उनका हाथों में कागज का एक टुकड़ा पकड़ा लिया, जिसमें अनुविहित साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई थी। महात्मा गांधी ने पत्र पढ़कर कहा कि वायसराय इस सूचना को उन्हें एक आन के लिक्राफे में भेज सकते थे लेकिन यह घटना भारत के इतिहास में सुगान्तरकारी सिद्ध होने की थी।

कमीशन की निश्चित काल से दो बय पूव क्यों नियुक्त किया गया?—यह स्पष्ट है कि १९१६ के भारतीय शासन सम्बन्धी एक्ट न मोंटफोर्मु सुधारों की कार्यावधि की जांच पताल करने और इस बात की कि भारत उत्तरदायी स्वशासन की दिशा में अग्रतर प्रगति के लिए वहाँ तक तयार है, रिपोर्ट करने के लिए १० बय की समाप्ति पर एक अनुविहित कमीशन की नियुक्ति निर्धारित की थी। इस प्रकार भारत में कमीशन १९२८ में भेजा जाना चाहिए था। लेकिन इंग्लैंड की राजनीतिक परिस्थिति के अनुरोध के भारत में लाइ वर्कनहूड का इस सम्बन्ध में उत्पन्न करने के लिए विशेष कर लिया। १९२६ में साधारण निर्वाचन हान को वे और उर्ध्व श्रमिक क्लब की विषय की स्पष्ट सम्भावना थी। निरागत अनुदारदल भारत के राजनीतिक मविष्य को अपने विरोधी दल के हाथों में नहीं छोड़ना चाहता था। यही कारण है कि कमीशन का निश्चित काल से दो बय पूव नियुक्त किया गया।

भारत के लिए अपमानजनक—साइमन कमीशन की नियुक्ति भारतवर्ष के लिए अपमानजनक थी। कमीशन में एक भी भारतीय सन्स्य नहीं था। 'उसके सानों के सानों सदस्य अयज्ञ थे।' कमीशन में भारतवासी को न पैन का कारण यह बताया गया था कि चूंकि उस ब्रिटिश सन्स्य की रिपोर्ट देनी है इसलिए उसमें केवल ब्रिटिश सन्स्य का ही सन्स्य सम्मिलित हो सकते हैं। लेकिन यह तो खारो एक बहाना था क्योंकि उस समय ब्रिटिश सन्सद में भारत के भी दो प्रतिनिधि—प्रत्येक सन्स में एक एक बय स्थित थे।

कमीशन का उद्देश्य—कमीशन का उद्देश्य शासन प्रणाली की त्रिपान्विति गिना की वृद्धि तथा ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधिक संस्थाओं के विकास का अनुशीलन करना और इस बात की कि उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त की स्थापना वांछनीय है या नहीं यदि है तो किस सीमा तक एवं ब्रिटिश भारत में उस समय वर्तमान उत्तर

१ सी० वार्ड० विनामणि— इंग्लैंड पॉलिटिक्स सिन्स दो म्युटिनी'
पृ० १७१।

दायी शासन का माया को बढ़ाया जाए समाधिपत्र दिया जाए अथवा कम प्रतिबंधित किया जाए रिवाज करता था ।

कमीशन का बहिष्कार—एक प्रकार मांगना अथवा यह सिद्ध करने की धे कि भारतीय अथवा शासन प्राप्त करके के मांग हैं या नहीं । १ इममें कोई भारतीय नहीं कि कमीशन में एक भी भारतीय सम्मेलन के नाम तान के शासन की भारतीय लोकमत के समीप गयीं १ अथवा और अथवा १ समझा और इमका प्रथम विराय दिया । कमीशन को राजनीतिक धूनना के नाम से टीका ही सम्बाधित किया गया । भारतीयों के अथवा अथवा के अथवा न कमीशन के विचारणीय विषयों के ऊपर भी अथवा दिया । यह अथवा जीव-वृत्तान्त और रिवाज करने व ता विचार ही होने को था काय की पूर्ण उत्तराणी शासन की मांग की और म उमन अथवा अथवा भूत की थी । अथवा मोनासा १ नेहरू न कहा था कि सरकार के लिए एतमात्र वायव्य मांग यह था कि वह इस बात की स्पष्ट घोषणा कर दे कि वह क्या करना चाहती है और इस योजना की वायव्य में परिणत करने के लक्ष्य से एक दावना तयार करने के लिए कमीशन नियुक्त करे ।

मद्रास कांग्रेस दिग्दर्शक १९२७—कांग्रेस ने सम्मेलन कमीशन के प्रति अथवा दृष्टिकोण तथा नीति की दिग्दर्शक १९२७ के सम्मेलन अधिवेशन में स्पष्ट उक्त किया । चूंकि सरकार ने भारत के स्वाम्य विषय के अधिकार के प्रति और उक्त प्रशिक्षित की अथवा कांग्रेस ने प्रत्येक स्तर पर और प्रत्येक रूप में कमीशन के बहिष्कार करने का निश्चय किया । मद्रास कांग्रेस ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता को अथवा लक्ष्य घोषित करते हुए एक प्रस्ताव भी पास किया था अथवा महात्मा गांधी ने इस प्रस्ताव के बारे में वाद में कहा था कि उसे अथवा में सोचा गया था और बिना विचारों पास किया गया था ।

साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय केवल कांग्रेस तक ही सीमित नहीं था । मुस्लिम लीग (जिसमें इन प्रश्नों के ऊपर पट्ट पड़ गई थी) के एक वक्ता को छोड़ कर सभी राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन के प्रति एक सा दृष्टिकोण ग्रहण किया । सर मोहम्मद शफी के नेतृत्व में लीग के प्रतिगामी पक्ष ने कमीशन के स्वागत करने का निश्चय किया किन्तु मि० जिन्ना और उनके वामपक्षी अनुयायी कांग्रेस के साथ ही गए ।

साइमन कमीशन ३ फरवरी १९२६ को बम्बई में उतरा । दशव्यापक हस्ताक्षरों द्वारा उसका अग्नि दन किया गया । जहाँ कहीं कमीशन गया काले भण्डों और साइमन वापस जाओ के नारों से उसका स्वागत किया गया । सरकार ने बहिष्कार को तोड़ने के लिए जोर-यादती के उपार्यों का प्रयोग किया किन्तु सब अकार ।

१ पीलव— महात्मा गांधी पृ० १६६ ।

२ 'राज-प्रसाद— सञ्चित भारत', पृ० १९८ ।

साहौर म साइमन कमीशन के विरोध में ज्ञाना साजपतराय ने एक विराट जनस वा नेतृत्व किया । वह हृदय रोग से पहले ही पीतित थे, जलूस में उनके ऊपर पुलिस की इतनी ताटिया पडा कि उक्त घटना के एक पन् उपरांत उनकी मृत्यु हो गई । ज्ञाना साजपतराय की मृत्यु मे सारे दंग म उत्तजना की एक लहर दौड गई । लखनऊ म जवाहरलाल नहृय गोविन्दवल्लभ पंत के ऊपर पुलिस की लाठियां पडी । जय तक कमाशात नग्नऊ म रहा लखनऊ की स्थिति एर सनिक शिविर क तुल्य रही और वे सामाजिक उत्सव तक जिनम कमीशन क सदस्यों को आमंत्रित किया जाता था पुलिस का बटोर निगरानी में सम्पन्न होन थ ।

साइमन कमाशन की रिपोर्ट—स्पष्टत साइमन कमीशन की जांच पडताल न भारतया के बीच बहुत कम शक्ति उत्पन्न की । दणिए की जस्टिस पार्टी और दोडे मे मुस्लिम मगठना का छाकर सभी राजनीतिक दलों न कमीशन का पूरा बहिष्कार किया । कमाशन न दश बार भारत की यात्रा का और अपनी रिपोर्ट का जाम १९० म प्रकाशन हुई दा थप म अधिक समय बा पूरा किया । ब्रूनलण्ड ने मउ क अनु सार रिपोर्ट न ब्रिटिश राज्य विधान के पुस्तकालय म एक और स्पष्ट कृति का वृद्धि की ।^१ ए वा बीच क मन में भारतीयों द्वारा साइमन कमीशन का बहिष्कार एक ब्रुटिपूर्ण कर्म था । लेकिन भारतीय लाकमत ने रिपोर्ट को पूर्ण रूप से अस्वीकार किया । सर जिवस्वामी अय्यर ने इन "नों में कि 'साइमन रिपोर्ट को रट्टी का टोकरा में डाल देना चाहिए' ^२ साइमन रिपोर्ट के प्रति भारतीय दृष्टिकोण का असा परिचय दिया था । ब्रिटिश सरकार ने भी रिपोर्ट क ऊपर जिसकी गिफारिशें शीघ्र ही गोनमेज परिषद के दीध बितकों से घनिभून हो गई थीं कोई कायवाही नहीं की ।

साइमन रिपोर्ट ने भारतीय भाकाशासो के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति प्रकट नहीं की और डोमिनियन स्टेटस की चर्चा तक नहीं की ।

इसके विपरीत उसने जातिगत और सम्प्रदायगत मतभेदों का सविस्तर उल्लेख करते हुए भारतीय स्थिति का इतनी चित्र खींचा ।

निष्कर्ष यह निकाला कि ससदीय अथवा उत्तरदायी शासन का प्रयोग सफल नहीं रहा था लेकिन उसने इस बात की सिफारिश नहीं की कि इस पद्धति को त्याग दिया जाये ।

प्रान्तों में रक्षाबधों (Safeguards) के साथ पूरा उत्तरदायी शासन— इसके विपरीत उसने सुझाव दिया कि प्रान्तों में द्वय शासन प्रणाली के स्थान पर पूरा उत्तरदायी शासन की प्रतिष्ठा हानी चाहिए ।

प्रान्तीय प्रशासन क सब विभाग विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी एकल-मनिमण्डल क हाथ में हाने चाहिए । तथापि, उसने रक्षाबधों (Safeguards) की आवश्यकता पर बल दिया ।

१ ब्रूनलण्ड— इण्डियन प्रॉव्लेम १८३३-१९२५, पृ० १०० ।

२ बीच— ए कस्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' पृ० २०४ ।

३ बिठामणि— इण्डियन पोलिटिक्स सिंस दी म्युटिनी पृ० १०२ ।

यह सुभाव उपस्थित किया कि बतिषय महत्वपूर्ण मामलों में गवर्नरों को अपने मंत्रियों के निष्णयो के उत्सपन करने की विशेष शक्तियों से सज्जित कर दना चाहिए ।

सद्य- रिपोट में एक ऐसे भारतीय सभ की स्थापना का भी प्रस्ताव था जिसमें प्रत्येक प्रान्त जहाँ तक हो सके अपने क्षेत्र में अपना मानिक हो ।

रिपोट ने यह भी सुझाव दिया था कि केन्द्रीय विधानमंडल को राष्ट्रीय प्रांग पर पुनर्गठित करना चाहिए और निम्न सदन को जिसका नाम राष्ट्रीय सभा (Federal Assembly) हो प्रांतीय विधान मण्डलों द्वारा परोपत निर्वाचित किया जाना चाहिए । यह उसकी सर्वाधिक विस्मयकर सिफारिशों में से एक थी ।

केन्द्र में कोई उत्तरदायित्व नहीं—इसमें कहा गया था कि केन्द्र में किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं हो कायपालिका बराबर अनुत्तरदायी बनी रहे । जहाँ तक साम्प्रदायिक प्रश्न का सम्बन्ध है साइमन रिपोट ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की निष्ठा की बकिन किञ्चाल उसे भारिहाय ठराया ।

भारतीय राज्य—सुदूर भविष्य में भारतीय सभ में भारतीय राज्यों के योगदान की भी अस्पष्ट कल्पना की लेकिन एक तात्कालिक पथ के रूप में उसने वृहत्तर भारत की कवल एक एसी परामश परिषद् की सिफारिश की जिसमें देशी राज्या और ब्रिटिश भारत दोनों का प्रतिनिधित्व हो ।

७० नेहरू रिपोट और जिन्ना की चौदह शर्तें

सद्य दल सम्मेलन १९२८—साइमन कमिशन की जिसके सब सन्स्य अंग्रेज थे नियुक्ति करत हुए अनुहार दल के भारत मंत्री लाड बर्कनेहेड ने भारतीय जनता को एक घृष्ट चुनौती दी थी । उन्होंने कहा था कि भारतीय साम्प्रदायिक कलनों के फल स्वरूप अपने लिए एक सविधान बनाने में असमर्थ हैं । भारतीय राष्ट्रवादिों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और काग्रस से फरवरी १९२८ में दिल्ली में सब दलों के सम्मेलन का सयोजन किया । सम्मेलन ने २८ बठकों की तथा पूण उत्तरदायी शासन के ऊपर आधारित भारत के एक सविधान और साम्प्रदायिक सम्बन्धों व अनुपातों की समस्या पर विचार विनिमय किया ।

नेहरू-समिति—१९ मई को सम्मेलन की बठक में इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया गया कि भारतीय सविधान के सिद्धान्तों का असविदा तयार करने के लिये पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में ६ सदस्यों की जिनमें एक सिख और दो मुसलमान भी हों एक समिति नियुक्त की जाये । सम्मेलन में भाग लेने वाले २६ सगणों ने समिति के नियुक्त करने के प्रस्ताव का समर्थन किया । जवाहरनाल नेहरू इस समिति के सेक्रेटरी बने ।

नेहरू रिपोट—(क) डोमिनियन स्टेटस और पूण उत्तरदायी शासन—समिति ने तीन महीने के भीतर अपना रिपोट तयार कर ली । अपनी रिपोट में समिति ने इस

बात का भारतीय संविधान की स्वशासित डोमिनियनों के नमूने पर पूरा उत्तरदायी शासन के ऊपर आधारित होना चाहिए समझन किया और यह स्पष्ट कर दिया कि डोमिनियन स्टेट्स की उपलब्धि हमारे विकास की एक दूरस्थ अवस्था नहीं अपितु अगला तात्कालिक कदम है।' रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि केंद्र और प्रान्ता दोनों स्तरों पर, कामपालिका को पूरा विधान मंडल के नियंत्रण में तथा उत्तरदायी रहना चाहिए।

(ए) प्रान्तीय स्वायत्तता और अवशिष्ट शक्तियाँ—समिति सच को भी केवल एक समाधान समझती थी। तथापि उसने प्रांता के लिए स्वायत्तता का आवश्यकता पर बल दिया। उसने केंद्र और प्रांतों के बीच शक्तियों के वितरण की एक योजना उपस्थित की, लेकिन अवशिष्ट शक्तियों को केंद्र के लिए सुरक्षित रखा।

(ग) साम्प्रदायिक निर्वाचन और गुटभार की अस्वीकृति—जहाँ तक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के जटिल प्रश्न का सम्बन्ध है नेहरू रिपोर्ट साम्प्रदायिकता की कठिनाइयों का ठीक ठीक मामला करने के लिए भारतीयों द्वारा अब तक की गई सुस्पष्टतम चेष्टा थी।' रिपोर्ट ने इस तथ्य को कि साम्प्रदायिक मतभेद समस्त राजनीतिक कार्य पर अपना प्रभाव डालते हैं स्वीकार किया लेकिन यह विश्वास व्यक्त किया कि विदेशी सत्ता और हस्तक्षेप से विमुक्त स्वतंत्र भारत में इस समस्या को सुलझाना सुगम होगा। रिपोर्ट के रचयिताओं ने घोषणा की 'एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के ऊपर निरदुष्ट शासन कर, इस बात को सहन नहीं किया जा सकता। उन्होंने रक्षाकवचा, मारण्डिया और सांस्कृतिक स्वायत्तता' द्वारा अल्पसंख्यक वर्गों को सुरक्षा का आश्वासन देने की आवश्यकता पर बल दिया। लेकिन साम्प्रदायिक निर्वाचन और गुटभार के प्रश्न के ऊपर रिपोर्ट ने जगनूक समझौते की शर्तों को स्वनापूवक प्रस्ताव कर दिया। उसने पृथक निर्वाचनों का इस आधार पर खण्डन किया कि वे साम्प्रदायिक विरोधवाद को वृद्धि करते हैं और अल्पसंख्यक वर्गों को जय सुरक्षा देने के अपने स्पष्ट घोषित प्रयोजन में ही असफल रहते हैं। फलतः 'राष्ट्रीय हितों के लिए विचारित किसी भी प्रतिनिधित्व प्रणाली में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया जा सकता।' रिपोर्ट ने संपूर्ण निर्वाचना की सिफारिश की लेकिन साथ ही अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें सुरक्षित कर देने का प्रस्ताव किया। अल्पसंख्यक वर्गों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने लिए सुरक्षित सीटों के लिए भी चुनाव लड़ सकते हैं लेकिन किसी भी प्रकार के गुटभार को अस्वीकार कर दिया गया।

(घ) उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त और सिंध—रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त को दूसरे प्रांता के बयानिक धरातल पर ले आना चाहिए और सिंध को बम्बई से पृथक कर देना चाहिए ताकि चार मुस्लिम बहुल प्रांतों का निर्माण हो सके। नेहरू रिपोर्ट ने भारतीय राज्यों की समस्या पर भी

विचार किया। रिपोर्ट ने इस बात की सिफारिश की कि शासकों व अधिकारों और विशेष अधिकारों की रक्षा की जाय लेकिन अपने साथ ही साथ उनमें एक बात को भी स्पष्ट कर दिया था कि उक्त भारतीय संसद के रूप में परिवर्तित करने के किसी प्रयास को सह्य नहीं किया जायगा।

(२) भारतीय राज्य—रिपोर्ट में राजाशाही को इस बात का चेतावनी दी कि यदि भारत के लिए सभी सविधान प्रणाली स्वीकृत किया गया तो उक्त उममें उगी समय सम्मिलित होने दिया जाएगा जबकि राज्या में स्थानिक शासन प्रणाली का अंत ही जायगा। उन्हें जो हो नई संसद सरकार ब्रिटिश सरकार में मात्रोत्तर में विवर्धित राज्यो के प्रति मतमान समस्त अधिकारों व दायित्वों का ले लेगी।

नेहरू रिपोर्ट की प्रतिक्रिया—अगस्त १९२८ में राजसमिति में सब एक सम्मेलन ने नेहरू रिपोर्ट के अंतर् विचार विनिमय किया और उमे घाटे के सौधनों में न स्वीकार कर दिया। कुछ समय बाद कांग्रेस काय समिति ने रिपोर्ट का 'राजनीतिक विकास की दिशा में एक महान पग मानकर' उसका अनुमोदन किया। लेकिन इस विषय पर मुस्लिम जोरमत में भेद पड़ गया। राष्ट्रवादी मुसलमानों ने तो नेहरू रिपोर्ट का समर्थन किया लेकिन जूजवावादी तत्वों ने सर्वज्ञ मुस्लिम सम्मेलन में जिसका अधिवेशन ३१ दिसम्बर १९२८ को दिल्ली में हुआ एक स्वर से रिपोर्ट का विरोध किया। उस सम्मेलन के समापित प्राणांशों के और मोराना मोहम्मद अली तक इसमें सम्मिलित हुए।

रिपोर्ट की चौह शर्तें—मि० रिपोर्ट भी नेहरू समिति द्वारा तयार की गई धार्मिक योजना के विच्छेद थे। उन्होंने चौह शर्तों के आधार पर जिन्हें उन्होंने

१ डा० राजद्रप्रसाद ने जिल्दा की चौह शर्तों का निम्नलिखित सारांश उपस्थित किया है— (१) सभी सविधान का रूप सभ प्रणाली का हो जिसमें अवशिष्ट अधिकारों प्राप्ति में विहित हो। (२) सभी प्रांतों में एक समान स्वायत्त शासनाधिकार रहे। (३) सभी प्रांतों की विधान सभाओं और लोकप्रतिनिधि सभाओं में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों का निश्चित रूप से उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहे। जहाँ उनका बहुमत हो वहाँ घटा कर समान या अल्पमत न कर दिया जाए। (४) केन्द्रीय विधान सभ में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक तिहाई से कम न रहे। (५) साम्प्रदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व पृथक निर्वाचन की पद्धति से हो परन्तु कोई भी सम्प्रदाय जब चाहे तब संयुक्त निर्वाचन की पद्धति स्वीकार कर सकता है। (६) किसी भी प्रादेशिक पुनर्विभाजन द्वारा पञ्जाब बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में मुसलमानों के बहुमत पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिए। (७) सभी सम्प्रदायों को अपने धार्मिक विश्वास उपासना उत्सव प्रचार सम्मेलन और शिक्षा की पूर्ण स्वाधीनता रहनी चाहिए। (८) किसी भी विधान सभा अथवा लोकप्रतिनिधि सभा में एका कोई भी विधेयक या प्रस्ताव स्वीकृत न होना चाहिए जिसका कि किसी भी सम्प्रदाय के तीन

मुसलमानों के हितों और अधिकारों का रक्षा के लिए आवश्यक बताया जाय तो दोनों पक्षों में पुनरन्वय स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। मि० जिन्ना की ची ह शर्तें साम्प्रदायिक समस्या का वास्तविक समाधान नहीं दे सकती थीं किन्तु इनका इसलिए और भी अपना विशेष महत्त्व है कि श्री भवनानन्द के साम्प्रदायिक विचारों में य प्राय मान ली गई थी।^{११} नेहरू रिपोर्ट ने भारतीय राज्या के शासकों का जो यह विचार सहन नहीं कर सकते थे कि स्वतंत्र भारत की नई केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश सम्राट से सावभौमत्व लेगी, प्रस्तुत कर दिया था।

७१ सघर्ष की ओर

कांग्रेस अल्टिमेटम (कलकत्ता दिसम्बर १९२८)—यह हम पहले देग चुके हैं कि कांग्रेस ने अपने मतास अधिकारों के अन्तर्गत पर अपना लक्ष्य पूरा स्वतंत्रता अंगीकार किया। जब अगले अधिकार (कलकत्ता १९२८) में नेहरू रिपोर्ट उपस्थित की गई, उस समय कांग्रेस के दो पक्ष हो गए। एक पक्ष तो डोमिनियन स्टेट्स से ही सन्तुष्ट था और दूसरा पक्ष जिसके नेता सुभाष बोस के जवाहरलाल नेहरू थे यह चाहता था कि कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य पर बटी रहे। इस पक्ष का कहना था जब तक अंग्रेजों से ससग नहीं टटता (भारत को) सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकती।^१ तथापि महात्मा गांधी द्वारा पक्षों में समझौता कराने में सफल हुए और कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को एक अल्टिमेटम देने का निश्चय किया। कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार का जो अंतिम चेतावनी दी उसमें मांग की गई कि सरकार नेहरू सविधान को ज्यों का त्यों पूरा स्वीकार करे ल यदि उसने ऐसा नहीं किया तो कांग्रेस दश को यह सलाह देकर कि वह क्यों का देना बन्द कर दे अहिंसात्मक आन्दोलन का आन्दोलन सगठित करेगा।

इंग्लैण्ड में अमिक सरकार (मई १९२९)—मई १९२९ में इंग्लैण्ड के साधारण निर्वाचन में अनुदार दल की पराजय हुई और रमजे मन्डानेल्ड के नेतृत्व में चौथाई सदस्य अपने सम्प्रदाय के हितों का विरोध बताते हुए विरोध करें। (६) सिध बम्बई प्रेसीडेंसी से पृथक कर लिया जाए। (१०) ग्राम प्रांतों में जिस प्रकार के सुधार किए जाए उसी प्रकार के सुधार सीमा प्राप्त और बिलोचिन्तान में किए जाएं (११) विधान में सभी नीकरियों में योग्यता की आवश्यकता के अनुसूच्य मुसलमानों को उचित भाग मिले। (१२) मुस्लिम सस्कृति निर्यात भाषा में व्यवहृत करने का नूतन और धार्मिक सस्याओं की रक्षा के उन्नति के लिए उचित सरदारों तथा पर्याप्त सरकारी सहायता मिले। (१३) केन्द्रीय अथवा प्रांतीय मन्त्रिमण्डल में कम से कम तिहाई सभी मुसलमान रहें। (१४) केन्द्रीय विधान मण्डल को सविधान में कोई परिवर्तन करने का केवल सभी अधिकार रहे जब भारतीय सभ में आवश्यक सभी इच्छाएँ उभर स्वीकार कर लें। — पण्डित भारत पृ० २०२-२०३।

१ राजेन्द्रप्रसाद— पण्डित भारत, पृ० २०३।

अधिक दल सप्ताहक रूप में। भारतवातियों को बढ़ी बढ़ी आशाएँ बंध गईं क्योंकि निर्वाचन के तुरन्त बाद ही राष्ट्रमण्डलीय देशों के अग्रिम दलों के सम्मेलन में मैकडोनेल्ड ने निम्न घोषणा की थी— मुझ आशा है कि यहाँ की तो कौन सत्ताई कुछ महीनों का ही अवधि में राष्ट्रमण्डल में एक अग्र्य डोमिनियन एक अग्र्य प्रशासित का डोमिनियन वह डोमिनियन जो राष्ट्रमण्डल में एक समयका के रूप में आन्तर पाण्ड्या, सम्मिलित हो जाएगा। मेरा अग्रिमप्राय भारत से है।

साह इतिहास की घोषणा (३१ अक्टूबर १९२६)—जन में दीर्घ विचार विमर्श के लिए साह इतिहास को गलण्ड चुनाया गया। भारत वापस आने पर साह इतिहास न ३१ अक्टूबर १९२६ का एक घोषणा की जिसमें वापस की माँग का पूरा तरह से टाल दिया गया। वायनराम न २० अगस्त १९१७ की घोषणा का हवाला देते हुए कहा— ब्रिटिश सरकार न मुझ यह श्रापित कर देने का अधिकार किया है कि १९१७ की घोषणा में यह अग्रिमप्राय अस्ति ग्य रूप से है कि भारत को अन्त में उपनिवेश का दर्जा मिले। उन्होंने एक गोलमग्न परिपद के आयोजन की भी जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार से नए सविधान के सिद्धान्तों पर विचार विनिमय कर लें पूरा सूचना दी।

दिल्ली का घोषणा पत्र—साह इतिहास की घोषणा कूटनीतिक अस्पष्टता की एक श्रेष्ठ उदाहरण थी। इस घोषणा से सरकार की वास्तविक नीति समझना कठिन था। घोषणा में डोमिनियन स्टेट्स को लक्ष्य बताया गया पर नु वह कब प्राप्त होगा इसका कोई जिक्र नहीं था। राष्ट्रमण्डल में वहाँ की तो कौन कहे कुछ महीनों के भीतर भारत एक डोमिनियन के रूप में सम्मिलित होगा इसके बारे में घोषणा में एक शर्त भी नहीं कहा गया था। इसके विपरीत देशी राजाओं का सवाब उठाकर भारतीय स्वतंत्रता की समस्या को और पेचीदा कर देने की कोशिश की गई। फिर भी भारत के बड़े-बड़े नेता और कांग्रेस वायसमिति के पुराने सभ्य एक ऐसी आशा लगाए रहे जो तथ्यों के प्रकाश में अग्रिम सिद्ध हुई। अन्त में स प्रकाशित एक दस्तावेज में उन्होंने वायसराय को यह वादा दिया और कहा— हम समझते हैं कि प्रस्तावित परिपद औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का समय निश्चित करने के लिए नहीं चुलाई जा रही है बल्कि ऐसे स्वराज्य का सविधान तयार करने को आशयित की जायगी। उन्होंने हम बात की अपील की कि वर्तमान शासन में उन्हीं आदेशों का संचार होना चाहिए और समझने की नीति को अक्षिण्यार करना चाहिए जिससे जनता इस बात का अनुभव करने लगे कि 'आज से ही नवीन युग आरम्भ हो गया है। बहुत से युवक वापसी इस दृष्टिकोण से अग्रिम और अग्रत तुष्ट थे। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस दोनों ने काम समिति से त्याग पत्र दे दिया। इसके विपरीत महात्मा गांधी ने एक अग्रिम मित्र को लिखा था— मैं तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। उन्होंने कहा था— यदि मुझे व्यवहार में सच्चा और निवेदिक स्वराज्य मिल

जाए ता मैं उसके सविधान के लिए ठहरा भी रहूँ मक्ता ह। 'बकिन उन्होंने इस बात को स्पष्ट कह दिया— औपनिवेशिक स्वराज्य की मरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश सम्बन्ध बिच्छे कर सकूँ।'

इंग्लण्ड में प्रतिक्रिया—साह इबिन की घोषणा पर इंग्लण्ड में जो प्रतिक्रिया हुई वह किसी भी तरह से आगाजनन नहीं थी। वायसराय की घोषणा में भारतवासियों को बहुत छोटी सी चाज देन का वचन दिया गया था फिर भी ब्रिटिश समुदाय में इसी पर तूफान खड़ा हो गया। 'टीरिया न औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा तक का विरोध किया। थमिक दल का सरकार ने विराधी दल की ठकुरसुआठी करन में कुछ उपाय न रता और वह 'भारतीयों की आशाएँ पूरा करन के बजाय अनुसर दल की शकाओं को दूर करन के लिए अधिक उत्सुक थी। दूसरे शासन में थमिक सरकार दुर्मैयन से बात करती थी। भारत में तो यह धारणा उत्पन्न करने की चप्टा करती थी कि अब भारत के राष्ट्रीय आगाजनन के प्रति एक नई रीति ग्रहण की जाएगी। इससे और इंग्लण्ड में वह यह निःशासा देती था कि नीति में किसी प्रकार का कोई प्रातिकारी परिवर्तन नहीं किया है।

गांधी इबिन भेंट—इस प्रातिक्रिये का तावरण में माहात्मा गांधी ने वायसराय से भेंट करके हरक चाज का साफ माफ कर लेना चाहा। २ दिसम्बर १९२६ को यह भेंट हुई। उसी दिन वायसराय की गांडी के नाच बम पत्रा था और वह बान बाल बच गए थे। पण्डित मोनालान नहूँ उजबहादुर सप्र बलनम नार् पटन और ब्रिन्ना भी बठक में उपस्थित थे तथापि इस बठक में कोई विषय पत्र नहीं निजना क्योंकि वायसराय यह आश्वासन देन की स्थिति में नहूँ था कि पूरा उत्तरदायी शासन गाव मज परिपत्र की कायबाही का प्राचार होमा।

साहोर में—इस समाचार न कि वायसराय भवन में भारत की आगाएँ चूण हुए 'नाहीर-कांग्रेस का, जिसका अधिवेशन रावा के तट पर हुमा चातावरण गम्भीर कर दिया। 'म वप के अध्पण जवाहरलाल नहूँ भारतीय राष्ट्रवादी की उग्र भावना के प्रताक थे। कांग्रेस ने घोषणा की कि औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रस्ताव का स्वीकार करने का समय बीत चुका है और अब भारत का लक्ष्य पूरा स्वराज्य है। ३१ दिसम्बर, १९२६ की मध्य रात्रि में स्वतंत्र भारत के तिरण भण्ड का पहराया गया। कांग्रेस ने गोलमेज परिपत्र में भाग न लेने का निश्चय किया और महासमिति को यह अधिकार दिया कि वह जब चाहे, जहाँ चाहे सविनय अवज्ञा और करवन्ती तक का कार्यक्रम प्रारम्भ करे।

२६ जनवरी स्वतंत्रता दिवस—कांग्रेस ने २६ जनवरी का स्वतंत्रता दिवस निश्चित किया और इस अवसर पर पत्र वान को स्वतंत्रता का एक घोषणापत्र

१ पट्टाभि साठारामम्मा— 'दी हिस्ट्री ऑफ़ दी कांग्रेस पृ० १९४।

२ पट्टाभि साठारामम्मा— 'दी हिस्ट्री ऑफ़ दी कांग्रेस पृ० १००।

अधीकार किया। पापणा वत्र ने त्रिनिग सरकार को भारत के अधिका राजनीति-सास्यतिर और आध्यात्मिक पतन के लिए दानी टूट्टाया और 'दया' का प्राण करने के भारतीय जनता के ज मसिद्ध धि रार की घोषणा की।

७२ सविनय अवज्ञा आन्दोलन (१९३०-३१)

सविनय अवज्ञा की रूपारो—काप्रस और महात्मा गांधी ने गल्-राजी म गोई काम नहीं किया। उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि उस समय के लिए जो कि अपरिहाय हो गया था देश को तवार किया जाए। एनथ उन्होंने अधिगत प्रतिरोध की टेकनीक का व्यापक प्रचार किया। उस समय दग एए एमी विभवशशी म-गी के पज म था जिसने अवनटुत्तय आंधी के जोर से भारत पर प्रचार किया।^१ मती सम्बन्धी चीजों के माध ५० प्रतिशन से अधिक गिर गए थे और विमानों की हालत इतनी तग थी कि वे एक गज वपन या छड़ पाव लम्प का सेम भी नही सारीद सकते थे। सीपा-माग लम्प यह था कि वे कर लगान और ऋण को अन्त करने में प्रसमय थे। आवसायिक और औद्योगिक वर्गों में रुपए की नई विनिमय दर के कारण असंतोष पन हो गया था। सरकार ने रुपए की कीमत १६ पेंस से बढ़ाकर १८ पेंस कर दी थी। इस परिवर्तन से इगनण को पूरा गाम हुआ। भारत के उद्योगपरतिया और व्यापारियों ने काप्रस का समर्थन किया तथा उसके कोष में १९२० से नौ अधिक मुक्तदस्त होकर दान दिया।^३ औद्योगिक कमकर भी अस तुष्ट और उत्तजित थे। दमन के फनस्वरु व ह प्रभूत वष्ट उठाते पड़े थे। अमिक आन्दोलन विचारधारा और सगठन दोनों में वग चत य उपर तथा मयावह होता जा रहा था।^४ सरकार ने माच १९२६ में मन्नदूर सगठन के ३६ योग्यनम और उद्यनम नेताओं को गिरफ्तार करके और मेरठ पडयन अधिमयोग का अधिनय करके नो नगातार शिपि नतापूर्वक चार वष तक चपता रहा, जिसमें १६ जाल रुए खच हुए और अन्त में २७ अधिमिक नेताओं को सन्नार का भारत की प्रभुता से च्युत करने के अरराध में दीष कारावास का दण्ड मिता था अधिमिक सगठन पर भीपण आघात किया। अमके अनाश साहीर पन्थन अधिमयोग ने भी सारे भारत के राजनीतिक आयुमणन को विद्यमय कर दिया था।

इस प्रकार उस समय चारों ओर गर्मी छाई हुई थी और इग वान के चिह्न वतमान थे कि यदि महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा का अधिगणन न किया होता तो तत्कालीन अधिका दुरवस्था व नोकरशाही दमनचक्र भारत में एक एसा आति का

१ पोलक— महात्मा गांधी, पृ० १७३।

२ वही पृ० १७३।

३ पालक— महात्मा गांधी, पृ० १७५।

४ जवाहरलात नेहरू— आटोबायमाका, पृ० १८८।

सूत्रपात कर देने, जिसका स्वरूप निश्चिततः अहिंसात्मक न होना ; गांधी स्वयं वास्तव में भ्रवगत थे । २ मार्च १९३० को लोने वायमराय की चलावना का एक पत्र लिखा और उसमें यह मन पत्र लिखा कि हिंसक रूप का जार देना ना रडा है और यह अहिंसक आन्दोलन विद्य प्रारम्भ करने का निश्चय कर चुका है न कि हिंसक आन्दोलन के निकट चल का हा गतिनु प्रत्येक दिन की सगति हिंसा का भी सामना करगा ।

दाण्डी बूझ—सविनय भ्रवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ मार्च १२ प्रारम्भ म किया गया । महात्मा गांधी न अपनी स्वारह शर्तों द्वारा वायमराय से कुछ सुधारों की कार्य विन करने की मांग की थी । जब उसका कोई मतापजनक परिणाम नही निकला, तब गांधी जी और कांग्रेस के सामने एकमात्र मांग यही रह गया था कि व सविनय भ्रवज्ञा आन्दोलन को शुरू करें । यह निश्चित किया गया कि सविनय भ्रवज्ञा का श्रीगणेश महात्मा गांधी और उनके ७६ चुन हुए शिक्षित कार्यकर्ता करेंगे और आन्दोलन दाण्डी यात्रा तथा सामाजिक नमक कानून भंग क साथ प्रारम्भ हो । १२ मार्च १९३० को महात्मा गांधी और उनके ७९ प्रशिक्षित कार्यकर्ता साबरमती नदी से समुद्र तट का घाट चल पड़े । जो सी भीन की नदी यात्रा पत्र चलकर २४ दिना में तब की गई । बन्धनमाई पटेल घाग प्राग चल और जेन जान दी बप्टिस्ट (John the Baptist) की तरफ मसीहा के आगमन क लिए लोगों को तयार किया । इस महान यात्रा के माग म ग्रामवासियों न सत्या का सत्या म महात्मा गांधी का धर्मनान किया, म आत्मा गांधी न उच्च मा न उचित और अहिंसा का उपदेश दिया । लोगों न जो यो दिन प्रति दिन बूझ करनी हुई तीथ यात्रियों का स्वयं प्रगति का त्याग त्याग दण का सामान ऊंचा चला गया । १ दशमवित्त की ज्वाला पूर प्रकाश क साथ प्रज्वलित हुई और उसन जनता को मातृभूमि की मुक्ति के एक महान सपना क लिए प्रस्तुत कर दिया । ६ अप्रैल को प्रातः काल की प्राथम्य के बाद महात्मा गांधी न समुद्रतट पर नमक कानून भंग किया ।

सविनय भ्रवज्ञा का कायनम—यह भारत के विभिन्न भागों म विगत पमाने पर सविनय भ्रवज्ञा के शुरू हा जाने का मकेत चिह्न था । ६ अप्रैल को महात्मा गांधी न आन्दोलन के लिए निम्न कायनम निर्धारित किया, गांधी-वां वी नमक बनान क लिए निबन्ध पढना चाहिए । बहना का शराब, धनीम और बिन्धी कपडे की दूनाता पर धरना दना चाहिए । बिन्धी वस्त्र को जला दना चाहिए । हिन्दुओं को मस्पृश्यता त्याग देनी चाहिए । विद्यार्थी सरकारी मन्स छाड दें और सरकारी नौकर धपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दें । ४ मर्च को महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद करबदा को भी कायनम म जोड दिया गया ।

आन्दोलन पूरे जोरों में—धीरे ही आन्दोलन पूर जोर म आ गया । इस महीने के भीतर-हा भीतर २०० स अधिक पत्रों और पत्रकारियों न अपनी नौकरी

जवाहरलाल नेहरू—“आठोबाप्राफी ५० २१० ।

छोड़ दी। बहुत से सन्तियों का विधान मण्डलों से और कई सरकारी नौकरों ने अपने पत्नी से त्याग पत्र दे दिए। हजारों लोगों का नमक-आनूत मग किया। परातना में २५०० स्वयं सेवकों का नमक के गोशाला पर चार्ज की और पाणविक साठी प्रहार के शिकार हुए। 'जमीन पीछा से बचाव हुए घातकों से पट गई थी। किसी का क्या टट गया था और किसी की तोपही। सोमों के सपने बपड़े गुन से तर थ।' ३०० से अधिक व्यक्ति अस्पताल से जाए गए और दो मर गए। लेकिन एक व्यक्ति ने भी वार से बचने का लिए अपनी भुजा नहीं उठाई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ प्रथम में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार प्रायः रहा और उसने महान सफलता प्राप्त की। एच० एन० ब्रह्मफोर्ड के अनुसार १९२० की शरद तक बपास के बपड़ों का आयात पूर्व वर्ष के इन्ही महीनों के आधा का तुलना में तिहाई या चौथाई के बीच रह गया था। बम्बई में अन्न व्यवसाय की सातह मिलें बन्द हो गई थी और ३२००० मजदूर बेरोजगार थ। इसके विपरीत भारतीय व्यवसायों की मिलें दुगनी गति से काम कर रही थी। 'महिला बहिष्कार के कार्यक्रम को विदेशों और प्रचार के द्वारा भी बढ़ किया गया। इस आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि भारतीय स्त्रियों ने अपने सकोच को त्यागकर स्वातंत्र्य योद्धाओं के साथ मिलकर काम किया। दिल्ली में जनवरी १९०० महिनाएँ शराब की दुकानों पर घरना देने के अपराध में गिरफ्तार की गई। किसानों में भी हलचल मच गई थी। गुजरात में अन्न पत्राब और बाण मयू० पी० के भाग में वन बान्दों के बहिष्कार और करबन्दी के आन्दोलन का खर प्रचार हुआ। जबाहरनाल नेहरू ने इस बात का समयन किया कि करबन्दी आन्दोलन का सम्पूर्ण देश में सगठन होना चाहिए। लेकिन कांग्रेस का सम्पत्तिशाली तत्व इसके विरुद्ध था।

सविनय अवज्ञा और भारतीय मुसलमान—भारत के अधिकांश मुसलमान इस आन्दोलन से पृथक् रहे। महात्मा गांधी के उन कतिपय घनिष्ठतम मित्रों ने जो खिलाफत आन्दोलन में उनके साथ रहे थ उनकी नीति का विरोध किया। मि० जिन्ना का कथन था— हम मि० गांधी के साथ शामिल होने से इनकार करते हैं क्योंकि उनका आन्दोलन भारत की पूर्ण स्वातंत्रता के लिए नहीं अपितु भारत के ७ करोड़ मुसलमानों को हिन्दू महासभा के आश्रित बना देने के लिए है।^३ लेकिन मुस्लिम लीग और नौकरशाही के गठबन्धन के बावजूद भी जिन देशभक्त मुसलमानों ने कांग्रेस के ध्वज के नीचे खड़े होकर इस आन्दोलन में भाग लिया उनकी संख्या कम महत्वपूर्ण नहीं थी। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगारों ने राजवादी शक्तियों का साथ दिया और पुलिस की नृशंसताओं का हसते हसते भारघयजनक सहनशीलता के साथ सामना किया।

१ एच० एन० ब्रह्मफोर्ड—'रेवेल इण्डिया' पृ० २९।

२ पोलक—'महात्मा गांधी' पृ० १७९।

३ कूपलण्ड—'इण्डिया ए रिस्टेडमेण्ट', पृ० ११८०-११८१।

सरकार का दमन चक्र—जून १९३० में भारत में शान्ति पूरे धोर के साथ दिल्ली से रही थी और बहुत से स्थानों में ब्रिटिश शासन-यंत्र बिल्कुल ठप्प हो गया मालूम होता था। इस काल में बम्बई शहर का शासन सूत्र ब्रिटिश नौकरशाही के हाथ में नहीं बलितु कायस के हाथ में था। सरकार भी निष्क्रिय नहीं थी। उससे लिए यह लड़ाई और इस लड़ाई का खयाल बिल्कुल अज्ञान था पहले तो वह एकदम हतप्रभ-सी हो गई लेकिन इसके शीघ्र बाद ही उसने दमन चक्र को बगबूबक घुमाना शुरू कर दिया। साठी प्रहार दिन प्रति दिन की घटना हो गई। १९२१ में ही कोलोनन जानसन ने साठी प्रहार की टेक्नीक को पूरा कर दिया था।^२ पुलिस को इस समय सरलन का शरीर के प्राणमृत अर्गों पर आघात करने को प्रशिक्षित किया गया था।^३ अब प्रदर्शनों और सावधानिक समाजों को निदयतापूर्वक तितर बितर किया जाने लगा। बमो-बमो पुलिस छात्रों का पाछा करती हुई उनकी कक्षाओं में घुस जाती थी और व उनके अध्यापकों की प्रपत्ती लाठियों का शिकार बनाती थी। कायस को अग्रघ संगठन धापित कर लिया गया था और दमनचक्र ने एक बर के कुछ ही अधिक समय में ६०००० से अधिक सत्याग्रहियों को जेल में डूब लिया। महिलाओं के साथ भी किसी प्रकार की नरमी का बर्ताव नहीं किया जाता था और पुलिस द्वारा स्त्री कायकर्त्ताओं का पीछन भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास के अत्यन्त काले कालनामों में से एक है। देश को अध्यादेश शासन के अधीन कर दिया गया था और एक के तुर न बाद दूसरे दमनमूलक कानूनों का बालबाला था। कर बन्नी आन्दोलन को कुचरन के लिए सरकार ने सम्पत्ति के बलात् ग्रहण हरण और नीलाम का आसरा लिया था। बोरसद में १८ राजनीतिक कदियों को एक रिजर्वे में बन्द कर दिया गया था। पुलिस के जुलुम का फल यह हुआ कि कई गाँव बिल्कुल चकड गए।

जसो कि आशा की जा सकती है कुछ स्थानों पर जनता ने भी हिमात्मक कायवाहियाँ कीं। सरकार ने आतंक का दोरदोरा शुरु करने के लिए उनका बहाना बना लिया। गोलपुर में एक उत्सजित मोड न छ घाने जला लिए और कुछ छोटी दारों को मार डाला। संगठित कायकर्त्ताओं ने व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की लेकिन पुलिस ने पन्चीस आदमियों को गन्नी से भूनकर और सफेद का कायन करके प्रतिशोध लिया। पशावर में अग्रव १६ में इससे भी भयकर घटनाएँ हुईं। वहाँ कई प्रदर्शन किए गए कुछ अक्षतों पर पुलिस और लोगों के बीच संघर्ष हो गया। इसके बाद भी अग्रप्रवर्णनी उसने पुलिस ने नगर को छोड़ दिया और खीन नियो तक शान्तिपूर्ण व अतन्नामव सुदाई सिन्धुतगारों ने व्यवस्था को कायम रखा। चौप न्ति सानक दम्भा न शहर पर पुन बन्जा कर लिया और दमनको सुगई

२ पट्टान सीठारामभ्य— हिस्ट्री ऑफ़ दी नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इण्डिया

सिद्धमत्तगारो को मशीनगनों से भूषायी कर दिया। इस दौर में एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि एक गढ़वासी प्लेटून ने अपने मुस्लिम भेगयामिया के ऊपर गोली चमाने से इनकार कर दिया।

७३ पहली गोलमेज परिषद (नवम्बर दिसम्बर १९३०)

प्रतिनिधि—द्वय सविनय धरणा धारण करने और एक ही धारा पर उपर मरकार ने भारत के नए सविधान के सिद्धान्तों पर विचार करने के लिए एक गोमन्त्र परिषद का आयोजन किया। परिषद २२ नवम्बर १९३० को मॉट जम्म प्रांश सभ में भारम्भ हुई। सम्राट ने उसका उद्घाटन किया। कुल प्रतिनिधि ८६ थे। इनमें ५७ प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत का प्रतिनिधित्व करते थे तथा १६ प्रतिनिधि भारतीय राज्यों से गए थे। बाकी १६ व्यक्ति ब्रिटिश सभ के सभ्य थे और वे इंग्लैंड के लीगे राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व करते थे। भारतीय प्रतिनिधि वायसराय के चुने हुए थे और वे विभिन्न जातियों वगैरे और हिन्दु व लिए बोन। मॉट जम्म प्रासाद में राजा और मन्त्र मिला मन्त्रमान हिन्दू और ईसाई भूमिायों श्रमिक सभा और वाणिज्य मण्डलों के प्रवक्ता एकत्रित हुए तबिन भारतमाता वहाँ नहीं थी। वायस जिसके नेता जेल में पड़े हुए ब्रिटिश नीररणाही के आयिष्य का मुझ भोग रहें थे वह इस परिषद् में बिलकुल अनुपस्थित थी।

परिषद का कार्य—प्रधान मन्त्रा मन्त्रालय ने उन सिद्धान्तों का निरूपण किया जिनके आधार पर विचार विनियम किया जाना था। नया सविधान मध्य में हीन का था। ब्रिटिश सरकार एम अनुविहित रक्षा कवचा के साथ जिनकी सम्मरणान्त की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गन्धर्व रस्त ला गाए प्रा. नों में और के द म उत्तरायी शासन का पुन स्थापना करने के लिए तयार थी। उन्होंने इस बात का बिलकुल उल्लेख नहीं किया कि यह सत्रमण्डान कब तक रहेगा और रक्षा कवचो की बात स्पष्टत वास्तविक शक्ति को ब्रिटिश हाथों में रखने की एक चाल थी। मि० जयकर ने और सर तजब्रहादुर सभू ने भीपनिवशिक स्वराज्य का प्रश्न उठाया। मि० जयकर कहा था यदि आप भारत को आज भीपनिवशिक स्वराज्य दे द तो स्वतन्त्रता की आवाज अपने आप खत्म हो जाएगी। <

सभ उत्तरदायी शासन रक्षा कवच—लेकिन मन्त्र इतना आग बदन के लिए तयार नहीं थे। सभ में सिद्धान्तों को साधारणतः स्वीकार कर लिया गया। राजाओं तक ने एक अखिल भारतीय सभ के विचार का समर्थन किया। सभू ने राजाओं की इस नीति का स्वागत किया और आज्ञा प्रकट की कि वे हमारे गविधान में सुस्विरता रखने वाले तत्व सिद्ध होंगे। मि. ब्रिन्ना और सर मोहम्मद शफी ने जो मुस्लिम

१ एवं० एन० ब्रैलसफोर्ड— सजेक्ट इण्डिया ' पृ ४६।

२ रूपसण्ड द्वारा उद्धृत— इण्डिया ए रिस्टेटमेन्ट पृ० १३६।

साथ क दो पक्षा का प्रतिनिधित्व करने थे हम विषय पर सहमति प्राप्त है। दूसरे अंग्रेजों के लगे न भी अन्धकार विरोध नही किया।

निर्वाचक मण्डलों की तैयारी—द्वितीय साम्प्रदायिकता का समस्या परिषद की अन्तर्गतता का कारण सिद्ध हुई। अन्तर्गतता उपसमिति में पुरानी लड़ाई पुनः उठी गई। युनियन भी बड़ी ही घोर परिणाम भी बड़ा रहा। लेकिन हम बार एक नई चीज देखने का मित्र। द्वाितीय वर्गों की धार में २० अम्बरकर न पृथक निर्वाचक मण्डलों की मांग की। जहाँ हिन्दू प्रतिनिधियों ने इस बात की बकालत की कि सब जातियाँ का भारत का साथ साथ सेवा करने का अवसर मिलना चाहिए मुस्लिम प्रतिनिधियों ने पृथक निर्वाचन मण्डलों पर बल दिया। मीराना मोहम्मद अली ने साम्प्रदायिकता के हाथों को मजबूत किया। उन्होंने कहा मैं ममान आकार के दो रायरो से सम्बन्ध रखता हूँ लेकिन उनका के एक ही है एक भारत है और दूसरा मुस्लिम विरुद्ध। हम राष्ट्रवादी नहीं अपितु प्रति राष्ट्रवादी हैं।^१ निर्वाचक मण्डलों की लड़ाई अनिश्चित समाप्त हुई। अन्तर्गतता मापण में प्रधान मंत्री मरदानलड ने कहा कि ब्रिटिश सरकार सच्चीय योजना का—प्रधान में पुण उत्तरदायी भावना और कर्म में सचित रहा। स्वयं से ही उनकी प्राणिक पुनः स्थापना की स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत है। जहाँ तक साम्प्रदायिकता का विचार का सम्बन्ध है हम उहाँ जातियाँ के अन्तर्गतता में ही समझौता करने के लिए छान्द किया।

द्वितीय गोलमेज—यही ने चीजें हैं ब्रिटेन उपनिषद ने पहली गोलमेज परिषद को दृष्टिगत मन्त्रणा का नाम दिया है। दूसरा धार मुनाप दास ने गोलमेज परिषद के अन्तर्गत प्रति भारत के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का सत्यत निम्नलिखित माँगों में व्यक्त किया है परिषद ने भारत को दाकड़ों गोलमेज रक्षा-वचन और सभ्य प्रदान की। गोलमेज का अन्तर्गतता वनाज के लिए उत्तरदायित्व की मन्तर में उपलब्ध लिया गया।^२

७४ गांधी इतिहास समझौता और दूसरी गोलमेज परिषद

प्राप्त का सत्यापन प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार की उत्सुकता—पहली गोलमेज परिषद में कायम की अनुपस्थिति से ब्रिटिश सरकार स्पष्ट परवान दी। कायम के बिना सम्पूर्ण परिषद की स्थिति बिना दूह वाली वारात के न्यून ही रही थी। कायम के साथ समझौते का भाग प्राप्त करने के लिए २५ जून १९२१ को महात्मा गांधी और कायसमिति के १६ सदस्यों का बिना मत वाराणार से मुक्त कर दिया गया। गांधी स्थापकों सभ्य और जयकर के प्रमत्तो के अन्तर्गत रूप महात्मा गांधी और साह इतिहास के बीच एक सम्मनन हुआ जो १७ फरवरी से शुरू हुआ के अन्तर्गत चरम परिणाम इतिहास में गांधी इतिहास समझौते के नाम से प्रख्यात है।

१ कुरानलड— इतिहास प्राप्त—१९२३-१९२५ पृ० १२१।

२ मुनाप बोध— इतिहास इतिहास, पृ० २७५।

गांधी, विन समझते की शर्तें—गांधी विन समझते पर ५ मार्च १९३१ को हस्ताक्षर हुए। यह समझौता कांग्रेस का गह्वर प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार की उत्तमता को प्रकट करता था। समझौते की शर्तों के अनुसार वायसराय (१) रिमा स्मक अधिसूचियों के विद्योपकरणों के विषय में गवर्नर जनरल का राजनयिक की या का छादन, (२) जस्त की हुई सम्पत्ति को वापस करे (३) सम्पत्ति के वापस निवास करने वाले लोगों को नमक निशुल्क तयार करने या परमिशन करने का प्राण देने और (४) गवर्नर अफीम व किन्हीं वस्तुओं की दूकानों पर शान्तिपूर्ण विवेक करने की आज्ञा देने के लिए सहमत हो गए। कांग्रेस ने अपना धारण (१) सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित करने (२) पुनर्गठन की उपायियों की निष्पत्ति प्राप्त करने की अपनी मांग को त्याग देने और (३) भारत के हित में सरकारों का रक्षा करने के लिए उत्तरदायित्व के आधार पर दूकानों गोलमेज परिषद् में भाग लेने का वचन दिया।

समझौते के ऊपर प्रतिक्रिया—समझौते के सम्बन्ध में के एम. मुन्शी ने कहा था कि यह भारतीय इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। परन्तु यह दृष्टिकोण का प्रसन्न दक्षिण पक्ष का था। कांग्रेस का वायसराय समझौते से घोर असन्तुष्ट था। उसकी दृष्टि में यह समझौता साम्राज्यवाद के निरन्तर अन्त में समाप्त होना था। जवाहरलाल नेहरू को रक्षा वचनों से सम्बन्धित धारा के कारण जिम्मा वह स्वतन्त्रता के साथ बेर केर में समझौते से सम्बन्धित आघात पहुंचा। एच. मुन्शी का यह वचन सच था युक्तियुक्त है कि साम्राज्यवाद ने भारतीय राष्ट्रवाद के साथ सखि तो अन्त में नरिन्त अन्त की शर्तों के ऊपर। समझौते के सम्बन्ध में उपवादियों का उक्त कारण सचवा निराधार नही था। यह बात टाइम्स की इस टिप्पणी से भी पुष्ट होती है जिसमें कहा गया था कि इस प्रकार की विजय किन्हीं वायसराय का बहुत कम मिली है। अतः स्पष्ट है कि जहां कांग्रेस के दक्षिण-पक्ष ने गांधी विन समझौते को अपनी विजय समझा वहां वस्तुतः वह ब्रिटिश कूटनीति की विजय थी। भारतीय युवक सरकार भगतसिंह और उनके साथियों की फाँसी के ऊपर बहुत क्रुद्ध हुए। महात्मा गांधी उनका लिए सरकार से क्षमा प्राप्त करने में असफल रहे। इसलिए वह भी मुवक्कल के रोष काजन बने। कुछ स्थानों पर उन्हें जाने का आदेश दिया गया।

कांग्रेस का दूसरी गोलमेज परिषद में योगदान—कराची अधिवेशन में एक प्रतिनिधि ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि समझौते के लिए महात्मा गांधी का खोड कर दिया कोई व्यक्ति उत्तरदायी होता तो उसे समुद्र में फेंक दिया जाता। इस सारे विरोध के बावजूद भी महात्मा गांधी के प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा दक्षिण-पक्षियों के बहुमत के कारण २५ मार्च १९३१ को कराची कांग्रेस के अधिवेशन पर इस समझौते का स्वीकार कर लिया गया। फलतः दूसरी गोलमेज परिषद में जो ७ सितम्बर १९३१ को शुरू हुई कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने भाग लिया। पंचमदनमोहन मालवीय और भीमसेन सराजिनी नायक अपनी व्यक्तिगत क्षमता से परिषद् में सम्मिलित हुए।

परिषद् शुरू होने के कुछ ही समय पूर्व ब्रिटिश राजनीतिक एगमच में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन ही गया। अग्रेज सरकार अनटस्थ हो गई। रमज भवठानल्ल भव भी प्रधानमंत्री थे लेकिन उनका दल ने उनको बर्नाम कर दिया था। इस समय वह राष्ट्रीय सरकार के प्रधान थे और अनुत्तर दल के उत्तर दल का हाथ उनको पाठ पर था। सर वेजवड के स्थान पर सर समुपन हार को पक टारी थे, भारत मात्रा नियुक्त हुए थे।

साम्प्रदायिक गतिरोध घनिष्ठ हो रहता है—दूसरी गोलमेघ परिषद में महात्मा गांधी कांग्रेस के एकमात्र सरकारी प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे लेकिन उनकी उपस्थिति भी परिषद को सफल नही बना सकी। यह ठीक है कि नए सचिवालय के कुछ व्योरे नियुक्त कर निय गए। सचीव न्यायपालिका का दावा सचीव विधानमण्डल का सगठन और भारतीय राज्यों के अखिल भारतीय सच में प्रवेश के सम्बद्ध भाषि बानें निश्चित हो गई। महात्मा गांधी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप का अपने मार्गिक मापण में प्रतिपादन किया और सुरक्षा बलों के वार्षिक मामलों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण सहित घोषितवर्गिक स्वराज्य की मांग की। लेकिन इस मांग का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। एक अलावा साम्प्रदायिक गतिराध घनिष्ठ हो गया। उन्होंने अल्पसङ्ख्यक वर्गों के साथ समझौते की बातचीत को अखिल साम्प्रदायिक प्रश्न का कोई हल नहीं निकल सका। १ दिसम्बर १९३१ को परिषद् विफल हो गई।

७५ पुन सविनय अवज्ञा आन्दोलन (१९३२-३४)

सविनय का अन्त—महात्मा गांधी अगस्त में साली हाथों वापस आ गए, यद्यपि उन्होंने उस बात का दावा किया कि मैं बर्ना हुआ को लेकर लौट रहा हूँ। उनकी अनुपस्थिति में भारत में कांग्रेस और सरकार का अस्थिरता समाप्त होने लगा था। सरकार ने कांग्रेस के ऊपर यह दोषारोपण लगाया कि उसने यू० पी० में किसानों को बर्ना करने के लिए उत्साहित किया है और इस बात की शिकायत की कि अखिलभारत सीमाश्रित में सान अनुत्तर गणधार खाँ के नृवृत्त में मुदाई स्थितगार सविनय अवज्ञा का पुन शुरू करने की तयारी कर रहे हैं। इसके विपरीत कांग्रेस ने यह आशय किया कि नोकरशाही ने गांधी इंदिरा समझौते की सब शर्तों का उल्लंघन किया है और पुलिस का दमन चक्र पूर्ववत् जारी है।

साह सविनय की बढोरे नीति—नाथ इंदिरा के उत्तराधिकारी नाथ सविनय बढोरे नीति के विरोधी थे। उन्होंने भारत राष्ट्र की नववैतना अर्थ करने के लिए कमर बन्ना लो थी। अगस्त की राष्ट्रीय सरकार के दक्षिण पक्ष में भी कांग्रेस को जो सविनय के अनुसार 'अकल्पित सरकार' होने का सविनय करती थी कुचल दालने का निश्चय किया। रोम से आने वाली एक नूठी प्रम रिपोर्ट स जिसमें कहा गया था कि महात्मा गांधी का सविनय अवज्ञा की पुन प्रारम्भ करने का इरादा है, सरकार

को बहाना मिल गया। २८ नवम्बर १९३१ को जब महात्मा गांधी बम्बई में उतरे जवाहरलाल नेहरू रान बंधु और दूसरे छोटे-बड़े नेता पहले ही जल में बंध कर लिए गए थे। महात्मा गांधी ने बिना किसी शर्त का समारोह किए व्यक्तिगत स एन इटरनू के लिए प्रायता की एकिन व्यक्तिगत ने दग प्रायता का घोषणा कर दिया। काग्रस कायसमिति ने सविनय अवज्ञा को पुरान तरीके से पुन शुभ करने का निश्चय करके इस चीज का जवाब दिया। ३ जनवरी १९३२ का महात्मा गांधी ने राष्ट्र का एक प्रतिनिधि परीक्षा का सामना करने के लिए आह्वान किया।

आन्दोलन और दमन—सरकार ने सुरत कायदा की। ४ जनवरी को सरदार पटेल व महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिए गए और दरवारा जेल में नजरबंद कर दिए गए। अध्यापकों के समूह ने नौकरशाही को विरुद्ध प्रतिनिधियों में सज्जित कर दिया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी सघष के पुन प्रारम्भ होने का संकेत-चिह्न था। जवाहरलाल नेहरू के शर्तों में इस बार ब्रिटिश सरकार का जो प्रतिरोध किया गया वह १९३० से महान था। उकिन उस समय बीन गया आन्दोलन का प्रतिनिधि घटती गई। तथापि आन्दोलन १९ मई १९३३ तक चलता रहा जब तक कि वह महात्मा गांधी द्वारा बारह सप्ताह के लिए स्थगित न कर दिया गया। सरकार ने महात्मा गांधी का छाड़ तो ८ मई को ही दिया था उकिन इस समय उनका सामने सबसे बड़ी समस्या अंग्रेजों की और समीपगत साम्प्रदायिक पचाट के द्वारा हिंदू जातिक सम्माध्य विघटन की थी। १४ जलाई १९ ३ को जन आन्दोलन रोक दिया गया तथापि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा एक बंध तक चलती रही। जनता का उत्साह निश्चित रूप से कम हो गया था और नतिक पतन का चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो रहे थे। ७ अप्रैल १९३४ को महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा समाप्त कर दी। उनके सेनापतित्व के ऊपर पन आक्षेप हुए। सुभाष बोस और बी० जी० पटल ने जो उस समय यूरोप में थे सविनय अवज्ञा के स्थान को पराजय की स्वीकारोक्ति दलाया और कहा कि एक राजनीतिक नेता के रूप में महात्मा गांधी असफल सिद्ध हुए हैं।^१ जवाहरलाल नेहरू भी रूठे हुए और उन्होंने काग्रस नेतृत्व की कटु आलोचना की।

यह स्मरण है कि इस बार आन्दोलन का दमन करने में सरकार ने अश्रुत पूव निदयता से काम लिया। चर्चित तक ने कहा था कि सरकार की दमन नीति गदर के बाद से इस बार सबसे कठोर रही थी। काग्रस और उसके सब सहायक संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया व उसकी समस्त सम्पत्ति वक के हिसाब कित्ताब तथा कार्यालयों पर अधिकार कर लिया गया। सरकार ने राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों के मह पर ताला लगा दिया और काग्रस को डाकखाने के उपयोग से वंचित कर दिया। काग्रस को हरकारों द्वारा डाक भेजने और गुप्त समाचार पत्र निकालने के भूमिगत तरीके को अपनाना पडा। विद्रोही स्थानों में दण्ड पुलिस और ड्रूपों को

तनात कर दिया गया। सम्पत्ति की जल्दी और सामूहिक जमाने तिल्य के कायत्रम हो गय।

७६ मकडानेल्ड (साम्प्रदायिक) पचाट और पूना-समझौता

पचाट की गृष्ठ घूमि—यह स्मत्तव्य है कि गोलमेज परिपद् के प्रथम दो अधिवेशन साम्प्रदायिक समस्या व गतिरोध को दूर कन्न मे असमय रहे थे। एडवड थामसन के अनुसार यह मुम्मत समझौते का तीव्र विरोध करन वान मुसलमानो तथा कुछ विशेष अलोकत-त्रवाती ब्रिटिश राजनीतिक क्षत्रो की अधि सधि का प्रमाण था।^१ तथापि द्वितीय गालमज परिपद् के अंत में मकडानेल्ड ने प्रतिनिधियो स कह लिया था कि साम्प्रदायिक समस्या का समाधान मृश्यत तो सम्बद्ध जातियो के ही ऊपर निर्भर है लकिन ब्रिटिश सरकार इस बात के लिये कृतसकल्प है कि वह बाधा भी उत्पत्ति के माग म बाधक नही बनन दी जाळगी। अहोन इस बात की पापणा की थी कि यदि कोई सबसम्मत हल सामन नही आया तो ब्रिटिश सरकार की अधनी कामचलाऊ योजना लागू करनी पडेगी।^२ साम्प्रदायिक अथवा मकडानेल्ड पचाट जो ८ अगस्त १९३२ को प्रकाशित हुआ इसी का परिणाम था। इसके साथ ही साथ यह भी घोषणा कर दी गई थी कि यदि सरकार को यह विश्वास हा जाएगा कि विभिन्न सम्प्रदायो को एक वकल्पक योजना स्वीकार है तो वह ब्रिटिश ससद स सिफारिश करगी कि साम्प्रदायिक पचाट म रखी गई योजना के बदले में नई योजना स्वीकार कर ली जाए।^३

पचाट की शर्तें—पचाट ने विशेष हितों और अल्पसंख्यक वर्गों के लिये और अगान व पजाब में मुसलमानों के लिये यद्यपि वे इन प्रान्तों में जनसंख्या की दृष्टि से बहुमत में थे पृथक निर्वाचन पद्धति की पूर्ववत् कायम रखा। पचाट म दो अय विलक्षणताएँ भी थी। पश्चिमात्तर सीमाप्रांत के विधान-मण्डल के सिवाय प्रत्येक प्रांतीय विधान मण्डल मे ३ प्रतिशत स्थान जिन्हें विभिन्न सम्प्रदायों में बांट लिया गया था स्त्रियों के लिये सुरक्षित रखे गये। पचाट में 'गुरुमार' भी था यद्यपि उसे अत्यंत विषम रीति से वितरित किया गया था। लकिन इस योजना की सबसे घातक विशेषता यह थी कि दलित वर्गों को एक विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में माय किया गया और उन्हें पृथक निर्वाचन पद्धति द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनन का व साधारण निर्वाचन कानों में एक अतिरिक्त मत का अधिकार दिया गया। साम्प्रदायिक पचाट भारतीय राष्ट्रवाद के बल को निबल करने के लिये भारत के सम्प्रदायगत व वर्गगत मतभेदों को उत्तजित करने की परम्परागत ब्रिटिश नीति का अनुकूल्य हो था। महता और पटवधन ने सिखा है, भारत में साम्प्रदायिक विचारधाराओं का—

१ डा० राजेन्द्रमसाद— सचिद्व भारत पृ० २०७।

२ वही पृ० २०८-२०९।

सरकार राष्ट्रीय भावना की वृद्धि के साधन-साधन हुआ है। १९०६ में निर्वाचक मण्डल को चार साम्प्रदायिक और बग निर्वाचक मण्डलों में विभाजित किया गया। १९१६ में सभे दस भागों में बँट दिया गया और १९३५ में यह संख्या १७ तक बढ़ा दी गई है। यह बात महत्वपूर्ण है कि १९१६ में साम्प्रदायिकता का गूँथपात इसलिए किया गया क्योंकि दो-एक समय सहमति थे। १९३५ में साम्प्रदायिकता को इसलिए बढ़ाया गया क्योंकि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे नहीं हो गए।^१

स्पष्ट है कि फूट डालो और राज करो की पुरानी नीति जिसकी एन्ड्रस्टन पन्थाम और मन्नाफ के नामों से जोर नार म पीरणा की जाती थी अब गूँथपतर प्रादुर्भाव की संज्ञा करने के लिए विद्यमान हो गई थी। ब्रिटिश कूटनीति ने निष्पक्षता का प्रतिबन्ध करना सीख लिया था लेकिन इस प्रतिबन्ध का बोझा भी साफ दिखाई देने लगा था।

ब्रिटिश विधानसभा का अग्रपुत्र प्रारम्भ— निरोग' ब्रिटिश सरकार अन्तःसम्पर्क वर्गों और विधायक सभे मुसलमानों के ऊपर बढ़त ही घृणानु थी। पञ्जाब में हिन्दुओं के साथ घृणा प्रत्यापन किया गया था। पञ्जाब और बंगाल में हिन्दू अल्पमत में थे वे इस प्रत्यापन के सबसे ज्यादा शिकार हुए। ब्रिटिश विधानसभा के कुछ उपाहरण यहाँ दिए जा सकते हैं। १९३१ की जनगणना के अनुसार बंगाल में समस्तमान कुल जनसंख्या के ४५% और हिन्दू ४५% प्रतिशत थे। लेकिन प्रांतीय विधान मण्डल के १५० स्थानों में से ११९ स्थान मुसलमानों को और ८० स्थान हिन्दुओं को दिए गए। यूरोपीय कुल जनसंख्या के ०.५% ही थे लेकिन फिर भी उन्हें २५ स्थान देने के लिए दोनों जातियों को अपना प्राप्य प्रतिनिधित्व उत्सव करना पड़ा परन्तु विलक्षण बात यह है कि हिन्दुओं से जिन उत्सव की माँग की गई वह अनुपात के दृष्टि से मुसलमानों से तिगना था। पञ्जाब में अल्पसंख्यक वर्गों (हिन्दुओं और सिखों) को गुहमार जमी माप के अनुसार नहीं दिया गया जिस माप के अनुसार वह समस्तमानों को उन प्रांतों में वहाँ के अल्पमत में थे दिया गया था। गुहमार' के मामले में ब्रिटिश निष्पक्षता ने अनोखी रीति से काम किया। पञ्जाब में हिन्दू और सिख तो ब्रिटिश सरकार की घृणासे से बचिन रहे लेकिन भारतीय ईसाइयों धारण भारतीयों और यूरोपियनों को ब्रिटिश सरकार का भूरिषा अनुग्रह प्राप्त हुआ। उन्हें वामा ३००/ ३०००/ और २५०००/ नुस्कार मिला। डा राजेन्द्र प्रसाद ने व्यय के रूप में लिखा है ब्रिटिश सरकार अवश्य ही इस मामले में सचवा सदासीन थी।^२

बांग्ला का दृष्टिकोण— भारत के राष्ट्रवादी लोकमत ने जहाँ साम्प्रदायिक पञ्जाब का साधारण सञ्चन किया कांग्रेस ने समने प्रति कुछ विचित्र-सा दृष्टिकोण

१ मेहता और पटवर्धन— दी कम्बुजम ट्रायगल' पृ १०१।

२ वही पृ ७३

३ राजेन्द्र प्रसाद— 'संश्लिष्ट भारत' पृ ११२।

सपनाया । वाय समिति ने निम्न किया कि कांग्रेस को न हो इसे स्वीकार ही करना चाहिए और न प्रसोकार ही यद्यपि अधिकांश सदस्यों के मत में "पचाट सभा" तिरस्कार-योग्य था । १ पंडित मानवीय और एम० एस० अणु इस टापाडोल इन्डि-काण से प्रसन्न हुए और उन्होंने पचाट के विरुद्ध लड़ाई जारी रखने के लिए बीएस राष्ट्रवादी दल का निर्माण किया ।

गांधी जी का उपवास और पूना समझौता—लेकिन पचाट के दलित वर्गों से सम्बन्ध रखने वाला उपवास महात्मा गांधी के लिए असह्य था । इससे उन्हें मर्मोत्पन्न पीड़ा पहुंचा और उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर हिन्दू जाति का विघटन करने की इस अशुभ चपटा को निष्फल करने का निश्चय किया । जिस समय पचाट प्रकाशित हुआ यह जेल में था उन्होंने ध्यानरत मनस्थान करने का निश्चय किया । २० सितम्बर १९२३ को महात्मा गांधी का यह ऐतिहासिक उपवास प्रारम्भ हुआ । डा० अम्बेडकर ने उस राजनीतिक घटना बताया और बहनों ने उसकी आलोचना करते हुए कहा कि यह वन प्रयत्न का तरीका है । लेकिन एम उपवास का मनोवाधिन फल हुआ एमन हिन्दू जाति का मनोमदन करके रख दिया । पंडित मानवीय राजद्र प्रसाद और एम० एम० राजा के प्रदर्शनों ने फनस्वरूप एक समझौता मूत्र तपार किया गया जिन महात्मा गांधी ने सह-ताप स्वीकार किया और जिस पर पापे मन से डा० अम्बेडकर ने भी हस्ताक्षर कर दिए । एम सूत्र के अनुसार हरिजनों यह शब्द महात्मा गांधी ने दलित वर्गों के नियमों का को अहमदनगर पचाट द्वारा दिए गए स्थानों में भी अधिक स्थान दिये गये । लेकिन एम स्थानों का निर्वाचन दो स्तरों में होना निश्चित हुआ अर्थात् प्रारम्भिक निर्वाचन में प्रदूत पृथक निर्वाचन मण्डल के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिये चार प्रत्यासी चुन सकित अन्तिम निर्वाचन में सबकु हिन्दू और हरिजन सम्मिलित रूप से मतदान दें । इसके अनायासन आधारण स्थानों के लिये आ हरिजनों के लिए सुरक्षित नहीं रखा गये व हरिजनों को निवाचन में एक प्रतिरिक्त मत दिया गया । यह समझौता जो पूना समझौते के नाम से प्रख्यात है २६ सितम्बर १९३२ को अमोक्त किया गया और उसी दिन महात्मा गांधी ने अपना उपवास साटा ।

७७ तीसरा गोममेख परिषद

परिषद् का प्रतिगापी स्वस्व्य—गोममेख परिषद् का तीसरा और अन्तिम अधिवेशन नवम्बर, १९३२ में शुरू हुआ और वष समाप्त होने के कुछ दिनों पूर्व समाप्त हुआ । अधिकांश दल ने परिषद् से अपना सहयोग सौंप लिया था । भारत का प्रति निश्चय मट्टर राजभवनों ने किया था । फलतः यह अधिवेशन प्रतिगापी सत्त्वों की पूरा अधोमता में सम्पन्न हुआ । भारत के नए सविधान के सम्बन्ध में मान्य मोदी बाबू को

जिस निर्वाचन पद्धति को निर्धारित किया गया वह पृथक् निर्वाचन-पद्धति और अनुक्त निर्वाचन पद्धति का बोध का माग था। इस सम्भोधने ने दलित वर्गों को हिन्दू जाति से अलग होने से राब दिया।

गोमज परिषद के तीसरे अधिवेशन ने उसके प्रारम्भिक अधिवेशनों का काम को परा कर दिया। मार्च १९३३ में ब्रिटिश सरकार ने एक बल-युक्त प्रकाशित किया जिसमें नए सविधान के प्रस्ताव सम्बन्ध था। इन प्रस्तावों का एक समुक्त प्रवर समिति ने निरीक्षण किया और उन्हें ससने ने १९३५ का भारत सरकार अधिनियम के रूप में पास किया।



अध्याय ११

१९३५ का भारत सरकार अधिनियम

७८ मुख्य विशेषताएँ

प्रतिपामी कानून—प्रा० कूपलण्ड ने १९३५ के अधिनियम को रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक महान सफलता ^१ बतलाया है। उनके मन में उसने भारत के भाग्य का स्थानांतरण अण्डों के हाथों से भारतीयों के हाथों में सम्भव कर दिया। ^२ तथापि कोई भारतीय इस दृष्टिकोण की कठिनता से तो स्वीकार कर सकता है। निरक्षर ब्रिटिश टाकाकारों तक न इस बात का नोट किया है कि अधिनियम में सामीनियन स्टेट्स के लक्ष्य की प्राप्ति के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की गई थी। ^३ भारत के लगभग सभी राजनीतिक दलों ने इस आधार पर अधिनियम का तिरस्कार किया कि उसने सम्पूर्ण वास्तविक शक्ति अण्डों के हाथों में रखी और वह एज प्रतिपामी कानून था। ^४ जवाहरलाल नेहरू ने उस 'दासता का एक चाट्टर' बताया। उनके मत में अधिनियम ने ब्रिटिश सत्ता से संचालित हुकूमती ढाँच में हस्तगत करने या सुधार करने के लिए भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को कोई रास्ता नहीं छोड़ा था। इस एक से ब्रिटिश सरकार की रजवाड़ों ने जमींदारों से घोर हिन्दुस्तान की दूसरी प्रतिभ्यावादी जमानों में दोस्ती और भी ज्यादा मजबूत हो गई। पृथक निर्वाचन पद्धति का इससे बढ़ावा दिया गया और उस तरह भ्रमण होन वाली प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। इस एक ने ब्रिटिश व्यापार उद्योग बैंकिंग और जहाजी व्यापार को जिनका पड़ने से ही घाघिपत्व था भ्रम और जमादा मुँह कर दिया। इस एक में ऐसी धाराएँ साफ तौर पर रख दी गई कि उनकी इस हैसियत पर राक या पावन्शियाँ बिलकुल नहीं लगाई जा सकती थीं। इस कानून के मुताबिक भारतीय राजस्व फौज और विदेशी नीति के सारे मामलों में पूरा नियंत्रण ब्रिटिश हाथों में ज्यों का-स्थो बना रहा। इस विधान ने वामसराय को पढ़ने से वहीं ज्यादा ताकत सौंप दी। ^५ गवर्नर जनरल और प्रान्तीय गवर्नरों की स्वेच्छाकारी शक्तिपूर्ण पूर्ववत् प्रसन्न बनी रही।

१ कूपलण्ड— ए रिस्ट्रेटमेंट पृ० १५४।

२ कूपलण्ड— दी इण्डियन प्रान्सेम १८३३ १९३५ पृ० १५७।

३ मि० एटली न कामन सभा के एक बार विवाद में उस आधार पर अधिनियम का विरोध किया था। दसिए कीप— ए कन्सोर्टियुगनल हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० ४७०।

४ जवाहरलाल नेहरू— हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० ४२५।

दायी मंत्रियों की हत्या का प्रतिफलण कर गये। गरदिया विपक्षों के सम्बन्ध में वे मंत्रियों के मंगला लिए बिना भी काम कर सकते थे। दूसरे विपक्षों के सम्बन्ध में उन्हे यह आशा ही जाती थी कि वे साधारण परिस्थितियों में मंत्रियों की मंगला पर काम करेंगे। लेकिन यदि वे समझते कि प्रमुख विषय में उनका कोई विशेष उत्तर दायित्व घन्तघस्त है तो उस स्थिति में वे अपने विद्यार्थिभार का प्रयोग कर सकते थे। वे विशेष उत्तरदायित्व सम्बन्ध में निम्नलिखित थे—(१) भारतवर्ष (प्रथम गवर्नर की स्थिति में प्रान्त) की शान्ति मन करन वाला मनरों का निवारण (२) प्रथमव्यक्त वर्गों के उचित धर्मिहारों और हिनो का रणा करना (३) ताह मवापो क सम्भ्यों के धर्मिहारों का रणा (४) भारतीय राज्यों के धर्मिहारों और शासन की मयाग की रण करना और (५) ब्रिटिश व्यापारिक हिनो के विरुद्ध विभेन का निवारण। इम प्रकार गवर्नर जनरल और गवर्नरों को प्रत्यमध्यक वर्गों भारतीय राज्यों के शासको लोक-सेवकों के सम्भ्यों व ब्रिटिश व्यापारियों का धर्मिहारक बना दिया गया। जब कभी वे समझते कि उत्तरदायी मंत्रियों द्वारा मुझाई गई नीति इनक ऊपर प्रतिकूल प्रभाव डानगी व ध्यक्तागत निगम क अनुमार काम कर सकते थे। इम स्थिति में उन्हे मंत्रियों से मात्रणा तो करनी पडनी थी पर व उनक परामश को मानने क लिए बाध्य नही थे।

रक्षा कवच उत्तरदायी शासन के प्रतिरूप थे और उनका उद्देश्य विदेशी शासन को कायम रखना व यस्त स्वार्थों की रक्षा करना था—यह सा है कि गवर्नर जनरल और गवर्नरों में निम्न विशेष शक्तियाँ और उत्तरदायित्व उत्तरदायी शासन क सवया प्रतिकूल थे। प्रथम उत्तरदायी शासन प्रणाली क अधीन वास्तविक शक्ति मंत्रियों क पास रहती है और य मन्त्री विधानमण्डल क प्रति उत्तरदायी होते हैं। १९३५ क अधिनियम क अधीन यका उपबन्ध नहीं किया गया। उन्हे गवर्नर जनरल प्रथम प्राप्नों क गवर्नरों को वधानिक शासक नहीं बनाया। इसक विपरीत रक्षा कवचों ने उन्हे स्वैच्छाकारी बना दिया। इन रक्षा कवचों का सद्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी का प्रयोजन बनाना तथा उनके पृष्ठापोषकों प्रतिगामी तत्त्वों व यस्त स्वार्थों को प्रबलित करना था। उन्होंने प्रसली ताकत धर्मजों क हाथों में रहने दी और भारतीय जनता के धुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में बहुत कम शक्ति छोड़ी। दूसरे धर्मो म के प्रगति और लोकतन्त्र के परों में देखियाँ थे।

असिल भारतीय सध

८० प्रस्तावित सध

भारतीय लोकमत के प्रत्येक वर्ग द्वारा तिरस्कृत—जसा कि हम ऊपर देख चुके हैं १९२५ के अधिनियम ने एक सधीय सविधान की योजना प्रदान की। उसने ब्रिटिश भारत क प्राप्नों और भारतीय राज्यों की एक निश्चित सख्या के मिसने से

बनने वाले एक प्रखिल भारतीय सभ की स्थापना का प्रस्ताव किया। भारतीय लोकमत इस प्रकार के सभवाद के विरुद्ध नहीं था। इनके विपरीत साधारणतः यह अनुभव किया जाता था कि भारत जिस एक विशाल उप महाद्वीप में जहाँ भाषा सस्कृति तथा प्रायिक परिस्थितियों की पर्याप्त विभिन्नताएँ विद्यमान हों, सधोय शासन प्रणाली स्वाम्भाविक है। लेकिन १९३५ के अधिनियम के अधीन प्रस्तावित सभाय मात्रा भारतीय लोकमत के विरुद्ध भी उल्लाह पदा करने में सफल नहीं हुई। चारों ओर में उसका तिरस्कार हुआ और इसके पूर्व कि कायस्थ में उसका परीक्षा की जाती वह समाप्त हो गई।' कांग्रेस ने उसका समूल रूप से विरोध किया। मुस्लिम लीग ने कहा कि अधिनियम का सधोय भाग, 'मूलतः खराब और पूणतः अस्वीकार्य था। और ता और दोगे रजवाड़ों तक का जिन्हें कि विशेषाधिकारों से युक्त स्थिति प्रदान की गई थी, वह उल्लाह ठण्ठा पड़ गया जो उहाँन एक समय प्रखिल भारतीय सभ के लिए प्रवृत्त किया था।

सधोय विशेषताएँ—तथापि प्रस्तावित योजना में सभवाद की प्रायमिक विशेषताएँ विद्यमान थीं। सविधान एक निमित्त प्रलेख था जसने सभ और जसके एककों में शक्तिशा का वितरण विशेष रूप से कर दिया था। एक सधोय 'यायालय भी था जिसका कर्तव्य यह देखना था कि केन्द्र स्थायी सरकारें और विधानमण्डल अपनी अपनी मर्यादाओं का उचित रूप से पालन करें। प्रस्तावित भारतीय सभ में कई नियमवाह्य विशेषताएँ भी थीं। उनकी एक विशेषता उक्तकी रचना का प्रक्रिया में ही थी।

सभ के निर्माण की साधारण प्रक्रिया—साधारणतः कोई सभ उन राज्यों के जो पहले स्वतंत्र और प्रमुख-सम्पन्न रहें, एकीकरण से उत्पन्न होता है। ये राज्य कतिपय मामलय उद्देश्यों की सिद्धि के लिए प्राप्त में सुगठित होने हैं। समुक्त राज्य अमेरिका का जन्म इसी प्रकार दो तरह के अतिवर्गों के एकीकरण से हुआ था जिन्होंने पहले पूण प्रमुख शक्ति को हस्तगत कर लिया था। ब्रिटेन और फ्रांस के सभों की रचना भी इस प्रक्रिया के अनुसार हुई। इनके विपरीत भारत में सभ का जन्म उन प्रान्तों की स्वायत्तता देने से होने का था जो एक एकात्मक राज्य के अधीनस्थ विभाग थे। इन स्वायत्त प्रान्तों के साथ व भारतीय राज्य विनये की धृ जा अपने भाग्य की सभ के सामे जाहना पसंद करते।

एकों में कोई एकरूपता नहीं—राज्यों की स्थिति—प्रस्तावित भारतीय सभ का सबसे बुरा पहलू भारतीय राज्यों की दा गई स्थिति था। सभ के एककों में किसी प्रकार की एकरूपता नहीं थी। यदि प्रान्तों में अल्प लोकसंख्यात्मक भागमें प्रणाली प्रचलित थी, तो दली राज्य, जहाँ स्वेच्छाचारी नरें जनता की दासता में रहते थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मित्र थे। इस प्रकार अखिल भारतीय सभ असात लोकसंख्यात्मक प्रान्तों में स्वेच्छाचारी दल से शासित राज्यों का एक अस्वाम्भाविक गठबंधन होने

को था। इस प्रकार की स्थिति और जिगी मशर्तें नहीं पाई जाती। अंग्रेजों के समस्त राज्यों और विदेशी राज्यों के समस्त राज्यों में एक या ही जागत्य प्रणाली प्रचलित है।

संघीय सरकार की शक्तियाँ समस्त राज्यों के सम्बन्ध में समान होती हैं—जैसे जहाँ ब्रिटिश भारत के प्रांत प्रशासनिक व्यवस्था की एक व्यवस्था को भारतीय राज्यों का प्रवेश करने का शक्ति के लिए एक उच्च स्तर की बात ता भी निश्चय परत को धरि उनके राज्यों के भीतर मध्याय सरकार जिन शक्तियाँ का उपयोग करेंगी। समस्त प्रांतों के सम्बन्ध में संघीय सरकार की शक्तियाँ एक ही रीति गई थी किन्तु प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में वे उसके प्रांत द्वारा प्रदत्त प्रवेश-मंत्र पर निर्भर करने को थी। यह एक दूरी सम्बन्ध प्रणाली था।

एक ही की कानूनी समानता—राज्यों की संघीय विधानमण्डल में अनुचित रूप से नारी प्रतिनिधित्व दे दिया गया था। प्रतिशत स्तर में संघीय विधानमण्डल के उच्च स्तर में अथवा राज्यों की समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है और इस प्रकार उनकी कानूनी समानता की रक्षा की जाती है। प्रस्तावित भारतीय रूप में एक ही की कानूनी समानता प्राप्त नहीं होने का थी। उच्च स्तर पर कानूनी समानता के अनुपात में प्रतिनिधित्व मिलने को था परन्तु राज्यों के सम्बन्ध में यह बात नहीं थी।

राज्यों की भारावनन प्रतिनिधित्व के शासकों द्वारा उच्च मन्त्रियत—राज्यों की पर्याप्त गुणवत्ता दिया गया। राज्यों की नामरत्न भारत की उच्च जनसंख्या की केवल २ / थी। किन्तु उच्च संघीय विधान मण्डल के निम्न स्तर में ३ / और उच्च स्तर में ४०% स्थापित किए गए। बावजूद समाप्त नहीं हो जाती। राज्यों के प्रतिनिधि नरेशों द्वारा मनानीत हान थे। निम्न स्तर में अपने उन स्थानिका के एजेंटों के रूप में कार्य करते जो स्वयं वायव्य और ब्रिटिश साम्राज्य के अनुशासित दास थे।^१ अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिगामी तत्त्वों के प्रतिनिधियों और राज्यों के ध्यापारियों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर राज्यों का प्रतिनिधित्व संघीय शासन में सम्बन्धित तत्त्वों के विरुद्ध नोन्सन्स के प्रवर्तन को पराजित कर सकता था। सर एम. मुन्ड्रन होर ने ब्रिटिश संसद में बड़े गवर्नरों के दास का बर्णन किया था कि उच्च स्तरियों को नए अधिनियम के अनुसार सत्ता हान से रोकने के लिए प्रत्येक चौरसरी में काम लिया गया था। संघ के भारतीय राज्यों की स्थिति की और विशेष रूप से दृष्टि निक्षेप करते हुए प्रो. कीय ने लिखा है—भारत के इस प्रकार के औचित्य को धत्वीकार करता कठिन है कि संघ ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार में उत्तराधिकारी शासन की स्थापना करने के प्रश्न से बचकर निम्न जाने की कामना से बनाया जा रहा था।^२ उन्होंने निम्न निष्कर्ष है कि—राज्यों और ब्रिटिश भारत के प्रतिगामी

१ एथ एन ब्रुसफोर्ड—सिक्स्ट इण्डिया पृ० ५०।

२ ए. पी. कीय—एन. राज्यात्मता इन्स्टीट्यूट इण्डिया' पृ० ४७४।

सर्वो द्वारा सम्पित गवर्नर जनरल की नियंत्रण शक्ति की प्राप्ति का कारण प्रस्तावित संघ का अमर्यता निश्चितप्राप्त थी ।

संघीय सभा के लिए परोक्ष नियोजन — १८५२ में प्रांतिकारों और राष्ट्रवादी सत्तों के प्रभाव का दम करके के लिए यह भी उपस्थापित किया गया कि संघीय विधान मण्डल के निर्माण के लिए निर्वाचित परामर्श गैरि न और उच्च राज्य के लिए प्रत्येक रीति से है। यह संघीय विधान मण्डल का समझौता करने का एक और सरकारी था । यह ता दम का प्रमुख शक्ति विरहित निष्पक्ष था उसकी विधायी और विधीय सक्षमता वापसराय का विषय गतिविधि और विधि समझ की शक्ति सत्ता के अधीन था न उसका प्रतिनिधित्व स्वरूप साम्प्रदायिक और दम निवाचक मण्डलों से विभाजित था ।

केंद्रीय सरकार प्रांतीय स्वायत्तता में हस्त पर कर सत्ता थी — १८५५ के अधिनियम न प्रांतों की स्वायत्तता प्रांत की और संघीय प्रांतीय व परमर्षी शक्तियों में गतिविधि का विधान रूप में विवरण कर दिया । फिर भी उसमें प्रांतीय क्षेत्र में संघीय सरकार के हस्त क्षेत्र के लिए पर्याप्त रक्षित छोड़ दिए थे । गवर्नर जनरल प्रांतों को उद्घाटन निवारक संघीय क्षेत्रों को पूर्णतः वित्त कर मरना था । पुनः जब ही का गवर्नर अपने प्रांत में सविधान विधान हान की उद्घाटन कर ता प्रांत का सम्पूर्ण प्रशासन सीधे के क्षेत्र सरकार के नियंत्रण में आ गया था । जब कभी प्रांतीय गवर्नर अपने विधान के अधुमार कार्य करने अथवा शक्तिगत नियंत्रण का प्रयोग न त के गवर्नर जनरल की सत्ता के अधिन होते थे । १८५५ प्रांतीय गवर्नर जनरल १८५५ के अधिनियम द्वारा १६ अ के संघीय प्रांतीय गवर्नरों के लिए एम नि नियंत्रण कर सत्ता था जिसे वह नारल का शक्ति और सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता ।

अधिनियमों का अंगार — १८५५ के अधिनियम के अध्याय विहित प्रांतीय क्षेत्र का एक सच विधान अधिनियम शक्ति का उद्घाटन से सम्पूर्ण रूप से एतना का प्रदान करना है । कार्य और मुक्ति प्रांत के परमर्ष विधायी दृष्टिकोणों का दम पूर्ण १८५५ के अधिनियम न अध्याय विहित के अधुमार यह कि चय करने की शक्ति के अधुमार अधिनियम शक्ति क्षेत्र का दम जानी शक्ति के अधुमार प्रांतों का गवर्नर जनरल की दली ।

यह सच नहीं — हम प्रकार हम यह नियंत्रण निवारण सत्ते हैं कि १८५५ के अधिनियम में प्रांतिक अधिनियम प्रांतीय क्षेत्र काई चय दम नहीं था । यह कुछ एनी विभागों का नियंत्रण था जिसे शक्ति क्षेत्रों में काई शक्ति नहीं मिलता । एक

घोर तो वह राष्ट्रवाद की बड़ती हुई शक्तियाँ भी सन्तुष्ट करने का प्रयास था दूसरी ओर यह साम्राज्यवाद के पृच्छायोगों देशी रजवाड़ों राष्ट्रवायवायियों और ब्रिटिश औद्योगिक व व्यापारिक शक्ति की ताकत बढ़ाने का एक प्रयत्न था। कहा जा सार यह है कि प्रस्तावित सभ भारतीयों की राष्ट्रीय धारणाया का उत्तर नहीं मिलितु केन्द्र में उत्तमयो शासन की प्रथमनी पन र्थापना के प्रयास की कम करने का एक सूक्ष्म चष्टा थी। अतः हम प्रा० के० टी० गाह व शर्मा में यह मनन है कि सभाय योजना के लिये किसी प्रकार का सतुय अनुभव करना बठिन है।

८१ सघीय कायपालिका

द्वय शासन प्रणाली—(क) गवनर जनरल और परिषद—१९३५ क अधि नियम न प्रस्तावित सघीय सरकार में उत्तरदायित्व के तंत्र का समावेश करने के विचार से द्वय कायपालिका की योजना की। सघीय विषयो को मरगना और हस्तांतरित दो भागों में बाँट दिया गया। प्रतिरक्षा वधेनिक मामल धार्मिक मामले और वयायली इनके सरगित विषय थे। इन विषयों का प्रबंध करने में गवनर जनरल मंत्रियों से परामश किये बिना अपने विवेक के अनुसार प्रावरण कर सकता था। तथापि तीन कायकारी परिषद जा पने मतदान के अधिहार के बिना सघीय विधान मण्डल के दोनो सभो के सदस्य होने को ये गवनर जनरल को सहायता दन के लिये थे। सघीय कायपालिका का यह भाग अर्थात् परिषद सघीय विधान मण्डल के प्रति किसी प्रकार उत्तरदाया नहीं था।

(ख) गवनर जनरल और मंत्र परिषद—चार सरगित विषयो को अन्तर सघीय प्रशासन व शप सब विषय मन्त्राय उत्तरदायित्व व क्षम म प्राप्त थ। इन विषयों का शासन प्रबंध गवनर जनरल एक मंत्रिपरिषद की सहायता और मन्त्रणा से करने को था। मंत्री अनुपेण पत्र में निर्धारित उपबधो क अनुसार गवनर जनरल से द्वारा नियुक्त किए जाने का थ। उस उस दल क नेता को जिसका सघीय विधान मण्डल में बहुमत होता प्रधानमंत्री चुनना था और प्रधानमंत्री की मन्त्रणा पर दूसरे मंत्रियों को नियुक्त करना था। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से सघीय विधान मण्डल के दोनो सदनों के प्रति उत्तरदायी थी यद्यपि उत्तरदायित्व को एक कादूना दायित्व नहीं बना दिया गया। मंत्रिपरिषद की कायपालिका सत्ता में समस्त हस्तांतरित विषय आ जात थ। इन विषयो का शासन प्रबंध करने में गवनर जनरल से साधारणत यह आशा की जाती था कि वह अपने मंत्रियों की मन्त्रणा के अनुसार काय करेगा।

गवनर जनरल के विशेष उत्तरदायक—१९३५ के अधिनियम ने मन्त्रीय क्षम सक्त म गवनर जनरल को अधानिष्ट प्रधान नहीं बनाया। इसके विपरीत उसने उसे निम्न विशेष उत्तरदायित्व सौंप लिए—(१) भारतवध या उसके किसी भाग में शांति भंग करने वाल सतरी का निवारण (२) सभ सरकार की आर्थिक स्थिरता और

साल मुरखित रखना (३) अल्पमध्यक वर्गों के उचित हितों की रक्षा करना (४) लोक सभाओं के सदस्यों के कानूनों अधिकारों और उचित हितों की रक्षा करना (५) देशी शान्तियों के अधिकारों और जनक नरेशों की मर्यादा की रक्षा करना (६) ब्रिटिश व्यापारिक हितों के विरुद्ध विभक्त का निवारण और (७) इस बात का प्रबन्ध करना कि अपने विवेक और व्यक्तिगत नियम द्वारा किए जाने वाले कार्यों के सम्पादन में किमा अथ विषय सम्बन्धी बाध से कुछ बाधा न पड़े। जब कभी गवर्नर जनरल यह समझता कि मंत्रियों द्वारा लिए गए परामश से जनक इन उत्तरदायित्वों में से किसी के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ने का सम्भावना है उस समय वह मंत्रियों के परामश का उपेक्षा करके अपने व्यक्तिगत नियम का प्रयोग कर सकता था। गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व खानी कागजी रखा कबच ही नहीं था। उनका मतलब उत्तरदायी शासन का अर्थ करना था। प्रो० वीथ के मतानुसार यदि जनका निवचन सङ्कुचित शक्ति से किया जाता तो वे मन्त्रीय उत्तरदायित्व की सम्पादन को नष्ट कर सकते थे। सुभाष बोस के मत में गवर्नर जनरल की १९३५ के एक्ट द्वारा मंजूर हुए ये उत्तरदायित्व उम बढ़ा गाने के समान थे जिसे खवाने योग्य बनाने के हनु उस पर विचार उत्तरदायित्व नाम बाधा खीना का मुक्तता लगा दिया गया था।

गवर्नर जनरल की दूसरी विशेष शक्तियाँ—गवर्नर जनरल और बहुत-सी दूसरी स्वयंसेवकी तथा विशेष शक्तियाँ का प्रयोग करता था। कायदारी शत्रु में वह मोक्षदेवा प्रयाग के सम्बन्ध में अद्ययत्न की और अजनर, मारवाड मुग तथा विनो-विरातान के बाफ वामिनरों का नियुक्त करन में अपने विवेक के अनुसार प्रावण कर सकता था। वित्तीय परामशगत आडीटर जनरल पत्रावेट जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति करन में उसे अपने व्यक्तिगत नियम के प्रयोग का अधिकार था। वह रिजर्व बैंक डायरेक्टरों का नियुक्त करता था।

अधिकृत नियम से स्वविवेक से अधिकार में अन्तर—१९३५ के एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल व ग नरा की ये दो शक्तियाँ 'विशेष अधिकार' के रूप में दी गयी थी। दोनों अधिकारों में अन्तर क्या सूत्र था। गवर्नर जनरल के लिए अतिरिक्त नियम से अधिकार के प्रयाग की अवस्था में निजी मन्त्राहारा की मन्त्रणा सेना आवश्यक था यद्यपि वह परामश का मानने के लिये बाध्य नहीं था। परन्तु विवेकानित के अधिकार के प्रयाग में वह पूर्ण रूपण स्वतन्त्र था।

अध्यक्षवादन के शत्रु में गवर्नर जनरल की विशेष शक्तियाँ—अपने विवेक के अनुसार काम करते हुए वह संघीय विधान मण्डल का आत्मान रयगत या विघटन कर सकता था उक्त किमा एन या दोनों सभों का सम्बोधित कर सकता था और उन्हें सभे भेग भवता था। सभाय विधान मण्डल द्वारा पास किए गए विधेयक गवर्नर जनरल की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकते थे। गवर्नर जनरल की अपने विवेक के अनुसार किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपनी अनुमति देन या न देने अथवा



साय सुरक्षित रचना (३) मूल्यसम्पन्न वर्गों के उचित हितों की रक्षा करना (४) लोक सेवाओं के सम्बन्धों के कानूनी अधिकारों और उचित हितों की रक्षा करना, (५) देशी राज्यों के अधिकारों और उनके नरेशों की मर्यादा की रक्षा करना, (६) ब्रिटिश व्यापारिक हितों के विरुद्ध विभेद का निवारण और (७) इस बात का प्रबन्ध करना कि अपने विवेक और व्यक्तिगत नियम द्वारा किए जाने वाले कार्यों के सम्मानन में किसी अन्य विषय सम्बन्धी काम से कुछ बाधा न पड़े। जब कभी गवर्नर जनरल यह समझता कि मंत्रियों द्वारा लिए गए परामर्श से उनका इन उत्तरदायित्वों में से किसी के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है उस समय वह मंत्रियों के परामर्श का उपेक्षा करके अपने व्यक्तिगत नियम का प्रयोग कर सकता था। गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व खाने कागजी रक्षा अबच ही नहीं थे। उसका मतलब उत्तरदायी शासन का अर्थ करना था। प्रा० कीय के महानुमांर यदि उनका निवचन सङ्कुचित होति स रिया जाता तो वे मन्त्रीय उत्तरदायित्व की सम्भावना को नष्ट कर सकते थे। सुभाष बास के मन में गवर्नर जनरल का १९५५ के एकट द्वारा मारे गए ये उत्तरदायित्व उम बङ्गी गोनी के समान थे जिसे खवाने योग्य बनाने के हेतु उस पर विषय उत्तरदायित्व नाम का नाम खाने का मुत्समा नाम रिया गया था।

गवर्नर जनरल की दूतगो विशेष शक्तियाँ—गवर्नर जनरल और बहू-सी दूमरी स्वविवेकी तथा विशेष शक्तियों का प्रयोग करता था। कामकारी क्षत्र में वह लोकसेवा आयोग के सदस्यों के अध्यक्ष को और अजमेर मारवाड कुम तथा विलो विस्तान के चौफ कमिश्नरों को नियुक्त करने में अपने विवेक के अनुसार आचरण कर सकता था। विधाय परामर्शगता आर्मीर जनरल गठबानेट जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति करने में उसे अपने व्यक्तिगत नियम के प्रयोग का अधिकार था। वह रिजर्व बैंक का डायरेक्टरों का नियुक्त करता था।

व्यक्तिगत नियम के स्वविवेक के अधिकार में अन्तर—१९३५ के एकट के अनुसार गवर्नर जनरल व गवर्नरों को ये दो शक्तियाँ विशेष अधिकार के रूप में दी गयी थी। दोनों अधिकारों में अन्तर बड़ा सूक्ष्म था। गवर्नर जनरल के लिए व्यक्तिगत नियम के अधिकार के प्रयोग की अवस्था में निजी मताहकारों का मतलब सना आदेशक था जबकि यह परामर्श का मानने के लिये बाध्य नहीं था। परन्तु विवादायित्व के अधिकार के प्रयोग में वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र था।

धनसहायन के क्षेत्र में गवर्नर जनरल की विशेष शक्तियाँ—अपने विवेक के अनुसार काम करते हुए वह संघीय विधान मण्डल का आह्वान, स्थगन या विघटन कर सकता था उसका किसी एक या दोनों सदस्यों को सम्बोधित कर सकता था और उन्हें सभा भंग सकता था। सभाय विधान मण्डल द्वारा पास किए गए विधेयक गवर्नर जनरल को स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकते थे। गवर्नर जनरल को अपने विवेक के अनुसार द्विती प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपनी अनुमति देने या न देने का

सदस्य जिनकी संख्या १०४ थीं सामकों द्वारा मनोनीत होने को थे। ब्रिटिश भारत के १५० निर्वाचन स्थानों का विभिन्न प्रांतों के बीच निम्न प्रकार से वितरण निश्चित हुआ था—

बंगाल	२०	उड़ीसा	५
मद्रास	२०	पंजाब	५
बुन्देलखण्ड	२०	सिंध	५
बम्बई	१६	अजमेर	१
त्रिपुरा	१६	गुजरात	१
पंजाब	१६	समर्थ भारतवादी	१
मैसूर	५	कुल	१
राजस्थान	५	संघीय	१०
साम्प्रदायिक आधार पर स्थानों का वितरण निम्न प्रकार से निर्धारित हुआ—			
साम्प्रदायिक	७५	निश्चय	४
साम्प्रदायिक	६	साम्प्रदायिक	७
साम्प्रदायिक	४०	साम्प्रदायिक	१
साम्प्रदायिक	६	साम्प्रदायिक	२

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचक मण्डलों के आधार पर प्रत्येक प्रांत से निर्वाचित होने को थे। मताधिकार मरुजित था और उच्च सम्पत्ति सम्बन्धी शर्तों पर आधारित था। सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में मतदाताओं की कुल संख्या १,००,००० के आसपास थी। अधिकांश दूररे मध्यों में मध्याह्न विधान मण्डल के उच्च स्तर परीक्षा भूमि में निर्वाचित होने लगे। भारत में इस प्रणाली की नया व्यवस्था की गई। यह नया व्यवस्था एक ही को ममान प्रतिनिधिपत्र देने के अधिकार के आधार पर निर्धारित किया गया। कुल मिलाकर मतदान के लिए निर्वाचित होने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या १०४ निर्धारित की गई थी।

संघीय परिषद एक स्थायी निकाय थी उमरा विधान नहीं हो सकता था। उसके निर्वाह में प्रत्येक तीसरे वर्ष हट जाने को था। तथापि प्रत्येक मध्यम नौ वर्षों के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या १०४ निर्धारित की गई थी।

संघीय संघ—संघीय विधान मण्डल के निम्न स्तर का नाम संघीय संघ था। संघीय संघ की संख्या ७५ निर्वाचित की गई थी। इन स्थानों में १५ स्थान राज्यों के लिए निर्वाचित कर लिए गए थे। ब्रिटिश भारत के १५० स्थानों में से ४ स्थानों में ही थे और बांग्लादेश, अफगानिस्तान तथा अन्य के लिए निर्वाचित कर लिए गए थे। इन ४६ निर्वाचित प्रांतों में निम्न प्रकार से वितरण किया गया था—

बंगाल	१७	उड़ीसा	५
मद्रास	१७	पश्चिमोत्तर	
यू० पी०	१७	सीमा प्रांत	५
बम्बई	३०	मि घ	५
पंजाब	१०	यमुचिस्तान	१
बिहार	१०	दिल्ली	२
सी०पी० और बरार	१५	अजमेर-मारवाड़	१
आसाम	१०	पुंग	१

विभिन्न सम्प्रदायों वर्गों और क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व निम्न प्रकार से होने

को था—

साधारण (जिनमें १६ स्थान अनुसूचित जातियों के लिए शामिल हैं)	१०५	सामान्य भारतीय	४
मुस्लिम	८२	स्त्रियाँ	६
सिक्ख	६	व्यापार और उद्योग	११
यूरोपियन	८	श्रम	१०
आर्यन ईसाई	८	मूस्वामी	७

संघीय सभा का कार्यकाल साधारणतः पांच वर्ष निश्चित हुआ था लेकिन इसके पूर्व भी उसका विषय न किया जा सकता था।

संघीय सभा के गठन में एक प्रमुख विरोधना यह थी कि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि साम्प्रदायिक आधार पर प्रांतीय विधान मण्डलों द्वारा परोक्ष राति सतुन जाने को थे। इस प्रकार हिंदू और मुस्लिम प्रतिनिधि प्रांतीय विधान सभाओं के क्रमशः हिंदू और मुस्लिम सदस्यों द्वारा पृथक् पृथक् निर्वाचित किए जाने को थे।

① संघीय विधान मण्डल की शक्तिशाली प्रमुख शक्ति विरहित विधायक—प्रस्तावित संघीय विधान मण्डल का स्वरूप अत्यंत आत्मक था और उसके शक्तियाँ अत्यंत सीमित थीं। संघीय सूची और समवर्ती सूची में प्रणालित विषयों के सम्बन्ध में उसका कानून बनाने की शक्ति प्राप्त थी। यदि गवर्नर जनरल आपात की उपायगणना निकाल देता तो विधान मण्डल प्रांतीय विधायी संसद के भी कानून बना सकता था।

② (क) विधायी शक्तियाँ—उत्तरी विधायी सभ्यता के बड़े प्रतिशत नये हुए थे। वह किसी भी प्रकार प्रमुख शक्ति सम्पन्न विधान मण्डल नहीं था। उक्त संघीय शक्तियाँ प्राप्त नहीं थीं। वह संविधान अधिनियम में बड़े संशोधन की कर सकता था और न भारत के ऊपर लागू होने वाले ब्रिटिश संसद के अधिनियमों को ही संशोधित करवा रह कर सकता था। कनिष्ठ विधायी प्रकार के विधेयक गवर्नर जनरल को पूर्व अनुमति के बिना विधान मण्डल में पुनः स्थापित नहीं किए जा सकते थे। भारत

की शान्ति और सुखस्थता सम्बन्धी अपने विशेष उत्तरदायित्व से सम्बन्ध रखने वाले विधान मण्डल के विचाराधीन किसी विधेयक पर प्रमत्तता उसकी किसी धारा पर गवर्नर जनरल अपनी हृद्द बहूत शक्ति कर सकता था। सघीय विधान मण्डल द्वारा पास किए गए समस्त प्रस्ताव गवर्नर जनरल के नियेषाधिकार के अधीन थे। गवर्नर जनरल सघीय विधान मण्डल की सन्मति के बिना अध्यादेश जारी करके और गवर्नर जनरल के अधिनियम पास करके उसकी शक्ति का प्रयोजन कर सकता था।

(७) (ए) वित्तीय शक्तियाँ—सघीय विधान मण्डल की वित्तीय शक्तियाँ भी अत्यन्त परिमित थीं। परारोध और व्यय से सम्बन्धित प्रस्ताव केवल गवर्नर जनरल की सिफारिश पर ही पुनः स्थापित किए जा सकते थे। विधान मण्डल बजट पर (गवर्नर जनरल के बतल के सिवाय) वाद विवाद कर सकता था लेकिन रूप्य का ८० प्रतिशत से अधिक माग मत निरास्य था। मत सपन्न माग की स्थिति में भी गवर्नर जनरल सघीय विधान मण्डल द्वारा अस्वीकृत या कम की गई किसी अनुशासनात्मक माग को बहूत कर सकता था।

(८) कानूननिष्ठा के ऊपर निर्धारण—सघीय विधान मण्डल का सघीय कानूननिष्ठा के ऊपर नियम केवल उन्हीं विषयों तक सीमित था जो गवर्नर जनरल की स्विकृती के बिना और विशेष उत्तरदायित्वों के अधिनियमों के अधीन थे। मन्त्रपरिषद् उसक प्रति उत्तरदायी था लेकिन गवर्नर और उसका परिषद् उसके निर्धारण में पूर्ण विमुक्त थे।

(९) मुद्रात एव विचारामक निष्ठा—सघीय विधान मण्डल सरकार की नातिवों और बाधों के आलोचना कर सकता था तथा जनता की शिकायतों पर विचार बिन मय कर सकता था। कानून के तार मह ह कि १६ ५ के अधिनियम के अधीन सघीय विधान मण्डल मुख्यतः एव विचारामक निष्ठा था।

८३ सघीय न्यायालय

न्यायालय का गठन—१८३५ के भारत सरकार अधिनियम ने एक सघीय न्यायालय की स्थापना का उपबन्ध किया था। १ अक्टूबर १९७ की इस न्यायालय का उद्घाटन कर दिया गया। न्यायालय एक प्रधान न्यायाधीश और छ दूजरे न्यायाधीशों से मिलकर बना था। न्यायाधीशों की नियुक्ति मन्त्रपरिषद् और मुद्रा-सहित अधिनियम द्वारा करता था। प्रथम न्यायाधीश का वेतन ७,००० रुपया प्रति मास और दूसरे मन्त्रपरिषद् के अध्यक्ष का ५,५०० रुपया प्रति मास था। न्यायाधीश सभावार पञ्चन पञ्च धारण करत थे। सघीय न्यायाधीशों की अवस्था ६५ वर्ष थी। वे न्यायाधीशों और न्यायाधीशों के प्रमत्तता की दुबलता के आधार पर सघीय के द्वारा अधिदेश दिए जा सकते थे।

न्यायालय का अधिधिकार (क) आरम्भिक—सघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार आरम्भिक और अपीलीय दोनों प्रकार का था। उन्हीं आरम्भिक क्षेत्राधिकार (क)

गवर्नरों को वायसराय की सिफारिश पर। उनकी उपलब्धियाँ पञ्चावधि और सेवा की शर्तों के ही रहनीं जो १९१८ के अधिनियम के अधिनत थीं। नए अधिनियम ने उनकी राजकीय शान गौरव में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं की।

गवर्नर की शक्तियाँ—१९३५ के अधिनियम में दृष्टगमन प्रणाली का अन्त कर दिया। साधारण परिस्थितियों में गवर्नर से यह आशा की जाती थी कि वह धरम मंत्रियों की मन्त्रणा का पालन करेगा। लेकिन अधिनियम का उद्देश्य गवर्नर की वैधानिक शक्त बनाना नहीं था। अधिनियम ने गवर्नर को इतनी विपुल शक्तियाँ दे दी थीं कि यदि वह मन चाहे ढंग से उनका प्रयोग करने का हठ करता तो सदैव की भाँति ही स्वच्छाचारी शासक बना रह सकता था।

विशेष (स्वादिबन्धी) शक्तियाँ—शक्तिपथ मामलों का प्रबंध करने में जिन्हें मन्त्रीय उत्तरदायित्व तथा सम्मान के दाय में बाहर रखा गया था गवर्नर मंत्रियों का परामर्श प्राप्त किए बिना ही अपने विवेक के अनुसार कार्य कर सकता था। कायकारी दाय में गवर्नर की स्वविवेकी शक्तियाँ निम्न विषयों में सम्बन्ध रखती थीं—

- (१) अप्रयोजित क्षेत्रों का प्रशासन (२) मंत्रियों की नियुक्ति और पदच्युति (३) मंत्रियों के वेतनों को जब तक कि वे विधानमण्डल द्वारा निर्दिष्ट न कर लिए जायें निश्चित करना (४) एसी दाय और विनाशकर कारवाहियों को रोकना जिनका उद्देश्य शासन के नष्ट करने का है (५) जामूना विभाग का सूचनाओं को ऐसे व्यक्तियों का (मंत्रियों सहित) लिए जाने से रोकना जिनके लिए अपने आदेश न दिया हो (६) प्रांतीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति (७) प्रतिरक्षा आदि के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल के निर्देशों का कार्यान्वित करना और (८) अपने व्यक्तिगत कर्मचारी पदों की नियुक्ति करना और उनका वेतन निश्चित करना।

२ विधायी क्षेत्र में गवर्नर की स्वविवेकी शक्तियाँ निम्न विषयों में सम्बन्ध रखती

१ गवर्नरों के वार्षिक बजट (रपयों में) प्रत्येक प्रांत के नाम के साथ तैयार किए जाते हैं। सजावट, पथटन पर्नोचर व्यवस्था स्थापना और मनारजन आदि के मत बोधों में लिए गए हैं। मद्रास १२०,००० (५,७५,०००) बम्बई १२०,००० (५,८४,०००) बंगाल १,००,००० (६,०७,३००) यू०पी० १२०,००० (२,६७,०००) पंजाब १,००,००० (१,४१,२००) बिहार १,००,००० (१,००,०००, सा० या० ७२,००० (१,०३,२००), आन्ध्र ६६,००० (१,४०,१००) परिवेशोत्तर गामा प्रांत ६६,००० (१,१२,८००), सिंध ६६,००० (१,२६,८००) उड़ीसा ६६,००० (१,०३,०००)।

२ सिंध के प्रधान मन्त्री ध्यान बहादुर अल्लाखान का पदच्युति ने जब कि उन्हें प्रांतीय विधान मण्डल का विश्वास प्राप्त था गवर्नर का पदच्युत करने की शक्ति की वास्तविकता को सिद्ध कर दिया।

थी—(१) प्रांतीय विधान मण्डल का घासना और स्थान तथा विधान सभा का विघटन, (२) प्रांतीय विधान मण्डल में कतिपय विभाग प्रसार का विधान का पुनः स्थापना के लिए पत्र प्रमुक्ति देना (३) विधी विधायक धरणा उतरी विभा घास पर धरणा का विधान रोक देना (४) प्रांतीय विधान मण्डल द्वारा प्राप्त किए गए विधेयको पर स्वीकृति देना विधेयकार का प्रयोग करना धरणा उतरी मण्डल जनता के विचाराय सरणिन कर ना तथा (५) आध्यापन जारी करता और मण्डल के प्रतिनिधम अधिगमिमत करना ।

③ जहा तक वित्तीय क्षत्र का सम्बन्ध है गवर्नर इस बात का निश्चय करने में कि कौन सा विषय मत सापण है और कौन ना । व प्रांतीय विधान मण्डल द्वारा वम या अस्वीकृत की गई किसी अनुदान मांग को यथापूर्व स्थापित करा म धरणा विवेक के अनुसार आचरण कर सकता था ।

धारा ६३—गवर्नर की जिन स्वविवसी शक्तिओ का ऊपर बखान किया गया है उन्के अन्तर्गत १६ ५ के अधिनियम की धारा ९३ के गवर्नर को एक महत्वपूर्ण महत्वपूर्ण स्वविवसा शक्ति और शक्ति की थी । अने विषय के अनुसार वय करके हा गवर्नर इस बात की उपोपणा निदान करता था कि प्रांत में सविधान के उन्के अन्तर्गत शासन संचालित न किया जा सकता । उन्के अन्तर्गत विधान दो पर यह शक्ति विषय को उपोपण कर सकता था विधान सभा का विघटन कर सकता था और उच्च न्यायालय के अन्तर्गत प्रांतीय विधानों की समस्त शक्तियो को धरणा शक्त म न सकता था । नवम्बर १९३६ में प्रांतो में वायसी म नमण्डलो ने त्यागपत्र दे दिए थे उनम मसा उपोपणा के अधीन पूर्व नौरणाला शासन की स्थापना कर दी गई थी ।

गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व—गवर्नर की स्वविवसी शक्तिओ का आनुगत विषयों को छूटने के विषय म प्रांतीय उत्तरदायित्व के क्षेत्र के भीतर आते थे । प्रांतीय विषयों का प्रबंध गवर्नर उत्तरदायी मंत्रियों की सहायता और सलाह से करता था । साधारण परिस्थितियों में गवर्नर ने यह धरणा का प्रांतीय विधानों को धरणा मंत्रियों की सलाह का पालन करे । लेकिन यहाँ भी उसने कई ऐसे विशेष उत्तरदायित्व के अन्तर्गत प्रांतीय क्षेत्र में गवर्नर उत्तरदायी थे । ये विषय उत्तरदायित्व मुक्त रूप में निम्नलिखित थे—(१) प्रांत या उसने किसी मांग में शांति नष्ट करने वाले शक्तियों का निवारण (२) अन्तर्गत वधों के उचित हिंसे सरकारी शक्तियों के कानूनी अधिकारों और उचित शक्ति तथा देशी शक्तियों के अधिकारों और उनके विशेषों की प्रतिष्ठा की रक्षा करना (३) आर्थिक विधेयों की रोकथाम (४) शासन रूप से अर्थात् क्षत्र का प्रश्न और (५) गवर्नर जनरल के आदेशों और अनुदान पर धरणा करता तो व उनके लिए जारी करे । जब कभी गवर्नर को यह अनुभव होता कि प्रांतीय विधानों की सलाह मंत्रियों मने किसी विषय उत्तरदायित्व पर प्रतिष्ठित प्रभाव

मन्त्रिपरिषद की नियुक्ति—१९३५ के अधिनियम के अधीन गवर्नर अपने अनुज्ञेय पत्र में लिए गए निर्देशों के अनुसार मन्त्रिपरिषद का नियुक्ति करता था। विधान मण्डल में लिए दान का बहुमत होता था। गवर्नर उम्मीद नज़ा को आमंत्रित करने मन्त्रिमण्डल का रचना का कार्य अपने जिम्मे सौंप देता था। यह नज़ा मुख्य-मन्त्री बन जाता था। धर्म मन्त्री मुख्य मन्त्री की मन्त्रणा पर गवर्नर द्वारा नियुक्त किए जाते थे।

मन्त्रिपरिषद में अल्पसंख्यक वर्गों का प्रतिनिधित्व—अनुज्ञेय पत्र के एक उप-बन्ध के सम्बन्ध में निम्न गवर्नरों को निर्देश दिया गया था कि महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधियों को जहाँ तक व्यावहारिक हो मन्त्रिमण्डल में स्थान दे चुकने मत भेद था। इसके साथ ही साथ अनुज्ञेय-पत्र के अनुसार गवर्नर से यह स्पष्ट हो जाता था कि वह समुचित उत्तरदायित्व की वृद्धि का प्रा. माहित कर। स्पष्ट है कि बहु-मत वाले दल में अल्पसंख्यक वर्गों का थोड़े निश्चित प्रतिनिधि शामिल नहीं होता था। उस स्थिति में उचित दोनों प्रतिबंध एक दूसरे के प्रतिकूल पढ़ सकते थे। उन प्रा. मा. में जिनमें कि काग्रस का पूरा बहुमत प्राप्त नहीं हुआ यह समस्या नग्न रूप में उठ खड़ी हुई। उदाहरणार्थ ५०० पा० में काग्रस न केवल उन्हीं मुसलमानों को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित करने का निश्चय किया जो उसकी शपथ पर हस्ताक्षर करने दल में शामिल हान और उससे कायत्रम को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। मुस्लिम लीग ने विधान मण्डल में कई मुस्लिम स्थानों पर बरका कर लिया था। उसने इन शर्तों के ऊपर काग्रस के साथ सहयोग करना अस्वीकार कर लिया। फलतः केवल उन्हीं मुगलमानों को मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया गया जो कि काग्रस दल के सदस्य थे। मुस्लिम लीग ने इस संकट के विरुद्ध इस आधार पर कि काग्रस के मुसलमानों को विधान मण्डल के मुस्लिम सदस्यों के बहुमत या समान प्राप्त नहीं है और इसलिए वे जाति के अच्छे प्रतिनिधि नहीं हैं गवर्नर से अपील की। लेकिन चूंकि काग्रस दल को विधान मण्डल का समान प्राप्त था इसलिए गवर्नर ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

मन्त्रियों की पद-युक्ति—१९३५ के अधिनियम ने यह भी निर्धारित कर दिया कि मन्त्री गवर्नर के प्रस्ताव पर पद धारण करेंगे। उसका अधिप्राय यह हुआ कि यदि गवर्नर चाहता तो मन्त्रियों को अपस्थित कर सकता था। लेकिन जे.य. उत्तरदायी शासन में इस कानूनी अधिकार का केवल प्रधान मन्त्री की मन्त्रणा पर ही प्रयोग किया जाता है और जहाँ तक प्रधान मन्त्री का सम्बन्ध है जब तक वह विधानमण्डल का विश्वासपात्र है उसे अपस्थित नहीं किया जा सकता। इंग्लैण्ड में यही स्थिति है। वहाँ सम्राट् चक्रानुसार मन्त्रियों को धर्म स्थ करने की अपनी मर्यादित शक्ति का कदापि प्रयोग नहीं करता। भारतवर्ष के प्रांतीय गवर्नरों की साधारण प्रवृत्ति तो यही थी कि उत्तरदायी शासन के निष्ठाता का पालन किया जाए लेकिन कुछ गवर्नरों ने स्वेच्छा पारी शासन की तरह काम लिया। उदाहरणार्थ मि. घ. के प्रधान मन्त्री अल्ला वरुण

के मामले में वहाँ के गवर्नर न पदच्युति की अपनी शक्ति का सबसे भवधानिक रीति से प्रयोग किया था।

मंत्रियों की सत्या का प्रश्न—१९३५ के अधिनियम ने मंत्रियों की सत्या के सम्बन्ध में कोई सीमा निश्चित नहीं की। दलगत राजनीति की आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न प्रान्तों में मंत्रियों की संख्या भिन्न भिन्न थी। उदाहरणार्थ एक समय बंगाल में मंत्रियों की संख्या सबसे अधिक (१२) और उड़ीसा में सबसे कम (३) थी।

संसद सचिव—यद्यपि संविधान ने संसद-सचिवों के लिए कोई उपबंध नहीं किया था लेकिन अधिकांश प्रान्तों में कई संसद-सचिव नियुक्त किए गए। संसद-सचिव बहुमत वाले दल के सदस्य होने के नाते राजनीतिक कार्यपालिका के एक मुख्य भाग होने थे। वे मंत्रियों को उनके संसदीय और प्रशासनिक कार्य में सहायता देते थे और उनका भार काफी हलका कर देते थे। इस प्रणाली ने युवक राजनीतिज्ञों को उपयोगी शिक्षा प्रदान की, ये ही लोग भागे चलकर कुशल मंत्री हो सकते थे। कांग्रेस प्रान्तों में संसद सचिव २५० रु० प्रतिमास वेतन पाता था।

८७ प्रान्तीय विधान मण्डल

छ प्रान्तों में द्वितीय सदन—१९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अधीन प्रान्तीय विधानमण्डल सम्राट के प्रतिनिधि गवर्नर और विधान मण्डल के एक या दो सदनों से मिलकर बनता था। ग्यारह प्रान्तों में से छ^१ में 'सिद्धान्तात्मक विधान मण्डल' था। 'सिद्धान्तात्मक विधान मण्डल वाले प्रान्त का उच्च सदन विधान-परिषद् कहलाता था। ऐसे प्रान्तों के निम्न सदन भ्रष्टरे प्रान्तों के विधान मण्डल विधान समाधा के नाम से प्रख्यात थे। धाकार की दृष्टि से विधान परिषदें विधान समाधा की तुलना में बहुत छोटी होती थीं। वे स्थायी निकाय थीं उनका विघटन नहीं हो सकता था। सदस्यों का निर्वाचन ६ वर्ष के लिए होता था विहाई सम्पूर्ण प्रति तीसरे वर्ष हट जाते थे। द्वितीय सदनों की शक्तियाँ निम्न सनों के समकक्ष ही थी, धन्तर केवल इनका था कि धन विधेयक केवल निम्न सदनों में ही पुन स्थापित किए जा सकते थे और अनुदान मांगों के सम्बन्ध में उच्च सदन सबसे अधिक शक्तिहीन थे।

उनकी शर्तों स्थापना की गई—प्रान्तों में उनकी स्थापना को भारतीयों ने सन्नेह की दृष्टि से देखा। सर लेजबहादुर सभू ने कहा था कि वे प्रतिनिध्यावानी सिद्ध होंगे और प्रगतिशासक व्यवस्थापन के माग में रोड़े धटकाएंगे। यह भी धनुभव किया गया कि वे सबसे घनावश्यक थे क्योंकि विधान मण्डलों द्वारा बल में और बिना ठीक से सोचे समझ पास बिये गये कानूनों के ऊपर गवर्नर की शक्तियाँ पर्याप्त प्रभुत्व रख नेती थीं। ये भय जय थे लेकिन जहाँ तक वास्तविकता का प्रश्न है सोशलिज्म के संक्षेप को प्रतिगापिता के इन गहों ने कोई हानि नहीं पहुंचाई क्योंकि 'सिद्धान्तात्मक विधान मण्डलों' वाले सातग सभी प्रान्तों में कथित ने पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लिया

१ छ प्रान्त—झारखण्ड, बिहार, कर्नाटक, मद्रास और पू० पी० थ।

और उन समुक्त बठकों में जिनका सविधान ने दोनों सभों का गतिरोध दूर करने के लिये उपबन्ध किया था निम्न सदन के प्रगतिशील तरफ उच्च सदन के प्रतिगामी तत्वों की अधिक राय से हरा सकते थे ।

विधान सभा उसका गठन—विधान सभा का आकार भ्रमण भ्रमण प्रान्तों में भ्रमण भ्रमण था । उदाहरणार्थ यू पी की विधान सभा में पृथक् साम्प्रदायिक और बग निर्वाचक मन्त्रों के आधार पर निर्वाचित २८८ सभ्य थे । विभिन्न वर्गों और जातियों के बीच स्थानों का वितरण निम्न प्रकार से किया गया था—साधारण (जिसमें अनु सूचित जातियों के २० स्थान भी शामिल थे) १४०, मुस्लिम ६४, यूरोपियन २, आंग्ल ईसाई २, आंग्ल भारतीय १, बाणियाँ और उद्योग ३, भू-स्वामी ६, विश्वविद्यालय १, श्रम ३, स्त्रियाँ ६ (चार हिन्दू और दो मुस्लिम) ।

उसकी भ्रवधि—विधान सभा की भ्रवधि ५ वर्ष की थी लेकिन गवर्नर उसकी पूरी भ्रवधि की समाप्ति के पूर्व भी उसका विघटन कर सकता था । त्तीय विरव युद्ध के बीच गवर्नरों को इस बात की विशेष रुच में शक्ति दे दी गई थी कि वे युद्ध की समाप्ति तक के लिए प्रान्तीय विधान सभाओं की भ्रवधिबद्ध हों । सभा अपना भ्रव्यस और उपाध्यस चुनती थी ।

कानून निर्माण करने की शक्तियाँ—प्रान्तीय विधान मण्डल चाहे वह एक सदनात्मक होता भ्रववा द्विसदनात्मक प्रा नीय सूची में गिनाए गए समस्त विषयों पर कानून बनाने के लिए सक्षम था । वह समवर्ती सूची के विषयों पर भी कानून बना सकता था लेकिन इसमें एक शत थी और वह यह कि यदि प्रातीय कानून उसी विषय से सम्बद्ध केन्द्रीय कानून के प्रतिकूल पडता तो वह विफल हो जाता था और उसके स्थान पर केन्द्रीय कानून प्रभावी होता था । गवर्नर की विशेष शक्तियों के कारण प्रातीय विधान मण्डल की विधायी शक्तियों के ऊपर कई प्रतिबंध लगे हुए थे । कतिपय विधेयकों की पुन स्थापना के लिए उसकी पूर्व अनुमति आवश्यक थी । वह निवेधा पिकार का प्रयोग कर सकता था और उसे वे स्वतंत्र विधायिनी शक्तियाँ प्राप्त थी जिनके द्वारा वह विधानमण्डल की सहमति के बिना ही भ्रव्यादेश और गवर्नर के भ्रधिनियम जारी कर सकता था ।

वित्तीय शक्तियाँ—प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना के साथ ही साथ प्रा नीय विधान मण्डल की वित्तीय शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हो गई । यदि विधान मण्डल द्विसद नात्मक होता तो यह आवश्यक था कि वार्षिक बजट दोनों सदनों के सम्मुख रखा जाय लेकिन अनुदान माँगों पर मतदान देने का अधिकार केवल विधान सभा को प्राप्त था । मत सापेक्ष अनुदान माँगों का अनुपात लगभग ७५ प्रतिशत था ।

प्रशासन के ऊपर नियंत्रण—प्रान्तीय विधानमण्डल प्रान्तीय प्रशासन के ऊपर पर्याप्त नियंत्रण रखता था । मन्त्रिमण्डल के ऊपर भ्रविश्वास का प्रस्ताव पास करके वह उसे त्यागपत्र देने के लिए विवध कर सकता था । वह सरकार की भ्रुलों को प्रकट

कर सकता था, उसकी नातियों का निरनुमोदन कर सकता था और प्रभों अनुपूरक प्रभों कामतोजी प्रस्ताव और वज्रट वाण विवाहों के द्वारा जनता की शिकायतों को सरकार के कानों तक पहुँचाया जा सकता था ।

८८ मताधिकार और निर्वाचक मण्डल

साम्प्रदायिक और वग निर्वाचक मण्डल—मोटफोड मुधारों की तरह १९३५ के अधिनियम के अधीन ही भारत की निर्वाचन पद्धति जातियों वगैरे और हिजा के सिद्धान्त के ऊपर प्रायिन थी । अब तक जो पृथक साम्प्रदायिक और वग निरीक्षण मण्डल बलमान थे, उनमें थम और स्त्रियों के लिए और निर्वाचक मण्डल जाड दिए गये ।

प्रतिनिधित्व में गुरुभार —प्रतिनिधित्व में गुरुभार की पद्धति भी बनी रही । मुसलमानों की आवाजी मद्रास में ७ १% और यू० पी० में १४% प्रतिशत थी परन्तु उहोन मद्रास में १ प्रतिशत और यू० पी० में २७ प्रतिशत स्थान प्राप्त किए । यूरोपियनों के साथ विधायक रूप से पक्षपात किया गया । उनकी जनसंख्या १ प्रतिशत की १/१ थी परन्तु उन्हें प्रांतीय विधान मण्डलों में ३ प्रतिशत और प्रस्तावित सघोप समा में मात्र पाँच प्रतिशत स्थान दिए गए ।

कुन निर्वाचक— १८२५ के अधिनियम ने सभ्यता और शिगा विपयक अहताओं में कमी करके १९१९ के अधिनियम के ऊपर कुन मुधार दिया था । फलतः साठे तीन कराड व्यक्तियों ने जिनमें ६० लाख स्त्रियाँ थीं मतदान का अधिकार प्राप्त किया । माटफो मुधारों के अधीन भारत की कुल जनसंख्या के करीब साठे तीन प्रतिशत भाग को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था जबकि १९१५ के अधिनियम के अधीन भारत की कुल संख्या के १४% अथवा कुन वयस्क जनसंख्या के २७/ भाग का मतदान का अधिकार मिल गया ।

८९ गृह सरकार

एक औपचारिक परिवर्तन—१९३५ के अधिनियम ने गृह सरकार में थोड़े से औपचारिक परिवर्तन किए । अधिनियम ने भारत के प्रशासन के ऊपर भारत मंत्री का निरीक्षण निर्माण और नियंत्रण की शक्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया । यह शक्ति अब सभा में निहित कर दी गई । लेकिन यह परिवर्तन नाममात्र का था । यद्यपि सभा अधिसूची में था गया लेकिन व्यवहार में उसकी शक्ति का प्रयोग भारत मंत्री ही करता रहा । जब कभी अवनर जनरल और जनरल अपने विधायक के अनुसार आचरण करते थे अथवा अपने व्यक्तिगत निष्पत्ति का प्रयोग करते थे, उस समय भारत मंत्री उनका निरीक्षण और नियंत्रण करता था । अधिनियम ने भारतीय परिषद का उत्साहन कर दिया ।

भारत मंत्री के परामर्शदाता—अधिनियम ने भारत मंत्री की सहायता के लिए तीन से अधिक परामर्शदाताओं की व्यवस्था की । कम-से कम

प्राथमिक परामशदाताओं के लिए यह आवश्यक था कि वे नियुक्ति से पूरे दस वर्ष तक भारत में नौकरी कर चुके हों और उन्हें भारतवर्ष छोड़े जाय तो क्षति न हुए हो। परामशदाता पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे और ₹ १० वीट या फिर वेतन प्राप्त करते थे। जिन परामशदाताओं का नियोग स्थान भारत में था उन्हें वेतन के प्रतिरिक्त ६०० वीट या फिर भत्ता मिलता था। इस समय का भार इंग्लैण्ड के कोष पर था भारत के कोष पर नहीं। भारत में भी परामशदाताओं से भ्रष्टाचार का प्रथम सामूहिक रूप से उदय हुआ परामशदाता पर न वह उन परामशदाताओं के स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं था।

सारांश

१९५ के भारत सरकार अधिनियम का भारत का राष्ट्रवादी उद्योग ने तीव्र विरोध किया और उसे एक प्रतिगामी कानून बताया। इस अधिनियम ने वास्तविक सत्ता भारतीय जनता को न सौंपकर ब्रिटिश अधिकारियों को ही हाथों में रखने दी। उसने केंद्र में द्वय कार्यपालिका की पुनः स्थापना करके प्राथमिक उत्तरदायी शासन का सूत्रपात किया और एक मजबूत भारतीय सभ की स्थापना का प्रस्ताव किया। प्रांतों में उसने द्वय शासन प्रणाली का उत्पादन कर दिया और प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की जिसके ऊपर कई कठोर प्रतिबंध लग हुए थे। सभिय सिद्धान्त के अनुरूप ही अधिनियम ने तीन सूचियों में केंद्र और प्रांतों के बीच शक्ति का विभाजन रूप से वितरण किया। इसका अलावा उसने एक सभिय कार्यपालिका की स्थापना के लिए उपबंध किया।

१९३५ के अधिनियम के अधीन प्रस्तावित मजबूत भारतीय सभ में सभदाता की समस्त प्राथमिक विशेषताएँ पाई जाती थीं लेकिन कुछ दृष्टियों से वह बिल्कुल बेजोड़ था। भारतवर्ष में उसका चारों ओर से विरोध किया गया और उसे प्रतिश्रियावाद की शक्तियों को सुदृढ़ करने का एक प्रयास बताया गया। सभ के निर्माण की सहायता प्रक्रिया के अलावा एकत्रों में किसी प्रकार की स्वरूपता नहीं थी। प्रस्तावित सभ प्राथमिक रूप से लोकतन्त्रात्मक प्रांतों के स्वैच्छाचारी ढंग से शासित राज्यों का एक अस्वाम्यात्मिक गठन बन जाने का था। प्रांतों और राज्यों के सम्बंध में सभिय सरकार को समान सत्ता प्राप्त होने की नहीं थी। प्रांतों का सभ में स्वन ही सम्मिलित होने का था लेकिन राज्यों का प्रवेश उनके शासकों की इच्छा पर निर्भर था। सभिय विधान मण्डल के उच्चसदन में प्रस्तावित सभ के अवयवों एकत्रों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया और उनके प्रतिनिधि शासकों द्वारा मनोनीत होने का था। स्वयं सभिय विधान मण्डल के लिए ही बिलक्षण गौरव का प्रस्ताव किया गया। उसका निम्न सदन पराक्ष रीति से निर्वाचित होने का था।

प्रस्तावित सभिय कार्यपालिका द्वय होने की थी। प्रतिरक्षा वैशेषिक मामलों प्राथमिक मामलों और कबाइनी इलाकों की सरलित विषय माना गया था। इसका

शासन प्रबंध गवर्नर जनरल नीत कायकारी परिपदों की सहायता से करने को था। शेष विषयों का शासन प्रबंध गवर्नर जनरल उन मंत्रियों की सहायता से करने को था जो विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी थे। लेकिन मन्त्रीय क्षत्र में भी गवर्नर जनरल व कई एम विशेष उत्तरदायित्व थे जिनका प्रबंध करने में वह अपने व्यक्तिगत नियुक्तियों को प्रयोग कर सकता था। इस प्रकार गवर्नर जनरल किसी प्रकार एक वधानिक शासन नहाने था। कायकारी, विधायी और वित्तीय क्षत्रों में वह विशाल सामन्तिक शक्तियों का उपयोग करता था।

संघीय विधान मण्डल द्विसनात्मक होने का था। उच्च सदन (राज्य परिषद) में २६० सदस्य होने को था जिसमें १०४ सदस्य राज्या का प्रतिनिधित्व करने को थे। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों में से ६ तो गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होने को थे और शेष १५० सदस्य साम्प्रदायिक और वग निर्वचक मण्डलों के द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होने का था। निम्न सदन (संघीय सभा) के सदस्यों की संख्या ३७५ निर्वाचित हुई थी। ब्रिटिश भारत के २५० सदस्य परोक्ष रीति से निर्वाचित होने को थे। संघीय विधानमण्डल प्रभुत्व शक्ति विरहित कानून निर्माता निकाय था। उसकी विधायिका और वित्तीय सहायता गवर्नर जनरल की विशेष शक्तियों के अधीन थी।

संघीय न्यायालय में जिसका उद्घाटन १ दिसम्बर १९३७ को हुआ, एक मुख्य न्यायाधीश और छह दूसरे न्यायाधीश सम्मिलित थे। उसे प्रारम्भिक अपीलीय और परामर्शीय क्षत्राधिकार प्राप्त थे। शक्ति वह सर्वोच्च न्यायालय नहीं था क्योंकि उसके पास से अपीलें त्रिणी कौंसिल की न्यायिक समिति के पास भेजी जा सकती थीं।

१९३५ के अधिनियम ने प्रान्ता का एक नया वधानिक स्टेटस प्रदान किया जिसे प्रांतीय स्वायत्तता के नाम से सम्मिहित किया गया। इसके दो अर्थ थे—(क) प्रान्तीय सरकारों को अपने उचित शक्ति क्षेत्र में केंद्रीय सरकार के नियंत्रण से मुक्ति प्राप्त हो और (ख) प्रांतीय पुरे पमाने पर उत्तरदायी शासन की स्थापना हो। लेकिन ब्रह्मभारत प्रांतीय स्वायत्तता इन दोनों में से एक भी अर्थ में पूर्ण या सच्ची नहीं थी। केंद्रीय सरकार कई रीतियों से प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र की प्रतिशान्त कर सकती थी। इसके अलावा प्रान्ता का उत्तरदायी शासन गवर्नरों व गवर्नर जनरल की विवेक शक्तियों के कारण अत्यंत सीमित हो गया था।

गवर्नर जनरल की तरह प्रांतीय गवर्नर भी सामन्तिक शासन था। उसे पक्षीय स्वविवेक शक्तियाँ और विशाल उत्तरदायित्व प्राप्त थे। कायकारी विधायी और वित्तीय मामलों में वह कई अवसरों पर अपने विवेक के अनुसार आचरण कर सकता था। अपने निवेदाधिकार का प्रयोग कर और आध्यात्मिक गवर्नर के अधिनियम जारी करके वह विधान मण्डल की इच्छा का अवरोध कर सकता था।

गवर्नर प्रान्त का प्रशासन मंत्रिपरिषद् की सहायता और मन्त्रणा से करता था साधारणतः उसके यह धारणा की जाती थी कि वह अपने मंत्रियों की मन्त्रणा के

अनुसार कार्य करेगा। लेकिन यदि गवर्नर को यह मान होगा कि मंत्रियों द्वारा दी गई मंत्रणा का उसके किसी विशेष उत्तरदायित्व के ऊपर प्रतिबन्ध प्रभाव पड़ता है उस दशा में वह अपने व्यक्तिगत नियम का प्रयोग कर सकता था। मंत्री सामूहिक रूप से प्रांतीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थे। लेकिन य गवर्नर के द्वारा भी अवश्य विचार जा सकते थे उदाहरणार्थ सिन्ध के प्रधान मंत्री श्री ० श्री ० अनाबसाही को वहाँ के गवर्नर ने पदच्युत कर दिया था। यह उत्तरदायी शासन की प्रवृत्ति थी।

प्रांतीय विधान मण्डल को प्रांतीय सूची के विषयों पर भी कानून बना सकता था लेकिन इसमें एक शर्त थी और वह यह कि प्रांतीय विधानमण्डल द्वारा पारित किया गया कोई कानून यदि केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा उसी विषय पर पारित किए गए किसी कानून के प्रतिकूल पड़ता तो उस स्थिति में केन्द्रीय विधान मण्डल द्वारा पारित किया गया कानून ही अन्तिमारी हो सकता था। प्रांतीय विधानमण्डल में सर्वशक्तिमत्ता गवर्नर की विशेष शक्तियों द्वारा मर्यादित थी। १९५५ के अधिनियम ने प्रांतीय मताधिकार को विस्तृत कर दिया और मतदान का अधिकार ब्रिटिश भारत का १४ प्रतिशत जनसंख्या को प्रदान किया।

यह सरकार ने अधिनियम न कुछ ही औपचारिक परिवर्तन किए। भारतीय परिषद का उपादन कर दिया गया और भारतीय मंत्री की सहायता के लिए छ से अधिक व तीन सभ्य पुराने परामर्शदाता नियुक्त किए गए।

यह स्मरण है कि प्रस्तावित सभ की स्थापना नहीं की गई और १९३५ के अधिनियम का केवल प्रांतीय भाग ही १ अप्रैल १९३७ को कार्यरूप में परिणत किया गया।



प्रान्तीय स्वायत्तता पर आचरण

६० निर्वाचन (फरवरी १९३७)

प्रातीय स्वायत्तता का उदघाटन— पिछले अध्याय में दस छुके हैं कि १९३५ के भारत सरकार अधिनियम का भारतीय लोकमत के सभी महत्वपूर्ण वर्गों ने निरस्कार किया। अधिनियम द्वारा प्रस्तावित अखिल भारतीय सभ ने व्यापक विरोध को जन्म दिया। १९३० में ब्रिटिश सरकार के अनुशासित दासों, अर्थात् देशी नरेशों ने सघीय विचार का जोर शोर से अनुमादन किया था लेकिन अब उन्होंने भी उसकी ओर से पीठ मोड़ ली। फलतः अधिनियम के सघीय भाग को स्थगित कर दिया गया क्योंकि अखिल भारतीय सभ की रचना उस समय तक सम्भव नहीं थी जब तक कि कम से-कम इतने राय जिनकी जनसंख्या सब राज्यों की कुल जनसंख्या की आधी हो और जो सघीय विधानमण्डल के उच्च सदन में समस्त राज्यों के लिए निस्थापित कुल स्थानों में कम से कम अर्द्धांग के अधिकारी हों, उसमें प्रविष्ट न हो जाए। भवसर घाने पर नरेशों ने अपने भाग्य को शपथ भारत के साथ सद्बुद्धि करना अस्वीकार करके सघीय योजना की हत्या कर डाली। फिर भी अधिनियम के भाग ३ को (जो प्रातीय शासन से सम्बन्ध रखता था) कायरूप में परिणत किया गया और फरवरी १९७ में प्रातीय विधानमण्डल के लिए सम्पूर्ण होने वाले साधारण निर्वाचनों में पश्चात् उसी वर्ष पहला अग्रल को नवीन सविधान में निर्दिष्ट प्रान्तीय स्वायत्तता का उदघाटन किया गया। जुलाई १९३५ अब कि अधिनियम पास किया गया था और फरवरी १९७ के बीच में निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण मतदाता-सूचियों की तयारी तथा प्रान्तों और केन्द्र के वित्तीय सम्बन्धों की आवश्यक अग्रल-अग्रल की प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ पूरी कर ली गईं।

नवम्बर १९३५ के सम्पूर्ण अधिनियम के विरुद्ध भी लेकिन उसने नए सविधान को नष्ट छष्ट करने के उद्देश्य से निर्वाचनों में भाग लेने का निश्चय किया। मुस्लिम लीग ने सभ को तो अस्वीकार कर दिया लेकिन निर्वाचनों में प्रान्तीय विधान मण्डलों के लिए अपने प्रत्याशियों सभे करना तय किया। उदारवाणियों ने अधिनियम के सीमित उप-बाधों का तीव्र विरोध किया लेकिन वे नए सविधान की एक बार अच्छी तरह से जांच कर लेने में थके। इस प्रकार निर्वाचनों के दौरान में भारत का प्रत्येक राज-नीतिक दल मदान में उपस्थित था।

निर्वाचन-परिणाम—निर्वाचन के परिणाम महत्वपूर्ण थे। छह प्रान्तों (मद्रास बिहार बम्बई पू० पी० सी पी और उड़ीसा) में जिनमें ब्रिटिश भारत की दो विहाई जनसंख्या का जाती थी कांग्रेस ने पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। भासाम में उसने

१०८ स्थानों में से ३५ पर अधिकार कर लिया और वह सबसे शक्तिशाली दल के रूप में अवतरित हुई। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में काँग्रेस की ५० में से १९ स्थान मिले। मुस्लिम लीग समस्त प्रांतों के ४०० मुस्लिम स्थानों में से केवल ५१ ही प्राप्त कर सकी।

६१ पद ग्रहण

काँग्रेस में मतभेद—निर्वाचनों के पश्चात् काँग्रेस के सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि पद ग्रहण किया जाय या नहीं। छ प्रांतों में तो उगता पूरा बहुमत था और छ प्रांतों में तो कुछ में बहुमत मंत्रिमण्डल बनाने की स्थिति थी। काँग्रेस का वामपक्ष काग्रमी मंत्रिमण्डलों की रचना का पक्ष प्रोत्साहित था। जवाहरलाल नेहरू ने यहाँ तक कह दिया कि पदग्रहण उस ध्येय के प्रति विश्वासघात होगा जिसे हमने स्वीकार किया है। मुन्नाय बोस के मतानुसार पदग्रहण पराक्रम की स्वीकारोक्ति के तुल्य था। काँग्रेस के समाजवादी और साम्यवादी गुटों ने सभ्य के काँग्रेस का समयन किया लेकिन बहुमत दक्षिणपक्षियों का था। जिनके उक्त सरकार पञ्च राजगोपालचारी और राज प्रसाद थे। दक्षिणपक्षियों को न्यायवादी भी भी मौन समयन प्राप्त था। मार्च १९३७ में दिल्ली में काँग्रेस महासम्मेलन की बैठक हुई। उसमें दक्षिणपक्षियों ने वामपक्षियों को बहुमत स हरा दिया और अन्तिम रूप से यह निश्चय किया गया कि उन प्रांतों में जहाँ विधायकमण्डलों में काँग्रेस का बहुमत है और जहाँ काँग्रेस दल के नेता को इस बात का सुस्पष्ट आश्वासन मिल जाय कि गवर्नर मंत्रियों के वामपक्षीय कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेगा काग्रमी मंत्रिमण्डल बनाया जा सकता है।

काँग्रेस द्वारा गवर्नरों से आश्वासन की माँग—काँग्रेस इस परम्परा का विकास करना चाहती थी कि गवर्नर की विशेष शक्तियों के सम्बन्ध में भी मंत्रियों की मन्त्रणा पर आचरण होना चाहिए। काँग्रेस ने साफ साफ शर्तों में यह माँग की कि गवर्नरों को उस समय भी जब कि सविधान के अधीन उनसे यह अपेक्षा की जाती हो कि वे व्यक्तिगत विवेक के अनुसार काय करें मंत्रियों के परामर्श पर ही काय करना चाहिए। चूंकि गवर्नर उक्त आश्वासन देने के लिए तैयार नहीं हुए अतः जिन्होंने प्रांतों में काँग्रेस का बहुमत था वहाँ के विधायकमण्डल के काँग्रेस दल के नेता ने मंत्रिमण्डल बनाने का प्रारम्भ प्रस्तावित कर दिया। प्रिटिक मंत्रिमण्डलों ने यह दृष्टि बिन्दु ग्रहण किया कि इस प्रकार का आश्वासन सविधान में संशोधन किए बिना नहीं किया जा सकता था इसके विपरीत महात्मा गांधी ने कहा कि सविधान में एसे कोई चीज नहीं है जो गवर्नरों को अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग मंत्रियों के परामर्श पर करने से रोक्ती हो। उनका मत था कि १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत आवश्यक अमि समय विश्वासित किए जा सकते हैं। चूंकि इस बात विवाद ने कानूनी रूप धारण कर लिया था अतः बहुत से प्रसिद्ध विधिवेत्ताओं ने इसमें भाग लिया। प्रख्यात विधानशास्त्री प्रो० कोय ने काँग्रेस के दृष्टिकोण का समयन किया।

अन्तरिम मन्त्रिमण्डल—जिस समय यह वाद विवाद चालू था और छ प्रान्तों में काग्रस न पत्र ग्रहण करना अस्वीकार कर लिया, गवार्नों ने अल्पसंख्यक दलों के नेताओं द्वारा निर्मित मन्त्रिमण्डलों की प्रतिष्ठापित कर दिया। ये अलोकप्रिय मन्त्रिमण्डल विधान मण्डल का सामना नहीं कर सकते थे और न ही अपने बजट पास करा सकते थे। गतिरोध तीन महीने तक चलता रहा। धीरे धीरे दोनों विरोधी पक्षा (सरकार और कांग्रेस) ने अपने दृष्टिकोण को नरम किया।

समझौता—जलाई में गवार्न जनरल ने यह घोषणा की कि भारतीय जनता मुझ पर इस बात का भरोसा रख सकती है कि मैं भारत में समन्वय गठन का सिद्धांतों की पक्ष और चरम स्थापना का विरोध करने का वादा करूंगा। यद्यपि कोई स्पष्ट वचन तो नहीं दिया गया लेकिन जाड त्रिलोक्यो ने यह कह दिया था कि जिन प्रतिष्ठित क प्रशासन में गवार्न अपना विशेष शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे। वायसराय के वक्तव्य ने कोई बधानिक आधार नहीं छोड़ा।^१ जिन काग्रस ने उसका सारवनामूलक स्वर का मिश्रतायुक्त जवाब दिया। ७ जुलाई १९३३ का काग्रस काय कारिणी ने एक और नए अधिनियम से मिडल और दूसरी ओर (सामाजिक सुधार क) रचनात्मक काग्रस को चान क लिए।^२ काग्रस मन्त्रिमण्डल बनाने का ध्यान दे दी। काग्रस के यह निष्पत्ति करने पर अन्तरिम मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे लिए और काग्रसी मन्त्रिमण्डल गठन हो गए। कुछ काल पश्चात आराम और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में भी काग्रस क मन्त्रिमण्डल बन गए।

६२ कांग्रेसी प्रान्तों में प्रांतीय स्वायत्तता पर आचरण

शासकों के रूप में राजदोहरी— पत्र ग्रहण के साथ साथ कांग्रेस न मुझे भवना और कारावास के पुराने युग के स्थान पर रचनात्मक राजनीतिपना क एन नवान युग में पत्तापण किया।^३ अब तक जा राजदोहरी रहे थे, व शासक क रूप में भवतरित हुए और इस समय में उन्होंने अपने नौररशाहा विरोधियों गवार्नों और धार्मिक एन० पत्रकारियों के साथ मित्रता का काम किया। आठ प्रान्त म कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल उस समय तक गठन रहे जब तक कि विनायक विश्वमुद्ध क मूवपात पर उन्होंने त्यागपत्र नहीं दे लिए।

गवार्नों का नियत काम विशेष शक्तियों का यथा कदा प्रयोग—कांग्रेसी नेताओं का यह मय कि गवार्न अपनी विशेष शक्तियों का अत्यधिक प्रयोग करेंगे कुछ प्रतिशयोक्ति सा सिद्ध हुआ। यह भी नहीं है कि गवार्न बधानिक प्रधानमात्र हो गए हों। वे सत्रिय शासक बने रहे। यदि उनमें और मन्त्रियों में मतभेद होने के बहुत कम अवसर आए तो इसका अर्थ उन दोनों को ही समान रूप से जाता है। मन्त्रियों और

१ कृपलण्ड—'इण्डिया ए रिस्टटमेंट' पृ० १५६।

२ जवाहरलात् नेहरू—'दी यूनिटी ऑफ इण्डिया' पृ ५६।

३ पट्टामि सीतारामय्या—'दा हिस्ट्री ऑफ दी नेशनलिस्ट मूवमेंट' पृ ६०।

गवर्नरो दोनो ने ही प्रत्यन्त सतर्कतापूर्वक जाय किया। रक्षा-व्यय रद्द नहीं किए गए। वे सर्व ही मंत्रियों और गवर्नर के याद विधानों की गृह्यभूमि में रहने थे। कई अवसरों पर उनका प्रयोग भी किया गया। १९३८ के प्रारम्भ में यू० पी० और बिहार में राजनीतिक कठिणों को मुक्त करने के प्रयत्न पर मंत्रियों और गवर्नरों के मतभेद उत्पन्न हो गया। गवर्नर जनरल ने सचिवालय की धारा १२६ के अधीन सम्बद्ध गवर्नरों को यह अनुज्ञेय दे दिया कि वे अपने मंत्रियों को मात्राया को न माँगे क्योंकि इससे अग्रत और चत बनाए रखने के उसका विशेष उत्तरदायित्व पर असर पड़ता है। इस पर मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिए लेकिन प्रतीतिवा यह गतिरोध समझौते की बातचीत के द्वारा तय हो गया। सत्तापजनक हृत् खोज निश्चयित गया और मंत्रिमण्डलों ने पुनः काम सम्हाल लिया। उन्नीस में इसी प्रकार का मकड़ एक प्रधानस्थ नौकरशाही पदाधिकारी की गवर्नर के पक्ष पर नियुक्ति को उभर उठ गया हुआ लेकिन स्थिति को स्थायी गतिरोध का रूप धारण करने से रोक लिया गया। व्यवस्थापन के क्षेत्र में गवर्नरों ने केवल चार बार ही नियन्त्रणकारी का प्रयोग किया।

कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की शक्ति—यह स्मृतव्य है कि कांग्रेसी प्राथमिक प्रांतीय स्वायत्तता का तुलनात्मक रूप में सफलता का कारण विधानमण्डलों के वीर्य दल की शक्ति और अनुशासन था। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों को जिस विशाल बहुमत का समर्थन प्राप्त था गवर्नर उसकी मूर्खता को समझने थे और निपट दूरदर्शिता के कारण वे लोकतन्त्र की शक्तियों के साथ रोज रोज के सघर्षों से बचने के लिए बाध्य थे।

केन्द्रीय कांग्रेस का नियन्त्रण—कांग्रेस दलों की अनुशासित शक्ति का कारण केवल उनका स्थायी बहुमत ही नहीं था अपितु केन्द्रीय कांग्रेस संगठन और उसके ससदीय बोर्ड का एकात्मक नियन्त्रण भी था। कूपलण्ड के मत में कांग्रेस की एकात्मक नीति प्रांतीय स्वायत्तता और उत्तरदायी शासन का उत्पन्न करती थी।^१ उसका कथन है कि कांग्रेस मंत्रिमण्डल सम्बद्ध विधान मण्डलों के प्रति इतने उत्तरदायी नहीं थे जितने कि कांग्रेस केन्द्र के प्रति। इसके विपरीत कांग्रेस का विचार यह था कि ससदीय बोर्ड के प्रभाव ने स्वयं राष्ट्रीय दृष्टिकोण का संचार किया और सङ्कुचित प्रांतीयता की वृद्धि को रोकता।

कांग्रेस-मंत्रिमण्डलों की सफलताएँ—अपनी पदरुद्धि के घट्टाईस महीनों में कांग्रेस ने कतिपय ऐसी सफलताएँ प्राप्त की जिन पर वह गवर्नर सकती थी।^२ सामाजिक सुधार के क्षेत्र में उन्होंने निर्वाचन घोषणा पत्र में दिए गए वचनों को पूरा करने की चट्टा की। खेतहारा की जमींदारों के भ्रष्टाचारों से रक्षा हो सके और वे ऋणप्रस्तता से छुटकारा पा सके इसके लिए कई प्रांतों में एक से सुधार हुए। शिक्षा

१ कूपलण्ड— इण्डिया ए रिस्टेटमेंट पृ० १६१।

२ उपयुक्त पुस्तक पृ १६१।

के क्षेत्र में ५०० बी० आर बिहार में प्रशासनीय सरकारी हुई। इन प्रांतों में प्रशासना के उद्देश्य के लिए महात्मा गांधी की बुनियादी तालीम की योजना को अपनाया गया। कांग्रेस-मंत्रिमण्डल ने ग्राम पुनर्गठन कुटीर उद्योगों व विकास और ग्राम-संस्थापना के पुनर्स्थापन की ओर भी ध्यान दिया। हरिजनों की दशा में सुधार करने के भी प्रयास किए गए। कांग्रेस कार्यक्रम में मद्य निषेध का मुख्य स्थान प्राप्त था। इस सुधार व पूर्ण प्रवर्तन का अभिप्राय यह था कि १८ करोड़ रुपयों के राजस्व का बलिदान कर दिया जाए। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत का नीरस कर देने की नीति एक ही छलांग में कार्यान्वित नहीं की जा सकती थी तथापि लगभग सभी कांग्रेस प्रांतों में इस नीति का शीघ्रगोचर कर दिया गया। बम्बई और मद्रास ने इस निष्ठा में नेतृत्व ग्रहण किया। अंत शुल्क राजस्व की हानि का विचार करके राजस्व को नये स्रोतों की उद्भावना करके और प्रशासन के व्यय में कमी करके पूरा किया गया।

६१. गर फा. प्रसी प्रा. तो में प्रांतीय स्वायत्तता

उत्तरदायी शासन में गवर्नरों के हस्तक्षेप के अन्तर्गत—गर कांग्रेसी प्रांतों की हालत इतनी भ्रष्ट नहीं थी। पंजाब को छोड़कर जहाँ यूनिवर्सिटी मंत्रिमण्डल न स्थायी शासन का निर्माण किया था शेष प्रांतों के मंत्रिमण्डल दुबल और अस्थायी थे। गवर्नरों के स्व-अधिकारी व्यवहार के उदाहरण राज राज करने की मिलते थे। अक्टूबर १९४२ में मद्रास में गवर्नर ने मुख्यमंत्री खानबहादुर अलावुद्दीन का इस आधार पर पदच्युत कर दिया कि वह उसका विश्वास भंग नहीं थे। यह उत्तरदायी शासन के सिद्धांतों के संघर्ष विरुद्ध था क्योंकि पद युक्ति के समय मुख्यमंत्री को विधान मण्डल का समर्थन प्राप्त था। जुलाई १९४३ में बंगाल के मुख्यमंत्री फजलुल हक को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य किया। मुख्यमंत्री ने बाद में इस बात की शिकायत की थी कि, गवर्नर सम्पूर्ण विचार विनिमय पर एकाधिकार कर सता था और अपने मंत्रियों पर अपने नियंत्रण साद देता था। बंगाल के एक वकील डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने दिन प्रति दिन के प्रशासन में गवर्नर के हस्तक्षेप के कारण अपने पद से त्याग-पत्र देना आवश्यक समझा।

सारांश

१९५५ के अधिनियम का प्रांतीय भाग १ अप्रैल १९३७ को प्रवर्तन में आया। संघीय निर्वाचनों में जो उच्च पद परवरी में सम्पन्न हुए थे प्रांतों में कांग्रेस ने पूर्ण बहुमत प्राप्त किया और दो प्रांतों में वह सबसे अधिकशक्ति दलों के रूप में अवतरित हुई।

पद ग्रहण के प्रश्न पर कुछ मतभेद था। तिन प्रांतों में कांग्रेस का बहुमत था वहाँ उसने उच्च संसद तक मन्त्रिमण्डल बनाना अस्वीकार कर दिया जब तक कि गवर्नर

यह भाषवासन 'दे दें कि वे अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग मंत्रिया की मात्रणा पर नहीं करेंगे। गवर्नर ने इस प्रकार का वचन आशुतोष टिक्कार कर दिया। पत्र-कोषित दलों के नेताओं ने मंत्रिमण्डल बनाने के सामान्यतः को ठहरा दिया। इन प्रांतों में अंतरिम मंत्रिमण्डल को प्रतिस्थापित किया गया। जुलाई में काँग्रेस लाला और सम्बद्ध गवर्नरों के एक सम्मेलन के परिणामस्वरूप यह गतिरोध पूरा हो गया। फरवरी काँग्रेस ने छः प्रांतों में और बांग्ला में आठ प्रांतों में शासन-मंत्र को सम्हाल लिया।

काँग्रेसी प्रांतों में प्रांतीय स्वायत्तता को पर्याप्त सशक्तता प्राप्त हुई। गवर्नर वधानिक शासक तो नहीं बन सके। उन्होंने अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग बहुत कम अवसरों पर किया। मर काँग्रेसी प्रांतों में जिनमें पन्ना आदि या स्थिति दूसरी रही। इन प्रांतों में गवर्नर ने नित्य प्रांतिक शासन में हस्तक्षेप किया।



महायुद्ध और वैधानिक गतिरोध

६४ भारत और महायुद्ध

वायसराय द्वारा भारत के युद्ध-प्रस्त होने की घोषणा—३ सितम्बर १९४९ को द्वितीय विश्वयुद्ध का ज्वालामुखी फूट पड़ा। इस विस्फोट ने भारत में एक गम्भीर वैधानिक संकट उत्पन्न कर दिया। इंग्लण्ड ने नाजो जर्मनी के विरुद्ध लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लक्ष्य की घोषणा करके हथियार उठाये। वायसराय ने भारतीय जनता के उन प्रतिनिधियों को जो कांग्रेसी अथवा प्राचीन विधान मण्डलों में थे बिना किसी प्रकार की सूचना दिए अथवा उनसे बिना किसी प्रकार की पत्राचार किए ही यह घोषणा कर दी कि भारत भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल है।

महात्मा गांधी का दृष्टिकोण—महात्मा गांधी को वायसराय ने एक इण्टरव्यू के लिए आमन्त्रित किया। महात्मा जी ने कहा कि मेरी अपनी सहायुष्मति तो इंग्लण्ड और फ्रांस के साथ है लेकिन उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह बात उन्होंने व्यक्तिगत रूप में कही थी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में नहीं। कुछ समय बाद उन्होंने हरिजन में लिखा कि कांग्रेस को जो भी सहायता दी जाए, वह बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिए।^१

कांग्रेस की प्रतिक्रिया—कांग्रेस के ऊपर इसकी दूमरी प्रतिक्रिया हुई। जिस अलोकतन्त्रात्मक ढंग से भारत को युद्ध में भेज दिया गया था, उसका कारण ने तीव्र विरोध किया। एक ऐसे उद्देश्य के लिए जो उसका अपना नहीं था एक ऐसे भण्डे के नीचे जिसमें उसका अपना भण्डा गिरा दिया था और ऐसे नतामों की अधीनता में जो उसका अपने नतामों से सलाह लेना नहीं चाहते थे—भारत को क्या नतिक उल्लाह होता वह क्या सहायता प्रदान करता ?^२ जिस समय अप्रैल १९३० में भारतीय सैनिकों की एक टुकड़ी अफगान में भेजी गई थी कांग्रेस ने सरकार को चेतावनी दे दी थी कि वह भारतीय जनता की सहमति के बिना भारत के ऊपर युद्ध घोषित और भारतीय सैनिकों के युद्ध में प्रयोग की समस्त चेष्टाओं का प्राण पण से विरोध करेगी।^३ सरकार ने इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया तथा अगस्त में और अधिक भारतीय सैनिकों को सिंध और सिंगापुर भेज दिया। इनके

१ दो हरिजन २३, सितम्बर १९३९।

२ पत्राभि सीतारामय्या— दो हिस्ट्री पाव दो कांग्रेस भाग २ पृ०

विरोधस्वरूप का प्रस्ताव ने अपने समस्त सभ्यों को बे शीघ्र विधान-मण्डल से हटा दिया और प्रांतीय वायसी मंत्रिमण्डलों को प्रायः दिया कि यह ब्रिटिश सरकार की तयारियों में किसी प्रकार स कोई सहायता न दें । ^१

कांग्रेस का प्रस्ताव १४ सितम्बर १९३६—लकिन इन सबके बावजूद भी जब भारत को युद्धप्रस्तुत घोषित किया गया भारतीय विधान मण्डलों से किसी प्रकार की मन्त्रणा नही की गई । ' अपनी सहमति के बिना और अपने प्रतिनिधियों के अनुमोदन के बिना भारत के लायो स्त्री-पुरुषों ने स्वयं को युद्धप्रस्तुत पाया । ^२ ब्रिटिश संसद को उस सशोधन अधिनियम के पास करने में जिसने कि भारतीय जनता की स्वतन्त्रताओं को कुचलने के लिए उसके ब्रिटिश शासकों के हाथों में मयकर ध्यापक शक्तियाँ सौंप दीं केवल ११ मिनट का समय लगा । कांग्रेस ने अपने दृष्टिकोण को जवाहरलाल द्वारा तयार किए गए और १४ सितम्बर १९३९ को पास किए गए वायसमिनि के प्रस्ताव में स्पष्ट किया । कांग्रेस ने उस मनमाने ढंग के ऊपर क्षोभ व्यक्त किया जिसमें कि ब्रिटिश सरकार एक एसी लड़ाई में जो कि भारत की अपनी नही थी भारत को घनीट ले जा रही थी । कांग्रेस ने यह साफ साफ कह दिया कि वह फासिम के विरुद्ध है और उस उद्देश्य की जिसको नेत्र इगलण्ड और फासिम में प्रविष्ट हुए हैं प्रशंसा करती है । जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था हम नाजियों की विजय नही चाहते थे और हमारी सहानुभूति पूणत उनकी ओर थी जिनके ऊपर आक्रमण किया गया था । ^३

युद्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट करने की मांग—लकिन हमें पूव कि भारत लोकतन्त्र की सहायता करता भारत में लोकतन्त्र की स्थापना होनी आवश्यक थी । हमारे आदेश पर स्वयं पराधीन के (भारतीय) दूसरों की स्वतन्त्र करने के लिए उसे सप्राप्त करते । ^४ कांग्रेस प्रस्ताव ने ब्रिटिश सरकार से यह मांग की कि वह अपने युद्ध के उद्देश्यों को साफ साफ बतना दे और पूछा क्या इन उद्देश्यों में साम्राज्यवाद का उ मूलन शामिल है ? क्या ब्रिटिश सरकार भारत के प्रति एक ऐसे स्वतन्त्र राष्ट्र का सा जिसकी नीति अपनी जनता की इच्छाओं के अनुसार संचालित हो प्यार करने के लिए तयार है ? कांग्रेस की मांग थी कि यदि इगलण्ड स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की रक्षा करने के लिए लड़ाई लड़ रहा है तो उसे भारत में भी स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की स्थापना करनी चाहिये । हमारे लिए स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नही हो सकता यदि वह स्वयं हमें ही प्राप्त नही है । ^५ कट्टु अनुभवों ने उसे सिखा दिया था कि ब्रिटिश सरकार या

१ 'एण्डियन एनुमल रजिस्टर १९३६' पृ० २१४ ।

२ एच० एन० ब्रेत्सफोर्ड— सजबट इण्डिया पृ० ५३ ।

३ जवाहरलाल नेहरू— दी यूनिटी ऑफ इण्डिया, पृ० ३६१ ।

४ एच० एन० ब्रेत्सफोर्ड— वही पृ० ५४ ।

५ जवाहरलाल नेहरू— दी यूनिटी ऑफ इण्डिया, पृ० ३१४ ।

भारत सरकार के युद्धकालीन वचनों या वक्तव्यों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।' फ्रेंच कांग्रेस ने मांग की कि इंग्लण्ड को चाहिए कि वह भारत को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दे। इस मांग का भाष्य यह था कि भारत को युद्ध के पश्चात् अपना मन्दिबान बनाने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए और ब्रिटिश नैजीयती के प्रमाणस्वरूप तुरन्त ही लोक शासन की स्थापना होनी चाहिए। किसी भी घोषणा की वास्तविक कसौटी उसका वर्तमानकालीन उद्योग है।' कांग्रेस ने यह मांग किसी सौदागरी का भावना से अनुपाणित होकर नहीं की थी और न वह इंग्लण्ड की बटि नार्ड से अपना मतलब निकालने के लिए ही उत्तुङ्ग थी। भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा इसलिए आवश्यक थी कि भारत की जनता को उस सड़ाई के बारे में जा कि उसकी अपनी नहीं थी उरसाह पदा हो जाए। यदि सरकार ने ऐसी घोषणा नहीं की तो यह स्पष्ट था कि लडाइ का उद्देश्य साम्राज्यवादी विरोधाधिकार को उधो का त्यो कायम रखना था इस प्रकार की सड़ाई से भारत को क्या लेना-देना था? भारत महयोग देने को इच्छु था लेकिन वह यह सहयोग बराबर के साथी की हैमियत से देना चाहता था।

उदारवादिना द्वारा कांग्रेस मांग का समझन—महा यह स्मरण है कि उत्तर वादियों ने भी कांग्रेस की मांग का समझन किया और सरकार से प्रापना की कि वह वर्तमान केन्द्रीय सरकार के स्वान पर जनता के प्रति उत्तरदाया सरकार की स्थापना करने में शीघ्रता करे।

मुस्लिम लीग का दृष्टि बिन्दु—मुस्लिम लीग भी इंग्लण्ड को बिना किसी शत के गृहयना के लिए तयार नहीं थी। वह युद्ध के उद्देश्य का घोषणा के बिच्छ नहीं थी लेकिन उसने यह स्पष्ट कर दिया था कि मुसलमानों के साथ पूरा दयाय होना चाहिये और सरकार को चाहिए कि वह उसकी राजमनी के बिना कायम को कोई माशवासन न दे।

६५ सरकार का उत्तर और कांग्रेसी मंत्रिमण्डल का त्याग-पत्र

वायसराय की मुताकाते और श्वेतपत्र—१७ फरवृबर १९२९—कांग्रेस ने सरकार से जो माशवासन मांगा था वह उस नला मिला। सम्राट भारत मन्त्रा और गवर्नर जनरल तबने बखतव्य दिए लेकिन उनके बखतव्यों में कवल पुरानो बाने दुहराई गई थी और भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न को कोई चर्चा नहीं थी। साठ मितिमणो ने मुताकातो का एक तांता शुरू किया और ५० श्वक्तियों से नोट की। उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि वे समस्त जानियों के हितों और देसी नरनों के दृष्टिकोणों को मनी भांति समझ लें। इन सब बातचीतों का जो नतीजा १७ फरवृबर १९३९ के श्वेतपत्र में प्रकानित हुआ उसस किसी को कोई भारचम नहीं हुआ। वायसराय की दृष्टिकोणों का स्पष्ट भेन सिताई गया। स्पष्ट है कि यदि कोई श्वक्ति इन मत

भेदों की साहज लिलिपियों की सी सूझबूझ के साथ शोत्र करता, तो उनकी शोत्र करने में कोई कठिनाई नहीं होनी। यह उसी धिरपरिचित पूंढासो और राग्य करो धानी नीति की पुनरावृत्ति थी। दृष्टिकोणों के इन स्पष्ट भों को देखते हुए वायसराय भारतीय देशमन्त्रों को केवल उसी बात की याचना करना चाहते थे जो कि उनके पूर्ववर्तियों ने बार बार कही थी अर्थात् भारत की उन्नति का स्वाभाविक सत्य औपनिवेशिक पक्ष को प्राप्त करना है। उन्होंने इन बातों की घोषणा की कि युद्ध की समाप्ति पर १८३५ के अधिनियम के अधीन प्रस्तावित सर्वोप सविधान में विभिन्न सम्प्रदायों दलों और स्वार्थों के प्रतिनिधियों तथा देशी नरेशों से मन्त्रणा करके उचित सशोधन कर लिया जाएगा। स्पष्ट है कि व एक सविधान समाप्त का नहीं अर्थात् दूसरी गोलमेज परिषद का वचन दे रहे थे। जहाँ तक भारत का इस मांग का सम्बन्ध था कि वेदों में उत्तरदायी शासन की स्थापना होनी चाहिये वायसराय केवल एक एसी मन्त्रणा गोष्ठी का ही आश्वासन दे सकते थे जिनके साथ वे समय समय पर युद्ध संचालन व सम्बन्ध में विचार विनिमय कर सकें।

प्रातीय कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का त्यागपत्र—वायसराय के वक्तव्यों ने किसी का सन्तुष्ट नहीं किया और विरोध का एक तूफान मचा कर दिया। उन्होंने भारत के स्वतन्त्रता और समानता के दाव को अस्वीकार करने के लिए प्रतिनियोगियों और अल्पसंख्यक वर्गों के विरोध का दण्डतापूर्वक प्रयोग किया था। भारत के राष्ट्रवाजियों ने इस दृष्टिकोण को धरने लिए अमान्यता समझा। जवाहरलाल नेहरू का अनुमान इसका अधिप्राय यह था कि 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद' का उन्मूलन के बारे में अन्तिम निष्पत्ति करना ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ही हाथ में है।' कांग्रेस कुछ कहने के लिए तैयार हो गई। उसने रोटी मागी थी उसे मिठा पत्थर। १ अक्टूबर को काय समिति ने प्रातीय कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों से कहा कि ये अपना अपना त्यागपत्र दे दें। नवम्बर में वायसराय ने सविधान की धारा ९३ के अधीन एक उद्घोषणा जारी की और उन धारा प्राप्ति में जहाँ कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिए थे परामर्श दाताओं का शासन की स्थापना कर दी।

वायसराय का परिणाम को साम्प्रदायिक रूप देना--अपने वक्तव्य द्वारा उत्पन्न किए गए तीव्र विरोध से परेशान होकर वायसराय ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनियोगियों के साथ पुनर् वार्ता शुरू की। उन्होंने अपनी कायपालिका परिषद के विस्तार करने का वचन दिया ताकि उसमें भारतीय दलों के प्रतिनिधि भी शामिल हो सकें। लेकिन इसमें एक शर्त थी और वह यह कि प्रातीय प्रश्न व धारों में सशुद्ध मन्त्रिमण्डल बनाने के सम्बन्ध में समस्त सम्प्रदायों के बीच समझौता होना चाहिए। इससे और भी उत्तम बड़े गई। यह एसी घटना थी जिसका उद्देश्य एक विशुद्ध राजनीतिक समस्या को साम्प्रदायिक रूप देना था। जैसी कि भाषा की जानी चाहिए कांग्रेस ने इस आधार पर समझौते की बातचीत करना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार गठविरोध पैदा हो गया और वह युद्ध के प्राचीनान्त बना रहा।

६६ अग्रस्त की घोषणा (१९४०)

कांग्रेस द्वारा सहयोग का प्रस्ताव--नगमग एक साल बीत गया और भारत की राजनीति में विवाध इसका कि माघ १९४० में मुस्लिम लीग ने अपने त्रिपुट्ट सिद्धांत की घोषणा की और पाकिस्तान की मांग उपस्थित की को सारभूत परिचयन नही हुआ । लडाई का हानत "गाना" क लिए बहुत खतरनाक हो गई । इनमाक में ब्रिटिश दल की पराजय और जमन हवाई बड़े द्वारा परिचायित भयकर हवाई हमला क कारण "गण" अपने इतिहास के सबसे नाजक दौर से गुजर रहा था । चम्बरान क स्थान पर बचिन प्रदान में ही हा गण थ । कांग्रेस ने पुन त्रिपुट्ट के माय सहयोग करन के लिए दास्ता का हाथ बटाया । ७ जुलाई १९४० क धरन प्रस्ताव में कायसमिति ने देश का रक्षा क लिए प्रमावताली संगठन में पूरा-पूरा सहयोग तन का नियन्त्रण किया । सहयोग क लिए कायस की शर्तें य थीं--(१) पूर्ण स्वायत्तता क लिए भारत क अधिकार की सृष्टि (२) तात्कालिक मायन के रूप में क में अस्थाया राष्ट्रीय सरकार की स्थापना ।

६ अग्रस्त का घोषणा- ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस द्वारा दयाए गए दास्ती क माय का ग्रहण करना अनाकार कर दिया । उसन बन्धीय विधान मण्डल क प्रति अनुरोध रास्ट्रीय सरकार का स्थापना करन क प्रस्ताव का अ दोकार कर दिया और दया किये करना सार सविधान का बन्धना है ता कि मुद्रान में न । सक्ता । सरकार क अया जा प्रत्या य क अग्रस्त क कायसमाय क वक्त में प्रकायित हुए । वक्त में वक्त दिया गया था कि मुद्र की समानि क पधन्य ययागीप्र भारत का श्रोतनिदेशित पद दिया जायगा और एक प्रतिनिधिक सविधान निमाता निमाय का स्थापना का जाएगी । य. स्वोकार कर दिया गया था कि नए सविधान का बनान का जिम्मारी मुख्यत भारतीयों क ऊपर हागी । यह स्पष्ट नया था कि प्रतिनिधिक सविधान निमाता निमाय का अनिप्राय पूरा विरहित सविधान समा में था अथवा तारी एक और गावभज परिपत्त में । एक अथावा इस प्रकार क निमाय का स्थापना करन क प्रस्ताव का प्राधिक सरकारों वाली याठ न उतन्नतुण कर दिया था । घोषणा में कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार ऐसे हिंसा दन का सक्ता नहीं सक्ता त्रिम दल क बड़े बड़े और शक्तिमाना तत्व मानने के लिए तयार न हों । स्पष्ट है कि अ शक्तिमाना तत्व मुस्लिम लीग दूसरे प्रतिगामी अल्पसंख्यक वर्गों क संगठन और दली नरन थ ।

जहाँ तक वनमान का सम्बन्ध था वक्त में (१) बनी हुई कायसमिति परिपद् में मुद्र भारतीय प्रतिनिधियों को सम्मिलित करने और (२) एक-एसी मुद्र सवाहकार परिपद् की स्थापना करन की क्रिसमें विभिन्न दलों के नेता क देगी अन्तों के प्रतिनिधि शामिल हा याठ कही गई थी ।

परिणाम— वायसराय के वक्तव्य में काँग्रेस को गत नही हुआ और उसने इसकी और माँग उठाकर देना से भी इनकार कर दिया। महारमा गंधी के अनुसार उसने भारत और इंग्लैण्ड के बीच की गार्ड का और चीना कर दिया। सरकार ने अल्पसंख्यक वर्गों के प्रश्न में मध्यम में जो रंग प्रकाश दिया था काँग्रेस ने उमका विशेष रूप से विरोध किया। और सरकार के ऊपर घातक बर्णना कि वह इंग्लैण्ड को भारत की उन्नति के माँग में एक दुस्तर बाधा के बजाए रही है। काँग्रेस का दृष्टिकोण यह था कि अल्पसंख्यक वर्गों का सम्मेलन भारतीयों के गुणमान के लिए थी। कांग्रेसी सरकार उसमें प्रयाचित अक्षयित टाँग घटाकर उम बंध में ही पैचीना बनाए दे रही था। मुस्लिम लोग तब न अगस्त में प्रस्ताव का प्रस्वीकार कर दिया यद्यपि भिन्न कारणों से। उसने वायसराय के वक्तव्य में विश्रित मयुक्त भारत के विचार का विरोध किया और कहा कि भारत का विमान ही समस्या का एकाग्र हन है। उसने इस बात पर भाष्य किया कि उसकी सम्मति के बिना काँग्रेसी नावी सविधान अन्तरिम या अंतिम निर्मित नहीं हाना चाहिए और वायसराय के परिपत्र के सिद्धांत का पुनर्निर्माण में उमके और काँग्रेस के बीच में ५०-५० के विधान को लागू किया जाना चाहिए। २ दम प्रकार रिजिश्न सरकार की नीति में साम्प्रदायिक समस्या का और भी उभरा दिया तथा काँग्रेस कायसमिति की सम्मति में वल्लु गुह कलह और संधय के लिए प्रत्येक प्रास्ताहन के उत्तरना थी।

६७ अक्षितगत सत्याग्रह

काँग्रेस का असहयोग पर वापस आना—अगस्त प्रस्ताव उठाकर उमाल ने ६ और सी० राजगोपालाचारी गत नेताओं के क्रिया कलाप के लिए गत भारत की प्रतिरक्षा में मन्त्रिय सहयोग चाहते थे और जिनके नतृत्व में काँग्रेस ने पल्लु महात्मा गांधी के युद्ध प्रयत्न सम्बन्धी शांतिवादी और अमर पाण के प्रस्वीकार कर दिया था एक प्रतिघात था। अब पुन काँग्रेस ने महात्मा गांधी के मागदर्शन के लिए अमर प्रत किया। गांधीजी ने वायसराय से प्राथना की कि वह उम दम की जनता का भारत के युद्ध प्रयत्न में सहायता देन से राखने का स्वतन्त्रता दें। वायसराय ने इस प्रस्वीकार कर दिया। फलत महात्मा गांधी ने सामिन्त पमाते पर ७ अक्षितगत सत्याग्रह आदोउन प्रारम्भ किया।

अक्षय प्रतीकात्मक विरोध—सत्याग्रह का शासन अक्षय गतिक विरोध की अमिष्यतिन था। उसका लक्ष्य ब्रिटिश सरकार को अक्षय करना अथवा किसी भी प्रकार घुरी राष्ट्री का सहायता देना नही था। इस सत्याग्रह में अक्षय के पालन पर विशेष बन्त किया गया और सामिन्त वायसराय को प्रत्येक रूप में निषिद्ध कर दिया गया। केवल युद्ध छोड़े हुए सत्याग्रहियों की ही यह दुहरान हुए कि जन या घन से ब्रिटेन के

१ इण्डियन एनुअल रजिस्टर—१९४ पृ १९६।

२ कूपलण्ड— इण्डिया ए रिस्टमण्ट पृ २०२।

युद्ध प्रयत्न में सहायता देना गलत है' सत्याग्रह करने की अनुमति दी गई। पत्रों के मुख्यमन्त्री सर सिक्न्दर ह्याट रॉ ने महात्मा गांधी के ऊपर आशय किया कि जिस समय इंग्लण्ड अपने जीवन मरण के संधर्ष में निरत है, व उसकी पीठ में छुरा मोंक रह है। तबिन वास्तविकता यह है कि सत्याग्रह आन्दोलन का स्वस्व केवल प्रतीकात्मक ही था। जिन समय अग्रज जाति भरन जीवन मरण का झूठा मून रही थी काँग्रेस न उमक ऊपर कठोर आघात करना अनतिक समझा और बहुत हका आघात किया।^१ फिर भी मई १९४१ तक लगभग १४००० सत्याग्रही जल पट्टे व गए।^२ इनमें छ प्रांतो व भूतपूर्व मुख्य मन्त्री २९ मन्त्री और २९० प्रांतीय विधान मण्डल व सन्स्य थ।^३

६८ कायपालिका परिषद का विस्तार और आशिक भारतीयकरण

महत्वशून्य उपाय—राष्ट्रवाणी भारत का भाषों की आर ध्यान न देते हुए वायसराय न जुलाई १९४१ में अपनी कायपालिका परिषद् में पांच मन्स्य और शामिल कर लिए। पहले उसम वायसराय सहित आठ सन्स्य थ अब बढ़कर छरह हो गए। जिन नए पांच सन्स्यो को नियुक्त किया गया था व भारतीय थ। इस प्रकार अब कायपालिका परिषद् में भारतीयों का कुल सन्स्य सत्ता आठ हा गई। तबिन कायपालिका परिषद् का यह आशिक भारतीयकरण एक महत्वशून्य उपाय था क्योंकि सभा महत्वपूर्ण विभाग प्रतिरक्षा दृष्ट बित्त मंत्रेजा व ही हाथो म बन रह। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दानो न ही इस विस्तृत कायपालिका परिषद् का बहिष्कार किया। जिन नए सन्स्यो का वायसराय न अपने विवेक व अनुसार चुना था व सबक सब उसका ही मन्ही मिलान वाल थ। समवन एक डा० अम्बरकर को छाडकर और किसान को किसी संगठित दल का समथन प्राप्त नहीं था। मक अभाव कायपालिका परिषद् एक अनुत्तरदाया निष्क्रिय बनी रही। उसके ऊपर वायसराय का प्रभुत्व जवा का लो कायम रहा।

६९ त्रिंशत् मिशन (माच १९४२)

जापान का युद्ध प्रवेश और भारत को सतरा—७ दिसम्बर, १९४१ को जापान युद्ध-स्वतल म दूँ पठा। अब विश्वयुद्ध न एक नया ररा ग्रहण किया। यूरोप में तो पुरी राष्ट्रों का भाग बन स राके रगा गया तबिन एशिया में जापान की विजयवाहिनी अप्रतिहत गति स घागे बरी। मन्वा इण्डोचायना और इण्डोनेशिया ने जापान की सनाओं व सम्मुख आत्म समरण कर दिया। फरवरी १९४२ क अन्त तक बर्मा का पराभव भी अपरिहाय दीसने लगा। इस तरह युद्ध का सतरा भारत

१ एच० एन० ब्र०सफोर्ड— सम्भवट इण्डिया पृ० ५६।

२ रूपलण्ड— इण्डिया ए रिस्टेटमेंट पृ० २०५।

३ एच० एन० ब्र०सफोर्ड— वही, पृ० ५६।

के निकटतर आता जा रहा था। बहुत कम भारतीयों को यह विश्वास था कि इंग्लैण्ड से जापानी आक्रमण से भारत की रक्षा करने की शक्ति है। चर्चिन तब ने इस बात को स्वीकार किया कि इंग्लैण्ड के पास भारत की रक्षा करने के पर्याप्त साधन नहीं हैं।

वांग्स की नीति में परिवर्तन—भारत के तिर पर मड़राते हुए इस सतरे ने वांग्स की नीति में परिवर्तन कर दिया। प्रमुख वांग्स मियों का १०४१ में जेल से मुक्त कर दिया गया था। जवाहरलाल नेहरू ने नवम्बर में संचालित दृष्टिकोणों के लिए एक बार महात्मा गांधी का शांतिवादी नीति स हूँ ग'। अपनी ही प्रायश्चित्त पर गांधीजी नवम्बर के भारत से मुक्त कर दिए गए। दूसरे मत्याग्रह वांग्स की नीति नहीं रहा। जवाहरलालजी देश का प्रतिरक्षा के लिए संगठित करना चाहते थे। वह सरकार के साथ सहयोग करने के लिए तयार थे लेकिन युद्ध शक्तों पर, उस समय एक अभिमान की भावना थी जो फासिस्ट सर्वाधिकारवादी स अभिमान है सहायता देने का कोई प्रश्न नहीं था। मिनम्बर १९४१ में चर्चिन से पूछा गया था कि क्या एटलांटिक चार जो सत्र जातिधों का अपना मनोवर्धित भागन प्रणाली का पक्ष करने का अधिकार देना है भारत के ऊपर भी लागू होगा? चर्चिन ने इस प्रश्न के उत्तर में नहीं, जनाब कहा था। भारत का यह नहीं आती तरह जान थी। लेकिन जापान की पूर्वीय विजय-आशा न ब्रिटिश सरकार को विश्वास कर दिया कि यह भारत की शान्त नया दृष्टिकोण ग्रहण कर।

विश्व जनमत का दबाव—फरवरी १९४२ में राशवा। चान के नेता माग्ले च्यांग-चाई शक भारत आए और उन्होंने इंग्लैण्ड से अपनी नीति कि वह भारत की स्वतंत्रता की मांग पर सहमतनापूर्वक विचार करे। अन्तरिक्ष के संपत्ति रुझावट के बारे में भी यह प्रख्यात है कि यह चर्चिन पर इस बात का श्राव डाल रहे कि वह भारत का ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करने के लिए युद्ध करें। इस प्रकार युद्ध के सफटों और विश्व जनमत के दबाव ने त्रिप्ल मिशन के लिए रगमच तयार कर दिया।

त्रिप्ल मिशन की घोषणा—रगून पतन के चार दिन बाद ११ मार्च १९४२ को चर्चिन ने ससद में घोषणा की कि जापान की प्रगति के कारण भारत के लिए जो खतरा पता हो गया है उसे देखते हुए हम यह आवश्यक समझते हैं कि हमलावर से देश की रक्षा करने के लिए हमें भारत के सभी वर्गों का संगठन करना चाहिए और सर स्टफर्ड त्रिप्ल ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय गतिरीय का धन्त करने के लिए भारत प्रस्थान करे। इस घोषणा का भारत में स्वागत किया गया क्योंकि त्रिप्ल की यहाँ बहुत ख्याति थी। यही वह व्यक्ति था जो रूस को मिन राष्टों को शोर से युद्ध में खींच लाए थे। इसके अलावा वह एक समाजवादी थे और भारत के कई छोटी के राष्ट्रवादी नेताओं से उनके मित्रतायुक्त सम्बन्ध थे। वह पहले की दो बार भारत था चुके थे।

के समनुचित बनवानिस्तान का विरोध किया। विषय पाकिस्तान की स्थापना के घोर विरोधी थे और उन्होंने यह किया कि हम अग्नि भारतीय मध्य से पनाब के पृथक्करण का समस्त समर्थन प्राप्तों से प्रतिरोध करेंगे। उपायकारियों तक ने दाघ सूत्री प्रस्तावों को यह कहकर कि वे 'मातृ विषय के उपहास हैं' अस्वीकार कर दिया।

कांग्रेस का दृष्टिकोण—कांग्रेस ऐसे प्रत्येक प्रस्ताव के विरुद्ध थी जिसका लक्ष्य भारत को खण्डित करना हो चाहे विवाद के आधार पर और चाहे भावना के आधार पर। विश्व योजना का उद्देश्य प्रतिस्वत सभ्यता के विभाजन की सम्भावना के दरवाजा खोल देना था। १९६२ देशी राजधानियों को भारत मध्य में सम्मिलित न होने का जो अधिकार परोपगत दे दिया गया था कांग्रेस ने उमका तीव्र विरोध किया। यह बात स्पष्ट थी कि राज्य नए सविधान के निर्माण में प्रतिगामी तत्वों का सा काम करने लेकिन इस बात का कोई प्राश्नान नही था कि वह सविधान की रचना के पश्चात् भारतीय धर्म्य नही हो जायेंगे। स्पष्ट है कि तब तक ब्रिटिश साम्राज्यवादी इन गणों में अपनी भड्डा जमाए रखता भारत अपनी स्वतंत्रता प्राप्त नही कर सकता था।

साम्राज्यवादी प्रस्तावों के ऊपर पार्टी भंग—यद्यपि कांग्रेस या आदश सम्पूर्ण भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करना था और उसमें किन्हीं प्रस्ताव द्वारा पृथक्करण की भावना को प्रारम्भित दिए जान का विरोध किया लेकिन फिर भी वह किसी भी प्राणिक इकाई का उसकी इच्छा के विरुद्ध भारतीय मध्य में सम्मिलित होने के लिए विवश करने की भाषा में नहीं सोच सकती थी। इस प्रकार सम्भव था कि कांग्रेस दीघसूत्री प्रस्तावों के ऊपर अपनी स्वीकृति दे देती। इनके ऊपर पार्टी भंग नहीं हुई लेकिन तत्कालिक वर्तमान के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव थे उनके ऊपर समझौते की बात चीत टूट गई। ये प्रस्ताव ब्रिटिश नवनीयनी की कसौटी थे। यहाँ दो अनुसंधानीय कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं। कांग्रेस प्रधान के साथ अपनी पहली मठ के समय पर स्टेफड किन्हीं ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि अस्थायी राष्ट्रीय सरकार के साथ वायसरॉय का सम्बन्ध बसा ही होगा जमा कि साम्राज्य का ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से होता है। लेकिन बाद में किन्हीं अपनी इस बात में हूँ गए और उन्होंने कहा कि ऐसा सुदूर-गया अघनिष्ठ परिवर्तन असम्भव है और वायसरॉय की निरंकुश शक्तियाँ ज्यों की-त्यों कायम रहेगी। इसमें एक नई समस्या पैदा हो गई और समझौता असम्भव हो गया। दूसरी कठिनाई प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखती थी। कांग्रेस की माँग थी कि उस कार्यक्रम को देखते हुए जो हमारे सिर पर लटक रहा है प्रतिरक्षा के ऊपर भारत का प्रभावशाली नियंत्रण होना चाहिए। यही वह कसौटी है जिससे

१ जवाहरनाथ नेहरू— दी दिव्यवरी भाषा दृष्टिमा पृ ८५।

२ एच० एन० ब्रतफोर्ड— 'संश्लेष इतिहास' पृ० ६७।

हम परख करते हैं।' ब्रिजिन् ब्रिटिश सरकार वायसराय की कायपात्रिका परिषद् में केवल एक भारतीय सदस्य को रखने के लिए तयार थी जिसके अर्धीन जन सम्पर्क विभाग, सय विघटन और युद्धोत्तर पुनर्निर्माण पट्टोल का निषन्त्रण सनिकों की सुख सुविधाओं की व्यवस्था और कण्टोन सगठन आदि विषय होंत । उन दोना कठिनाइया ने भारत की जनता का विश्वास करने और उसे सच्ची सत्ता हस्तांतरित करने की ब्रिटिश सरकार की अनिच्छा को स्पष्ट कर दिया ।

मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण—मुस्लिम लीग ने भी जिन प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । उसने अपनी अस्वीकृति का घोषणा काँग्रेस के विरुद्ध की प्रतीप्ता करने के वाक की । कहा जाता है कि मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की स्वाकृति के लिए एक प्रस्ताव का ससविदा तयार किया था । पन्नु जब काँग्रेस ने जिन प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने उसे पाठ हाना । अपने प्रस्ताव में मुस्लिम लीग ने इस बात पर सतोष प्रकट किया कि मुसलमानों के पृथक्करण के दाव को मानना दे दी गई है बकिन् सम्पूर्ण जिन-यागता को उनकी जकडबंदी के कारण अस्वीकार कर दिया । लीग ने इस बात पर बल दिया कि गये किमी जन निर्णय में जिसका उद्देश्य स तप करना है कि कोई प्रांत भारतीय सघ में रह या उससे अलग जाए केवल मुसलमानों की ही वाक की अधिकार हाना चाहिए । इस तरह से जिन अमिनय समाप्त हो गया । राष्ट्रपतियों का दृष्टि में समस्त घटनाव्यव नाटरीय प्रश्न मान था जिसका अमिनय अमरिबन आचोषकी को सन्तुष्ट करने के लिए किया गया था । जिन जिन प्रस्ताव को तारा के अने कठार य और उन्हें या तो पूरा वा-पूरा स्वीकार किया जा सकता था अथवा पूरा-वा-परा अस्वीकार । इस प्रकार समझौते की सुझावण शुरु स ही नहा रहा थी । पटगलि सीतारामय्या के अर्थों में उनमें प्रत्येक दल को गण्य करने वाली बातें थी । काँग्रेस को प्रसन्न करने के लिए इन प्रस्तावों की पव भूमिना में सर्वोपरि भोगनिवेशिक स्वराय्य के सविधान सभा का उल्लेख था जिन प्रारम्भ में हा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से पृथक् हो जान की घोषणा कर देने का अधिकार दिया गया था । मुस्लिम लीग के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि किमी भी प्रांत को भारतस सघ से अलग हा जाने का हक था । नरेशा को न केवल इस बात की आजागी थी कि वे चाहें ना इस सघ में शामिल हों या न हा बकि सविधान सभा में रिषामतों के प्रतिनिधि भेजने का एक मात्र अधिकार भी उन्हें ही दिया गया था । उनमें सत्ता हस्तांतरित करने का इरादा गिनकुन नहीं था ।'

१०० भारत छोड़ो आंदोलन

निषन्त्र निराशा और व्यथना का बातावरण—जिन डा स जिन बातों एक बारगी नग हुई और जिन को वाकत बुनाया गया तथा इस विषय में जो गान विवाद ब्रिटिश सत्ता में हुआ इन सबने इस विचार को मजबूत कर दिया कि यह सम्पूर्ण किया जाना एक राजनीतिक सुनता मान थी जिनका उद्देश्य विश्व चोरसत की प्राप्ति

समय बना देगी ।’ प्रस्ताव ने एक अस्थायी सरकार के निर्माण का सुझाव दिया ‘जिसका प्रथम कर्तव्य अपनी समस्त संपत्ति तथा अहिंसात्मक शक्तियों द्वारा अल्प-राष्ट्रों से मिलकर भारत की रक्षा करना होगा । अस्थायी सरकार जनता के समस्त वर्गों के लिए स्वीकार्य सविधान की रचना करने के लिए एक विधान निर्मात्री परिषद् की योजना बनाएगी । यह सविधान सघाय होगा और जिसके अन्तर्गत सघ में सम्मिलित मात्र वाले समस्त एकका का अधिष्ठान प्रारम्भ होगा । अल्प-राष्ट्रों की शक्तियाँ भी इन एकका में निहित होंगी । अन्त में प्रस्ताव ने यह स्वीकृति दी कि यदि ब्रिटिश सरकार स्वतन्त्रता की माँग को अकारण न करे तो अहिंसात्मक आन्दोलन में अधिक विस्तृत परिणाम उत्पन्न होगा । अन्त में भारत की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर जोर दिया गया ।’

कर ले गई थी। इस दमनघ्न ने गने विरोह को तो दबा दिया लेकिन भूमिगत आन्दोलन कई महानों तक चलता रहा और जयप्रकाश नारायण राममनोहर लोहिया तथा अरुणा आसफ़ाली तुल्य समाजवादी नेताओं ने उमका माग-अंगन किया।

महात्मा गांधी का उपवास (फरवरी १९४३) और उनकी जागृता से प्रेरित (मई १९४४)—महात्मा गांधी ने आगालाँ किले में जहाँ उन्हें गिरफ्तार करके रखा गया था जनता के पागलपन और सरकार की पाशविजता को घातक हृदय से देखा। १९४३ की अंतिम तिथि को उन्होंने बापूराय को पत्र पत्र लिखा और उसमें एक आक्षेप को स्वीकार किया कि कांग्रेस हिंसा के विरुद्ध के लिए उत्तरदायी है। पत्र में उन्होंने समझौते की बातचीत करने का भी प्रस्ताव उपस्थित किया। जिन बापूराय ने जो कुछ हो सका था उस मकदद के लिए उन्हें और कांग्रेस को उत्तरदायी ठहराया। पत्र व्यवहार का कोई फल नहीं निकला। महात्मा गांधी ने स्वयं को सहन नहीं कर सका। उन्होंने १ फरवरी १९४३ को २१ दिन का उपवास प्रारम्भ कर दिया। उनकी वृद्धावस्था और दुबल स्वास्थ्य को देखते हुए उनके उपवास में जनता को अपार चिंता में डाल दिया। जिन उनका उपवास सफल समाप्त हो गया जो कि आक्षेपों की राय में चमत्कार से कम नहीं था। आग के बारह मीनों में उनके विश्वस्त मंत्री महादेव देसाई और और पतिव्रता स्त्री कस्तूर बाबा देहात हो गया। अग्रिम १९४४ में वह जगता बामार हो गए और सरकार ने उन्हें ६ मई १९४४ का बरवादा से मुक्त कर दिया।

१०१ व बिल योजना और शिमला सम्मेलन (जून जुलाई १९४५)

अक्टूबर १९४३ में लाड विलियमो का कार्यकाल समाप्त हो गया और लाड विलियम भारतवर्ष के वायसराय हुए। अपनी नियुक्ति के कुछ समय बाद उन्होंने घोषणा की कि मैं अपने धर्म में बहुत सी चीजें नहीं रहा हूँ। लाड विलियम ने इस बात का भी अस्पष्ट संकेत दिया कि वह अपने साथ भारत की राजनीतिक समस्या का समाधान लेकर आ रहे हैं। जिन उन्होंने अपनी धर्म को १४ जून १९४५ तक नहीं छोला। इसके पत्र उन्होंने अंगरेज की यात्रा की और सप्टेंबर की सरकार से सलाह माँगी।

नई योजना की पृष्ठभूमि—अब वायसराय के धर्म से एक नयी योजना निकली। इस योजना का जिनमें भारतीयों ने बाद में एक और घटना बढ़कर तिरस्कर कर दिया परीक्षण करके के पूरे परिस्थितियों की ओर ध्यान देना आवश्यक है जो उसकी पृष्ठभूमि में थी। यूरोप में लड़ाई समाप्त हो गई थी और मित्र राष्ट्रों को विजय प्राप्त हुई थी। इंग्लैंड का लोकमत अल्प दल की ओर झुका जा रहा था। अल्प दल भारत के सम्बंध में एक नयी नीति का प्रतिपादन कर रहा था उसका अर्थ था कि भारत को स्वतंत्रता मिल जानी चाहिए। ब्रिटेन की अनुपस्थिति में सरकार इस घटनाओं को बेचनी से देख रही थी। ११ नवम्बर १९४२ को

जिस वविल ने कहा था ' मैं सभाट का प्रथम मन्त्री ब्रिटिश साम्राज्य का शिवाला निकालने के लिए नहीं बना । वे बल नहीं गए थे । हिंसक पशु कभी एकांशी का व्रत नहीं करता । लेकिन वचिन ठहरे राजनीति के भलाडे क कुशल मल्ल ! उन्होंने मतदाताओं की महानुभूति श्रमिक ढल की ओर से अपनी धार करन के लिए एक निर्वाचन चाल की आवश्यकता समझी । यही वविल योजना और शिमला सम्मेलन का पृष्ठभूमि है ।

योजना की शर्तें—१४ जन १९४५ को साड वविल ने भारतीय जनता क नाम एक यापण ब्राकास्ट किया । उसमे उन्होंने अपनी जिस योजना की घोषणा की उसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं—(१) ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक गतिरोध को दूर करना व उसे स्वशामन के लक्ष्य की ओर अग्रसर करना चाहता है । (२) इस सद्य को दृष्टि मे रखते हुए वायसराय की वायकारिणी परिषद क सदस्यों की एक गई सूची तयार की जाए जिसके सब सदस्य—खाली वायसराय और प्रधान सनातनिको छोडकर (जो युद्ध-मन्त्री बना रहेगा) भारत क राजनीतिक नेता हों । (३) वैशिक मामलों का विभाग (सीमान्त और कजायली मामलों को छोडकर) परिषद के भारतीय सदस्य के हाथ मे होगा । (४) परिषद मे सवगत हिन्दूओं और मुसलमानों की संख्या होगी । (५) वायकारिणी परिषद अन्तर्जातीय राष्ट्रिय सरकार के बरीय होगी और गवर्नर अन्तरन ' निवेदाधिकार का प्रयोग धरारण नहीं करगा । (६) गवर्नर जनरल की दाहरी स्थिति से उनक भारत सरकार क प्रधान और साथ ही ब्रिटिश हिडों के प्रतिनिधि होने के कारण जो दुविधा उत्पन्न हो सकती है उस दूर करन क लिए अन्य उपनिवर्तों क समान भारत मे अग्रजा वाणिज्य तथा दूसर हिडों की रक्षा क लिए हार्ड कमिशनर नियुक्त किया जाएगा । (७) उन प्रस्तावों से भारत के भावी स्थायी सविधान मे मन्त्रिघातों क स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा उनकी रचना भारतीय अपने धार करेंगे ।

योजना का वाय क्ष प्र —प्रायः स्पष्ट है कि वविल-योजना ने लम्बे समय मे खली घटी हुई भारतीय स्वतंत्रता की मस्य्या पर कोई हल पेश नही किया । उसका वाय होन वतमान तक ही निमित्त था और उमक प्रस्ताव वही थे जो कि त्रिपथ योजना के अन्तर्जातीय प्रस्ताव थे । किस के शिर्षो मे प्रश्न था— भारतीयों की कितनी शक्ति दी जाए ? उन वार यह प्रश्न न होकर भारतीयों के बीच गठित अलग घना दो भागों में बाँट देने का प्रश्न था । मुख्य समस्या नयी वायपालिका परिषद की सदस्य संख्या की थी ।

१ यहाँ मोनामाई तियाकन खली पत्र का जिन पर ११ जनवरी १९४५ को हस्ताक्षर हुए चर्चा करना आवश्यक है । इस पत्र मे काँग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समानता क आधार पर कर्म में एक अन्तर्जातीय सरकार की स्थापना का प्रस्ताव किया गया था । यह सोचा गया था कि इस मस्य्योडे का महात्मा गांधी की स्वीकृति प्राप्त है ।

शिमला-सम्मेलन--वायसराय ने शिमला में २२ प्रतिनिधि भारतीयों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन २९ जनवरी को आरम्भ हुआ। लेकिन शीघ्र ही यह मतभेदों का मद्दव घुटभूमि बन गया था फिर सम्मेलन समाप्त हो गया। काँग्रेस ने हिन्दू मुस्लिम समानता की बात स्वीकार कर ली लेकिन सि० जिनाना का दाव पर घट गये कि कायदाबिना परिवर्तन के विना मुस्लिम सम्प्रदाय मनोनीत करने का अधिकार ब्रिटेन मुस्लिम जाति का मित्रता चाहे। काँग्रेस इस दाव का विरोध किया क्योंकि उसकी स्वीकृति का मत फायदा कि काँग्रेस भी एक विशेष हिन्दू सम्प्रदाय को उभारने का इरादा रखता है। पत्राचार द्वारा मन्त्री मन्त्रिक विचारों को ज्ञात हो जाने से विचारों का विरोध किया। उन्होंने स्वयं बातचीत करके विचारों का समझौता किया मन्त्रालय ने प्रान्तिनिधि का मित्रता चाहे। लेकिन सि० जिनाना विचारों को समझौता करने के लिए राजी नहीं हुए।

सि० जिनाना की हठान्वीतता ने पत्राचार से टकराकर जिनाना सम्मेलन चर चर हो गया। मालूम कि १४ जनवरी का उमक का दिन ही घोषणा कर दी गयी प्रचारक विचारों को ज्ञात करने का एक ही चला निरूपण है। सम्मेलन अथवा सम्मेलन की वजह एक बार फिर मुस्लिम जाति के दावों को भी सि० जिनाना ने विचारों का विरोध किया और उस एक जाल बिताया जिसकी स्वीकार करने से परिणाम की प्राप्ति पर प्रतिबन्ध प्रभाव पड़ा।

सारांश

मिनम्बर १९२६ में विचार विषयों का आलापनी फट पना और वायसराय ने के शीघ्र अथवा आलाप विषयों में परामर्श ए बिना ही य घोषणा कर दी कि भारत की जनता के विरुद्ध युद्ध में शामिल है। काँग्रेस ने इस घोषणा का आत्मिक वायवाही का धार विरोध किया। उसने ब्रिटिश सरकार से माँग की कि वह अपने युद्ध उद्देश्यों का स्पष्ट करे। और आलाप कहने को स्वतंत्रता तथा आलाप की रक्षा के विचारों को रखा था। आलाप काँग्रेस ने आलाप में माँग की कि वह भारत की स्वतंत्रता का धारित करे। काँग्रेस की दृष्टि में स्वतंत्रता की घोषणा इसलिए आवश्यक था कि भारत का आलाप का उस उद्देश्य के बारे में जा उत्तरी अर्थों की उत्तरी उद्देश्य हो जाए।

१। आलाप सम्मेलन में जा अर्थों का आलाप किया गया था उनमें काँग्रेस और मुस्लिम जाति के आलापों का आलाप समझौता प्रान्तिनिधि के सम्प्रदाय मन्त्री और भूतपूर्व मन्त्री मन्त्री आलापों द्वारा विचारों की शिवराज और मास्टर ताराबाई भी शामिल थे।

२। आलाप-- महात्मा गांधी पृ० २६ ।

सरकार ने इस भाग का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। सम्राट भारत मंत्री धीरे गवर्नर जनरल सबने वक्तव्य दिए लेकिन उनका वक्त या म सब पुरानी बातें थीं और भारतीय स्वतंत्र्य व प्रश्न की कोई चर्चा नहीं की गई थी। फलन घाटा प्रांतों के काँग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिए।

अपने वक्तव्य द्वारा उत्पन्न किए गए ताव विरोध में परमान होकर वायसराय ने अगस्त प्रस्ताव (१९४०) को धारणा कर दी। भारत को वचन दिया गया कि मुद्र की समाप्ति के पश्चात् यथासाध्य उम औपनिवेशिक एवं दिया जाएगा और नए मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने का उत्तरदायित्व भारतीयों के वश पर होगा। जहां तक वर्तमान का सम्बन्ध था वायसराय की वटी हुई वायसरायिका परिषद में कुछ प्रतिनिधि भारतीयों को सम्मिलित करने और एक मुद्र-समाहकार परिषद की स्थापना करने की बात कहा गई थी।

अगस्त प्रस्ताव में काँग्रेस का विनम्र मतोपनी इशारा और महात्मा गांधी के अनुसार उमन हलण्ड और भारत के बीच का सार्वभौमिक और चौड़ा कर दिया। वास्तव में यह महात्माजी के नए और भी राजगोपालाचारी जैसे नेताओं की हस्तचाली के ऊपर जा भारत की प्रतिरक्षा में सक्रिय सहयोग चाहते थे एक प्रतिपात था।

महात्मा गांधी ने मासिक शक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया जो बचल नैतिक विरोध की प्रति यक्ति था। उन्हें छत्तीस के धारण पर विचार्य वन दिया गया था और वचन कुछ देर तक रखा गया था। सत्याग्रह करने का मनमति दी गई थी।

सितम्बर १९४१ में काँग्रेस ने सार्वभौमिकता का प्रस्ताव किया। इसमें स्वयंसेवक पंचायत प्रणाली का उल्लेख था। भारत का एक ही सार्वभौमिकता का प्रावश्यक है। अमेरिका के नाकमन ने इंग्लैंड के ऊपर यह दबाव डाला कि वह भारत के साथ वायसराय के सत्याग्रह करे। अमेरिकन नाकमन के दबाव में परान्तरित सरकार ने भारत के अधिनियम गतिरोध का दूर करने का लिए सर सफेद पत्रिका की भारत भेजना का निश्चय किया। किन्तु काँग्रेस ने मुद्र के पश्चात् भारत की स्वतंत्रता का वचन दिया लेकिन इसका साथ ही साथ पृष्ठभूमि पर संपादन की स्थापना करने की भी चर्चा की। वर्तमान के सम्बन्ध में उमन वायसरायिका परिषद के भारतीयकरण का प्रस्ताव दिया। लेकिन नई परिषद के साथ उत्तरदायित्व मंत्रिमण्डल का भी व्यवहार नहीं किया जाने को था। हमारे अनाश प्रतिरक्षा में विभाग अग्रेजी के ही हाथों में रहने का था। भारत के सभी राजनीतिक दलों ने काँग्रेस का सत्याग्रह कर दिया।

भारतव्य में लोगों का आम धारणा यह थी कि काँग्रेस काण्ड जनता का धर्मों में पून भोजने का एक प्रस्ताव मात्र था। किम्वदंत स ममभौमिकता का लक्ष्य था। उसने सारे देश में अगस्त की एक सहर प्रकाश कर दी। ८ अगस्त, १९४२ के सत्याग्रह महासमितियों ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पास कर दिया और महात्मा गांधी ने

१०३ पाकिस्तान की मांग को जन्म देने वाले कारण

मुस्लिम लीग की राजनीति की तकनीक में विद्यमान—विभाजन की मांग का प्रतिपक्ष मूलकाल से स्पष्ट सम्बन्ध विद्यमान था। लेकिन यह ठीक ही कहा गया है कि पाकिस्तान पृथक्तावाद की नीति का स्वाभाविक निष्कर्ष था। मुस्लिम लीग ने प्रथम भवा का रक्षा कवचों की बढती हुई गुरारों तथा अन्य बहुत ही तरकीबों द्वारा उत्तमिज्ज को गर्व पृथक्तावादी भावना को नीचे पर लटा दिया था। १ रक्षा कवचों द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता था १९३७ तक वह सब प्राप्त कर लिया गया था। मुस्लिम लीग एक प्रतिप्रियावादी संस्था थी। उसके ऊपर मुस्लिम नरेशों जमींदारों उद्योगपतियों तथा अन्य दूसरे प्रतिगामी तत्वों का नियंत्रण था। उसके पास सामाजिक और आर्थिक सुधार का कार्य कायम नहीं था। फिर यह मुस्लिम जनता को किस प्रकार अपनी आरंभिक कृष्ण करती? उसके ऊपर किस प्रकार अपना प्रभाव जमाती? स्पष्ट है कि एक नए नार की आवश्यकता थी। पृथक् मन पृथक् निर्वाचन मण्डल पृथक् प्रांत स्थापित करने की रक्षा कवच सार्वभौमिक मांग की जा चर्ची थी और पूरी हो नहीं पायी। अगला तब सम्मत वक्त्र पृथक्तावादी मांग करना था। यह मुस्लिम लीग की राजनीति की तकनीक में विद्यमान था। २ पाकिस्तान की मांग का उद्देश्य स्पष्ट है कि सामंजस्य के अभाव में अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का विनाश और अल्पसंख्यकों के अस्तित्व के समाधान के रूप में सत्वा प्रस्ताव ही क्या न रहा हो परंतु वह स्पष्ट मुस्लिम लीग की आवश्यकता प्रकट करने के लिए थी और मुस्लिम जनता को लीग के अर्थ का अर्थ एवं अर्थ के अर्थ में समझना था।

कांग्रेस और राष्ट्रिय मंत्रिमण्डल बनाने का प्रश्न—यह भी है कि पृथक्तावाद का तब मुस्लिम लीग को पाकिस्तान का उद्देश्य था और लीग रक्षा कवचों के बिना हम यह भी न मानना चाहिए कि कतिपय अर्थात् कारणों ने हम प्रस्तावों की गति को प्रकट कर दी। इन कारणों में से एक कारण १९४६ के अधिनियम के अधीन कांग्रेस के वक्त्रवाद प्राप्त मांग और कांग्रेस के राष्ट्रिय मंत्रिमण्डल बनाने का प्रश्न था। ऐसा मानना पड़ता है कि १९४७ के निर्वाचन के पूर्व कांग्रेस लीग सहयोग के बावजूद अस्पष्टता समझी थी। मित्रिज्जा न स्वतंत्र दलों के बीच अन्य सत्त्वों के आधार पर कांग्रेस के साथ मित्रवर संपुनत्र मंत्रिमण्डल बनाने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने लिखा था— वस्तुतः इस समय कांग्रेस और लीग में किसी प्रकार का कोई सारमूल अंतर नहीं है। हम कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में सत्त्व सत्त्व सहयोग देंगे। ३ लीग विश्वासपूर्वक यह आशा करती थी कि उससे कांग्रेस के साथ संपुनत्र मंत्रिमण्डल बनाने के लिए कहा जाएगा। ४ कांग्रेस के पास से आशानुरूप

१ मेहता और पटवर्धन— दो कम्प्युनल ट्रायगल, पृ० ११९।

२ मेहता और पटवर्धन— वही पृ ११६।

३ सत्याद— जिम्मा पृ० ५५६।

४ साइमण्डस— दो मंत्रिमण्डल पाकिस्तान पृ० ५३।

प्रामाण्य था। लेकिन कांग्रेस ने संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाने के लिए लीग के सामने (पृ० पी० में) कुछ शर्तें रखीं। वे शर्तें निम्नलिखित थीं, (१) 'मुस्लिम लीग गुट' एक पृथक गुट की तरह काम करना बन्द कर देगा, (२) संयुक्त प्रांत की विधान सभा में मुस्लिम लीग के जो बतमान सदस्य हैं वह कांग्रेस दल के भाग हो जाएंगे और

उह कांग्रेस दल का नियंत्रण व अनुशासन मानना होगा, (३) संयुक्त प्रांत का मुस्लिम लीग समक्ष निवाय मग कर दिया जाएगा और भविष्य में इस निकाय द्वारा किसी भी उप निर्वाचन में सदस्य छूटे नहीं किए जाएंगे।^१ वैधानिक दृष्टि से और साधारण ससदीय मापदण्डों द्वारा कांग्रेस की कार्यवाही का औचित्य सिद्ध किया जा सकता था।^२ चूंकि कांग्रेस के पास बहुमत काफी था, अतः वह मुस्लिम लीगियों को अपनी शर्तों व शलाका प्रत्येक किन्हीं शर्तों पर लेने पर बाध्य नहीं थी। कांग्रेस का विश्वास था कि उसकी शर्तें मंत्रिमण्डलों के अनुशासन की दृष्टि से आवश्यक थीं। इनके द्वारा मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर काम कर सकते थे। लेकिन कांग्रेस के आलोचकों ने उस विजयोन्मुख बताया। मुस्लिम लीग ने इन शर्तों पर जिनका अभिप्राय उसका विघटन और कांग्रेस में विचोनीकरण या सहयोग देने से इनकार कर दिया।

यह गदिय है कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच जेम्स सहयोगिनी प्रकार व्यावहारिक था। तथापि, वह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मंत्रिमण्डल में हिस्सा न मिलने से मुस्लिम लीग अत्यंत असंतुष्ट हुई। कृपण्ड के अनुसार यह मि० जिन्ना का प्रथम तिरस्कार था।^३ उन्होंने कहा— मुसलमान कांग्रेस सरकार की अधीनता में न तो 'दाय की ही और न सबके साथ समान व्यवहार की ही आशा कर सकते हैं। किसी समय उह हिंदू मुस्लिम एकता का दूत कहा गया था अब वह वाशद प्रामाण्य सांख्यिक अहंकार और कलह के प्रतीक हो गए। उन्होंने कांग्रेस की बठौर मन्वठार आलोचना शुरू कर दी उसे फासिस्ट हिंदू संस्था बताया और कहा कि वह देश के अर्थ दल विधेयकर मुस्लिम लीग का पुत्रवने पर तुला हुई है। भारतीय इतिहास के एक युग विधायक अवसर पर समन्वयमूलक रूप ग्रहण करने में कांग्रेस की असफलता का जलेश करते हुए साइमण्ड ने लिखा है पाकिस्तान के निर्माण में इसमें अंधिक और किधी एक घटना ने सहायता नहीं दी। यह कथन स्पष्टतः प्रतिपाद्य है फिर भी इसमें सत्य का थोड़ा अंश अवश्य है।

कांग्रेस का जनसम्पर्क आंदोलन—जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में प्रारम्भ किए गए कांग्रेस के जन-सम्पर्क आंदोलन ने भी मुस्लिम लीग को निद्राही बना दिया। कांग्रेस ने इस बात पर बल दिया कि देश के सामने प्रसंगी समस्या साम्प्रदायिक नहीं अतिसुभायिक है और मुस्लिम जनता को अपने साथ मिलाने की कोशिश का।

१ पी० हिंदुस्तान टाइम्स—३० जुलाई १९३७।

२ साइमण्ड—'दी मेजिंग ऑफ पाकिस्तान' पृ० ५४।

३ कृपण्ड—'इण्डिया, ए स्टिस्टेमेण्ट', पृ० १८३।

कुछ समय तक यह धान्दोलन जोरा से चलता और बाद में मुस्लिम मन्त्रियों की सहायता से लगी। लेकिन शीघ्र ही इसकी प्रतिविया भी शुरू हो गई। मुस्लिम लीग ने इस धान्दोलन को अपने अस्तित्व के लिए एक चुनौती समझा। मि० जिन्ना के आग्रह पर इस धान्दोलन का लक्ष्य मुसलमानों में पूरा आतंकी उद्वेग उत्पन्न करना और उन्हें अपने विश्वसनीय नेताओं से पृथक् करना था। लीग के पास कोई आधिकारिक वाक्य नहीं था नही एतत् उसने इस्लाम धर्म के नाम पर आतंकी उद्वेग किया और 'तकरीफ़ अली की टेक्नीक' का आश्रय लिया।^१ उसने आतंकी के विरुद्ध जो आतंकी प्रचार किया, उसे प्रत्यक्ष मिट्टी हिलाना आशा बनाया जिसकी घोषणा में मुसलमानों की स्थिति गुनाहों से भी बर्बर हो गई थी। मुस्लिम लीग ने तथ्य को जानबूझकर भूल गई कि कांग्रेसी प्रांतों के कुल ५ मंत्रियों में से ६ मंत्री मुसलमान थे और ५ मंत्रों दूसरे अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधि थे।

हिंदुओं के अत्याचार का ज्वारा—मुस्लिम जनता के बीच उद्वेग की एक लहर फैल गई। इस आशय से मुस्लिम लीग ने हिंदुओं के अत्याचार का अपनी पूरी शक्ति के साथ ज्वारा पीटा। कांग्रेस को पता चलकर वह आतंकी उद्वेग मुस्लिम लीग के आतंकी उद्वेगों के साथ किए गए दमन और अत्याचार का निराकरण की जांच करना था। १५ नवम्बर १९३० को समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट में समिति ने मुसलमानों के अत्याचारों की एक लम्बी सूची दी और निष्कर्ष निकाला कि अत्याचार से बचना और कोई अत्याचार नहीं हो सकता।^२ कांग्रेस ने प्रस्ताव दिया कि समितियों की निष्पक्ष जांच कराई जाए लेकिन लीग ने वायसरॉय से आग्रह निवारण करवाना अधिक श्रमस्वरूप समझा। यह नहीं मानते कि वायसरॉय ने लीग द्वारा कांग्रेस पर लगाए गए समितियों के ऊपर कोई वायवाही की या नहीं। इस सम्बन्ध में सरकार का जो दृष्टिकोण था उस संयुक्त प्रांत के गवर्नर सर हेरी ह्यूज ने अपने पत्र से प्रकट हो जाने के बाद प्रकट किया। उन्होंने कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के विचार और विचारपूरा नीति की प्रशंसा की। श्री कृपणन्द ने भी जो कि कांग्रेस के किसी प्रकार हिमायती नहीं है लिखा है कि कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने साम्प्रदायिक आग्रह अथवा उत्पीड़न की नीति का निरवकाश आग्रह नहीं किया था।^३ मुस्लिम लीग का अपने निरर्थक समितियों की सचाई अथवा निष्पक्ष जांच की आवश्यकता से कोई नाता नहीं था। उसने उत्पीड़न की भाषा को मुस्लिम जनता पर अपना प्रभाव बनाए रखने और कांग्रेस को पराजित करने के लिए अत्यन्त उपादेय पाया।

१ मेहता और पटवर्धन—वही पृ० १२०।

२ राजप्रसाद—संश्लिष्ट भारत पृ० २२५।

३ कृपणन्द—इण्डिया, ए रिस्टेटमेण्ट, १८५।

दुर्भाग्यवश १९७७ और १९४२ के वर्षों में लीग की यह टक्कीव सकल हो गई । इस बीच मुस्लिम म्याता के लिए जो ६९ उप निर्वाचन हुए, उनमें लीग ने ४७ और कांग्रेस ने केवल १४ स्थान प्राप्त किए ।

हिंदू साम्प्रदायिकता—पाकिस्तान का भांग के रूप में मुस्लिम पृथक्तावादी की पराकाष्ठा के लिए कुछ अर्थों में हिंदू महात्म्या जैसे कल्पित सगठन भी दाया है । प्रारम्भिक चरणों में मलायका के नेता प० मन्मोहन मालवीय और लाला जयप्रकाश जैसे प्रमुख राष्ट्रवादी थे और उनका मुख्य उद्देश्य कांग्रेस की शक्ति को बढ़ाना था । १९२४ में अपने अध्यायीय भाषण में प० मालवीय ने कहा था कि जिस हिंदू ने कांग्रेस का विरोध किया तो वह लाला की जान होगी । लेकिन धीरे धीरे कट्टर पंथी और प्रतिनिध्यावादी तत्वों ने महात्म्या के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया । माँबल एडवर्ड ने तो अपनी पुस्तक में बालगंगाधर तिलक को पाकिस्तान का भांग को बढ़ाने वाला नेता बतलाया है । तिलक के समय जो राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई वह आवश्यक रूप से हिंदू धर्म सम्बन्धी भावनाओं से घोरित थी । १८३७ में श्री० डी० सावरकर ने हिंदू राष्ट्र के अपने सिद्धान्त का प्रचार करते हुए कहा कि १९६६ में उन्होंने कहा कि विषय में हमारी रायनामि विपुलत हिंदू राजनामि होगी ।” हममें कोई मन्मोहन की कि हिंदू साम्प्रदायिक राष्ट्रवादी मुस्लिम पृथक्तावादी की प्रतिनिध्या था । उनमें साम्प्रदायिक चेतना की घाग ता ही पूरी लेकिन उनकी उदात्तताओं का अर्थ उदात्त और सुगमताओं का पाकिस्तान की ओर ध्यान में प्रति किया ।

त्रिभाषीय संतुष्टि—पाकिस्तान राष्ट्रवादि में वायव्ये आत्म त्रिभाषीय का प्रमुख हाम था । १९३१ के पश्चात् मुस्लिम भाग का मन्मोहन त्रिभाषीय किया । यह एक सफल हस्तप्रतिष्ठा के कृपात राष्ट्रनामि था । उसने त्रिभाषीय सिद्धान्त की वास्तविक रागनामि व मनामि मन्मोहन प्रस्ताव की । यद्यपि जीवन के अन्तिम त्रिभाषीय मन्मोहन मुस्लिम जाति धर्म से भाषा में अन्विष्ट नहीं रहा पर तु प्रोतीय राष्ट्रवादि का प्राप्ति बान से उसने जीवन में यथाशक्त जा परिवर्तन व हस्तप्रतिष्ठा धारी, वह एक विस्मयकारी घटना था । त्रिभाषीय स्वाभाविक राष्ट्रवादि होत के नाते वेबल माधव की पवित्रता में मराता रचना था । पाकिस्तान के निर्माण के लिए उसने सभी शक्तियों की ओर ध्यान की अपनाया । त्रिभाषीय इस भावना की पुष्टि का कि भारत में मुस्लिम जनता एक पृथक् राष्ट्र का दावा कर सकती है । ताकि धर्म भाषा संस्कृति व अन्विष्टान सभी दृष्टियों में मुस्लिम जनता की एक पृथक् राष्ट्र निर्माण की मांग व्यक्तित है । यह कहता था कि त्रिभाषीय दश में हिंदू मुगलमान से एक रूप के सप्रहृमान वगूत करत की घाग करता है वहाँ मुस्लिम जाति का समग्र भारत में रचना करारि समय नहीं । इन्तम सतर म है इस बार द्वारा उली सुगमताओं के हृद्य की जीना और उन्हें पृथक् राष्ट्र बाना के सपना की ओर अग्रसर किया । उसने सामन्विष्ट प्रजाति की ओर उल्लेख संस्कार का भी सहयोग प्राप्त किया । यह वर्षों के बमालपाग के जीवन व अन्विष्ट प्रमाप्ति था

और उससे साधन जमनी के हितकर तो भी मिलते जाते थे। इन कथन में मर्यादा है कि मुस्लिम पक्षधरता की नींव जो सर सय्यद अहमदशाह ने १६ वीं शताब्दी में डाली थी उसे जिन्ना ने ० वीं शताब्दी में पूरा किया।

अप्रजों का हाथ—भारत के ब्रिटिश महाप्रभुओं ने सभ्यताविर विषय की वृद्धि में सबसे अधिक योगदान दिया। उन्होंने भारत की इन दोनो जातियों के हृदय में एक दूसरे के प्रति अविश्वास पैदा किया और ग अविश्वास का बढ़ाया। महता और पटवधन के शासन में पाकिस्तान का विचार आगे भारतीय नोहरशाही के लिए नया नहीं था। १ १९ ६ में लखनऊ पामसन ने बड़े विस्मय के साथ इन बातों को नोट किया था कि कतिपय सरकारी पदाधिकारी पाकिस्तान के विचार के प्रति बड़े उत्साही थे। २ १९४० के पश्चात् जबकि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का अपना लक्ष्य घोषित कर दिया था उसने ब्रिटिश सरकार से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रेरणाएँ प्राप्त किया। अनुसार दल के भारत मंत्री मि० एमरी पाकिस्तान की माँग के प्रति सन्तुष्टि रखते हैं ऐसा प्रख्यात था। अपने सावजनिक भाषणा में वह हिंदू मुसलमानों के मतभेदों का खज जोर शोर से उठाते थे। एक अर्थपर उन उठाने कहा था भारतीय स्वतंत्रता के मावी आगार में कई मतों के लिए स्थान हैं। यह हम पहले दम ही ठुके हैं कि जिस प्रस्ताव ने विभाजन की सम्भावना को स्मरण से स्वीकार कर लिया था। ब्रिटिश सरकार ने बात की सम्पत्त उन्धोरणाभा में खिन्न भारत का निरूपण किया घटपि व फिलाने का एकता के शासन की न माने रहे।

कतिपय विचारों का यह मन है कि पाकिस्तान निर्माण में जहाँ मिटा न जिस साम्प्रदायिकता के बीज का मूत्रपात किया था उसकी पूर्ण जन्म माऊँतवदन की।

बादो और शासन करो दोनों रूप में प्रयुक्त हाता यह अप्रजों नामों का नाति का साधन व साधन दोनों था। अप्रजों सरकार दूरदर्शी थी और अपने लक्ष्य को सर्व सम्पुन रखता थी। यह कथन में बड़ी सत्यता है। अप्रजा ने किसी भी निरक्षर प्रशासन दम को स्वेच्छा व सरलता से स्मृत न नहीं किया। स्वतंत्रता दन के पूर उठाने लक्ष्यधी देश को गहरा आघात (Parting kick) पहुँचाया। मा प्रस भारत चीन के अफीका और एशिया के कई देश तक ज्वलत उठाहरण है। अप्रज स्वतंत्र भारत का एक कमजोर राष्ट्र के रूप में दपना चाहत थे क्योंकि कमजोर भारत उनक हित में लाभकर सिद्ध हाता। परिणामत उन्होंने विभाजन के विचार को दन दिया।

१०४ द्वि राष्ट्र सिद्धांत

सिद्धांत का विवरण—मुमनमानों को पाकिस्तान की माँग और तथाकथित द्वि राष्ट्र सिद्धांत का १९३७ और १९४० के बीच में विकास किया गया। मि० जिन्ना

१ महता और पटवधन—वही पृ० ७८।

२ पामसा एनडिस्ट— इण्डिया फार प्रीडम पृ० ५६।

ने मुस्लिम नीम के लाहौर अधिवेशन में (१९४०) अद्ययम पद से भाषण देते हुए द्वि राष्ट्र सिद्धांत का स्पष्ट रूप से समझन किया। उन्होंने कहा 'ये (हिंदू धर्म और इस्लाम) आधुनिक अर्थ में धर्म नहीं हैं प्रत्युत ये दो पृथक और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। हिंदू और मुसलमान कभी एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में रह सकते हैं, यह कोरा स्वप्न है। हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक सिद्धांत सामाजिक रीति-रिवाज, दशन और साहित्य एक दूसरे से सबंधा पृथक हैं। उनका परस्पर रोटी बेटा का संबंध नहीं है। वस्तुतः दोनों का परस्पर विरोधी भावनाओं पर आधारित सम्यताएँ पृथक-पृथक हैं। जीवन पर दोनों भिन्न प्रकार से विचार करते हैं। दोनों का जीवन सबंधी दृष्टिकोण में अंतर है। यह स्पष्ट है कि हिंदुओं और मुसलमानों का पृथक-पृथक ऐतिहासिक आधारे में प्रेरणा मिलना है। उनकी पुरातन गाथाएँ उनके वीर और उन वीरों की कहानियाँ पृथक पृथक हैं। प्रायः एक वीर दूसरे का शत्रु माना गया है और एक का विजय दूसरे की पराजय। एम दा तो राष्ट्रों को एक राष्ट्र में मूलने का प्रयत्न जिसमें एक अल्पसंख्यक के दूसरे बहुसंख्यक अवश्य अमानवीय उत्पन्न करेगा और उस शासन व्यवस्था का अन्त करके छाड़ेगा जो उस राष्ट्र को समानता का प्रयत्न करेगी।^१

इस सिद्धांत में उन सबकी जो भारत के दो पृथक, एक हिंदू और एक मुस्लिम, राष्ट्रों के रूप में विभाजन के समर्थक थे एक नया आधार दिया। अलीगढ़ के मुहम्मद अकबर हुसैन काशी और प्रोफसर जफर हसन ने यह जवाब दिया कि भारत के मुसलमान स्वतंत्र एक राष्ट्र हैं। हिंदुओं तथा अल्पसंख्यक मानमानों से उनका राष्ट्रीय अस्तित्व सबंधा भिन्न है। वस्तुतः सुइंगत समय और चर्चों में जिनका पाषण था उससे बड़ा अधिक पार्थक्य हिंदू और मुसलमानों में है।^२ अल-हमजा ने कहा कि भारत एक देश नहीं है उसमें कई देश हैं और इसलिए उसे कई राष्ट्रों में विभक्त समझना चाहिए।^३

सिद्धांत का आधार धर्म—एक प्रकार का स्पष्ट है कि द्वि राष्ट्र सिद्धांत का आधार वात को लेकर बना था कि धर्म की भिन्नता न हिंदू और मुसलमानों का एक राष्ट्र के रूप में मगठित भाग समझना कर दिया है। यह धारणा सबंधा निराधार थी। राष्ट्रीयता वस्तुतः एक सामाजिक-राज्य-व्यवस्था है जो पारस्परिक अमानुषता का भावना है। इस एक नृधृति का भावना का अन्तर्गत भाग है धर्म तो उनमें से एक है। भौतिक सामाजिक व्यवस्था में राज्य में भाग्य भाषा और संस्कृति सामाजिक इतिहास और परम्पराओं आदि तत्व भी राष्ट्रीय भावना की वृद्धि करते हैं। तब तक भारत के हिंदुओं और मुसलमानों का सम्बन्ध है जहाँ वे अधिकांश तत्व सम्बन्धित हैं। भौतिक दृष्टि से भारत मदद ही एक प्राकृतिक इकाई रहा है। डा० बन प्रसा-

१ राष्ट्र-प्रमाण—संविद्ध भारत पृ १२।

२ राष्ट्र-प्रमाण—संविद्ध भारत पृ २।

३ अल-हमजा—पाकिस्तान ए नमन पृ० ७।

ने ठीक ही कहा है "सत्तार में ऐसा कोई भी देश नहीं है जिसे समुद्र घेर लहाओं के कारण भारत जसा भयानक रूप प्राप्त हो।" भारतवर्ष में धार्मिक भेदों के कारण प्रजातीय और भाषा सम्बन्धी एकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक जनाती मुसलमान का किसी पञ्जाबी मुसलमान की भाषा ज्ञानसी हिन्दू से अधिक निकट सम्बन्ध होता है। अंगान के हिन्दू और मुसलमान एक भाषा बोलते हैं और यह भाषा मिथ से हिन्दुओं और मुसलमानों की भाषा से पृथक् होती है। दोनों ही जातियों में सामान्य भारतीय संस्कृति व विकास में सहयोग दिया है। यह मिली जुती संस्कृति दोनों के सम्मिलित पुरवाध का फल है। कविता और संगीत में विभक्तता और लिखाणा में हिन्दू और मुस्लिम परम्पराओं का स्वतन्त्रतापूर्वक मिश्रण हुआ है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच यदि कोई वास्तविक अन्तर है तो वह धर्म का। लेकिन यह साधारणतः स्वीकार किया जाता है कि वेदों धर्म ही राष्ट्रीयता का प्रतिभाव आधार नहीं है और फिर अधिकांश भारतीय मुसलमान उन हिन्दुओं के वंशज हैं जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। क्या इसका यह आशय है कि धर्म वर्तमान से राष्ट्रीयता भी वर्तन जाती है ?

सिद्धांत की दुबलता—यहमें कोई संदेह नहीं है कि राष्ट्र सिद्धांत एक राजनीतिक सूत्रता था। लेकिन दुर्भाग्यवश राजनीति के क्षेत्र में व राजनीतिज्ञ जा प्रत्यक्ष मूल्य पर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कृत्रिम-चप हाते हैं मूल्यता का अत्यन्त बुद्धिमत्ता से उपयोग करते हैं। भारतवर्ष में यथा हुआ। भारतवर्ष में सांस्कृतिक समन्वय की साधना शताब्दियों से चली आ रही थी। ब्रिटिश साम्राज्यवादिता ने उसमें बाधा पहुँचाई और फिर उनका मित्रो सम्प्रदायवादिताओं ने उसमें विकास का पथ अवरुद्ध किया। राष्ट्र सिद्धांत जो इस समय साधना की सम्भावना का ही निवेद्य करता था साम्राज्यवादियों और सम्प्रदायवादियों की अस्मिता का नकारिक निष्कर्ष था। राष्ट्रीयता मुख्य रूप से भावना का एक मामला है मानस की एक स्थिति है शताब्दियों के सामान्य जीवन द्वारा निर्मित सहयोग की एक अनुभूति है उसे तकविलीन परतु अन्तर्वर्त भावुक अपीलो द्वारा विभ्रष्ट किया जा सकता है। भारतवर्ष में देश के बारे में जहाँ की अधिशिक्षित जनता का चतुर और कृतसम्पन्न प्रचार द्वारा सुगमनापूर्वक घोष में डाला जा सकता है यह विशेष रूप से सत्य है। मुस्लिम लीग के नेताओं ने मुस्लिम जनता की अधिक्षा और धार्मिक भावनाओं का पूरा लाभ उठाया और दुर्भाग्यवश उसमें एक पृथक् राष्ट्रवादी की चेतना का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की। कोई आश्चर्य नहीं कि पाकिस्तान के नार न अधिकांश मुस्लिम जनता का आकांक्षित समर्थन प्राप्त किया।

राष्ट्रीय राष्ट्र और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्ग-पाकिस्तान के समर्थकों ने राष्ट्र सिद्धांत के विरुद्ध एक शक्तिशाली तर्क की उपना की। यदि भारत के हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं तो फिर पाकिस्तान की स्थापना होने के पश्चात् उन मुसलमानों का क्या होगा जो भारत में बच रहेंगे ? क्या व भारत में विदेशियों की तरह रहेंगे ?

पाकिस्तान में अमुस्लिमों का क्या होगा ? स्पष्ट है कि दोनों ही रायों में शक्तिशाली राष्ट्रीय अल्पसंख्यक बग शय रहगे ? लेकिन डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के शब्दों में 'राष्ट्रीय राज्य और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक बग दोनों में परस्पर विरोध है ।'^१

राष्ट्रीय और गृहराष्ट्रीय राय—मुस्लिम लोग ने मुसलमानों के लिए राष्ट्रीय शूह की अपनी माँग को राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सुप्रसिद्ध सिद्धांत पर आधारित किया । जे०एस० मिल ने इस सिद्धांत का निम्न शर्तों में निरूपण किया है जहाँ एक राष्ट्रीयता किसी भी मात्रा में विद्यमान हो, उस राष्ट्रीयता के सब सदस्यों को एक ही शासन की अधीनता में जो स्वयं उनका ही एक भाग हो संयुक्त करने के लिए 'प्राग्भाकेमो वस है । प्रथम महायुद्ध के दौरान यह सिद्धांत बहुत प्रख्यात हो गया और राष्ट्रपति विल्सन की चौदह शर्तों की आधारजिला बना । युद्ध के परिचायरोप के मानचित्र की नए सिरे से रचना की गई और राष्ट्रीयताओं की राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए कई नए राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हुआ ।

नेतिन अब कुछ समय से राजनीति विचारधारा का झुकाव 'एक राष्ट्र एक राय सिद्धांत' के विरुद्ध हो गया है क्योंकि यह अयाव्यक्तिक भी है और अवांछनीय भी । राष्ट्रीयता एक ठूंगरे के साथ इतनी अधिक घुनमित गई है कि वे सटे हुए प्रशासन निवाम करती हुई वन पाई जाती है । समस्त विभिन्न जातीय राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्गों को निवानकर किसी एकजातीय राष्ट्रीय राय का गृजन करना असम्भव है । चाहे कुछ भी हा छोट छोटे प्रभुत्व-सम्पन्न राय एटोमिक युग में अग्रचलित हो गये हैं । फलतः प्राधुनिक विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसे राजनीतिक सिद्धांत का गृजन करना है जिसमें राय और राष्ट्र महत्वापी न हों ।' फ्रीडमान के अनुसार 'राष्ट्रीयता अब राज्य के लिए आधार प्रदान नहीं कर सकती ।' वस्तुतः 'म और स्वित्जरलैंड जमे गृहराष्ट्रीय राय इम बात को सिद्ध करते हैं कि एक सघीय राय की छवणाय में विभिन्न राष्ट्रीयताएँ शान्तिपूर्वक निवास कर सकती हैं । और अपनी विशिष्ट संस्कृतियाँ का विकास तथा सधारण कर सकती हैं । नेतिन भारतवर्ष में मुस्लिम पृथक्तावादियों ने न तक की परवाह की और न प्रतिज्ञा की । वे सर सपद अहमद गाँ के आशों से जिहने बना था कि हिन्दू और मुसलमान भारतमाता की दो भाँतें हैं काफी अलग निवन गये थे । यह भी स्मत्तव्य है कि द्वि राष्ट्र सिद्धान्त ने हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं के त्रिपाकताओं और उदधोपगामों से भी बहुत-कुछ प्रोत्साहन प्राप्त किया । १९७ में बी० डी० सावरकर ने घोषणा की 'भारतवर्ष को एक त्वक और सहजातीय राष्ट्र नहीं माना जा सकता । इमके विपरीत भारतवर्ष में मुख्य रूप म दो राष्ट्र हैं—हिन्दू और मुसलमान ।'^२ यह स्मत्तव्य है कि इसके एक

१ राजेन्द्रप्रसाद— सज्जि भारत पृ० ५२ ।

२ हिन्दू महासभा के अहमदाबाद अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से दिया गया व्यहयान ।

ही षष पश्चात् १९२८ में मुस्लिम लीग ने द्वि राष्ट्र सिद्धांत को गम्भीरतापूर्वक उपस्थित किया।

१०५ पाकिस्तान के लिए आन्दोलन

पाकिस्तान का विचार—बहुधा कहा जाता है कि भारतीय मुसलमानों के लिए एक पृथक राज्य का विचार क्विबेर इकबाल के मस्तिष्क से उत्पन्न हुआ। मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन (१९३०) में उन्होंने कहा था कि हम से कम पश्चिमोत्तर भारत के मुसलमानों का अंतिम मांग्य मुझे एक हृदय पश्चिमोत्तर भारतीय मुस्लिम राज्य की रचना प्रतीत होता है।^१ इस विचार का विरोध और उपहाम तक हुआ, परन्तु उसने कमिन्स में पढ़ने वाले कतिपय युवक मुस्लिम छात्रों की कल्पना को उत्तेजित किया। उसका नेता रहमत अली था। उसने सबसे पहले १९३३ में भारतीय मुसलमानों को एक राष्ट्र के नाम से सम्बोधित किया और प्रस्तावित नए राज्य पाकिस्तान के लिए एक योजना तैयार की। रहमत अली के पाकिस्तान में पत्राव, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, बंगाल और बलूचिस्तान सम्मिलित करने का सुझाव था। उसका योजना में बंगाल और घामास को मिलाकर बंग इस्लाम और हैंगरावा के राज्यक्षेत्र का उस्मानिस्तान बनाने की भी चर्चा की गई थी। रहमत अली ने अपने विचार को लोकप्रिय बनाने के लिए एक आन्दोलन प्रारम्भ किया और पाकिस्तान का समर्थन करने वाले पम्पलटो को ब्रिटिश संसद के सदस्यों तथा गानमन्त्र परिषद में मांग लाने वाले प्रतिनिधियों में बोटा। वस्तुतः उनकी योजना का कोई अंश नहीं हुआ और जर्मन्ना खाँ ने संयुक्त संसद समिति के सामने मापण देते हुए उसे काल्पनिक तथा अत्यावहारिक बताकर अस्वाकार कर दिया।

मुस्लिम लीग पाकिस्तान के लक्ष्य को प्रपनाती है—सच तो यह है कि १९३७ के पूर्व मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के विचार में कोई विशेष रुचि नहीं ली। निर्वाचन के पश्चात् जब लीग के नेताओं का संयुक्त मन्त्रिमण्डल की भांशाए फतवती नी हुई तब उन्होंने इस्लाम अखतर में है का नारा बुलन्द किया और मुस्लिम जनता को

१ यह समस्तव्य है कि इकबाल ने केवल एक ऐसे स्वायत्त राज्य के सृजन की कल्पना की थी जो अथवा प्रजाति इतिहास घम और भाषिक हितों की एकता के ऊपर आधारित हो। उ हान मुसलमानों के लिये किसी एक प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य अधिकांशता की मांग नी की थी। रूपलण्ड के अनुसार वे सम्पूर्ण भारत का एक एमा शिषियन संघ चाहते थे जिसमें कि केन्द्रीय संघीय सरकार केवल उन शक्तियों का उपभोग करती हो जो कि उसके संघीय राज्यों की स्वतन्त्र सहमति द्वारा निहित की जाए। यॉमस एडवर्ड के साथ एक मॅट में इकबाल ने अपना यह विचार व्यक्त किया था कि 'पाकिस्तान की योजना ब्रिटिश सरकार मुस्लिम जाति और हिन्दू जाति सबके लिए घातक होगी।'

उपेक्षा ए हिन्दू भी पाकिस्तान की माँग की कट्टर विरोधी थी। उनका कथन था राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक मसलमान भारतीय है। मजलिस ए महरार ए हिन्दू पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के सुनाई निरन्तरगार मसूविस्तान के राष्ट्रपति मुस्लिम प्रतिक भारतीय मोमिन मम्मलन और अखिल भारतीय गिया राजनीतिक सम्मेलन प्राणिदूमरी बई मुस्लिम सस्थाए पाकिस्तान के विरुद्ध थीं। जहाँ तक मस्लिमों का सम्बन्ध है उन्हेन यह स्पष्ट कह दिया था कि ये अपनी मानवमि की गरजा को खणित करने वान प्रत्येक प्रयास का प्राणवत्त ग विरोध करेंगे। पत्राच के गिन घण्टा छोट नेकिन बौरुपमय सम्मेलन के भविष्य के ऊपर विमानन के सम्भाव्य परिणामा के बार मे विशेष रूप से शक्ति ध और उतका ड कर विरोध करने के लिए बद्धाखिर था।

पाँचस का इच्छिकोए—काँग्रस निमगन घण्टा भारत के घाणा की प्रनु गामिनी थी। जहा काँग्रस ने स्वय को म स्मम लोग की पानिस्तान यात्रा के पत्राच विरुद्ध घोषित किया व म् घनि छुफ जनता के ऊपर बापुय गानन के लिए तयत नहा थी और प्रा णिक आत्मनिणय के सिद्धा न को मानती थी। तस्मि उनका कथन था कि आत्मनिणय का सिद्धांत मस्लिम बहुत शत्रो ग निवास करन दान मगी लोग के ऊपर लागू हाना चाहिए।

विरोध की असफलता—मस्लिम लोग की माँग थी कि मस्लिम वन्न शत्रो आत्मनिणय का अधिकार केवल मसलमाना को ही मिलना चाहिए। तथापि पाकिस्तान का विरोध दो महय कारणो से असफल सिद्ध हुआ। साम्प्रदायवाणियो के अशिक्षित और उदात्त मस्लिम जनता को हिन्दू तानाशाहो का मय निराया घो घुणामाय वा खनकर प्रचार किया। मोतीमानी जनता उनकी बातों में आ गई मुस्लिम लोग ने घामिक मदाधना और मावुक उ मा का जो तफान खटा कर दिया विवेक की आवाज उनमे नि शा हो गई। इसके साथ ही माघ ब्रिटिश अधिकारियो ने जि होने कि भारतवय म जानबूझकर भे नीति से काम निमा एकता बनाए रख के सारे प्रयत्नों का निष्फल कर दिया। आगन भारतीय नीकरशापी ने मि जिन्ना के चग पर चला दिया और उनके उस पृथक्तावादी सषय को जिसने कि भारती स्वतंत्रता की समस्या को जटिन व साम्प्रदायवादी प्रभुत्व का दीष कर दिया अमु सटस्थाना के साथ निगरा।

त्रिपस योजना और पाकिस्तान—पृथक्तावाणियों के प्रति ब्रिटिश सहानुभूति त्रिपस प्रस्तावो (मप्रव १९४२) म जिनका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं स्पष्ट रूप से यवत हाती थी। त्रिपस याजना म कहा गया था कि द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हाने के तुरन्त बाद भारत का नया सविधान बनान के लिए एक सविधान सभा क रचना की जाएगी। यह मान लिया गया था कि यदि ब्रिटिश भा त का कोई प्रा नण सविधान को स्वीकार न करना चाह तो उसे सतपान वषानिक स्थिति को काम ररता का अधिकार रह दि तु साथ में यह व्यवस्था भी रहेगी कि यदि वह प्राप्त क

में चाहे ता सविधान में सम्मिलित कर लिया जाए । नए सविधान में सम्मिलित न होने वाले प्रांतों को यदि वे चाहें तो सम्राट को सरकार तथा सविधान दत्ता स्वीकार करेगी और उनका पद भी पूरा रूप से भारतीय संघ के समान ही होगा । स्पष्ट है कि योजना में पाकिस्तान की बात प्रथमतः से स्वीकार कर ली गई थी । कांग्रेस ने इस योजना को भारतीय एकता की भावना के ऊपर कठोर आघात डीक ही बताया । इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लोग के आन्दोलन को नष्ट करने का प्रयत्न किया और कांग्रेस तथा मुस्लिम लोग के बीच मध्यस्थ भारत के आधार पर समझौते के सब प्रयास निष्फल कर लिए । इस गतिगति ने भारतीयों के विनाश के रूप धारण कर लिया और मुस्लिम लोग की हृदयर्षी व कारण उनके निवारण के समस्त प्रयत्न असफल हो गए ।

राजगोपालाचारी का प्रस्ताव—१९४४ में कांग्रेसी राजगोपालाचारी ने गति रीध को दूर करने की एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया । उसने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसे महात्मा गांधी का समय प्राप्त था यद्यपि बाद में कांग्रेस ने उसका विरोध किया । इस प्रस्ताव ने पाकिस्तान के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया और इसमें निम्न बातें थीं (१) मुस्लिम लोग स्वतंत्रता मन्व्यो भारत की मांग का स्वीकार करेगी और संप्रभुत्व प्राप्त करने के लिए अस्थायी सरकार बनाने में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी । (२) मृदु व पश्चात् एक कमीशन नियुक्त होगा जो भारत के उत्तर-पश्चिम और उत्तर पूर्व की एसी सीमाएं निर्दिष्ट करेगा जिनमें मुसलमान स्पष्ट बहुसंख्यक हों । इन क्षेत्रों के समस्त निवासियों का तार निराकरण किया जाएगा कि उन्हें भारत से अलग होना चाहिए या नहीं । (३) पृथक्करण की स्थिति में प्रथमतः यथायात और दूसरे अनिश्चित प्रयोजनों के लिए समझौते किए जाएंगे । (४) ये क्षेत्र तमो तमू तथा स्वीकृत होंगे जब कि ब्रिटिश सरकार भारत को सच्चा उत्तरदायित्व तथा सम्पूर्ण सत्ता हस्तांतरित करे ।

मि० जिना ने राजगोपालाचारी की योजना को हस्तापूर्वक स्वीकार कर लिया । उन्होंने इस योजना द्वारा प्राप्त होने वाले नुकड़े और हीनाग पाकिस्तान का तिरस्कार कर लिया और कहा कि मैं सिन्धु पत्रिका पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ब्रह्मिन्सान बंगाल और आसाम की अपनी मांग पर इस समय नहीं हारूंगा । इसके अलावा वे मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों के मुस्लिम निवासियों का अपना भाग्य निराकरण में कोई धावाएँ देने के लिए तयार नहीं थे ।

१०६ क्विनेट मिशन और उसके बाद

१९४६ के अन्त में भारत के अधिकाधिक और साम्प्रदायिक गतिरूप के निराकरण का अन्तिम दौर प्रारम्भ हुआ । उस समय तक जबिल सरकार के त्याग पर गठना सरकार की स्थापना हो गई थी । भारतभर में के द्रोह और प्रान्तीय विधान मण्डलों के लिए साधारण निर्वाचन हो चुका था और उससे महत्वपूर्ण परिणाम प्रकट हुए थे ।

कांग्रेस ने वेद और प्राचीन में सगमग सभी हिन्दू स्थाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसी तरह मुस्लिम लीग ने कुल ४९५ मुस्लिम स्थानों में से ४४६ स्थानों पर अधिकार कर लिया था। उसे यदि कहीं असफलता प्राप्त हुई तो बेसन परिषदोत्तर सीमाप्रांत में। लीग को मंत्रिमण्डल बनाने में बेसन बंगाल और सिन्ध में असफलता मिली लेकिन उसकी निर्वाचन विजय ने यह सिद्ध कर दिया था कि मुस्लिम जाति समग्र रूप से पाकिस्तान की माँग का समर्थन करती है।

जिस समय भारतवर्ष में निर्वाचन हो रहे थे ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने भारत के प्रति अपनी सरकार की नीति के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण वक्तव्य किए। एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि ब्रिटिश भारत के पूर्ण स्वतन्त्रता और निश्चय करने के कि यह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहे या न रहे अधिकार को स्वीकार करती है। अपने दूसरे वक्तव्य में उन्होंने घोषणा की कि एक अल्पसंख्यक वर्ग को इस बात की छूट नहीं दी जा सकती कि वह बहुसंख्यक वर्ग की राजनीतिक प्रगति के माँग में रोके अटकवाए। इसके साथ ही साथ उन्होंने अपनी सरकार के इस निश्चय की भी घोषणा की कि भारतीय समस्या का समाधान प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के सदस्यों का एक शिष्टमण्डल भेजा जाएगा।

कव्बिनेट मिशन भारत में—कव्बिनेट मिशन ने जिससे भारत मंत्री लार्ड पयिक नारंस व्यापार मन्त्र के प्रधान सर स्टकोड क्रिप्स और फरट नाड ऑफ एडमिरेल्टी मि ए ची० एन्वेजेणर शामिल थे ३ मार्च १९४६ को भारत में पत्तापण किया। कव्बिनेट मिशन के सदस्यों ने भारत आने के तुरन्त बाद ही वहाँ के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं और प्रतिनिधियों से बातचीत आरम्भ कर दी। ५ मई को मिशन ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के चार चार प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन शुरू किया। लेकिन सम्मेलन किसी मवसम्मन सूत्र को निश्चयने में सफल न हुआ और अन्ततः १३ मई को भंग हो गया। इस पर कव्बिनेट मिशन ने १६ मई १९४६ के राजपत्र में अपनी निम्नी प्रस्तावों की घोषणा कर दी।

कव्बिनेट मिशन के प्रस्ताव (ब) पाकिस्तान की अस्वीकृति—राजपत्र ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग का ध्यानपूर्वक परीक्षण किया और निष्कर्ष निकाला कि एक प्रभुत्व सम्पन्न मुस्लिम राज्य की स्थापना एक अवहारिक है। कव्बिनेट मिशन ने कहा कि पाकिस्तान साम्प्रदायिक समस्या का ठीक समाधान नहीं है। पाकिस्तान की माँग को अस्वीकार करते हुए अपने भारत के एके एक राज्य के निर्माण का प्रस्ताव किया जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रायः पूरे देशी राज्य दानो सम्मिलित हों। भारत सद्यः ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाने के लिए स्वतन्त्र होगा।

(ख) सविधान सभा—सविधान सभा के बारे में मिशन ने बताया कि उसके सदस्यों के निर्वाचन का आधार साम्प्रदायिक होगा जिसके अनुसार प्राचीन विधान सभाओं के धार्मिक सम्प्रदायों को १० लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाएगा। यह सविधान सभा भारत के लिए एक सविधान बनाएगी जो कुछ शर्तों के अधीन होगा।

(ग) भारत सभ अन्तरिम सरकार—इन शर्तों में एक यह थी कि भारत सब बर्दाश्तक मामलों प्रतिरक्षा तथा यातायात का नियंत्रण करेगा दूसरे सब विषय तथा अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांता में निहित होंगी । जब तक सविधान बनकर तयार हो उन समय तक के लिए कबिनेट मिशन ने एक एसी अन्तरिम सरकार की स्थापना का प्रस्ताव किया जिसे भारत के प्रमुख राजनीतिक दला का समर्थन प्राप्त हो और जिसमें सभी विभाग जनता व विद्यवासायन नेताओं के हाथों में रह ।

प्रांतों के वर्गीकरण के ऊपर वादानुवाद—कबिनेट मिशन की योजना के सवा विषय विचाराम्यत्र विषयों में से एक विषय यह था जो प्रांतों के वर्गीकरण से सम्बन्ध रखता था । इस योजना के अनुसार प्रांतीय प्रतिनिधि सावधान समा के प्रारम्भिक अविवेशन के पश्चात् तीन विभागों में बंट जायेंगे । विभाग (क) में बम्बई बिहार मध्यप्रान्त मद्रास उड़ीसा और सयुक्तप्रांत विभाग (ख) में पश्चिमाञ्चल सामाप्रान्त पंजाब और सिन्ध तथा विभाग (ग) में आसाम और बंगाल सम्मिलित होंगे । यह स्पष्ट है कि अन्तिम दो विभागों में मुसलमानों का बहुमत था । इन विभागों का स्म बात का निश्चय कराया था कि प्रांतों के लिए समूह विधान की व्यवस्था की जाए अपथा नहीं और अगर एसा किया जाए तो समूह की किन विषयों का प्रबन्ध सोचा जाए । सात पधिक तारों के अनुसार कबिनेट मिशन के प्रस्तावों में 'तान म्परा के सविधान की कल्पना का गई था जिनमें सबसे ऊपर भारत सभ द्वारा मदन मोच प्रान्त होगे । तकिन इसक धनिरिक्थ हम यह माचत है कि प्रांत गुण के रूप में इसलिये एक साथ सम्मिलित होना चाहूँ कि सामूहिक रूप से व एक प्रांत का अपथा और बढ क्षत्र का अधिकारों का सञ्चालन कर सकें ।'

अपन प्रस्तावों के परा १५ (५) में कबिनेट मिशन ने कहा था— प्रांतों का समूह बनाने का स्वतंत्रता हांगी और प्रत्येक प्रांत समूह यह तय करेगा कि कौन कौन से विषय मन्त्र रूप से सामूहिक शासन में रह । परा १९ (५) में उनमें का भाग य विभाग अपन अपन समूह के प्रांतों के सविधान को तयार करेंगे और यह तय करेंगे कि क्या उन प्रांतों के लिए कोई सामूहिक सविधान तयार करना चाहिए यदि एसा हा तो कौन से विषय सामूहिक सविधान के अन्तगत रहने चाहिए । प्रस्तावों में यह भी बहु श्रिया गया था कि प्रांतों का अपने समूह से निर्वन जान का अधिकार होगा । नए सविधान के अन्तगत प्रथम निवाचन हान के पश्चात् नया प्रांतीय विधान मण्डल हम प्रकार का नियुक्त कर सरेगा । *

कांग्रेस और सींग के निर्वाचनों में विरोध—स्पष्ट है कि प्रांतों के वर्गीकरण से सम्बन्ध रखने वाली धाराओं को बने गोल मोन शर्तों में व्यक्त किया गया था । निसंगत कांग्रेस ने उनका कुछ और अर्थ लगाया तथा मुस्लिम लीग ने कुछ और । कांयम के दृष्टिकोण से समूहों का निर्माण एडिक्ट का समन्वित की बात थीत के

काय में सहायता दे। कायस ने यह कामनाए स्वीकार कर लिया और सहयोग के लिए लोग से पुनः धनुरोध किया लेकिन लोग टास में मस नहीं हुई। इन पर २ सितम्बर को अन्तरिम सरकार की स्थापना हो गई और श्री जवाहरलाल नेहरू उसने उपाध्यक्ष नियुक्त हुए।

प्रथम कायवाही का दिन और उसका परिणाम—दूसी बीच में घटना अन्तः प्रमत्तन की गति में आग बढ़ चुका था। मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त को प्रथम कायवाही का दिन निश्चित किया था। बंगाल सरकार ने गति सावजनिक छुड़ी कर दी। प्रथम कायवाही विम की कलकत्ता और सिन्धुट में गम्भीर उपस्थित हुए। कलकत्ता के नरमय में लगभग ७००० व्यक्ति मार गए। इसी प्रकार मितलह और ढाका में भी मयदर रक्तपात हुआ। हिमा की आग पूर्वी बंगाल में जा पहुँची। नोआगाती और टिपरा में जो अत्याचार और रक्तपात हुआ उसने चारों ओर घातक पदा कर दिया नारी निर्घातन बलपूर्वक विवाह बलात्कार जबरन धम परिवर्तन घरों में आग लगा देने उन पर सामूहिक हमला और प्रतिष्ठ परिवारों के इन हमलों में शिकार होने से पूर्वी बंगाल में जा अविश्वास फैल गया था यह तीन वर्ष पूर्व अज्ञान में हुई सामूहिक मृत्युओं से कहा अधिक भीषण था। 'राष्ट्रीय सना में वक्तव्य देने हुए पण्डित तवाटरना नेहरू ने साफ कह दिया कि दगे मुस्लिम लीग की पहल और उत्तजना मिलाने से हुए हैं।

मुस्लिम लीग का अन्तरिम सरकार में प्रवेश—कायस द्वारा नियमित अन्तरिम सरकार की स्थापना पर लोग बहुत बचन हो रही थी। कायसराय लाड व्यक्ति भी लीग का अन्तरिम सरकार में जान के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। वार्ताओं के दौरान में उन्होंने सहायक नीति से काम किया था और अक्टूबर में वे मुस्लिम लीग के पाच मनोनीत सदस्यों की बिना उससे इस बात का स्पष्ट बचन लिये कि वह सविधानसभा के काय में सहयोग देगा अन्तरिम सरकार में शामिल करने के लिए सहमत हो गए। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने सविधान सभा के काय में कोई सहयोग नहीं दिया।

१०८ अग्रजा का भारत छोड़ने का विद्वय

विण्डा हुए परिस्थिति—जसी कि शका की जाता थी अन्तरिम सरकार में कायस लीग की सहयुक्तता ने स्थिति को और भी तराब कर दिया। साम्प्रदायिक हानत सजी से विण्डा गई। बंगाल में जो उपद्रव हुए थे बिहार गन्मुक्तेश्वर (यू पी०) लाहौर और रावतभिण्डी (पश्चिमी पंजाब) में उनका भीषण प्रतिक्रिया हुई। सम्पूर्ण प्रशासन दिन भिन्न हुआ जा रहा था। गृह-युद्ध के स्पष्ट लक्षण दिखाई दे रहे थे। मुस्लिम लीग ने हंगारू और चण्डालों के दिनों को पुनः जीवित करने की जो धमकी दी थी वह मूर्तरूप धारण करती हुई प्रतीत होती थी।

२ फरवरी १९४७ की घोषणा—ब्रिटिश सरकार ने यह निष्कथ निवाला दि आग की निधि अब उसके काय से बाहर निकल गई तथा निष्णय करने में

जितना ही विलम्ब किया जाएगा उतनी ही यद्दा की हालत और खराब हो जाएगी । उसने भारत के माध्य को उसकी जनता के हाथों में छोड़कर यद्दा से चले जाने का निश्चय किया । प्रधान मंत्री एटली ने २० फरवरी १९४७ की महत्वपूर्ण घोषणा में इस निष्पत्ति को पक्का किया । उन्होंने कहा सभा के सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून १९४८ तक जिम्मेदार भारतीयों के हाथ में शक्ति सौंपने के कार्य को सम्पन्न कर देगी । यह घोषणा करने समय ब्रिटिश सरकार ने घोषणा प्रकट की कि ब्रिटिश शक्ति के भारत से हट जाने की बात भारतीय राजनीति का केंद्र में प्राथमिकता प्राप्त कर देगी और उन्हें वास्तविकताओं का सामना करने तथा उचित समझौता निवाले की सामर्थ्य प्रदान करेगी । लेकिन घोषणा ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि सब प्रकार से प्रतिनिधित्वपूर्ण सविधान समाज १९४८ से पूर्व कोई सविधान न बना सकी तो उस स्थिति में 'समझौते' की सरकार को यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार का दायित्व पूरे का पूरा ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को या विभक्त करके वर्तमान प्रांतीय सरकारों को अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपित तथा भारतीयों के लिए महाभारत नामपूर्ण हो सौंपा जाए । सत्ता हस्तान्तरण के कार्य को सुगम करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने जो कदम उठाए उनमें एक वायव्यता नाट्यवित्त को वापस बुलाना और उनके स्थान पर नाट्य प्रशासन को नियुक्त करना था ।

वायव्यता विभाजन स्वाधार—जसा कि स्पष्ट है २ पर्यटकों के व्यवहार ने ही हम लोग की पारि तान की माग का प्रकट होना ही कारण था लिया था । निम्नलिखित विचारों के आधार पर समझौता करने का को उत्पन्न प्रकट न । की । उनका सविधान सभा का बहिष्कार चयन का और देश की राजनीतिक स्थिति अधि-राज्य सिंगली गर् । नए वायव्यता नाट्य प्रशासन न प्रशासनिक विधान-संस्था प्रस्तावना किया और विधायक विधान-संस्था की हालत सुधारन के लिए एक प्राथमिकी उपाय का व्यवस्थापन करना तथा ही प्रस्तावना है तथा यह प्राथमिकी उपाय का विभाजन है । जस उचित भारत के राजनीतिक विभाजन पर प्रभारित एक योजना प्रारंभ था । प्रायः न सत्तापन प्रशासन भारत के प्रायः के लिए सज्ज किया था । परिस्थितियों से प्रेरित होकर उपाय अनुभव किया कि देश के विभाजन को स्वीकार करना ही ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत और देश को गृहयुद्ध का उपाय का उपाय का एकमात्र माग है । इसी समय सरकार बल्लभ भार्गव ने विभाजन का समर्थन करत हुए कहा कि यदि भारत का बाह्य अंग बिनकुन खराब हो जाय एगी अवस्था में उम शरीर में रक्त की घण्टा उम शरीर से पृथक् करता अधि-स्थान है उनी तरह का अवस्था मुक्तमार्गों की भारत में थी । हमारे पक्ष कि विभाजन का लिए समस्त भारत में ध्याप्य हो जाय पक्ष ने वाकिफान की विभाजन की स्वाभाविक आवश्यकता बता दी । महात्मा गांधी यद्यपि विभाजन के समर्थक नहीं थे परन्तु जसा कि सुधी न भयनी पुस्तक 'ट्रांसफर ऑफ पावर' (Transfer of power) में लिखा

देगी और इन सविधान-समाप्तों की अपने अपने देशों के लिए इच्छानुरूप सविधान बनाने की स्वतंत्रता होगी। (२) यह निर्धारित किया गया कि प्रत्येक डोमिनियन का डोमिनियन मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा नियुक्त एक एक गवर्नर जनरल होगा। अधिनियम ने यह उपबंधित कर दिया कि गवर्नर जनरल और प्रांतीय गवर्नर भविष्य में स्वच्छाचारी शासकों के रूप में कार्य नहीं करेंगे। दूसरे शब्दों में उन्हें समस्त मामलों में अपनी विवेकी शक्तियों और उत्तरदायित्वों के प्रयोग के साथ ही अपने मंत्रियों व परामर्श के अनुसार धारण करना पड़ेगा। (३) प्रत्येक डोमिनियन की सविधान समाप्तों के विधान मण्डल के रूप में कार्य करेगी तथा उसकी अधिनियम शक्तियों के ऊपर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं होगा। (४) प्रत्येक डोमिनियन के विधान मण्डल में पूर्ण विधायिनी शक्ति प्राप्त होगी और १५ अगस्त, १९४७ के पश्चात् ब्रिटिश संसद द्वारा पास किया कोई अधिनियम किसी डोमिनियन पर उसके विधान मण्डल की स्वीकृति के बिना लागू नहीं होगा। (५) अधिनियम ने भारत मन्त्री के पद को समाप्त कर दिया। (६) जब तक नया सविधान बनकर तयार नहीं हो जाता १९३५ का भारत सरकार अधिनियम कुछ संशोधित होकर भारत का कानून बनाने का काम करेगा। (७) जहाँ तक भारतीय राज्यों का प्रश्न है उनके ऊपर से ब्रिटिश सार्वभौमता समाप्त हो गई और उन्हें नए डोमिनियनों के साथ अपने प्रांतों की तय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए।

१८ जून को अधिनियम पर सम्राट की स्वीकृति प्राप्त हो गई और १५ अगस्त १९४७ का वरदण्ड ही बनायी हो गया। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ। सात वर्षों के पश्चात् भारतवर्ष ने स्वतंत्रता प्राप्त की परन्तु इनके साथ ही साथ उसे कई दुर्लभ समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। राजनीतिक दृष्टि से भारत सन्धियों से अलग रहता था उसका विभाजन न भूगोल का भूगोल कठिनाईयाँ लगीं पर थी। समस्त जतिन सम्पत्ता ही देशी राज्यों का। व समय की स्वतंत्र घोषित कर सतने व अपना जित डोमिनियन में चाहते शामिल हो सतने थे। यहाँ भारत के अन्तर्निष्ठा बनने का सम्बन्ध परतरी विद्यमान था। यदि देशी नरथ स्वयं को स्वतंत्र शासन घोषित करने व अपने कानूनी अधिकार का प्रयोग कर बड़ने तो भारत की स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं रहता। अग्रजों ने दीधन्यता तक भारत का प्रयोग किया था और जान-जान व उममें एक और धन लगा धन। क्या धन एक जानी-बूझी चेतना नहीं था उग स्वतंत्रता को अन्तर्ग्रस्त करने के लिए जो उत्तरदायित्व के इन अर्थिक प्रश्नों के साथ ही गईं थी? अन्तर्गत जहाँ बड़े अन्तर्गत राजनीतिकों ने तो यहाँ तक कहा था कि भारत का स्वाधीनता मूल्य-मरीचिका में अन्तर्गत कुछ नया होगा वह दुर्लभ-मुद्र का सपना व सत-विगत हो जाएगा और उसमें अन्तर्ग्रतता धन जाएगी। अन्तर्गत अन्तर्गत उस पर पुन अपनी प्रमुख शक्ति सतने में समय होगा। यह भारतीय राजनीतिकों के साथ ही और अन्तर्ग्रतता के प्रति अन्तर्ग्रतता है कि व अन्तर्ग्रतता में ही देश की स्वतंत्रता की अन्तर्ग्रतता और अन्तर्ग्रतता अन्तर्ग्रतता की अन्तर्ग्रतता की अन्तर्ग्रतता में अन्तर्ग्रतता है।

११० अंग्रेजों ने भारत क्यों छोड़ा ?

बहुधा पूछा जाता है कि अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्यवादी शासन को क्यों समाप्त कर दिया ? एक उत्तर यह है कि १९४६ में अंग्रेज दल गताश्रय हुआ और वह भारतीय स्वतंत्रता के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध था। लेकिन यह वास्तव में विशेष सन्तोषजनक नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत छोड़ने का निर्णय कुशन राजनीतिज्ञता का अर्थवादी महात्मा गांधी के शक्ति में ब्रिटिश राष्ट्र का सबसे बड़ा काम था। लेकिन इस बात में सन्देह है कि यह गलत एम्पिरिक था। यह एक तथ्य है कि इंग्लैंड की समाजवादी सरकार भी उपनिवेशवाद के प्रतिवृत्त नहीं रही है। आज भी 'यूनाइटेड रूप से ६' छात्र और बड़े उपनिवेशों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद एक जीवित शक्ति है। तब फिर इंग्लैंड ने अपने भारतीय साम्राज्य से हटने का क्यों निश्चय किया ?

परिस्थितियों की विवशता— सत्रसे महत्वपूर्ण कारण डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के अनुसार समय की गति और परिस्थितियों की विवशता है। वह अर्थशास्त्रवादी नहीं अपितु परिस्थितियों का बन या जिसने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध ने अंग्लैंड की शक्ति और प्रतिष्ठा को घुनघुनारित कर दिया था। आर्थिक दृष्टि से उसका दिवाना निकल चुका था और वह अमेरिका का मोहताज होकर ही बने रह गया था। नोबेल ने अंग्रेजी पुस्तक 'ब्रिटिश फॉरिन पॉलिसी' में लिखा है कि युद्ध की समाप्ति तक अंग्रेजों का ध्यान था कि वह अमेरिका का एक अवकाश प्राप्त (Pensioner) बन जायें। और उनका अविश्वविदगी सहायता पर निर्भर करता था। यदि अमेरिका अंग्रेजों का सहायता नहीं देता तो सम्भवतः साम्यवाद ही विजयवादी हो जाती। जिससे उनमें अपने राष्ट्रीय और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए अंग्रेजों को अंग्रेजों की आवश्यकता थी। उसी यह स्थिति थी जो कि अंग्रेजों में अपने साम्राज्यवादी प्रभुत्व को वापस रखने के लिए पर्याप्त सहायता रखती थी।

ब्रिटिश शासन एक निपट अस्मभावना— भारतवर्ष में परिस्थितियों को अंग्लैंड के साम्राज्यवादी शासन को एक निपट अस्मभावना कर दिया था। एशिया अपनी युग युग यात्रा को त्याग कर उठ खड़ा हुआ था और उपनिवेशवाद का मोन की पट्टी बज चुकी थी। भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावना इतनी परास्राव्य को पहुँच चुकी थी कि इंग्लैंड ने जनता की शक्ति के द्वारा देनाए रखने की प्रसन्नता दे ली। सन ४२ की शक्ति अंग्रेजों के लिए एक स्पष्ट चेतावनी थी कि वशीप्रातिशीत्र भारत छोड़ दें अन्यथा भयकर परिणाम होगा। आज्ञा हिंद फौज का उन्मव और भारतीय नौसेना का विद्रोह भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। अंग्रेजों ने इस बात को अन्धेरी तरह समझ लिया था कि जनता की राष्ट्रीय भावनाओं का दमन करने के लिए भारतीय सेनाओं का अर्थ और प्रयोग नहीं किया जा सकता। अंग्रेज अपनी राजनीतिक पवहार युद्ध और प्रतिवाधता उपस्थित होने पर समझौते

की तत्परता के लिए प्रस्थान हैं। स्पष्ट था कि यदि कांग्रेस राजी से नहीं जाती तो उन्हें ब्रिटीशों से जाना पड़ता। फलतः उन्होंने भारत छोड़ने का और जनता की सम्भावनाओं की जीतन का निश्चय किया।

१११ सुभाष बोस और आजाद हिन्द फौज

सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आजाद हिन्द फौज ने भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए मन्त्रपूर्वक कार्य किया। यहाँ उनका कुछ विशद प्रसंग निर्देश करना उचित प्रतीत होता है। नवाजा मारताय स्वतंत्रता के अग्रनिष्ठा पुत्रादी थे। मानवृत्ति की परतंत्रता इन्हीं का काटने के लिए उन्हें जापान के दक्षिण दिशि उन्हे वाराण उनका नाम राज के अधिन में सदैव स्वर्णधारों में अर्पित

गये। वहीं की ही आजाद हिन्द फौज के लिए मन्त्रपूर्वक कार्य प्रारम्भ कायम का उद्देश्य निर्धारित किया। दगावपु चित्तजनताम के नवृत्त मन्त्र राजनीतिक नीति का आग्रहण हुआ और उन्होंने जीघनापूर्वक धनवस्तु इति सु उन्नति की। जब व ३२ वर्ष के थे कलकत्ता के मयूर निर्वाचित हुए। १९३८ में व कांग्रेस के अध्यक्ष बने। अगले वर्ष भी उन्होंने कांग्रेस का अध्यक्ष पद जीत लिया। इस बार उन्होंने महात्मा गांधी का सुला विरोध करने पर भी सफलता प्राप्त की। लेकिन कुछ समय बाद ही कांग्रेस के दक्षिण पक्ष के साथ उनका मतभेद इतना तीव्र हो गया कि उन्होंने सत्या छोड़ दी और अपने एक पृथक दल फायद प्लाक की स्थापना की।

सुभाष बोस का प्रथम व वामपक्ष का प्रतिनिधित्व करने थे। व सरकार पक्ष और रावेलप्रमाण की तरह बहुर गांधीवादी नहीं थे। अहिंसा का सिद्धान्त उन्हें केवल एक नीति के रूप में मान्य था। यदि गांधीजी भारतीय राष्ट्रवादी व मूल्य थे जिनके चारों ओर कांग्रेस के समस्त पक्ष परिभ्रमण करते थे तो सुभाष बोस एक नयात्र य जिनका अर्थना एक पृथक प्रहाय था। दगा के नवयुवक व का मंगल करने में उन्होंने बहुत काम किया था। अहिंसक भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के भी वे अध्यक्ष रहें थे। उनका विचार था कि राजनीतिक के रूप में गांधीजी असफल रहे हैं।

आजाद हिन्द फौज और सुभाष बोस—जलाई १९४० में भारत सुरक्षा अधिनियम के अधीन सुभाष बोस को गिरफ्तार कर लिया गया। जून में व्यापक विमर्श जाने के कारण सरकार ने उन्हें छोड़ दिया और उनके घर पर ही उन्हें नजरबंद कर

दिया। २६ जनवरी १९४१ को वे रहस्यमय ढंग से घटस्थ हो गए और कुनी का भेष धारण कर उत्तरी भारत भ्रमणनिस्तान और रूस होत हुए जर्मनी जा पहुँचे। जुलाई, १९४३ में उन्होंने दक्षिण-पूर्वी एशिया में आजाद हिंद फौज का नेतृत्व सम्हाल लिया। आजाद हिंद फौज का संगठन सितम्बर १९४१ में भारत के एक प्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने किया था। इस फौज में वे साठ हजार भारतीय सैनिक सम्मिलित थे जिन्हें ब्रिटिश सेनापतियों ने जापानियों की दया के ऊपर छोड़ दिया था। वे देशभक्त सैनिक रासबिहारी बोस के आह्वान पर जापान की सहायता से भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की शूर मरल्य हो गए। बंदिन मातृमिह न आजाद हिंद फौज में नहीं जा सकूँ और उमे देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटूँ व गुद मात्र दिया। वे उससे प्रथम सनापति थे। जब सुभाष बोस स्वयं पर पंच ली आजाद हिंद फौज को मुह माँगा, चरमान एक मतिशील नया प्राप्त हो गया। सुभाष बोस की सेना संचालन का कोई अनुभव नहीं था। तबिन उन्होंने अपने जादू भरे व्यक्तित्व अपूर्व संगठन क्षमता और विनयण भाषण का आशा आजाद हिंद फौज को जिसके पास न अस्त्र शस्त्र का समुचित प्रबंध था और न गोजरानि का। क अन्तिय सडाकू सेना बना दिया। उनके दिल्ली चले गए न मियाँ या म अपूर्व उत्साह पना किया सिपाई अविशय कठिन परिचयिनया म नये और जनशक्ति प्राप्तिया धान पर भी अत्यंत दृढ़ विश्वास रखमात्र भी विचरित नहीं हुए।

उनके मिशान की प्रसफलता और उनकी मृत्यु—आजाद हिंद फौज न बर्मा म शानदार उडाई लडी और कुछ समय के लिए भारत की भूमि म पनापण किया। नेताजी की प्रस्थायी सरकार ने कुछ समय तक मनीपुर और अजमेर के छात्र स राय शत्रु म जिसका विस्तार लगभग १५००० बग मीन था, काम किया। तबिन अ न म सामग्री रसद और अस्त्र शस्त्रानि के अभाव और पराजित जापानियों के मन्वयता ज्ञान दृष्टिकोण के कारण आजाद हिंद फौज को मित्र राष्ट्रों के सम्मान घटन टकरने पड़े। सुभाष बोस अपने मिशन को प्राप्त करने में असफल हुए और २६ अगस्त १९४५ को जापान के आत्म समरण के कुछ समय बाद ही ४८ उम की आयु म एक हवाई दुर्घटना में उनका देशांत हो गया।

देश द्रोही नहीं देगा अस्त्र—सुभाष बोस की मृत्यु के बाद अस्त्र बनाने दिया। भारत का अस्त्र उन्ने अपने शत्रु के एक लगे महात्मा मृत के रूप में स न यात्रा पाने त्रिस्तन अस्त्र मन्वयता के लिए अस्त्र सन्धि बनि लन किया। सुभाष बोस के अस्त्र में जिन्सी शासन के प्रति घोर घणा का भाव था। तबिनय परिश्रमी शासन ने उ ह विभीषण बताया। तबिन यह दोषागोशण मन्वयता मिटया था। उन्होंने आजाद हिंद फौज के एक कठिनुतली सेना होने के आशय का आशयवाद किया। अतः सम्भवतः मे एक बार उ ने कहा था कि 'यदि ब्रिटिश राजनीति मुझ फुलतान अथवा परवश करने में असफल हो चुके हैं तो वाई और राजनीतिज्ञ एमा करने म सकन नहीं हो सकता।' सुभाष बोस का यह दृढ़ विश्वास था कि भारतीय स्वतंत्रता सशाम म विजय प्राप्त

करने के लिए विशेषी सहायता की अनिवार्य आवश्यकता है। तिनक की मांगि उनका भी यह विश्वास था कि अपने साध्य की विधि के लिए मन चाहे साधनों का प्रयोग किया जा सकता है।

मुमाय बोल में जहा इतने गुण थे वहा उनमें कुछ दुबनताए भी थी। उनमें एक बडा दोष यह था कि वे स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल नश बना पाते थे। उनके चरित्र में अहम-मता की प्रधानता थी और अकेल सपय रत रहना उनके लिए सामयिक सुखकर था। महारमा गायी के साथ उनके सम्भार मतमं थे और उन्होंने कावेस हाई कमाड के सम्बन्धायत्तवा के विच्छेद मत्तन मुड किया। यस उन पर स्वयं फामिस्ट प्रवृत्तियों वाला व्यक्ति होने का सम्बन्ध किया जाता था। लेकिन उनके बीरतापूर्ण अन्त ने उनकी दुबनताओं की स्मृति को मुता लिया और देगवासियों के हृदय मन्दिर में उनकी मूर्ति भारतीय स्वतन्त्रता के उम्र अमर सापक के रूप में विराजमान है जिसने गातृममि की मक्ति के लिए अपना तन मन धन सभी कुछ निःस्वार्थ कर दिया।

सारांश

१९५५ के अधिनियम के प्रारम्भ ज्ञान के परवान मुस्लिम राजनीति में एक नया माह उपस्थित हुआ। अब तक मुस्लिम पृथक्तावादी न दानो भाग का पृथक् निर्वाचक मण्डल का सम्भार और मरगणा तक ही मानित रखा था। जिन १६ में द्वि राष्ट्र सिद्धांत सामने आया और १९४० में मुस्लिम लीग ने पृथक् मुस्लिम राज्य पारिस्तात की माग अंगीकृत की।

पृथक्करण का एक प्रकार की मांग पृथक्तावादी का आनाविह निष्पन्न था। हमने इनकी प्रत्येक चीज पर जहन पर मुस्लिम लीग ने मुस्लिम जनता पर अरत प्रसार का जमाए जनन के लिए पाकिस्तान का नारा पुनः किया। पाकिस्तान की माग के लिए कुछ और कारण भी उत्तरदायी थे। कायम ने मुस्लिम लीग के साथ निरन्तर समुजन मन्त्रिमण्डल बनाना अस्माकार कर दिया लीग अगम बगुा कुछ और कायम कायम जिश्र न दग के सिद्धांत के अन्त प्रवृत्त आन जन पुनः कर दिया। कायम ने सिद्धांत पमान पर जिन जन-अमरक आनेवा को पुनः किया था मुस्लिम लीग ने उा कानो मन्त्रि त के लिए एक समकी समाना और अग्रम मानित प्रा तो में सिद्ध अस्माकार को आगत उवा की। सिद्धांत के अमरक के सिद्धांत लीग का अरती लीग-मूर्ति में मलय। लीग और मुस्लिम समाज पर जवका प्रभाव जग गया। सिद्ध अस्माकार के अन्त आ प्रकृति सिद्ध साम्प्रदायिकता का ना यो अमर हुआ। अन्त भारतीय लीकराणा न ना भारत का एक लीग के अन्त करत में अस्माकार म कुछ उदा न रता। उनका कवल्यामा न ना पृथक्तावादी मानना का बन दिया।

द्वि राष्ट्र सिद्धांत मुस्लिम लीग का विचारवादा का अन्तर्विष्ट और उमरी पा अस्तान की मांग का आधार बन गया। उनका दावा किया कि हिन्दू और मुसलमान

यमी एक राष्ट्रीय नहीं हो सकते क्योंकि उनके पम दान सामाजिक आधार और साहित्य एक दूसरे से भिन्न हैं। यह एक विकट सिद्धांत था। इसने पम को राष्ट्रीयता की एकमात्र कमीटी माना और इस तथ्य की उपेक्षा की कि भारतीय ममनमान उन हिन्दुओं के पशज हैं जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। यदि यद्मात भी लिया जाए कि हिन्दू और ममनमान दो राष्ट्र हैं तो तम यद्मात नहीं विभक्तता कि उनके दा पृथक राज्य होन चाहिए। एक राष्ट्र एक राज्य एक सिंग सिद्धांत है और विभक्तजन्य तम सोनियन मम जम बहुराज्य रा य यद्मात सिद्ध करत कि एक सघाय राज्य की छत्रछाया म कर् राष्ट्रीयताए ता उपयक रह सका है।

ही अन्वय कर रिया। राजाता क म्म ने भी मस्लिम बन्धन धया क अन्वयित्तय क अधिकार की मान रिया। सकिन दाप्रस के अधिकारा धम न उसका तिरकार किया और मि जिन्ना ने भी उस ठकरा लिया। इसी बीच म मुस्लिम लाग क साम्प्रदायिक घणामाव के प्रचार ने एन मयावह स्थिति उत्पन्न कर दी और दश गृहयुद्ध की और वन्ता हुआ मानूम पडने लगा।

१९४५ मे इंग्लण्ड मे थमिफ दन सत्ताएड हुप्रा और उसने भारतीय समस्या को नए सिरे से मुलभाने का निश्चय किया। भारत मे केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मण्डलो के जो निर्वाचन हुए उनसे म्दस्वपूण नतीजे सामन आए। मस्लिम लीग न पाकिस्तान के प्रश्न को लेकर चुनाव लडा था। उसे ४९५ मे से ४४६ स्थानो पर विजय प्राप्त हुई। उसे अराफलता का सामना केवल पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त मे ही करना पडा। स्पष्ट है कि उसकी मांग को मस्लिम समाज के बहुमत का समर्थन प्राप्त था।

१९४६ के शुभ म प्रधान मन्त्री एटनी ने दो म्दस्वपूण वक्तव्य दिए। इन वक्तव्यो म उ होने भारत क स्वतन्त्रता के अधिदार का स्वीकार किया और कहा कि अल्पसङ्ख्यक धम का इम बात की गुर नही दी जा सकती कि वह बहुमत की राजनीतिक प्रगति क मांग को राके रखे। इसके कुछ ही समय बाद राजनीतिक गतिरोध को दूर करन क लिए कबिनेट मिशन न भारत की यात्रा की। अपनी योजना म मिशन ने पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार कर दिया और भारत सध के लिए तीन स्तर वाल सविधान को बनाने के उद्दश्य से एक सविधान समा की स्थापना का

सुझाव दिया। जब तक नया संविधान बन कर तयार न हो जाए उस समय तक के लिए उसने एक ऐसी अंतरिम सरकार की स्थापना का जिसमें भारत के प्रमुख दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित हो, प्रस्ताव किया।

कविनेट मिशन पचाट के प्रकाशन के उपरांत भारत में घटनाक्रम बड़ी तेजी से घोर भयकरता से बढ़ा। लीग के प्रतिनिधियों ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। यद्यपि लीग अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हुई लेकिन पाकिस्तान की प्राप्त करने के प्रयत्न में। उनके प्रत्यक्ष कायदाही आन्दोलन ने विंगल साम्प्रदायिक उपद्रवों की एक शृंखला शुरू कर दी। उगलण न जब शेषा कि वह भारतभर में अपनी साम्राज्यवादी प्रभुत्व और अधिक कायम नहा रख सकता तो उगल २० फरवरी १९४७ को तब १९४७ तब भारत हाट देन के मयन एतिहासिक निर्णय की घोषणा कर दी। माघ १९४७ में तब दलित क संयान पर गाड म उण वरन भारत क कायमगय बनकर आण। त तो माघ क विमान और ता पु र त म र्ति । भारत और पाकिस्तान की स्थापना के लिए तब यानत तयार का। त त म ता त स्थिति को देख कर कायम ने एक द्वाबर त उगल न रूप म विमान नो वापस कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को ३ जून के पठणपत्र पचाट की तर्कों के अनुसार देश का विभाजन हो गया और पाकिस्तान तथा भारत दो प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्रों के रूप में भवतरित हुए।



अध्याय १५

भारत का नया संविधान

११२ संविधान सभा और नए संविधान का निर्माण

संविधान सभा की मांग—भारतीय गणराज्य का यह संविधान जो २६ जनवरी १९५० को शुरू हुआ भारत की संविधान सभा के परिश्रम का फल था जिसका सबसे पहला ८ दिसम्बर १९४६ को प्राथमिक चरण किया गया था और जिसने २६ नवम्बर १९४९ को अपना काम पूरा किया। कांग्रेस ने व्यक्तिगत अधिकार पर आधारित एमी निर्वाचित संविधान सभा की मांग जो भारत के लिए एक संविधान बना सके सबसे पहले १९३४ में की थी। कांग्रेस ने १९३६ में और फिर बाद के वर्षों में इस मांग को बारम्बार दुहराया लेकिन उसका कोई विशेष परिणाम नहीं मिला। यह महायुद्ध की विमोक्षिका का ही फल था जिसने १९४२ में इंग्लैंड को विश्व प्रस्तावों में निर्वाचित संविधान सभा के द्वारा भारत के अपने संविधान बनाने का अधिकार को मानने के लिए विवश कर दिया। बाद में ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत के प्रति अपनी नीति के सम्बन्ध में जो भी महत्वपूर्ण बातें दीं उन सब में उन्होंने अपनी इस स्वीकृति को बार-बार दुहराया। भारत की संविधान सभा का नाम कबिनेट मिशन याज्ञानिक उपबन्धों के आधार पर हुआ था।

गठन और निर्वाचन प्रक्रिया—संविधान सभा भारत के प्रमुख सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों से मिलकर बना थी। विभिन्न प्रांतों और राज्यों के बीच स्थानों का विन्यास माटे तौर पर १ भाग की जनसंख्या के ऊपर एक प्रतिनिधि के सिद्धांत से किया गया था। प्रांतीय सदस्यों के निवाचन के लिए प्रत्येक प्रांतीय सभा सम्प्रदायिक निर्वाचन समूहों में विभाजित एक निर्वाचक मण्डल के रूप में कार्य करती थी। ये निर्वाचक समूह सानुपात प्रतिनिधित्व के द्वारा एकत्र सार्वजनिक मतपद्धति के अनुसार अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करते थे। देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व की प्रणाली बार्नो के द्वारा निर्दिष्ट होने के लिए छोड़ दी गई थी। कबिनेट मिशन योजना के अधिन स्थापित संविधान सभा की कुल संख्या ३८९ थी। इस संख्या में देशी राज्यों के ६३ प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे।

प्रान्तों के लिए स्थानों का निर्धारण निम्न प्रकार से हुआ—

प्रतिनिधित्व-तालिका

विभाग क

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	कुल जोड़
सयुक्त प्रांत	४७	८	५५
मद्रास	४५	४	४९
बिहार	३१	४	३६
बम्बई	१६	२	२१
मौ० पी०	१६	१	१७
उड़ीसा	६	०	६
योग	१६७	२०	१८७

विभाग ए

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	तिरुंग	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
मि०घ	१	३	०	४
पश्चिमोत्तर				
सोमाप्र त	०	३	०	
योग	९	२२	४	३५

विभाग ग

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	योग
बंगाल	२७	३	३०
झारखण्ड	७	३	१०
योग	३४	६	४०

उक्त तालिका के अन्तर्गत निर्धारित स्थानों के अन्तर्गत प्रान्तों के लिए कुल ५५५ स्थानों का निर्धारण किया गया है। इनमें प्रान्तनिर्वाहिक स्थानों के अन्तर्गत कुल ५५५ स्थानों का निर्धारण किया गया है।

सविधान सभा का निर्माण— (निम्नलिखित) योजना के अन्तर्गत सविधान सभा प्रमुख मन्त्र सहायक सभा के अन्तर्गत निर्वाहिक स्थानों का निर्धारण किया गया है। उक्त सभा सत्ता सूचना सत्ता और प्रशिक्षण के अन्तर्गत निर्वाहिक स्थानों का निर्धारण किया गया है। उक्त सभा सत्ता सूचना सत्ता और प्रशिक्षण के अन्तर्गत निर्वाहिक स्थानों का निर्धारण किया गया है।

उदाहरणार्थ वह केन्द्र की प्रतिरक्षा यातायात और वेशिख मामले छोड़ कर अन्य कोई विषय हस्तांतरित नहीं कर सकती थी। इसके अलावा यह ब्रिटिश सभ्यता की अन्तिम सत्ता के अधीन थी।

मुस्लिम लीग द्वारा यहिखार--गविधान समा का पत्रा अधिवेशन ६ दिसम्बर १९४६ को हुआ। प्रथम अधिवेशन का अवसर पर सबसे सभ्य प्रतिनिधि उभय सम्मिलित नहीं हुए। मुस्लिम लीग ने उत्तम प्रतिनिधि निया। बाद में यह अन्तिम सरकार में सम्मिलित हुआ किन्तु यह उसी विधान और परिस्थिति के लिए पृथक-पृथक सविधान समा की अपना मत मंगल का प्रस्ताव। तथापि समा ने मुस्लिम लीग के सदस्यों की अनुपस्थिति के कारण भी अपना नाम का प्रायश्चित्त

वातावरण प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पश्चात्--भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने सविधान सभ्य का स्वरूप को विनकुल बदल दिया। अथवा पूरा प्रभुत्व सम्पन्न सत्ता बन गई। क्विनेट मिशन योजना के अधीन उसके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगा लिए गए थे वे सब हट गए। समा ने विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार किया और ३१ अगस्त १९४७ को डॉक्टर अम्बेदेकर की अध्यक्षता में इन रिपोर्टों के आधार पर नए सविधान के प्रारूप को अन्तिम रूप देने के लिए एक प्रारूपसमिति नियुक्त की। प्रारूप समिति ने प्रारूप २१ फरवरी १९४८ को अध्यक्ष के सम्मुख उपस्थित किया और २६ फरवरी को उसे जनता के लिए प्रकाशित कर दिया गया। ५ नवम्बर १९४८ को प्रारूप सविधान सविधान समा के सम्मुख उपस्थित किया गया और २६ नवम्बर १९४९ को उसे कतिपय परिवर्तनों सहित अन्तिम रूप से पास कर अंगीकृत किया गया। इस प्रकार सविधान समा को स्वतंत्र भारत का सविधान बनाने में दो वर्ष खारह महीने का अठ दिन लगे। नया सविधान १६ जनवरी १९५० के दिन प्रवृत्त हो गया।

११३ नए सविधान की प्रमुख विशेषताएँ

लिखित और कठोर सविधान--भारत का नया सविधान सभ्य का सबसे अन्तिम सविधान है। इसमें ६५ अनुच्छेद और ८ अनुसूचियाँ हैं। इस प्रकार यह एक

१ सघीय शक्ति समिति सघीय सविधान समिति राज्य सविधान समिति मूलभूत अधिकारों और अल्पसंख्यक वर्गों पर परामर्शदात्री समिति कर्मावली क्षेत्रों पर परामर्शदात्री समिति आदि।

लिखित सविधान है। यह एक अभिप्राय में बँटोर भी है। देश का कोई भी विधान मण्डल उसके सबसे महत्वपूर्ण उच्च घों को धरुल सञ्चोधन नहीं कर सकता। लेकिन यदि हम अपने सविधान की अमेरिका स्विटजरलैंड और आस्ट्रिया के सविधानों से तुलना करके देखें तो पता चलेगा कि हमारा सविधान इन दोनों के सविधानों की अपेक्षा कम बँटोर है। सविधान में वर्णित सञ्चोधन की प्रक्रिया न बहुत कठिन है न बहुत जटिल। सविधान न राष्ट्रपति को यह शक्ति देती है कि वह आपात की उदघोषणा निकालकर उसके सञ्चोधन के एकदम ढींच में बदल सकता है। इससे भी सविधान में सञ्चोधन के तत्व का समावेश हो गया है। यदि राज्य परिषद अपने दो तिहाई बहुमत से उदघोषणा करे कि राज्य सूची में प्रणालित प्रमुख विषय का सञ्चोधन मण्डल के सञ्चोधनकार में आना राष्ट्रिय हित की दृष्टि से आवश्यक है तो उस विषय पर साधारण परिस्थितियों तक में सञ्चोधन मण्डल का अनुमति देना सकता है।

यह भारत की प्रमुख शक्ति सम्पन्न 'नोबल' आत्मक गणराज्य घोषित करता है—सविधान भारत की एक प्रमुख शक्ति सम्पन्न 'नोबल' आत्मक गणराज्य घोषित करता है। भारतीय सविधान का गणराज्य आत्मक स्वरूप इस तथ्य से प्रकट है कि राज्य का वास्तविकी प्रधान कोई अनुवर्तिन नरेश नहीं, अपितु निर्णीत राष्ट्रपति है। सार्वभौम दायक मनाधिकार का अनुपात पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन गण और अनुपस्थिता का अनु समर्थनाय मूल अधिकार का अनुदान तथा अनुपात पाठिका का अनुपात आदि तथ्य ऐसे हैं जो भारतीय सविधान के 'नोबल' आत्मक आचार का पुष्टि करते हैं। सविधान का मुख्य उद्देश्य भारत के सम्पूर्ण नागरिकों के लिए स्वतंत्रता, समता और अनुपात प्राप्त कराना है और इस उद्देश्य को प्रत्याशना में घोषित कर दिया गया है। भारत में निर्वाचन मण्डल का अनुपात है लेकिन इस उदघोषना प्रमुख शक्ति पर निर्वाचन प्रसार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

एकात्मक आत्मक सविधान—सविधान भारतीय म सञ्चोधन राज्य के प्रतीक मानता करता है। उक्त निर्धारित किया कि भारत अर्थात् इन्डिया राज्यो का मध्य होगा। दूसरे शब्दों का तथ्य भारत में भागे जाति की सरकार है— राज्य सरकार और राज्यो को नरेशों। सविधान सविधान का अनुपात और अनुपात के अनुपात के अनुपात तीन सूचियों— राज्य सूची राज्य सूची और अनुपातों सूची में विस्तृत स्वरूप से विवरण करता है लेकिन यह स्मरण है कि यद्यपि भारतीय मध्य में सञ्चोधन की सामान्य विशेषताएँ तो आवश्यक नियमान्त हैं वह एक आत्मक सञ्चोधन है। उसमें निश्चय रूप से एकात्मक अभिमत है। भारत अमेरिका मध्य की अण्डा बनादियन मध्य के अधिक सञ्चोधन है।

सञ्चोधन शासन प्रणाली—सविधान न भारतीय के लिए अनुपात और राज्यो दोनों स्थानों पर समदाय शासन प्रणाली की अनुपात किया है। भारत के राष्ट्रपति

इसमें किसी अधिकार का अपहरण करता है और उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधि घोषित किया जा सकता है। नागरिक इन अधिकारों में प्रवृत्त और सरक्षण के लिए सर्वोच्च न्यायालय प्रथम राज्यों के उच्च न्यायालयों की शरण तक जा सकते हैं। मूलभूत अधिकारों (अनुच्छेद १२ से ३५ तक) में भारत के नागरिकों को यह गारण्टी दी गई है कि वे कानून की दृष्टि में बिना भेदभाव के बराबर समझ जाएंगे उन्हें मापण उपसना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता रहेगी अन्तिमूक समाप्त करने और समुदाय बनाने को उन्हें अधिकार रहेगा साथ वे सम्पूर्ण राष्ट्र क्षेत्र में घूमने फिरने की कड़ी भी बसने की और किसी भी जीविका वाणिज्य या व्यवसाय की स्वतंत्रता का व उपभोग करेंगे। यदिमान ने मानव कृपण और वनात् धर्म का प्रतिपाद कर दिया है और नागरिकों का अन्त करण की तथा घम व अघाव मानन

लोकतंत्र की स्थापना करना है। अमेरिका संसार का सबसे प्रगतिशील लोकतंत्रात्मक देश है लेकिन वहाँ भी रंग क भाषा पर विभेद की भावना का दण्ड योग्य अपराध नहीं माना गया। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में जिन समता अधिकारों का उल्लेख किया गया है, वे अमेरिकन संविधान के समता अधिकारों का अपेक्षा अधिक वास्तविक और विध्यात्मक हैं।

(२) स्वातंत्र्य अधिकार—स्वातंत्र्य अधिकार (अनुच्छेद १६) इस बात की गारण्टी देता है कि सब नागरिकों को याक स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का शक्तिपूर्वक और निराशुभ सम्मेलन का संस्था या संध बनाने का भारत राज्य क्षेत्र में प्रबाध संचरण का भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का सम्पत्ति के अजन धारण और व्यय करने का तथा कोई वृत्ति उपजाविका व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।

(३) स्वातंत्र्य अधिकार पर प्रतिबंध—स्वातंत्र्य अधिकार किसी भी प्रकार पूर्ण नहीं है। इनके ऊपर कई बड़े बड़े प्रतिबंध लगे हुए हैं और इन प्रतिबंधों की कई विधान विशारदों ने बड़ी आलोचना की है। उदाहरण के लिये उनका कथन है कि निवारक निराध अधिनियम के अधीन जिसे संविधान का सम्मोचन प्राप्त है किसी भी नागरिक का सोन महीने तक और संसद की स्वीकृति मिलने पर इससे भी अधिक समय तक बिना परीक्षण के जल में रखा जा सकता है। आलोचना का मत है कि यह कानून स्वतंत्रता और लोकतंत्र की भावना के प्रतिकूल है। उसकी दृष्टि में शासन अपने राजनीतिक विरोधियों को कुचल सकता है। इसके विपरीत राय की भावना यह है कि सामान्य विरोधी तत्वों का सामना करने के लिए ये प्रतिबंध आवश्यक हैं। भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर संविधान अधिनियम (प्रथम संशोधन) द्वारा जिसे संसद ने जन ५१ में पास किया था और अधिक प्रतिबंध लगाए गए हैं। यह अधिनियम राज्य का एक प्रत्येक कानून की निमित्त का अधिकार देता है जो राज्य की सुरक्षा विशेषांशों के साथ सभी सम्बंधों सावजनिक व्यवस्था सुगमता व नतिकता के लिये मही अपेक्षा पराजय की मानहानि, अपकीर्ति या अपराध की उपाय के सम्बंध में हो। आलोचकों ने इस संशोधन की बड़ी आलोचना की है और इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर मध्यम आघात बताया है। संसदोत्पन्न शासन इस अधिनियम का प्रयोग कर जनता को उसकी आधारभूत स्वतंत्रताया से वंचित कर सकता है।

(४) शोषण के विरुद्ध अधिकार—शासन के विरुद्ध अधिकार मानव के धर्म और बेट-नगर तथा हमी प्रकार के अर्थ बलात्कृत का प्रतिरोध करता है व इस उपबंध के उल्लंघन की अपराध ठहराता है जो कानून के अनुसार दण्डनीय है। संविधान इस बात का भी उपबंध करता है कि चौहूँ वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी काम में नौकर न रखा जाएगा और न किसी दूसरी सशक्तमय नौकरों से लगाया

जाएगा। इन अधिकारों का उद्देश्य भारत में एक ऐसी समान व्यवस्था को लागू करना है जिसमें कि सबके व्यक्तिगत जीवन का नाश न कर सके। ये अधिकार नए जात भारत राज्य को सौंप सपही राज्य का रूप प्रस्था करने हैं।

(४) धर्म स्वातन्त्र्य का अधिकार—भारतवर्ष विभिन्न धर्मों की सम्मिलित भूमि है। संविधान ने समस्त नागरिकों को धर्म धरण की स्वतंत्रता का तथा धर्म के प्रवाह रूप से मानने आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार प्रदान किया है (अनुच्छेद २५)। इन अधिकारों के सम्बन्ध में यह ध्यान देना है कि इनका प्रयोग सावजनिक व्यवस्था मर्यादा और स्वास्थ्य आदि में उपयोग रहन हुए किया जाए। संविधान ने यह भी निर्धारित किया है कि राज्य द्वारा घोषित गिना सन्ध्याओं में किसी प्रकार की धार्मिक गिना नहीं दी जाएगी और राज्य में धर्मगत गिना-सन्ध्याओं में तो राज्य की निधि से सहायता पानी है किसी भी विद्यालयों की धार्मिक शिक्षा में भाग लेने अथवा धार्मिक उपासना में सम्मिलित होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। तथापि संविधान ने इस बात का उल्लेख कर दिया है कि राज्य धार्मिक आचरण में सम्बद्ध किसी धार्मिक वित्तीय राजनीतिक अथवा अन्य प्रकार की सौकरिक क्रियाओं का विनिमय अथवा निबन्धन कर सकता है और हिन्दुओं की सावजनिक प्रकार की धर्म-सन्ध्याओं को हिन्दुओं के सब वर्गों और विभागों के लिए खोल सकता है।

(५) सस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार—संविधान में सस्कृति और शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों का भी उल्लेख है। अनुच्छेद २६ में कहा गया है कि भारत के नागरिकों के किसी विभाग का जिसकी अपनी विशेष भाषा लिपि या सस्कृति है उसे बनाए रखने का अधिकार होगा और राज्य द्वारा घोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा-सन्ध्या में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म मूलवश जाति भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जाएगा। अनुच्छेद ३० धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी धर्म की शिक्षा-सन्ध्याओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार देता है व इस बात का उपबन्ध करता है कि शिक्षा-सन्ध्याओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभ्रं न करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है। ये अधिकार भारत में अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक नए युग का उद्घाटन करते हैं और उन्हें सांस्कृतिक स्वाधीनता की गारण्टी देते हैं।

(६) सम्पत्ति का अधिकार—अनुच्छेद ३१ सम्पत्ति के अधिकार का निरूपण करता है। संविधान ने निश्चित किया है कि "कोई व्यक्ति कानून के अधिकाधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा" और कोई भी सम्पत्ति सावजनिक उपयोग के लिए मुआवजा दिए बिना कब्जाकृत या वंचित नहीं की जा सकती। इसके अलावा राज्य के विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई भी ऐसा कानून जो सम्पत्ति

के अनिवाय धरत का उपबन्ध करता हो तब तक प्रभावी नहीं होगा, जब तक कि उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न मिल गई हो। व्यक्तिगत सम्पत्ति से सम्बद्ध सविधान के उपबन्ध बाका विवादास्पद रहें हैं। समाजवादी और साम्यवादी इन उपबन्धों की कठोर आलोचना करते हैं। विधान शास्त्रिया का भी यह मत है कि इन उपबन्धों के कारण भारतनयन में समाजवाद के अनिवाय सर्वोच्च सत्तित्त लोभतन्त्र की स्थापना करना कठिन हो जाएगा जमींदार और सम्पत्तिशाली वर्ग वृद्धि-मुजारों के माग में रोके जा सकत हैं। उचित आलोचना निराधार नहीं है यह इन बातों से स्पष्ट है कि कतिपय राज्यों द्वारा पास किए गए जमींदारी उन्मूलन कानूनों को बचाने के लिए सविधान का समीपिन करना पडा है।

(७) सविधानिक उपचारों के अधिकार—सविधान उन सविधानिक उपचारों के अधिकारों का भी उपबन्ध करता है जिनके द्वारा उपपुत्र अधिकारों को प्रवर्तित कराया जा सकता है। सविधान का अनुच्छेद ३२ प्रत्येक नागरिक को इस बात के लिए अधिकृत करता है कि वह सविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए याचानमों की प्ररण कर सकता है। इन अधिकारों में सविधान का प्रवर्तित करने के लिए सर्वोच्च याचानय को एक आदेश या उम जिनके अन्तगत को प्रत्यगोचरण (Habeas Corpus) परमादेश (Mandamus) प्रतिषेध (Prohibition) अधिकार पृच्छा (Quo warranto) और उत्प्रेषण (Cretorian) के प्रकार के तब भी हैं निश्चानने की शक्ति प्राप्त है।

आलोचनात्मक सूक्ष्मकरण—यह समस्त है कि साधारण परिस्थितियों में सविधान द्वारा प्रदान किए गए नागरिकों के मूल अधिकारों को याचानयन द्वारा वाध्यता से जा मरती है। दूसरे शब्दों में यदि राज्य साधारण परिस्थितियां में नागरिकों के इन मूल अधिकारों के अतिक्रमण का प्रमाण करे तो याचानयन उनका रक्षा में प्रवृत्त हो सरता है। आयाय रोहत-आत्मक दलों में भी मूल अधिकारों की यही स्थिति है। इनके अलावा अमेरिका की तरह भारत में भी याचानयनिकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि यदि मसद अधेश राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई कानून मूल अधिकारों के प्रतिदूल हो तो याचानयनिकों को उल्लेख प्राप्त कर सकती है।

सर्वत्र भारतीय सविधान के मूल अधिकारों में कतिपय ऐसी बातें हैं जिनके ऊपर उभय बां विवाद उठ सरता हुआ है। प्रत्येक अधिकार के ऊपर अनेक प्रतिषेध लागे हुए हैं। ये प्रतिषेध एते हैं जिनके बारे में कहा जा सकता है कि यदि सविधान एक हाथ से अधिकार देता है, तो दूसरे हाथ से उल्लेखित करता है। भारत के सविधान के विनिरात अमेरिका का सविधान नागरिकों के मूल अधिकारों का बिलकुल निष्प्रतिषेध में निरूपण करता है। भारत में मूल अधिकारों के ऊपर जो प्रतिषेध लगाए गए हैं उनकी बरत से कमी-कमी याचानयनिकों के लिए यह कठिन हो जाता है कि वह याचानयनिकों अथवा विधानमण्डलों के अधिकारों के विरुद्ध उनकी रक्षा कर सके।

यापालय द्वारा मुग्धा प्राप्त करना सम्भव नहीं। यापालय तक पहुँचने के लिए जो मत्सा व समय चाहिए वह हमारे देश के साधारण व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर है। आवश्यकता है कि राज्य भारत में सत्ता सारण व प्रवितम्ब हो। यापालय की प्रपक्षा हम अपने अधिकारों का जनमत शक्ति द्वारा अधिक प्रामाणा स सुरक्षित कर सकते हैं। सत्त निगरानी स्वतन्त्रता का वाक्य है। किन्तु भारत में जनमत शक्ति धन उद्योग में बहुत निकट भविष्य में सफल हो सकती सोदा यतिन प्रतीत होता है। इन्टरनेशनल जप दंग में कई गतान्तियों के अधिकृत प्रयत्न के परभाव जनमत धन अधिकारों का रक्षा कर सका है। भारत उस विधान व अधिकृत दंग में जनमत की प्रभावशाली बनाने में कुछ समय लगेगा। अधिकारों के सम्बन्ध में जो चौथे पुनाया व पूर्व सर्वोच्च यापालय द्वारा जो नियम दिया गया है वह बहुत महत्वपूर्ण है। इस विधान के अनुसार मन्त्र मौरिक अधिकारों पर किसी भी नये कानून का पारित कर हस्तगत नहीं कर सकती। कुछ जनमत के हित में सर्वोच्च यापालय द्वारा मौलिक अधिकारों की रक्षा धरणि है।^१

११५ राज्य की नीति के निर्देशक तत्व

निर्देशक तत्वों का अभिप्राय—भारतीय सुविधान में राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का समायोजन एक एकी विधान है जो यापालय के अधिकृत स प्रयोग का गन् है। उन निर्देशक तत्वों का पालन करना राज्य के लिए आवश्यक नहीं है य निर्देशक तत्व तो कल्पन धारण हैं। अधिकृत की प्रयोजना में एक ऐसी समझ व्यवस्था की स्थापना की बात कहा गया है जिसमें जायन के समा अधिक सामाजिक और राजनीतिक शक्तों में समानता स्वतन्त्रता और राज्य विद्यमान हों। राज्य की नीति के निर्देशक तत्व उन मापों का निरूपण करते हैं जिनके द्वारा एकी समझ धरणा कायम की जा सकता है। अनुच्छेद ७ न यह स्पष्ट कर दिया है कि इन तत्वों को किना यापालय द्वारा वाधना न दी जा सकेगी तो मा व दंग के पक्ष में मूलभूत है और कानून बनाने में उनका प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा। अनुच्छेद २० में कहा गया है कि राज्य सामाजिक धार्मिक और सामाजिक याय पर आधारित समझ पक्ष की स्थापना का प्रयास करेगा। राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का मा व न बढ़ा मार है। सुविधा का दृष्टि से उनका निम्न प्रमाण प्रयोग करके किया जा सकता है—(क) धार्मिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण में सम्बद्ध निर्देशक तत्व (ख) याय शिक्षा और साक्षरता में सम्बद्ध निर्देशक तत्व तथा (ग) प्रमाण निर्देशक तत्व।

(क) धार्मिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण में सम्बद्ध निर्देशक तत्व— अनुच्छेद ३१ ४१ ४२ ४३ ४६ ४७ और ४८ मुख्यतः धार्मिक मानसों में सम्बद्ध हैं। अनुच्छेद २६ में कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का इस प्रकार समायोजन करेगा जिसमें जनसंख्या के और नारा समा जागरिकों का अधिकार के समान स्थापन

उपलब्ध हो सकें, सामुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से भाग्य हो सके। धार्मिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धर्म और उत्थान साधनों का अधिकारी बेव्यग्न न हो सके, पुरुष और स्त्रियों को समान भाव के लिए समान वेतन मिल सके अथवा स्त्रियों और पुरुषों के स्वास्थ्य तथा शक्ति और बालकों की सुकुमार व्यवस्था का दुरुपयोग न हो सके एवं धार्मिक विद्वज्जनों के लाचार होकर नागरिकों को ऐसे रोगकारियों में न जाना पड़े जो उनकी भाव्य और शक्ति के अक्षय न हों तथा जनस्य और शिष्टों के व्यवस्था का शासन से और नतिक व धार्मिक परिष्कार से संरक्षण हो सके। अनुच्छेद ४१ बेकारी बुझाना अग्रदूत तथा अन्य अग्रदूत की दशाओं में नागरिकों के साथ सहायता पाने के अधिकार का स्विकार करता है। अनुच्छेद ४२ में कहा गया है कि राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा। अनुच्छेद ४३ में कहा गया है कि राज्य अथवा के लिए निर्वाह मजदूरी आदि का प्रबन्ध करेगा और कुलीन उद्योग की उन्नति के लिए चष्टाशील होगा। अनुच्छेद ४६ में कहा गया है कि राज्य अनुसूचित जातियों के शिक्षा तथा अग्र-सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा। अनुच्छेद ४७ में स्विकार किया गया है कि आहार पुष्टि तत्त्व और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा सावधानिक स्वास्थ्य के सुधार करने का राज्य का कर्तव्य होगा। अनुच्छेद ४८ में कहा गया है कि राज्य कृषि और पशुपालक को वैज्ञानिक प्रणालियों में सम्मिलन करेगा व गोवध का प्रतिषेध करेगा।

(ख) 'याय शिक्षा और लोकतन्त्र से सम्बद्ध निर्देशक तत्त्व—राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों में कुछ ऐसे भी हैं जो 'याय की सुरक्षा शिक्षा के विस्तार और लोकतन्त्र के प्रसार का उपबन्ध करते हैं। अनुच्छेद ४६ और ५० याय की सुरक्षा से सम्बन्ध रखते हैं। अनुच्छेद ४६ में कहा गया है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान व्यवहार सहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद ५० में राज्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण की बात कही गई है। शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध में अनुच्छेद ५५ में निर्धारित किया है कि राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बच्चों को चौदह वर्ष की अवस्था समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा। भारत में लाक्षणिकतात्मक भावनाओं के प्रसार के लिए निर्देशक तत्त्वों में ग्राम पंचायतों के सघटन की बात कही गई है। अनुच्छेद ५० ने निश्चित किया है कि राज्य ग्राम पंचायतों को सघटन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको एसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।

(ग) प्रकीर्ण निर्देशक तत्त्व—अनुच्छेद ५६ और ५१ की हम प्रकीर्ण निर्देशक

तत्वों में गणना कर सकते हैं। अनुच्छेद ४९ में राष्ट्रीय महत्व के समारकों स्वार्थों और भीतों के सरक्षण की बात कही गई है। राज्य का यह ध्येय होगा कि वह विनाश, व्ययन और निर्धन से इनकी रक्षा करे। अनुच्छेद २१ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति से सम्बन्ध रखता है। इसमें कहा गया है कि—

राज्य—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का

(ख) राष्ट्रों के बीच शान्ति और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का

(ग) मधुनित न्यायों का एक दूरदर्शक न्याय व्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और शान्ति बन्धनों के प्रति ध्यान रखने का तथा

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निबटारने के लिए प्रयास करने का प्रयत्न करेगा।^१

निर्देशक तत्वों का सविधानिक महत्त्व—राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों की इस धारा पर ध्यानपूर्वक ध्यान देना चाहिए कि इनमें कबल कुछ पवित्र इच्छाओं का ही उल्लेख मात्र है। रिजिस्ट्रार आराम शर्मा ने सविधान का अध्याय ४ की जिसमें राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है ध्यानपूर्वक ध्यान देना चाहिए कि इनमें कुछ उन्नत प्रत्यक्ष बहुजन-मै पवित्र इच्छाएँ और कुछ ऐसे अधिकार बिनकी परिधान द्वारा गारण्टी का जो मकनी थी समाविष्ट हैं।^२ स्त्रियों और पुत्रों को समान कामों के लिए समान वेतन मिले इसी न केवल सविधान द्वारा गारण्टी ही दी जा सकती है अपितु इस कानून द्वारा परिवर्तित भी किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रारम्भिक निष्पक्ष धनिये धिया का उपबन्ध निर्देशक तत्वों में न होकर बल्कि मूल अधिकारों में समाविष्ट होता तो कहीं अधिक श्रेयस्कर था।

राज्य की नीति के ये निर्देशक तत्व बहुत स्पष्ट हैं। सविधान में इस बात का साफ-साफ उल्लेख कर दिया है कि 'इन उपबन्धों को किसी न्यायानय द्वारा बाधता न दी जा सकती परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी साफ साफ कह दिया गया है कि ये तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।' इस प्रसंग में मूलभूत का क्या अर्थ है ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्नत ध्यानपूर्वक में राज्य का एक बहुत बड़ा धर्म है लेकिन हमें यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि राज्य की नीति के इन निर्देशक तत्वों में कुछ अल्प ध्यान निहित है। इन ध्यानपूर्वक का सविधान में समावेश राज्य की निम्नतर इस बात की स्मृति ज्ञानाता रहेगा कि वह इन ध्यानपूर्वक की सिद्धि के लिए बाधागत हो धरणी नीतियों को इस प्रकार निर्धारित करे ताकि ये ध्यानपूर्वक ध्यान ही न रहे जाए अपितु मूलभूत धारण कर सकें। ये ध्यान किसी भी सत्ताधर

१ रिजिस्ट्रार आराम शर्मा—'इतिहास जनन और पारित्यक्त भाष्य' सम आरक्षण और की इतिहास जनटीटपूरन भाग ३०, पृ. ३१, पृ. २४।

दल की सहाई और सुराई की बगोटी हो सकते हैं। जो सत्तामंडल दल विताता ही इन धाराओं को मूलरूप देने में सफल हो उनकी उन्नति ही प्रतीकता बना स्पष्ट है। जनता किसी भी सत्तामंडल की नीतियों और कार्यों का मही मही मूल्यांकन न आशों के प्रकाश में कर सकती है। इसके घलावा सोवत-सामय सामय प्रणाली की यद् अनियम विनियम है कि उनमें सोवतमय समय समय पर सत्यता रहता है। पतत यदि आज एक दल शासन की वागडोर को सभ्यता रखा है तो बल दृष्टि न्य शासन की वागडोर सभ्यता सभ्यता है यदि आज यद् न्य प्रवृत्तियों का दल सत्तामंडल है तो कुछ समय पश्चात् प्राविश्यागी प्रवृत्तियों का दल सत्तामंडल हो सकता है। एही परिस्थिति में राज्य की नीति के य निर्देशक तत्त्व इस बात को समझना पडता है कि यद् न्य दल शासन नीति व निर्धारण में इन तत्त्वों का पूणत उल्लेख न करे और इसके माय ही-माय प्राविश्यागी दल अपने प्राविश्याय प्राय वायव्यता का काय-प में परिणत करने व लिए यद् न्य घनुष्य करे कि सावधान म बात द्यौ करन की आवश्यकता है। श्री एम० सी० सीतलवाह के शो म राज्य की नीति क निर्देशक तत्त्वों के सम्बन्ध में सविधान निर्माताओं का पवश्य हा यह उद्देश्य था कि य तत्त्व प्रचलित ज्ञाति क रूप म राज्य क समी प्राविश्यागी का राज्य निर्माण के प्रयासों म माय दान करे और राष्ट्र जन जन समृद्धिशास्त्री और ज्विनिशास्त्री का त्रिमय वह विश्व क प्राय राष्ट्रों म घटना योग्य स्वान प्राप्त कर सके। १ ए०००० मंडेर के मत म सविधान की दृष्टि स य सिद्धा १ न्यायिक क सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक और अन्तरराष्ट्रीय मनो बानों की राख्या बान हैं।

यदि इन निर्देशक तत्त्वों के व्यवहारिक मूल्य के संबंध में जो प्रातिपा है उनको स्पष्ट कर देना भी जरूरी है। यह तो सुस्पष्ट है कि इन निर्देशक सिद्धा त्तों के कार्यान्वित होने पर ही इन ह्वाये देश म स-सालकारी राष्ट्र बनन की आशा कर सकते हैं। राजनतिक जनतन्त्र की संपन्नता—प्राथमिक सुरक्षा समानता व विकास पर निर्भर करती है। इन सब म भारत सरकार की नीति स्पष्ट है और पिछन कुछ धर्मों म पक्वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सरकार न जो बहुउद्देश्याय योजनाय और औद्योगिक प्रगति की है वह न्य बान का चीरक है कि सरकार इन सिद्धा ता के प्रति जिनकी जगत्क और प्रयत्नशात है। देश म कानून द्वारा बुलाये मे पैदा बीमारा में प्राथमिक सुरक्षा काय समय सीमा का निधारण तथा श्रमिक विकास व उनकी सुविधाओं की उचित व्यवस्था कर दा ग है। यद् न्य जिन बानों क पुजारी और उद्गु क य और उनकी आवश्यकता का निर्देशक तत्त्वों में जो स्यात दिया गया है उ ह भी कार्यान्वित कर दिया गया है। उनसे से कुछ हैं जैसे जातीय वग एवता ग्राम पंचायतों का विकास खानी कुीर त्तों का जाल गोवर्ध का मत व घनुसूचित जातियों का उत्थान। जनता मे इस प्राति का भी उ मून्न करन का प्रयत्न किया जा रहा

१ श्री एम० सी० सीतलवाह— भारतीय सविधान (भाषण माता) के अन्तर्गत राष्ट्र की नीति क निर्देशक तत्त्व पृ० १४।

करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा ।” वास्तव में प्रत्यक्षता भारतीय समाज का धीरे धीरे रूप से हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा कलक रहा है । इसका फलतः सुविधान ने धर्म निरपेक्षता का माग को एक बहुत बड़ी बाधा को दूर कर दिया है ।

धर्म-स्वातंत्र्य का अधिकार—सुविधान के अनुच्छेद २५ २८ धर्म स्वातंत्र्य के अधिकारों से सम्बन्ध रखते हैं और इसलिए वनए धर्म निरपेक्ष राज्य की आधार शिला है । सभी व्यक्तियों को धर्म स्वीकारण तथा धर्म के प्रभाव मानने का अधिकार प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गई है । लेकिन राज्य का किसी प्रकार का लोकाधिकारियों के विनियम और नियंत्रण से बाह्य धार्मिक प्रचारण से ही सम्बन्ध बना नहीं बचिता रखा गया है । राज्य का एक कानून बनाने का शक्ति प्राप्त है जो सामाजिक कल्याण और सुचारु उपबन्धन करने का प्रयत्न हिन्दुओं की सामाजिक प्रचार को धर्म स्वीकारण की हिन्दुओं के मंत्रियों और विभाग के नियंत्रण में है । शिक्षा को कुशल धारण करने का अधिकार दे दिया गया है । धार्मिक सम्प्रदाय और प्राथमिक धार्मिक संस्थाओं का सम्पत्ति का उगाड़न स्थापित और प्रशासन करने का अधिकार दे दिया गया है । काइसी नागरिक एन करों को दान के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिसके धार्मिक किसी विषय धर्म प्रथम धार्मिक सम्प्रदाय का उपनिषा पोषण में व्यय करने के लिए विशेष रूप में विनियुक्त कर दिए गए हैं । राज्यनिधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा-संस्था में काइसी धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती । राज्य से धार्मिक प्रथम राज्यनिधि से सहायता पाने वाली शिक्षा-संस्था में काइसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए प्रथम एका शिक्षा संस्था में काइसी धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिये शिक्षाविदों को बाध्य नहीं किया जा सकता बहिन यदि वे स्वच्छ से चाहें तो भाग ले सकते हैं ।

धर्मसम्बन्धकों के हितों का संरक्षण—अनुच्छेद २६ और ३० में धर्म सम्बन्धकों के हितों का संरक्षण के लिए उपबन्ध निवारित किए गए हैं । नागरिकों के किसी विभाग की जिसकी अपनी विषय बाधा निधि या संस्कृति है उसे बनाय रखने का अधिकार होगा । राज्य द्वारा पोषित प्रथम राज्यनिधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रथम से किसी भी नागरिक का बहिन धर्म मूलभूत ज्ञान बाधा प्रथम इनमें से किसी के आधार पर बचिता नहीं किया जायगा । धर्म या भाषा पर आधारित समस्त धर्मसम्बन्धकों को अपनी कचकी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनका प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है । शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यार्थी के विरुद्ध इस आधार पर विनियम करेगा कि वह विद्यालय धर्म या भाषा पर आधारित किसी धर्मसम्बन्धकों के प्रथम में है । इन धर्मसम्बन्धकों का उद्देश्य यही है कि धार्मिक नामों में बिना किसी बाधना के ज्ञान विज्ञान और शिक्षा का धार्मिक विस्तार हो सके ।

उसे ईश्वर के समान पूजनीय मानें। विपरीत टिक राज्य एक धर्म विरोध से सम्बन्ध होता है और उसके फायदे कायानु धर्म पुस्तकों के अनुसार निमित्त होते हैं। पूर्ण और परिष्कृत दोनों ही श्रेणियों में इस प्रकार का राज्य रहे है।

भारत में धर्म निरपेक्ष राज्य की आवश्यकता— भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्ष राजतंत्र की पुन स्थापना का मतव्य बिलकुल स्पष्ट है। भारत की सज़ाई के दौरान जिस साम्प्रदायिक त्रिभुज का यहाँ विह्वल हुआ और जिसके कारण अज्ञान स्थापित हुआ व मानव रचना की गरिमा उन्ही उमकी सबसे बड़ी परता रना यकी है कि धर्म और राजनीति का सम्बन्ध धर्म और राजनीति दोनों का निग ही विनाशकारी है। इसके अलावा भारत में कई धर्मों के मानन राज शासन रहने है। एकात्मता में राज्य स्वयं को किसी एक धर्म विषय में बंधन में नही रखेगा और न ही क माय कसे सम्बन्ध कर सकता है? राज्य के लिए यह परवना आवश्यक है कि वह सब धर्मों के प्रति सम दृष्टि रखे अर्थात् धर्म निरपेक्षता का ध्यान रखे।

धर्म निरपेक्षता और भारतीय संविधान— भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को यहाँ तक अपनाया गया है? संविधान की प्रस्तावना में ईश्वर की कोई उल्लेख नहीं है और न किसी धर्म का नाम भी नहीं है, स्थान दिया गया है। भारतीय गणराज्य का उद्देश्य देश में सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक धर्म का समाप्त करना निश्चित किया गया है। फल राजतंत्र का मूलमंत्र—स्वतंत्रता समता और बहुता को भी प्रस्तावना में छोड़ दिया गया है। स्वतंत्रता और समानता शब्दों की तो बंधानिक महत्ता है और बहुता एक नतिक मूल्य है। धर्म धर्म मुग दुगांतर से हिन्दू विधान का उदगम रहा है। प्रस्तावना में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

नागरिकता का आधार धर्म नहीं— संविधान के भाग दो में नागरिकता के आधार और नियम का बहान किया गया है। नागरिकता धर्म बल और रग के आधार पर नहीं अपितु प्रादेशिक आधार पर निर्भर है। संविधान ने भारत राज्य क्षेत्र में जन्म अधिवास और निवास को ही नागरिकता की कसौटी माना है। संविधान के भाग तीन में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख है। इन अधिकारों की समता अधिकार स्वातंत्र्य अधिकार संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार धार्मिक विभिन्न भागों में बाँट दिया गया है। इन अधिकारों में वे अधिकार प्रयुक्त महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने धार्मिक परम्पराओं द्वारा आरोपित भेदभावों का अन्त कर दिया है।

धार्मिक भेदभावों का अन्त— अनुच्छेद १५ जाति लिंग मूलवर्ण या जन्म के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध करता है। सड़कों कुर्सी और स्नानघाटों जैसे भाव जनक स्थानों के उपयोग का जनता के सभी वर्गों को अधिकार दे दिया गया है। मही सिद्धान्त राज्यधीन नौजरी के विषय में भी लागू होता है। अनुच्छेद १७ में कहा गया है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में प्रचारण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उन्नी किसी नियोग्यता का लागू

करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।" वास्तव में प्रत्यक्षता भारतीय समाज का और विशेष रूप से हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा कलक रहा है। इसका अन्त करके संविधान ने घम निरपेक्षता के भाग की एक बहुत बड़ी वाधा को दूर कर दिया है।

घम-स्वातंत्र्य का अधिकार—संविधान के अनुच्छेद २५ २६ घम स्वातंत्र्य के अधिकारों से सम्बन्ध रखते हैं और इसलिए वनए घम निरपेक्ष राज्य की आधार-शिला है। सभी व्यक्तियों को प्राप्त करण तथा घम के प्रवाह मानन आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गई है। लेकिन राज्य का किसी प्रकार का तीव्रक क्रियाओं के विनियम और नियन्त्रण से चाहे वह धार्मिक आचरण से हो सम्बन्ध बना न हो बर्चित रखा गया है। राज्य को एस कानून बनाने का शक्ति प्राप्त है जो सामाजिक कल्याण और सुगार उपार्जन करते हो प्रथवा हिन्दुओं की सामाजिक प्रकार की घम सत्पादा को हिन्दुओं के सम चारों और विमला क नियन्त्रित हों।" सिव्यों को कुपाण धारण करने का अधिकार दे दिया गया है। धार्मिक सम्प्रदायों और प्राइवेट धार्मिक संस्थाओं को सम्पत्ति के उगाजन स्वामित्व और प्रशासन करने का अधिकार दे दिया गया है। कोई भी नागरिक एने करो को दन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिसके धागम किसी विशेष घम प्रथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उद्यति या पोषण में व्यय करने के लिए विशेष रूप से विनियुक्त कर लिए गए हैं। रा यतिधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। राज्य से अभिज्ञान प्रथवा राज्यनिधि से सहायता पाने वाली शिक्षा-संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए प्रथवा ऐसी शिक्षा संस्था में जाने वाली धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिये शिक्षार्थियों को बाध्य नहीं किया जा सकता लेकिन यदि वे स्व-क्षा से चाहें तो भाग ले सकते हैं।

प्रत्यक्षतक वर्गों के हितों का संरक्षण—अनुच्छेद २६ और ३० में प्रत्यक्षतक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए उपबंध निर्धारित किए गए हैं। नागरिकों के किसी विभाग की जिसकी अपनी विशेष भाषा लिपि या संस्कृति है उसे बनाये रखने का अधिकार होगा। राज्य द्वारा पोषित प्रथवा राज्यनिधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रथम से किसी भी नागरिक का केवल घम मूलवज जाति भाषा प्रथवा इनमें से किसी के आधार पर बर्चित नहीं किया जायेगा। घम या भाषा पर आधारित समस्त प्रत्यक्षतक वर्गों को अपनी ह व की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनका प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है। शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभ्रान्त करेगा कि वह विद्यार्थ्य घम या भाषा पर आधारित किसी प्रत्यक्षतक वर्ग के प्रबंध में है। उन समस्त उपबंधों का लक्ष्य नहीं है कि धार्मिक मामलों में बिना किसी बाध्यता के ज्ञान विज्ञान और शिक्षा का अधिकारित विस्तार हो सके।

घनुमूचित जातियों के सम्बन्ध में विशेष उद्देश्य—सर्वियान के मांग १६ में घनुमूचित जातियों के सम्बन्ध में प्रतिषेध विधाय उपबन्ध का उद्देश्य है। कहा जा सकता है कि ये उपबन्ध घम निरपेक्ष राज्य की सिद्ध विचारधारा के प्रतिबन्धन पड़ते हैं। पर तु इन उपबन्धों का उद्देश्य सजातिक महत्त्व नहीं दिखाना ध्यातार्थिक महत्त्व है। ये उपबन्ध स्थायी नहीं रहेंगे। घनुमूचित जातियों बहुत पिछड़ा हुए हैं वे नाना प्रकार की निर्धोग्यताओं की शिकार हैं। यदि उनका विशेष विधाय उद्देश्य नहीं विशेष जात तो फिर उनकी उन्नति वने होगी ? जैसे ही ये उन्नत की ओर भारत के शेष वर्गों को पकड़ेंगे ये उपबन्ध समाप्त कर दिये जायेंगे।

११७ भारत सघ

भारत में सघीय विचार की बद्धि—व्यपि ब्रिटिश शासन ने भारत में उन्नत कीटि की कद्रित एकात्मक शासन प्रणाली स्थापित कर दी थी फिर भी यह दरावर ध्यातव्य किया जा रहा था कि भारत जन विज्ञान के विशेष बला जातियों घनों और भाषाओं की विभिन्नता विद्यमान है प्रतिषेध के अवरण रिसा भी दगा में उभयुक्त नदी है। माइमू चेम्सफाड रिपोर्ट में सविष्य में भारत का राज्यों के एक सघ के रूप में संगठित करने की सलाह की थी। माइमन बनीशन की रिपोर्ट में भारत को एक सघ के रूप में संगठित करने की बात पर अष्ट स विचार दिया गया था। १८३५ के भारत सरकार अधिनियम ने एक अखिल भारतीय सघ की स्थापना का प्रस्ताव किया लेकिन इस सघ का प्रादुर्भाव नदी हुआ। सन ४ भारत के सविधान निर्माताओं ने सघवाद को अष्ट के नए सविधान के ढांचे के आधार पर स्वीकार किया।

भारतीय सघीय विचारों—सविधान सघ ने (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यह भारत का राज्यों की एक घुनियन कता है। फिर भी उममे सघीय राजतंत्र की मुख्य विशेषताएँ विद्यमान हैं। सविधान ने सघ सरकार और सघीय राज्यों की सरकारों के बीच १ सघों का वितरण कर दिया है। सघ घुनी राज्यों घुनी और सघीय घुनी न प्रत्येक सरकार के रूप को निर्धारित कर दिया है। साधारण परिस्थितियों में राज्यों सघ सरकार के नियंत्रण अथवा हस्तक्षेप से स्वतंत्र है। दूसरे शब्दों में राज्यों भारत सघ के स्वायत्त एकर हैं। सघ घुनी राज्यों की अपनी शक्तियाँ सीधे सविधान से प्राप्त करत हैं। दूसरे सविधान दश का सौ च कानन है। उसका उपबन्ध सब सरकारों के ऊपर लागू है और सर सरकार या राज्यों सरकारों में स कोई भी उनका प्रतिप्रमण नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में कोई सरकार बस अपनी ही सत्ता पर शक्तियों के वितरण में हेरफेर नहीं कर

१ हिन्दी में Federation और Union दोनों के लिए सघ शब्द का प्रयोग चल है।

दुहरी नागरिकता का प्रभाव—तीसरी बात यह है कि भारत का संविधान दुहरी नागरिकता को मान्यता नहीं ता। 'न दृष्टि न हुमारा संविधान अमेरिका के संविधान से बिलकुल भिन्न है। अमेरिका में प्रत्येक नागरिक का काम समय 'न का ही नागरिक होता है अतः यह अर्थन विनाय राज्य की नागरिकता का भी उभाग करता है। अमेरिका में राज्य बहुधा अपने नागरिकों के साथ पक्षपात करते हैं उन्हें कतिपय ऐसे अधिकार और विशेष पितार प्रदत्त हैं जिन्हें उन स्थितियों को जो उनके नागरिक अथवा निवासी नहीं हैं नहीं दते या कठिनता से दते हैं। भारत में हमें एक ही नागरिकता के साथ दुहरी राजतन्त्र प्राप्त है। भारतीय अथवा अल्प एक नागरिकता है। वह भारतीय नागरिकता है। यहाँ राज्य-नागरिकता नहीं है। प्रत्येक भारतीय को नागरिकता के एक से अधिकार प्राप्त हैं चाहे वह किसी भी राज्य में क्यों न रहता हो।

आपातकाल में संविधान एकात्मक हो सकता है—चौथी बात यह है कि आधुनिक सभ में दृढ़ता होती है चाहे कभी भी परिस्थितियाँ नयी न हों उस एकात्मक नहीं बनाया जा सकता। इसके विपरीत भारतीय संविधान समय और परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार एकात्मक और सभिय दोनों प्रकार का हो सकता है। साधारण परिस्थितियों में वह सभिय प्रणाली के रूप में कार्य करता है। अतः मूड और दूसरे राष्ट्रीय संकट कालों में उस बिना किसी औपचारिक संशोधन की आवश्यकता के एकात्मक प्रणाली के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। यह भारतीय संविधान की अतिसौम्य विशेषता है। आपात की उद्घोषणा निकालकर भारत सभ का राष्ट्रपति एकीकृत साधारण शक्तियाँ पारण कर सकता है जिसे पत्र-स्वरूप राज्य की स्वायत्तता स्थगित हो सकती है। आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन-काल में सभ की कार्यवाहिका शक्ति राज्यों तक निरस्त हो जाती है और सभ राज्य सूची में प्रणालित विषयों के ऊपर नो कानून बनाने में समय हो जाती है। यदि किसी राज्य का राज्यपाल राज प्रमुख राष्ट्रपति से इस बात की रिपोर्ट कर दे कि राज्य में संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन नहीं चलाया जा सकता तब भी यही प्रभाव होगा। तब राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य अपने हाथ में ले सकता है और घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधान मण्डल का शक्तियाँ सभ के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोज्य न होगी। राष्ट्रपति सभ और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण से सम्बद्ध संविधान के उपबंधों को भी संशोधित कर सकता है।

साधारण परिस्थितियों में भी सभ की शक्तियाँ बढ़ायी जा सकती हैं—पाँचवीं बात यह है कि सभ की विधायनी शक्ति साधारण परिस्थितियों में भी राज्यों के मूल्य पर बढ़ाई जा सकती है। साधारणतः राज्य विधान मण्डलों को राज्य सूची में प्रणालित विषयों के ऊपर अपवर्जों अधिकार क्षम प्राप्त हैं। लेकिन यदि राज्य परिवर्तन दो तिहाई बहुमत से समर्थित प्रस्ताव के द्वारा यह घोषणा कर दे कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से

संघीय संसद का एक विधायी में से किसी के ऊपर कानून बनाना आवश्यक है तो संघीय संसद इन विधायी में से किसी के ऊपर कानून बना सकती है।

संविधान में के नियंत्रण—छठी बात यह है कि भारत में राज्यीय सरकारें केन्द्रीय सरकार से शक्ति प्राप्त करती हैं जबकि प्रमरीका में केन्द्रीय सरकार राज्यीय सरकारों से। अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary powers) हों राज्यों का न देकर वे उन्हें दो गई हैं। इस तरह जानबूझ कर केंद्र को राज्य की प्रोत्सा प्रधिक मजबूत बनाया गया है। तबिन यह सघात्मक प्रवृत्ति के विरुद्ध है।

संघ राज्यों के प्रदेशों का पुनर्वितरण कर सकता है—सातवीं बात है कि भारत संघ के एकको व प्रेरण प्रलघनीय नहीं है। संघीय संसद (क) किसी राज्य से उसका कोई प्रान्त अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को मिलाकर नया राज्य बना सकती है (ख) किसी राज्य के क्षेत्र को घटा या बढ़ा सकती है और (ग) किसी राज्य की सीमाओं या उमक नाम को बदल सकती है। संविधान के अनुच्छेद ३ में कहा गया है कि ये परिवर्तन उसी समय किए जा सकते हैं जब कि संसद राष्ट्रपति द्वारा सम्बन्धित राज्य अथवा राज्यों के विचारों को निश्चित रूप से जान लेने के पश्चात् उसकी सिफारिश पर इस प्रयोजन के लिये एक विधायक पास करे।

राज्य परिवर्तन में राज्यों का प्रतिनिधित्व—आठवीं बात यह है कि नविय न के राज्य-परिषद में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया है। प्रमरीका संविधान संघ संविधान के उच्च अदन में विस्तार और जनसंख्या के भेदों पर बिना कोई ध्यान भिजे समान संख्या में स्थान देकर कानूनी समानता प्रदान की गई है। राज्य परिषद में स्थानों के वितरण के सम्बन्ध में सघात्मक पद्धति (Federal Principle) को नहीं अपनाया गया है। इस संघठन के पाछे नया आधार है स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिये दहली को लगभग ३० लाख जनता पर ३ स्थान भिजे गये हैं जबकि राजस्थान को २ करोड़ जनसंख्या पर केवल ६० स्थान मिले हैं।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति—नववीं बात यह है कि संविधान ने निर्धारित किया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होंगे। राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पत्र पर धारण करेंगे। संविधान में उल्लेख न की हुई किनी प्राक्कमिकता में राज्य व राज्यपाल के कृत्यों के निबहन के लिए राष्ट्रपति जसा उचित समझे वसा उपबन्ध बना सकता है। यह एक और तथ्य है जो केंद्र को राज्यों के प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने की शक्ति देता है और इसलिए उच्च संघवाद की भावना के प्रतिबन्ध है। इस दृष्टि से भी भारतीय संविधान प्रमरीकन संविधान की तुलना से अनाधिक संविधान के अधिक निकट है।

संविधान मूलभूत मामलों में एकसूत्रता स्थापित करता है—दसवीं बात यह है कि कतिपय सधों में दुर्घट राजत न कानूनों प्रशासन और न्यायिक संस्थाओं में

राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सभ्य होते हैं। इस निर्वाचक-मण्डल के प्रत्येक सदस्य द्वारा प्रयुक्त मतों की संख्या इस प्रकार निर्धारित की जाती है कि सभ्य के दोनों सदस्यों की मत संख्या समस्त राज्यों की विधान सभाओं की मत संख्या के समान हों। किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सभ्य के उतने मत हान हैं कि एक हजार के गुणित उस भागफल में जो जो राज्य की जनसंख्या को उस सभा के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से प्राप्त। मतों के प्रत्येक सभ्य के प्रत्येक निर्वाचित सभ्य के मतों की संख्या बड़ी होती है जो समस्त राज्यों की विधान सभाओं के सभ्यों के लिए निम्न सम्पूर्ण मत संख्या को समस्त क दोनों सदस्यों के निर्वाचित सभ्य की सम्पूर्ण संख्या में भाग देने से प्राप्त।^१

प्रत्यक्ष निर्वाचन की न घपनाने के कारण—यह कहा गया है कि भारतीय राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए प्रयोजित प्रणाली वगैरह पद्धति के लिए एक मौलिक दान है। इस प्रश्न पर संविधान सभा में कांछी बातें विवाद हुआ। कतिपय सभ्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के पक्ष में थे। उनका तर्क था कि हम प्रचार का प्रणाली प्रचिन लोकतन्त्रात्मक श्रेय और राष्ट्र राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव करने में समर्थ हो सकते हैं। यदि हम न परोक्ष प्रणाली का ही अपनाया गया। एक काल का कारण थे। पत्रों कारण था कि प्रत्यक्ष निर्वाचन राष्ट्रपति राष्ट्रीय वास्तविक अनुभूति नहीं होना क्योंकि समस्त लोकतन्त्र में वास्तविक वास्तविकता मजिद उत्तरदायी मजिदगण के द्वारा प्रयुक्त होती है। राष्ट्रपति का बयान प्रताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष मतों द्वारा निर्वाचन उचित उस काल के घटाने के प्रधान है। हाना है बिनाकुल व्यय समझना पड़ा।^२ सौजन्य निर्वाचकों की मय था कि ही प्रस्ताव है कि प्रत्यक्ष निर्वाचन राष्ट्रपति प्रयोजित प्रणाली मात्र की स्थिति से सन्तुष्ट न हो। यदि वही अपने वास्तविक निर्वाचकों घपन हुआ म मत की वास्तविकता को ही मजिदगण के साथ उसका मतों को जाणा और एक काल रूप वास्तविक वास्तविक उत्तरदायी जाणा। उनके मतों का यह ना मय था कि १८ कराड मतदाताओं का मतों राष्ट्रपति का राष्ट्रपति प्रत्यक्ष निर्वाचन विपुल वास्तविकता फठिनाएँ रखी कर दगा। द्वारा विरह यह सोचा गया था कि राष्ट्रपति पक्ष समस्त द्वारा ही निर्वाचन हो सकता है। सचिन हम प्रस्ताव का भी संस्थाकृत कर दिया गया क्योंकि वह राष्ट्रपति को बहुमत का मत देने के हाथों का मित्रोना बना श्रेय और उस स्वतंत्रता व महिमा के समस्त प्रदान से अधिक कर देता।^३ मत संविधान में निरिच्छ प्रणाली को

१ चतुर्थ पुनाय के पश्चात् राष्ट्रपति के निर्वाचन में २१० जाकिर हुसेन को ४७१ २४४ मत प्राप्त हुए और उनके विरोधी उम्मीदवार जी मुश्याराव को ३६१ १७१ मत मिले।

२ क संघानम— दो वास्तविकताओं का एक इच्छिमा', पृ० ४८।

३ पृ०, पृ० ४८।

इसलिए अपनाया गया क्योंकि इस प्रकार से निर्वाचित राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना और साथ ही साथ अध्यात्म शासन भी बना रहता है।

ग्रहणाएँ -संविधान ने निश्चित किया है कि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तब तक न होगा जब तक कि वह (क) भारत का नागरिक न हो, (ख) २५ वर्ष की आयु पूरा न कर चुका हो, (ग) साक्षरता के लिए सक्षम निर्वाचित होने की शर्तों को पूरा करे और (घ) भारत सरकार के अध्यक्ष किंवा राज्य की सरकार के अध्यक्ष अथवा उच्च सरकारी मंत्रियों में से किसी से नियुक्त किया स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों के अधीन कोई काम का पत्र न धारण किए हुए हो। इसका अर्थ प्रायः यह है कि कोई सरकारी नौकर राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने का पात्र नहीं है। लेकिन यह नियम उस व्यक्ति के ऊपर लागू नहीं होता जो संसद का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल या राज्यसभा का पद धारण किए हुए है। (७) संविधान के अनुसार यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति न तो मन्त्रों के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधानमण्डल के सदन का सक्षम होगा। यदि संसद के किसी सदन का अध्यक्ष किसी राज्य के विधानमण्डल के सदन का सक्षम राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाए तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन का अपने पद पर त्याग दिया है।

उसकी पदावधि और उपलब्धियाँ—राष्ट्रपति पाँच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है। परंतु वह अपने पूरे पदावधि की समाप्ति के पूर्व त्यागपत्र दे सकता है अथवा महाभियोग द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन का पात्र है। वह विभिन्न सत्तों के अन्तर्गत १००० रुपये प्रतिमास वेतन प्राप्त करता है। उस बिना किराया दिए सरकारी आवास के उपयोग का भी हक है।

राष्ट्रपति की पदावधि—जब तक कि राष्ट्रपति अपने पदावधि की समाप्ति के पूर्व अपने पद से त्यागपत्र न देते उसे संविधान के अतिरिक्त के लिए महाभियोग के द्वारा अन्य किसी उपाय द्वारा अक्षय नहीं किया जा सकता। महाभियोग एक प्रकार का संसदीय मुकदमा है। दोषारोप दो तिहाई बहुमत से प्राप्त किए गए किसी प्रस्ताव में संसद के किसी भी सदन द्वारा उपस्थित किए जा सकते हैं। दूसरा सदन दोषारोपों को छानबीन करेगा और यदि वह दो तिहाई बहुमत से प्राप्त किए गए प्रस्ताव में यह घोषित कर दे कि दोषारोप सिद्ध हो गए हैं तो राष्ट्रपति अपने पद को रिक्त कर देगा।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ (क) कार्यकारी शक्तियाँ—संविधान सभ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित करता है। भारत सरकार के समस्त कार्यकारी कृत्य राष्ट्रपति का और से और राष्ट्रपति के नाम में सम्पादित होते हैं। राज्यों के राज्यपालों भारत का राज्यपाल और दूसरे कूटनीतिक प्रतिनिधियों सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व दूसरे न्यायाधीशों भारत के महाभियोगों और नियंत्रक

महालेखा-परीक्षक तथा सच्य लोक-सेवा आयोग क अध्यक्ष व सदस्यों भादि को नियुक्तिया राष्ट्रपति ही करता है । प्रथम अनुसूची के भाग (ग) के राज्या का शासन प्रबंध राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त कनिश्चर अथवा लफिटनेंट गवर्नर करते हैं । राष्ट्रपति सरकार की वायवाही के सम्यक संचालन के लिए नियम बना सकता है ।

(ख) विधायिनी शक्तिया—सविधान राष्ट्रपति में विशाल विधायिनी शक्तिया या निहित करता है । राष्ट्रपति वष में कम से-कम दो बार सत्र को आहूत करता है । वह ससद के किसी भी सदन का सत्रावसान और लोकसभा का विघटन कर सकता है । यदि ससद के दोनों सदन किसी विधेयक पर एकमत न हो सकें तो वह उनकी सामुक्त बैठक आहूत कर सकता है । राष्ट्रपति सत्र परिषद के १२ सदस्य भी मनोनात कर सकता है । वह चाहे तो ससद के दोनों सदनों का पृथक रूप से और चाहे तो उन्हें सामुक्त रूप से सम्बाधित कर सकता है । वह ससद के जिस सदन को चाहे सत्र नञ सनता है । ससद के प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ होने पर राष्ट्रपति एव भाषण देता है । यह भाषण ब्रिटिश सम्राट द्वारा ससत्र म दिए गए भाषण के तुल्य होता है ।

राष्ट्रपति का स्पगन नियमाधिकार—ससद द्वारा पास किया गया कोई विधेयक उस समय तक अधिनियम नही बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त न हो जाए । राष्ट्रपति किसी विधेयक पर यदि वह धन विधेयक नही है चाहे तो भण्णा अनुमति द सकता है और चाहे तो उसे रोक सकता है । लेकिन यदि उस विधेयक को (जिस पर राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति नही दी है और जिस उन पुनरिचार के लिए ससद के पास लौटा दिया है) ससद के दोनों सत्र राष्ट्रपति के सदेश म मुन्नाए गए समोधन के सहित या रहित पुन पास कर दें तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य है ।

राष्ट्रपति की अध्यादेश शक्तियाने की शक्ति—सविधान ने ससद के विधायिनी शक्त में राष्ट्रपति को अध्यादेश प्रत्यापन की भी शक्ति प्रदान की है । अध्यादेश एक विशेष प्रकार का सफ्टकालीन बालून होता है । अध्यादेश का बन और प्रनार ससद के अधिनियम क तुल्य ही होता है । किन्तु अध्यादेश क लिए यह आवश्यक है कि वह ससत्र के पुन समवेत होने पर उसके दोनों सदनों क समझ रखा जाए । अध्यादेश ससद के पुन समवेत होने से छ सप्ताह की समाप्ति पर भयवा इस कालावधि से पुन दोनों सत्रों द्वारा उसके निरनुमोदन का प्रस्ताव पास कर देने पर प्रवतन में नही रहता ।

(ग) वित्तीय शक्तिया—राष्ट्रपति को कतिपय महत्वपूर्ण वित्तीय शक्तिया भी दी गई है । प्रत्येक वित्तीय वर्ष क प्रारम्भ में राष्ट्रपति ससद के समक्ष 'वार्षिक वित्त विवरण' अथवा यह बजट जो भारत सरकार की उन वष के लिए भाषकलित शक्तिओं और व्यय को प्रकट करता है, रखता है । राष्ट्रपति की सिधायिक क

बिना कोई भी वित्त शिपेय नग में पुन स्थापित नहीं किया जा सकता । राष्ट्रपति सप धोर रागो के बीच करो र विरगण र सम्ब र म गुनार ो क लिए समय समय पर एर पित प्रायान भा तिगत कर सकता है ।

(घ) वानुनी विमुक्तिया धोर याविक परमाधिकार—राष्ट्रपति वतिपय नूनो विमुक्तिया धोर याविक परमाधिकारो वः उदनोग करता है । वह प्रपन व की शक्तिया धोर वनठग व निवृत्त क लिए किसी यायावय क मम । उतरा यो नही है । वह वनल महाभियाग की प्रकिग द्वारा हा सिद्ध ाप टरराया जा सकता है । उमही पत्रावधि मे उमरु रिहृद स्थी भी प्रहार कः कोनगरा विवाए नही गई जा सकती । राष्ट्रपति को उन प्रवस्थाओं समत जिनमे ति दणःदा मृनु का हो वतिपय स्थितिया म सिद्धाग व्यक्ति व दणः का क्षमा प्रपल वा विराम वा परिार करन की प्रववा षका ग ना निलम्बन परिहार वा उपकरण की शक्ति प्राप्त है । जमा कि व जर र व पुक है राष्ट्रपति सर्वो व यायावय धोर राय क उच्च यायावय क मुख्य यायावयि व यायाधीनों वा नियुक्त करता है ।

(ङ) राष्ट्रपति की प्रापात शक्तिया—नग नरियान व सर्वोधि विवास्व पहनुप्रा म स एर सधीय कायरावना म निहिन विनुन प्रापात शक्तिया उ सम्प्य रखता है । राष्ट्रपति तीन प्रकार की प्रापातों का सामना करन व लिए इन प्रमा धारण शक्तिया का प्रयोग कर सकता है (१) युद्ध प्रपग वाह्य आक्रमण प्रववा प्राम्यन्तरिक प्रशान्ति स उत्पन्न प्रापातों (२) रागो म वधानिक तत्र विकन हो जान उ उत्पन्न प्रापातों धोर (३) वित्तीय प्रापातों ।

(१) प्रापात की उदधोपणा—पूने प्रवार की प्रापात व सम्प्य म सवियान ने निर्धारत किया है कि यदि राष्ट्रपति का समापान हा आए कि गम्भीर प्रापात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या वाह्य आक्रमण या प्राम्यन्तरिक प्रशान्ति स भारत या उसके राय धन क किसी भाग की सुरक्षा सकट म है तो वह प्रापात की उधोपणा निकान सकता है । यह स्मत्तय है कि राष्ट्रपति इस प्रकार की उदधोपणा युद्ध या वाह्य आक्रमण या प्राम्यन्तरिक प्रशान्ति के घटित होने के पूव भी निकान सकता है । प्रापात की उदधोपणा निकानने के राष्ट्रपति क नियुक्त को किसी भी यायालय में चुनौती नही दी जा सकता धोर कोई प्रापात उरस्थित है या नहीं इसका नियुक्त एर मात्र राष्ट्रपति के हाथों मे है । लेकिन राष्ट्रपति का प्राधिकार सत्त के नियन्त्रण का विषय है । प्रापात की उदधोपणा को सनद के दोनो सत्ता के समथ रखा जाता है धोर वह दो भाग की समाप्ति पर प्रवत्तन में नही रहती जब तक कि उसका उस कालावधि की समाप्ति से पहले ससद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन न कर दिया जाए ।

प्रापात की उदधोपणा का प्रभाव—राष्ट्रपति द्वारा की गई प्रापात की उदधोपणा का सुदरूप्यापा वधानिक प्रभाव होगा । जब प्रापात की उदधोपणा प्रवत्तन में है, ससद को सम्पूर्ण देग के लिए प्रववा उसके किसी भाग के लिए उन दिवसों पर भी

कानून बनाने का अधिकार होगा जो कि राज्य सूची में प्रणालित है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को इस विषय में निर्देश देने तक होगा कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस रीति में प्रयोग करे। दूसरे में म सघीय विधान मण्डल और कार्यपालिका को राज्यों के विधान मण्डलों और कार्यपालिका को कार्य का नियंत्रण और निरीक्षण करने की शक्ति प्राप्त हो जाएगी। अर्थात् प्रापात का उपाधायणा राष्ट्रपति का सघ और राज्यों के बीच रात्रस्व के साधारण वितरण का सहायन करने का शक्ति होगी। इस प्रकार प्रापात की उपाधायणा के प्रम वस्वरूप राज्यों की स्वायत्तता स्थिति हो जायेगी तथा राज्यों की उपाधायणा में प्रधान गरा रूप में परिचालित हो जाएगा। इनका ही नी राजान की उपाधायणा में प्रधान गरा गार। निराग भारत के नागरिकों के कतिपय प्रम वपुण अधिकारों की प्रापात तथा धर्मि वित्त की स्वतन्त्रता शांतिपूर्वक सनायक के स्वतन्त्रता भारत के विधीय प्रापात में निराम वरत और वन जान का स्वतन्त्रता सपति के अजन धन और प्रापात में स्वतन्त्रता तथा वृत्ति उपज विकास और व्यापार करने का स्वतन्त्रता का स्थिति करेगा। साधारण परिस्थितियों में यह अधिकार सम्यक यह और नागरिकों के प्रतिष्ठित कराने के लिए सगों के उपाधायण प्रयत्न उच्च दायित्वों का धरण करने में है। तबिन अय प्रापात का उपाधायणा वतन में है। राष्ट्रपति नागरिकों के इस अधिकार का स्थिति कर सपता है।

स्पष्ट है कि सविधान प्रापातों का सामना करने के लिए सघीय कार्यपालिका को बहुत प्रथम शक्तिया प्रदान करता है। प्राल चको का कहना है कि यह शक्तिया लोभत प्र के प्रविभूत है। जब प्रापात शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले उपाधायण में लिए जा रहे थे विधान सभा के एक सदस्य ने कहा था यह सजा का लिन है। ईश्वर ही भारतीय जनता का बचाए। एक अन्य सदस्य ने अनु धे १६ के वार में जा राष्ट्रपति को नागरिकों के प्रधिकारों के प्रवतन का निलम्बन करने की शक्ति देता है कहा कि यह अनु धे सविधान के सर्वाधिक प्रतिगाभी उपाधायण की शानदार पराकाष्ठा और कि यह सगों महिमा है। प्रापात काल में नागरिकों का उनक मल अधिकारों से वचित करने की शक्ति करेगा। अतः क उपर तानाशाही शासन सादा जा सपता है। जमनी के सपारुधिन सोस्त पात्रक धीमर सविधान के अनु धे १८ ने जर्मन राष्ट्रपति की य शक्ति की थी कि यह और सबट का स्थिति में नागरिकों के मल प्राकारों को निलम्बन कर सपता है। द्विदर न इस शक्ति का सन्चार प्रयोग कर जर्मनी में सपन निरकुण पागन की जड जमायी। तथापि यह स्मरतथ्य है कि प्रापात से सम्बन्ध रखने वाले इस प्रकार के उपाधायण बहुत स नाकन-नारक रा-यों के सविधानों से पाए जाते हैं। इनकी इस प्रापात पर प्रतिरक्षा का जाता है कि स्थिति के अधिकार समसन्धि नही है और राज्य की सुरक्षा की तुलना में उनका महत्व कम है। या एन० पुकरा न विना है य उपाधायण बटार मानूम हो उवत है दिव्य रूप से एक एते

संविधान में जो लोहकृतन व मूल अधिकारों की नींव के ऊपर निर्मित होने की घोषणा करता है। लेकिन इन उपबंधों का भारत के अतीतनामीन इतिहास के प्रकाश में अध्ययन करना चाहिए। जब कभी भारत की कोय शक्ति कमजोर हुई उधे बुरे दिनों का सामना करना पड़ा। यह भाँखा ही है कि संविधान विपटन की शक्तियों की धोर से सचेत है। राज्य के अस्तित्व तक के लिए सतारा पत्र करने वाली घटनाएं घटित हो सकती हैं और यदि इस प्रकार की प्राकृतिकताओं के लिए सरक्षण न हों, तो राज्य उस स्वके माथ जिसे मूलभूत धोर अचल रखना है समाप्त हो जाएगा।^१

(२) राज्यों में अधानिक तंत्र के विकस हो जाने से उत्पन्न अघात—संविधान ने निवारित किया है कि बाह्य प्राक्रमण और आन्तरिक अघात से राज्य तथा राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलायी जाए यह सुनिश्चित करना सघ का कर्तव्य है। भारत का राज्यति घने इस कर्तव्य का अघी तरह से निवाह कर सके, इस उद्देश्य से उधे अनुच्छेद ३५६ क अधोन कतिपय विषय शक्तियां प्रदान की गई हैं। यदि कियो राज्य क राजशासन या राजप्रमुख से प्रतिवेदन मिलन पर या अघया राज्यति का समाधान हो जाए कि एना स्थिति पत्रा हो गई है जिसमें कि उधे राज्य का शासन संविधान क उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति इस आशय की अघात की अघाता निवास सकता है। अघात की उदघोषणा निवासन पर राष्ट्रपति राज्य की सरकार के सब या कोई कूट्र तथा राज्यपाल या राजप्रमुख अघवा राज्य के किमी निवास या प्राधिकारी में निवासित द्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकता और वा पत्र कर सकेगा कि राज्य के विधान मण्डल की शक्तियां ससद क प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्त व हागी। राज्य का उच्च न्यायालय इस मन्त्र्य में अघवाह रहेगा। इस प्रकार अघात की उदघोषणा के समान ही राज्य में अधानिक तंत्र क विकस हो जाने की उदघोषणा भी सम्बद्ध राज्य की स्वायत्तता को निराम्बित कर देगी और उसे समस्त विधायी और शायकारी मामलों में पूणत तघ क प्राधिकार के अधोन कर देगी। यह उदघोषणा दो महोने की समाप्ति पर यदि ससद क दोनो सदनो क गारा अनुमादित नहो हो जाती प्रयत्न में नही रहगा। यह उदघोषणा एक बार में ६ महोन से अधिक के लिए नही निवाली जा सकता लेकिन इधे त्रिगत अधधि की समाप्ति पर प्रति बार ६ महोन क लिए बढ़ाया जा सकता है। जिनकी बार इनकी अधधि बढ़ायी जाय उतनी बार ससद क अनुमादन की आवश्यकता है। लेकिन एसा उदघोषणा किती भी अधस्था में तीन बर से अधिक प्रवृत्त नही रहेगी।

अनुच्छेद ३५६ ने विधान मन्त्रा में तीखा वाद विचार खड़ा कर दिया। अघलो अघों ने कहा कि यह १६३५ क भारत सरकार अधिनियम के विभाग ९३ का पुनरधि नियमन है। इस अनुच्छेद क संशोधन में कहा गया है कि इसके अधोन आचरण करता

द्विभा राष्ट्रपति विभाग ६३ के अधीन प्राचरण करने वाले राष्ट्रपति से सबका निग्रह होगा। राष्ट्रपति केवल सभ मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर जो सबद के प्रति उत्तरदायी है प्राचरण कर सकता है। स्वयं समझ में भी उस राष्ट्रपति का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य उपस्थित होंगे जिसका शासन इस अनुच्छेद के अधीन नितम्बित किया जा सकता है। अनुच्छेद ३५६ का सीधा-सादा फल यह हुआ कि उद्घोषणा की स्थिति में राष्ट्रपति का शासन प्रत्यायी रूप से सभ गामन में बिलीन हो सकता है। यहाँ वहाँ भी परिस्थितियों में स्व-द्वाराशिता का को, प्रयत्नों उठना। केवल राष्ट्रपति की स्वायत्तता पर ही कुछ बातें कें लिए चोख पड़ सकती है।^१

(३) वित्तीय धारागत—यदि राष्ट्रपति का मन्त्रणा हो जाय कि ऐसी स्थिति पदा हो गई है जिससे भारत का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय मन्द है तो वह द्वितीय धारागत की उद्घोषणा निकाल सकता है। इस प्रकार की उद्घोषणा की यदि दो मास की समय तक के पूर्व समद के दोनो गणों द्वारा अनुमति नहीं दिया जाता तो वह इस अधि के गन होने पर प्रवृत्त न नहीं रहती। यह उद्घोषणा एक बार में छ महीने से अधिक के लिए प्रवृत्त न नहीं रहती। तबिन इसे समद के अनुमति सहित प्रति बार छ महीने के लिए बढ़ाया जा सकता है तथापि वह किसी भी प्रस्था में तीन साल से अधिक के लिए प्रवृत्त नहीं रहती।

उस कालावधि में जिसमें कि वित्तीय उद्घोषणा प्रवृत्त में है राष्ट्रपति की कार्यशास्त्रिका शक्ति का विस्तार किन्ना राज्य को वित्तीय दौर्बल्यसम्बन्धी ऐसे निदान का पानन करने के लिए निर्देश देन तक जब कि निर्देशों में उल्लिखित हो और सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के आदेशों के सहित मन्त्रियों नौकरा के वेतन में कमी के लिए आदेश न देकर होगा। बढे न जान को मी कर सकता कि विधायक स्वीकृति के लिए उसके सम्भुग उपस्थित किया जाय। तब कालावधि के वित्तीय स्थायित्व का पुनः प्रमान के लिए वह प्रत्येक वर्षक उपाय भी कर सकता है।

११६ राष्ट्रपति स्वेच्छाचारी है या परमात्र शासन ?

राष्ट्रपति मन्त्रियों की मन्त्रणा पर प्राचरण करने के लिए शक्तियुक्त बाध्य नहीं है—राष्ट्रपति ऊपर उल्लिखित शक्तियों का किसी प्रकार प्रयोग करना? क्या य उसका वास्तविक शक्तियों हैं किनका वह उद्घोषणा प्रवृत्त पर करता है? क्या य शक्तियों उस केवल धीरशक्ति रूप में ही प्रवृत्त हैं किनका वह मन्त्रियों की मन्त्रणा के अनुसार प्रयोग करन के लिए बाध्य है। विपुल गणविज्ञान विद्वानों के कुछ टाकाकारों ने कहा है कि यदि राष्ट्रपति चाहे तो स्व-द्वाराशरी शासन बन सकता है। मन्त्रिमण्डल के अनुच्छेद ५३ (१) में कहा गया है 'सभ की कार्यशास्त्रिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या वा स्वयं

या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों का शासन करेगा। डॉ० बी० एम्० शर्मा के अनुसार इससे राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह चाहे तो सच या नैतिक धर्ममान नामक ही नहीं अपितु वास्तविक शासक बनने का पयाप्त क्षमता भिन्न होता है। 'यह ठान है कि अनुच्छेद ७४ (१) में निर्धारित किया है कि राष्ट्रपति का अपने दूरियों का मन्धा न करने में सहायता और मन्धा देते के लिए एक मन्त्रपरिषद् को प्रेषण प्रदान करने का अधिकार होगा।' लेकिन डॉ० बी० एम्० शर्मा का मत है कि यह बात यह है कि क्या राष्ट्रपति अनुच्छेद ७४ (१) के अधीन अपनी मन्त्रपरिषद् को मन्धा देना की समस्त परिस्थितियों में स्वाधिकार करने के लिए बाधित या बाधक है? मन्धा देना यह है कि वह नहीं है।^१ विधान सभा के द्वारा १९७० का प्रमाण न ही यही मान्यता प्रदान किया था। उन्हीं के द्वारा अनुच्छेद ७४ (१) में यह नहीं रखा कि राष्ट्रपति उन मन्त्रों को मानने के लिए बाध्य होगा। उन्हीं के लिए एक एक उचित उपाय करने का मुन्धा भी दिया था कि मन्त्रपरिषद् राष्ट्रपति के लिए मन्त्रपरिषद् को मन्धा देना स्वाधिकार करना अनिवार्य हो जाय। लेकिन उन मुन्धा को कायम में परिणत नहीं किया गया। एक एक उन्हीं के द्वारा भारतीय संविधान निश्चित परिस्थितियों में राष्ट्रपति का तानाशाह बना सकता है। उन पर दोषारोपण साधारण रूप में सम्भव नहीं। उसे १९७० में पूर्व मन्धा देना का तात्पर्य यह है कि वह कितने ही शासन में परिवर्तन कर निरकुल बन सकता है। इनमें से प्रचलित धर्मसमय के अनुसार सम्राट को बाई भी धारण जारी करने के पहले उस धारण से सम्बंधित पत्र पर मन्त्री के हस्ताक्षर आवश्यक होते हैं। लेकिन भारत में राष्ट्रपति के लिए मन्त्रियों के हस्ताक्षर संविधान के अनुसार आवश्यक नहीं है। कुछ विद्वानों का मत इस तरह राष्ट्रपति की शक्ति का सम्बंध में यह है कि संविधान में बखित शक्तियाँ यदि वास्तविक ह तो वह हिन्दू और मुसोलिनी से कही अधिक निरकुल शासक बन सकता है।

संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य—लेकिन यह कहना कि राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है संविधान का आवश्यकता से अधिक कानूनी दृष्टिकोण से निवचन करना है। संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य स्पष्ट है। उन्हीं ने भारतवर्ष के लिए पर्याप्त सोच विचार के पश्चात् संसदीय प्रणाली प्रणीत की। यह निष्कर्ष करते समय संविधान निर्माताओं ने मान लिया था कि संसदीय प्रणाली मन्त्रपरिषद् शासन प्रणाली की वे समस्त परम्पराएँ जो इनमें प्रचलित हैं भारत में भी प्रचलित हो जाएँगी। संसदीय शासन प्रणाली का यह सार है कि वास्तविक कार्य

१ बा एम् शर्मा — इण्डियन जनरल आफ पोलिटिकल सायंस में प्रस्तावित आफ इण्डिया भाग ११ पृष्ठ ४५०-१।

२ डॉ एन बनर्जी—मादन रिश्यू में पोलीशन आफ दी प्रसीडेंट आफ इण्डिया डिसेम्बर १९५० पृष्ठ ८५८।

पालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल अथवा मन्त्रिपरिषद् द्वारा प्रयोज्य होनी चाहिए। मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्री सदैव राज्य के ध्वजमात्र अधिकारी प्रधान के नाम में आचरण करते हैं परन्तु यह ध्वजमात्र कार्यकारी प्रधान समस्त मामला में अपने मन्त्रियों के परामर्श को स्वीकार करता है।

ससदोप शासन के अन्तिसमय—भारत की विधान मन्त्री क मयुक्त मन्त्री और आयोगक ए० ए० मुचर्जी के अनुसार संविधान के निर्माताओं ने संविधान में इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल को अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर आचरण कराए। उन्होंने इस चीज को दृग्गोचर की तरह अन्तिसमयों के ऊपर छोड़ दिया है। १ प्राकृतिक समिति के उपाध्यक्ष डा० अम्बेडकर के अनुसार, राष्ट्रपति की वही स्थिति है जो अंग्रेजी संविधान में मन्त्रिमण्डल का। वह वायपरिषद् का नहीं राष्ट्र का प्रधान है। वह राष्ट्र का शासन नहीं अर्थात् प्रतिनिधिक करता है। वह साधारणतः मन्त्रियों के परामर्श में चला जाता है। वह नहीं मन्त्रणा के बिना और न उनका मन्त्रणा के प्रतिरोध का कुछ कर सकता है। भारत के राष्ट्रपति की स्थिति अमरिका के राष्ट्रपति से भिन्न है। अमरिका के राष्ट्रपति वास्तविक शासक हैं और वह मन्त्रिमण्डल द्वारा अपने मन्त्रिमण्डल को स्वविवशानुसार प्रयोग करता है। उन्हीं ने यह धारणा नहीं है कि वह अपने मन्त्रियों की बात माने या माने।

राष्ट्रपति निरकुश क्यों नहीं हो सकता—बहुतेरे का सार यह है कि संविधान का उद्देश्य भारत के राष्ट्रपति को प्रभूत गौरवमण्डित, परन्तु वास्तविक शक्ति से हीन बनाना है। ससदोप शासन के अन्तिसमयों की बात छोड़ देना पर भी राष्ट्रपति निरकुश नहीं हो सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भूने मन्त्रिमण्डल के अन्तिसमयों में जा सकते हैं जबकि राष्ट्रपति के लिए अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा के प्रतिरोध आचरण करना सम्भव हो जाए परन्तु यदि उद्देश्यपूर्वक उनका मन्त्रणा का उत्तर देना होता है तो वे त्यागपत्र देकर ब्यापारिक गतिरोध पत्र कर सकते हैं। यदि सम्भव में उनका बहुमत है और उन्हें समग्र रूप से जनता का समर्थन प्राप्त है तो राष्ट्रपति को एक अवास्तविक मन्त्रिमण्डल की रचना कठिन हो जायेगी। इनके अन्तारा में अधिक महत्वाकांक्षी राष्ट्रपति की बुद्धि विराम नमान के लिए महानियोग का सम्भव विद्यमान है। यदि राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल का विरोधी राजनीतिक दलों के सम्मेलन होते हैं तो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं परन्तु साधारणतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति को ब्यापारिक प्रधान का तरह आचरण करना पड़ेगा। अन्तिसमय में उचित ही विद्या है कि 'विशेष' (अर्थात् अन्तिसमय) के अन्तिसमयों द्वारा ऐसी स्थिति बनने पर है कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सहायता में न

१ दो किदुम्मान टाडम्ब, गणराज्य मन्त्रिमण्डल परिसर, २६ जनवरी, १९५०।

२ 'कार्टाटयून एण्ड एम्बेडकी रिपोर्ट', भाग ७, पृ० ३३।

कुछ करे। वही भारत में है। एम सी भीतलवाड़ पृ ३०० अन्वय में इसी भाग का सम्यन किया है।

१२० उपराष्ट्रपति

निर्वाचन और महताएँ—नए संविधान के प्रयोग भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा। वह एम संसदीय मंत्र के द्वारा सानुसार प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार संसद के दोनों सभों द्वारा निर्वाचित होगा। उन राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्यागी व्यक्ति के पास निम्न महताओं का होना आवश्यक है। (१) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए (२) उसकी अवस्था पंद्रह वर्ष से अधिक की होनी चाहिए (३) उसमें राज्य परिषद् के लिए मन्स्य निर्वाचित होने की महता होनी चाहिए (४) उसे भारत सरकार के अध्यक्ष किसी राज्य की सरकार के प्रधान अध्यक्ष उक्त सरकारों में से किसी से नियमित किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अतीत कोई नाम का पद धारण किए हुए नही होना चाहिए। उक्त व्यक्त को जो सभ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति भयवा किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उप राजप्रमुख भयवा सभ का या किसी राज्य का मंत्री है इस नियम से छूट रहेगी।

उसके कृत्य—अमेरिका के उपराष्ट्रपति की तरह भारत का उपराष्ट्रपति पदेन संघीय विधानमण्डल के उच्च सदन अर्थात् राज्य परिषद् का समापति होगा। यदि राष्ट्रपति की मृत्यु पदत्याग पदभ्रंति या बीमारी के कारण राष्ट्रपति का पद प्रत्यायो रूप में रिक्त हो जाए तो उपराष्ट्रपति नए राष्ट्रपति के निर्वाचन हान तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। इस दृष्टि से वह अमेरिका के उपराष्ट्रपति से भिन्न है क्योंकि अमेरिका का उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति की मृत्यु पदभ्रंति या पदत्याग के पश्चात् शेष राष्ट्रपति अवधि के लिए उक्त राष्ट्रपति हा जाता है। भारत का उप-राष्ट्रपति यदि वह स्वयं अपना पद त्याग न करे अथवा राज्य-परिषद् के पूर्ण बहुमत से पास किए गए एम प्रस्ताव के द्वारा जिस पर लोक सभा ने अपनी स्वीकृति दे दी हो अथवा न कर लिया जाए तो पाँच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है।

१२१ मंत्रि परिषद्

मंत्रि परिषद् और मंत्रिमण्डल—चूँकि राष्ट्रपति वयानिक शासक है इसलिए भारत सभ की वास्तविक कार्यपालिका मंत्रि परिषद् है जो निम्नान्त राष्ट्रपति में निहित शक्ति का वास्तविक रूप से प्रयोग करती है। यहाँ हम मंत्रिमण्डल और मंत्रि परिषद् के अर्थ को समझ सकते हैं। संविधान में केवल मंत्रि परिषद् का ही उल्लेख है। मंत्रिमण्डल एक अनौपचारिक विषय है और उसमें सब मंत्री शामिल नही हैं दूसरा शब्द में वह मंत्रि-परिषद् का एक भाग है अथवा जम कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के बारे में कहा जाता है चक्र के अन्दर एक चक्र है। मंत्रि परिषद् में

वे कई छोटे मन्त्री (राज्य मन्त्री और उपमन्त्री) भी शामिल रहते हैं जिन्हें कि मन्त्र-मण्डल का स्तर प्राप्त नहीं होता। मन्त्रिमण्डल मन्त्र परिषद् को वास्तविक नीति निर्मात्री समिति है और वह ऊँचे मन्त्रियों से मिलकर बनता है।

मन्त्र-परिषद् की रचना—संविधान ने मन्त्र परिषद् की रचना के लिए निम्न प्रक्रिया निश्चित की है। अनुच्छेद ७५ (१) कहता है प्रधान मन्त्री का नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की मन्त्रणा पर करेगा। राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में अपनी व्यक्तिगत रुचि प्रकट करके प्रयोग करने का अधिकार प्रदत्त है। तत्कालीन में ब्रिटिश दल का बहुमत है राष्ट्रपति उसके नेता की प्रधान मन्त्री नियुक्त करने के लिए बाध्य है। यदि लोकसभा में कोई दल ही और उनमें से किसी को भी स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो उस स्थिति में राष्ट्रपति आवश्यक प्रपत्रों को देखी से रुचि-स्वातन्त्र्य का प्रयोग कर सकता है। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के पश्चात् राष्ट्रपति को उसके द्वारा चुने गए टीम स्वीकार करनी पड़ता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो कि सभ्य व दानी सभ्यों में से किसी का भी नाम नहीं है मन्त्रा नियुक्त किया जाता है तो उस छ महान का सम्मेलन पर, यदि वह इन्हीं बीच में दानों सदनों में से किसी एक का सम्यक् निर्वाचित न हो जाता प्रपत्र पद रिक्त करना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल का कृत्य—सभ्य गणन मन्त्रिमण्डल की स्थिति सबसे महत्वपूर्ण है। उसकी शक्तियों और उत्तरदायित्व अत्यन्त व्यापक है। उस प्राथमिक व्यवस्थात्मक और वित्तीय मामला का प्रबंध करना पड़ता है। वह मन्त्रिमण्डल ही है जो कि भारत-सभ्य की साधारण वायव्यानिका नाति निश्चित करता है। यह सम्पूर्ण शासन का संचालन करता है। उसका प्रत्येक सभ्य एक या एक से अधिक विभागों का प्रधान होता है। मन्त्रिमण्डल मन्त्रीय विभागमण्डल व व्यावस्थात्मक वायव्य का भी उपकार करता है। सरकारी विधेयकों को संसद में मन्त्री ही पुन स्थापित करते हैं। वे ही उन्हें पास कराते हैं। लोकसभा में बहुमत हानि का कारण संसद में मन्त्रिमण्डल की स्थिति अत्यन्त प्रभावपूर्ण होती है। यदि कोई प्रायः सभ्य किसी विधेयक को उपस्थित करता है और दूसरे विधेयक को पक्ष मन्त्रिमण्डल का समर्थन नहीं होता तो उसका पक्ष हानि की बहुत कम सम्भवा सम्भवी चाहिए। मन्त्रिमण्डल को कई वित्तीय दूरत भी करने पड़ते हैं। वह बजट तैयार करता है। वह इस बात का निश्चय करता है कि कौन कौन से कर लगाए जाएंगे और सभ्य का प्रायः किम प्रकार गृह्य होगी। समस्त वित्त विधेयक का मन्त्रियों द्वारा पुन स्थापित किया जाना आवश्यक है। मन्त्रिमण्डल भारत सभ्य की वास्तविक नीति निर्धारित करता है और इसलिए यह निश्चित करता है कि भारत सभ्य का संसार का सभ्य गणन का साथ ही सम्भव होगी।

लोक-सभा के प्रति उत्तरदायित्व—चौथी बात यह है कि मंत्रिमण्डल लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। इस उत्तरदायित्व का मानना यह है कि मंत्रिमण्डल और यह दृष्टि से सम्पूर्ण मंत्र-परिषद् अभी समय तक सत्कार्य रहती है जब तक कि उस लोक सभा का विश्वास अर्थात् उसके सन्स्था के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। उस ही मंत्रिमण्डल न यह विश्वास साथ सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल के लिए यह आवश्यक होता है कि यह या तो पत्र रिजल्ट कर ले प्रयत्न रा टरिटी का ठाक सना विघटन करन और नए साधारण निर्वाचना का माग्ग न की मग्गा प्रान कर ।

यह उत्तरदायित्व सामूहिक है—यह स्पष्टाव्य है कि मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। मंत्रिमण्डल एक टोन है और उसके सन्स्था साथ ही साथ डबल प्रयत्न साथ ही साथ तरन है। यदि एक मन्त्र का कार्य करता है तो वह सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल का कार्य समझा जाता है और किसी एक मन्त्र की कोई गतनी समग्र टाग का प्रयत्न कर सकता है। यदि लोक सभा किसी एक मन्त्र के ऊपर प्रति वाम का प्रस्ताव पान कर देता है मार मंत्रियों का त्यागपत्र देना पटा है। यह नारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है कि उनमें लोक सभा के प्रति मंत्र परिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व का स्पष्ट रूप से और उचित रूप से उपस्थित कर दिया गया है। लोक सभा और विनिर्वाचना मंत्रिमण्डल पर उत्तरदायित्व सम्पूर्णतः अधिनियम पर आधारित है।

प्रधानमन्त्री का नृत्व—प्राचीन ज्ञान यह है कि मंत्रिमण्डल प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में कार्य करता है। संविधान में अनुच्छेद ७६ (१) में यह निर्धारित करके कि एक मंत्र परिषद् है। जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री का प्रमाण है। लोक सभा की स्थिति का ध्यान रखते हुए कहा गया है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का नाति का न वक्म Primus inter pares अर्थात् बराबर बराबर का वाच म प्रथम है है अर्थात् Inter stellae luna minores अर्थात् न तो ब बीच चन्द्रमा की है। यह यह ही है जो दूसरे मंत्रियों का पुत्रा है। यह वह ही है जो उनका बीच विभागा का वितरण करता है। यह वह ही है जो मंत्रिमण्डल की बठरा व वाचकम का निश्चित करता है और उसकी अध्यक्षता करता है। यह जिज्ञा ना समय का मन्त्री के त्यागपत्र की मा कर और उनका स्थान पर किसी अन्य मन्त्र का नियुक्त कर मंत्रिमण्डल में कर पार कर सकता है। मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र पत्रा है तो इसका अधिनाय यह है कि सब मंत्रियों का त्यागपत्र देना पडगा। यदि प्रधानमन्त्री और किसी अन्य मन्त्री के बीच मतभेद हो जाए, तो यह परवादुस्त ही है जिस कि या तो त्यागपत्र देना पडगा है या नुहना पडता है।

प्रधानमन्त्री की सर्वोच्चता मंत्रिमण्डल के सामुदायिक उत्तरदायित्व के लिए आवश्यक गारण्टी है। डॉ० ब्रम्हचर के मन्त्रों में स्पष्ट है कि सामुदायिक उत्तरदायित्व के लिए कोई कानूनी अनुमति नहीं हो सकती। यह एकमात्र अनुमति जिसके

द्वारा सामुदायिक उत्तरदायित्व को प्रभावी किया जा सकता है प्रधानमंत्री के द्वारा है। मेरे मन में सामुदायिक उत्तरदायित्व का मिश्रण ही द्वारा प्रभावी होता है। एक सिद्धांत तो यह है कि कोई भी व्यक्ति मंत्रिमण्डल के लिए उम्र समय तक मनोपत नही होगा जब तक कि प्रधानमंत्री की भर्त्सना न हो। दूसरा सिद्धान्त यह है कि यदि प्रधानमंत्री वह कि धमक मंत्री का धपन पर खट्टना आवश्यक है वा यह मंत्रिमण्डल का सत्स्य नही रहेगा।^१

प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल और राष्ट्रपति के बीच मुख्य कड़ी का है। वह मंत्रिमण्डल के लिए को राष्ट्रपति तक पहुंचाता है। मंत्रिमण्डल सघीय मामलों के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाली गूचनाओं तथा व्यवस्थान सभ्य की प्रस्तावों की मांग करे ता उन चीजों का उसके पास पत्रचना प्रधानमंत्री का कर्तव्य है। सभ्य में प्रधानमंत्री का साधारण नीति के मानकों पर शासन का मुख्य प्रस्ताव समझा जाता है। अपनी मूल्य स्थिति के कारण प्रधानमंत्री देश की धरतू और वर्गीय नीति के स्वच्छ निधारणा में विचारण हाथ रखता है।

अधिति नहीं नेता—इस प्रकार प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का कर्त्विज है। लेकिन उसकी उच्चता का यह अधिपति नहीं समझना चाहिए कि वह स्वच्छाचारी है और दूसरे मंत्री खाली उसके धनुषार ही है। वह नेता है अधिपति नहीं। साधारणतः मंत्रिमण्डल के सदस्य देश के मुख्य नेता होते हैं और प्रधानमंत्री उनका सहयोग तथा सहायता के बिना अपनी स्थिति कायम नहीं रख सकता। यह जानना है कि मंत्री उसके दास नही साथी हैं और उस उनके साथ सही प्रकार का व्यवहार करना पता है।

सघीय विधान मण्डल

१२३ ससद

नए सविधान के अधीन सघाय (केन्द्रीय) विधान मण्डल ससद कहलाता है। यह एक द्विसदनात्मक विधान मण्डल है जो राष्ट्रपति तथा ससद के दोनों सदनों से मिल कर बना है। ये सदन क्रमशः राज्य परिषद तथा लोक सभा के नाम से प्रख्यात हैं। सविधान ने निर्धारित किया है कि ससद के सदनों का वय में कम से कम दो बार प्रारूत होना आवश्यक है और उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक तथा आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए निश्चित तारीख के बीच ६ मास का अन्तर न होगा। इस उपबंध के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति (१) ससद के सदनों को धपवा किसी सदन को प्रारूत कर सकता है (२) सदनों का सभावसान कर सकता है तथा (३) आवश्यकता पडने पर लोक-सभा का विघटन कर सकता है।

१२४ राज्य-परिषद्

रचना—स सदन का उच्च सदन राज्य परिषद् के नाम से प्रख्यात होगा। जसा कि इसके नाम से ध्वनित होता है, यह सदन राज्यों अर्थात् भारत-संघ के अग्रभूत एककों के प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगा। लेकिन जिन प्रकार अधिकांश टिपोक्ल सभों के उच्च सदनों में विभिन्न अवयवी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है वसा भारत में नहीं दिया गया है। स विधान न राज्य-परिषद् की अधिकांश अधिकांश सदस्य संख्या २५० निश्चित की है। इनमें से १२ सदस्यों को राष्ट्रपति नाम निर्देशित करेगा। ये १२ सदस्य एस व्यक्ति होंगे जिन्हें साहित्य विज्ञान तथा और सामाजिक सेवा के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है। शेष सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। आज राज्यों के बीच स्थानों का बंटवारा निम्न प्रकार से किया गया है—

राज्य	सदस्य	राज्य	सदस्य
आंध्र प्रदेश	१८	राजस्थान	११
आसाम	७	उत्तर प्रदेश	१०
बिहार	२२	पश्चिमी बंगाल	१४
महाराष्ट्र	१६	जम्मू और कश्मीर	६
गुजरात	११	नागालैण्ड क्षेत्र	१
कराच	६	दिल्ली	३
मध्य प्रदेश	१६	हिमाचल प्रदेश	२
मद्रास	१९	मनापुर	१
मसूर	१२	त्रिपुरा	१
उड़ीसा	१०	पांडिचरी	१
		कुल	२२५
		राष्ट्रपति द्वारा नामित	१२

सदस्यों की महत्ताएँ और निर्वाचन—राज्य परिषद् के सदस्य चुने जाने के लिए व्यक्ति में निम्न महत्ताएँ होनी आवश्यक हैं। उस भारत का नागरिक होना चाहिए उसकी अवस्था कम-से-कम तीन वर्ष होनी चाहिए और उसमें एसी अन्य महत्ताएँ होनी चाहिए जो मसू निमित्त कानून के द्वारा निश्चित की जाए। राज्य परिषद् के लिए प्रतिनिधि परीक्षा रीति से चुने जाएँगे। राज्यों के प्रतिनिधि जनता के प्रत्यक्ष मत के द्वारा नहीं अपितु प्रत्येक राज्य की विधान सभा के द्वारा सांगुनात प्रतिनिधित्व प्रदानों के अनुसार एकल बहुमतोप मत के द्वारा निर्वाचित किए जाएँगे। यत्र के प्रतिनिधि ऐसे होंगे वे चुने जायेंगे जसा कि मसू निश्चित करे।

स्वामी सदन—राज्य परिषद् एक स्वामी सदन होगी। दूसरे तर्जों में उल्लेख विषय नही होगा। परिषद् में सत्त्व ६ वर्ष के लिए निर्वाचित होयेंगे और उनमें एक तिहाई प्रत्येक राज्य के राजा के समान पर निर्वाचित होना होगा। भारत का उत्तराधी प्रति पदन राज्य परिषद् का समापित होगा। परिषद् अपने सत्त्व में राजा के अधिकार का उल्लेख नहीं करेगी।

१२५ लोकसभा

रचना और निर्वाचन—सत्त्व का निम्न सत्त्व राजा के नाम से प्रस्ताव होगा। यह उन ५०० सदस्यों में मितकर बनता था जो अष्टादश सत्त्वों के शासन पर साधे जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। परन्तु संविधान (मातृका सत्त्व) अधिनियम पारित होने के पश्चात् राजा के नाम से राजा के नाम से राजा के नाम से साधे जनता द्वारा चुने हुए सदस्यों ५०० में घटित होना (जम्मु तथा कश्मीर राज्य के प्रतिनिधि उभय सत्त्व के विधान मन्त्र का निर्धारण पर सत्त्वपति द्वारा नियुक्त होने) और सत्त्व के नाम का प्रतिनिधित्व करने के लिए २०० सदस्यों के सत्त्व न होने का विचार सत्त्व द्वारा बनाए हुए तरीके से चुना जायगा।

प्रत्येक राज्य का उभय सत्त्व नियुक्त जायेंगे और प्रतिनिधियों तथा राजसभा का अनुसूचित वर्गों में सभी के लिए एक जगह होगा।

उन प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा राजा सभा में वर्तमान स्वामी का विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है—

राज्य	स्वात	राज्य	स्वात
आंध्र	४१	राजस्थान	२२
आसाम	१२	उत्तर प्रदेश	६५
बिहार	५३	पश्चिमी बंगाल	४०
हरियाणा	६	जम्मु व कश्मीर क्षेत्र	६
महाराष्ट्र	४५		
गुजरात		अहमदनगर निचोदार	१
करल	१९	दिल्ली	७
मध्यप्रदेश	३७	हिमाचल प्रदेश	६
मद्रास	६	लक्षद्वीप	१
मसूर	२७	मनीपुर	१
उड़ीसा	२०	त्रिपुरा	२
पंजाब	१३	भारत भारतीय	२

(नामजद)

नए संविधान ने पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचक-गणों का उन्मूलन कर दिया है लेकिन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातों के हित का दखल बंध की प्रवधि के लिए संरक्षण का प्रबंध किया है। उसने राष्ट्रपति का यह भी अधिकार दे दिया है कि यदि उसकी राय हो कि लोक सभा में प्राग्गत भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दा से अधिक सदस्य नाम निर्देशित कर सकता है। लोक सभा के लिए होने वाले निर्वाचनों के प्रयाजनाय राज्यों का प्राथमिक निर्वाचन क्षमता में इस प्रकार विभाजन कर दिया जाएगा जिससे यह सुनिश्चित रहे कि प्रति ७५००० जन-संख्या के लिए एक से कम सदस्य न हों।

सदस्यों की प्रवृत्ताएँ—कोई व्यक्ति लोक सभा के लिए निर्वाचित होने के लिए तब तक प्रवृत्त न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो। कम से कम २५ वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो और एधी प्रवृत्ताएँ न रखता हो जो समाज के प्रति किसी वास्तविक नुकसान या प्रथीन निमित्त का जाए।

सदन की प्रवृत्ति—साधारणतः लोकसभा की प्रवृत्ति अपने प्रथम प्रविवेशन के लिए नियुक्त तारीख से ५ वर्ष की है और यह वातावरण समाप्ति होने पर उसकी विघटित कर देना आवश्यक है। परन्तु लोक सभा को उसकी पूर्ण प्रवृत्ति के समाप्त होने से पूर्व भी विघटित किया जा सकता है। जब प्राजात की उन्धाधरा प्रवृत्तन में है तो लोक सभा की इन कालावधि की एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है तबिन उदघोषणा के प्रवृत्तन का प्रवृत्त हो जाने के छ मास पर्यन्त यह कालावधि समाप्त हो जायेगी।

सर्व सदस्यों के विशेषाधिकार (Privileges) संविधान के अनुच्छेद १०१ के अनुसार सभ्य सदस्यों के वही विशेषाधिकार होंगे जो रिटन में पार्लियामेंट के हैं। सदस्यों को विमर्षाधिकार की प्राप्ति इतनी आवश्यक है कि वे निष्ठ और निष्ठा रूप से विभिन्न विषयों पर विचार कर सकें और उन्हें प्रकट भी कर सकें। इन अधिकारों में उच्च विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता उच्च विचारों के होने का स्वतंत्रता प्राप्ति सम्मिलित है। स्वयं सभ्य इन अधिकारों की रक्षा करता है। सभ्य का प्रवृत्त इनका संरक्षण करता है। नीतिगत अधिकार और सभ्य के विमर्षाधिकारों का बीच यदि सभ्य हो तो ऐसी प्रवृत्ता में वीन महत्वपूर्ण है कि पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय न घनी हानि में परामर्श के रूप में मत प्रकट किया है जो बहुत महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार सभ्य के प्रवृत्त यदि सभ्य अधिकारों का हनन हो तो सदन उस अपराधी को दण्ड देने का अधिकार रखता है। किन्तु सभ्य के प्रागण के बाहर के विषयों में उच्च-न्यायालयों की हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त है किन्तु सब भी यह विवादास्पद विषय बना हुआ है।

अध्यक्ष (The Speaker)—लोकसभा अपने दो सदस्यों को सभ्य अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। अध्यक्ष सभ्य की कार्यवाही का संचालन करेगा उसमें अध्यक्ष और अनुयायन कायम रहेगा और उनके सदस्यों के विमर्षाधिकारों की रक्षा करेगा।

साधारणतः मध्यकालीन स्थिति यही होती थी किटिंग कर्मिण समाज का स्वरूप की है। उसका सवका निष्पक्ष तथा दलगत भावनाओं से उभरना होना आवश्यक है। तथापि यह निश्चित नहीं है कि वह सब प्रतिष्ठित भारत में भी लागू हुआ और भारतीय लोक सभा का मध्यकालीन स्वरूप की भाँति धरा दल का रूप नहीं रहेगा तथा राजनीति से पृथक् हो जाएगा। भारत की स्थिति है उमर का भी। भावनात्मक ने निम्न शक्ति में साराण दिया है--

यद्यपि भारत में लोक सभा का मध्यकालीन स्वरूप का स्थापित करने का तरह राजनीतिगत घटनाओं से प्रेरित बाहर नहीं है। यही तब तक समाज का सम्मान है मध्यकालीन कि वह आवश्यक है कि वह राजनीतिगत बना रहे राजनीति उमर दिया बलान काही मर्यादित है। वह अपने दल का रूप बना रहे तब तक है कि उस दल का सामना में किंगपवर एवं सामन्तों में जिनकी मात्रा में सम्मान प्राप्त की सम्भावना को भाग में बना चाहिए। कहने का मत यह है कि उसे किसी प्रकार के प्रचार के साथ स्वयं का एकदम न करना चाहिए और एक मनुष्य बनने चाहिए जिससे कि उसके मध्यकालीन के दलगत में अपने भी सम्मान को प्रभाव जिनसे इस बात का कि मध्यकालीन का मत है। भावनात्मक का गवायण रहे।¹

श्री का० भावनात्मक के विचारों का अन्वयण करते हुए हमारे विचारों प्रधानमन्त्री नेहरू ने कहा था कि लोक सभा के अर्थ का पत्र सम्मान में प्रतिष्ठा का है। यह पत्र मन्त्रियों का ही सम्मान है। संसदीय शासन प्रणाली की रक्षा के लिए मध्यकालीन का सम्मान करना हमारे लिए अनिवार्य है।

१२६ संसद के दो सदना के पारस्परिक सम्बन्ध

धन विधेयका के सम्बन्ध में -संसद के दो सदनों की स्थिति समान नहीं है। वित्तीय व्यवस्थापन के सम्बन्ध में लोक सभा का स्थिति मूल्य है और राज्य परिषद की अतिरिक्त अल्पकालीन मर्यादित है। विधान न निश्चित किया है कि धन विधेयक केवल लोक सभा में ही पुनः स्थापित किया जा सकता है। जैसे ही लोक सभा उभर पास कर देती है वह सिफारिशों के लिए राज्य परिषद के पास भेजा जाता है। राज्य परिषद के लिए यह आवश्यक है कि वह विधेयक को अपना सिफारिशों सहित चौदह दिन के भीतर ही भीतर लोक सभा के पास वापस लौटा दे। इसके परन्तु लोक सभा चाहती है इन सिफारिशों में से किसी को अस्वीकार करे मध्यकालीन मध्यकालीन विधेयक दोना सदाई द्वारा पास किया हुआ सम्मान जाएगा। यदि राज्य परिषद चौदह दिन के भीतर ही भीतर विधेयक को लोक सभा के पास वापस नहीं भेज पाती तब भी वह दोना सदनों द्वारा पास किया हुआ सम्मान जाएगा। इस प्रकार राज्य-परिषद् धन विधेयक के अधिनियम में केवल दो सप्ताह की देरी कर सकती है। इस दृष्टि से परिषद्

¹ का० भावनात्मक-- पालियामेण्ट्री अकेपस म पालियामेण्ट्री लाइफ इन इण्डिया, भाग ४ अंक १ पृ११४।

ब्रिटिश लाइ समा क तुल्य है । ब्रिटिश लाइ समा भी धन विधेयकों के बारे में संवदा शक्तिहीन है ।

धन विधेयकों से अर्थ विधेयकों के बारे में—लेकिन धन विधेयकों से अर्थ विधेयकों के बारे में दोनों सभों की शक्तियाँ समान हैं । कोई भी अर्थ विधेयक उस समय तक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि वह संसद के दोनों सदनों द्वारा पास न कर लिया जाए । लोक सभा को राज्य परिषद के नियम का उत्तर देने के शक्ति नहीं होगी । इस दृष्टि से राज्य परिषद ब्रिटिश लाइ-सभा से स्पष्टतः मजबूत है । ब्रिटिश लाइ समा धन विधेयकों से अर्थ विधेयकों के सम्बन्ध में भी कबन किलम्ब करने वाले सदन के रूप में ही कार्य करता है ।

संयुक्त बैठकें—कभी कभी ऐसा हो सकता है कि किसी अर्थ विधेयक के ऊपर लोक सभा और राज्य परिषद में मतभेद हो जाए । ऐसी स्थिति में शक्तिरूप दूर करने के लिए दोनों सभों की एक संयुक्त बैठक की जा सकती है । संयुक्त बैठक में यदि कोई नियम बनना होता है तो यह सीधे-सादे बहुमत के द्वारा किया जाता है । संयुक्त बैठक में लोक सभा का बोधबाला रहेगा क्योंकि उसकी संख्या राज्य परिषद की संख्या से अधिक होगी । दूसरे सभ में उच्च सदन उन मामलों में भी जो कि धन से सम्बन्ध नहीं हैं घाटे में रहेगा । भारतीय राज्य-परिषद ब्रिटिश लाइ समा की तरह शक्तिहीन नहीं होगी । फिर भी उसकी स्थिति लोक सभा की तुलना में नीची रहेगी ।

धनपालिका के ऊपर नियंत्रण—राज्यपालिका के ऊपर दोनों सभों का जो नियंत्रण है जिस सीमा तक नियंत्रण है उस क्षेत्र में भी यही बात दिखाई देती है । यदि धन मंत्र परिषद का दोनों सभों के प्रति नहीं पवित्र धरने लोक सभा के प्रति उत्तरदायी बनाता है । इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य-परिषद सरकार की नीति पर विचार विमर्श कर सकती है प्रश्नों और 'कामरेको' प्रस्तावों द्वारा उनके ऊपर कुछ प्रभाव भी डाल सकती है । लेकिन सरकार के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे अल्पसंख्यक बनाना केवल लोक सभा के बूते ही हो सकता है ।

१२७ संसद की शक्तियाँ और मर्यादाएँ

(२) विधायिका की शक्तियाँ—संविधान सभ सूची और संसदीय सूची में प्राणित संसद विधायिका पर कानून बनाने की शक्ति संसद में निहित करता है । साधारणतः वह राज्य-सूची में सम्मिलित विधायिका पर कानून बनाने के लिए सक्षम नहीं है । लेकिन यदि राज्य परिषद पापण्य कर दे कि इन विधायिका में से कोई विधायिका राष्ट्रीय महत्व का है तो संसद उसके सम्बन्ध में कानून बना सकती है । संसद विधायिका के प्रवर्तन काल में अथवा राज्य में संविधानिक तंत्र के अस्तित्व हो जाने की उद्घाटन के प्रवर्तन काल में भी राज्य विधायिका के ऊपर कानून बना सकती है ।

साधारणतः राज्य विषय ससद की सक्षमता से बाहर है—राज्य की शक्तियों पर एक प्रतिबंध यह है कि उस पूरा और अग्रणी संविधान संविधायी शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। वह राज्यों के विधान मण्डलों की अनुमति के बिना संविधान से महत्वपूर्ण उपायों को संशोधित नहीं कर सकता।

ससद प्रभुत्व सम्पन्न कानून निर्माता निकाय नहीं है—जैसे भारत में संसद और ब्रिटिश संसद के बीच के एक स्पष्ट अंतर का पता चलता है। ब्रिटिश संसद प्रभुत्व-सम्पन्न विधान मण्डल है उस पूरा संविधान संविधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं और वह देश के संविधान को जिन-जिन से चाहे संशोधित कर सकती है। एक अलावा भारतीय ससद द्वारा पाए गए कानून न्यायिक पुनरोद्धार के विषय हैं। उन कानूनों को जो संविधान के सिद्धोपयोगों के प्रतिबन्धित हैं सर्वोच्च न्यायालय और राज्य के उच्च न्यायालय अवधानिक धारित कर सकते हैं। ब्रिटिश संसद इस प्रकार के किसी प्रतिबंध के अधीन नहीं है।

राष्ट्रपति का निषेधाधिकार—यहाँ हम संसद की शक्तियों के ऊपर एक अग्र प्रतिबंध की चर्चा कर सकते हैं। प्रत्येक विधेयक के लिए राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने पर ही उस विधि पुस्तक में दर्ज किया जा सकता है। लेकिन जसा कि हम ऊपर देख चुके हैं राष्ट्रपति संसद द्वारा पास किए गए किसी विधेयक पर अपनी अनुमति देना अनिवार्य कर सकता है और उसे पुनर्विचार के लिए संसद के पास वापस भेज सकता है। तद्विना काय पानिका का यह निषेधाधिकार केवल नितम्बमान (Suspensory) ही है शक्ति नहीं। राष्ट्रपति विधेयक के अधिनियम में खाली देर कर सकता है उसकी हत्या नहीं कर सकता। संसद के दोनों सदन विधेयक को दुबारा सीधे साधे बहुमत से पास करके राष्ट्रपति के निषेधाधिकार का अतिश्रमण कर सकते हैं।

(ख) वित्तीय शक्तियाँ—संसद को विपुल वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। वह संसद की शक्ति को नियंत्रित करती है। जब तक संसद का अनुमोदन न हो जनता के ऊपर कोई कर नहीं लगाए जा सकते और न किसी प्रकार का कोई व्यय ही किया जा सकता है। तथापि धन्य की कुछ ऐसी मंथन प्रवश्य हैं जिन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता। हाँ विचार विमर्श प्रवश्य हो सकता है। इन मता का व्ययभार संसद के अनुमोदन सहित भारत सचिव निधि के ऊपर पड़ता है।

(ग) संसद का सघीय कार्यपालिका के ऊपर नियंत्रण—चूँकि भारतवर्ष में संसदीय शासन प्रणाली की अग्रणीयता है अतः सघीय मंत्रिपरिषद संसद के नियंत्रण में रहकर कार्य करती है। इस नियंत्रण का प्रयोग लोकसभा के द्वारा किया जाता है जिसके प्रति मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। यदि मंत्रिपरिषद् लोकसभा का विश्वास खो देती है तो लोकसभा उसे (१) सीधे अविश्वास का प्रस्ताव पास करके (२) किसी सरकारी विधेयक को अस्वीकार करके

घरवा (३) सरकारी विवेकक म एसा सगोधन पास करके जिससे सरकार महमत न हो घपत्स्य कर सकती है। ससद प्रश्नों और कामरोको प्रस्ताव घ्राणि के माध्यम से प्रणामन के ऊपर सतक दृष्टि रख सकती है और जनता का ध्यान सरकार के क्रिया-कलापों की ओर घ्रादृष्ट कर सकती है। ससद का कोई भी सदस्य सरकार क बायों और नीतिया के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछ सकता है। निसगत यह सरकार की नीतियों को प्रकाश में लाने के लिए प्रयोग करने के सावत्रनिक महत्व के एमे मामलों मे घ्राप्रथक वत्प उठाने क लिए प्रयोग करने के लिए जिनकी उसने उपेधा की है शक्तिशाली उपाय है। कामरोको प्रस्ताव घ्राण क साधारण काय व्यापार को स्वगित करने का ताकि रन-घ ना जनम पर घृनिस की गानी वर्षा प्रथवा भाषण उपद्रव घ्रादि मादजनिक महत्त्व मे मनी पर विचार किया जा मत्र प्रस्ताव है। कामरोको प्रस्ताव वा वास घ्राण प्रणामन की प्रष्टता और दुबनता तथा कायपात्रिका का नाति वा घ्राणि प्रणामन की है। ससद का नियंत्रण कायपात्रिका को सत्व रखता है और स जाचारा दण म काम करने मे रोक्ता है।

भारत में ससदाय जनतंत्र — (Working of Parliamentary democracy in India)

भारतीय संविधान ने भारत में विधि व प्रशासन को राज की दायीं स्वाता पर ससदोय शासन प्रणाली को घण्टा दिया है। संविधान निर्माता ब्रिटिश ससदोय शासन प्रणाली की सफलता से प्रभावित थे और इसी पद्धति को भारत में लागू करने के लिए इ पुरुष थे। यदि भारत के संविधान का विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट भी हो जाता है कि सदातिक दृष्टि से इसमें ससदोय पद्धति के सभी घ्राधारमूल तत्व पाये जाते हैं। हमारे यहां की ससद (Parliament) का संघटन निर्वाचन उसकी अधिकार शक्तिया सभी बातां म ब्रिटेन की पार्लियामण्ट से मिलती जुलती हैं। संविधान में कई स्थानों पर यह भी स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है कि जब तक भारतीय पार्लियामण्ट परन निर्वाचन व व्यवस्था न बनाये ब्रिटेन में प्रचलित नियमों व पद्धतियों का अनुकरण किया जायगा। हमारी पार्लियामण्ट मेज की पुस्तक ससद काफ प्रावीजर व वाटवट काफ विजनस के नियम संहिता के रूप में स्वीकार करती है। भारत के प्रधान मंत्र की नियुक्त व शक्तियां मंत्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्री परिषद् का लोकसभा के प्रति उत्तरदायित्व विरोधी दृष्टि निर्माण सदन में कमेटियों का संघटन स्वीकर वा निर्णय होना घ्राणि घ्राणि बातों इनका घोटक है कि भारत म संसदीय प्रणाली कार्यान्वित हो रही है। घन प्रश्न यह उठता है कि क्या व्यावहारिक दृष्टि से यह प्रणाली सफलता से भारत म कार्या कर रही है ? क्या इसका नविकल्प भारत मे उजबल है ? ससदोय जनतंत्र की सफलता के घन मन्धानिक अध्ययन पर ही निर्भर नहीं करती इसकी सफलता को मानने क लिए हमें कुछ व्यावहारिक तथ्या की घोर नी

ध्यान देना होगा बिनमे प्रमुख हैं। (१) भारत में चुनाव व नेतृत्व (२) देश में विरोधी दल और उनकी समालोचना पद्धति (३) वी में ठोस व स्थायी जनमत । यह विदित होता है कि भारत में चारों चुनाव बड़ी सफलता क मने गए और मारो ताग में मरणापों ने मरान किया । पर चुनावों में जाति, धर्म भाषा सम्बन्धी साम्प्रदायिक भावनाओं का बड़ा प्रभाव रहा है । राष्ट्रीय उन्नति को गौण और साम्प्रदायिक भावनाओं को प्राथमिकता दी गई है । परिणामतः पार्लियामेंट के भीतर व बाहर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से प्राथमिक नेतृत्व का विकास पूरतया नहीं हो पाया है । पार्लियामेंट में घातापी बात है कि वह सदस्यों को घातकित करे जो गुण म्म में घोर मनोव बाधों में धरने की समर्पित कर दे । राजनतिक धार म्म मे गिता की टि स मद्रिक व उमस को कम गिया प्राप्त सन्धियों का अनुमान २५/ है । सम में बहानन का व्यवसाय करने वाला का अनुगत घीरे पर रण रहा है और मन्त्र सवा करने वाला का मन न बढ रहा है । जहरत ही इस बात की है कि भारत में तुल्य उन लोगो का हा जो राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय हित की दृष्टि से विरथा पर निग्न म्म से विचार कर सक । दूसरा प्रश्न है विरोधी दल का । म्म गिा है कि मन्त्री चुनावों के परचा कायम का बहुमत रहा । सन्ध में घ व विरोधी लो क सन्धियों का सह्या बहुत कम है जो म्म ठित होने पर भी पर्याय सरकार नहीं बना सकने । उनके द्वारा प्रस्तुत योजनाओं और घालोचना म्म रचनात्मक उनि ने स्वान पर प्रांतीय प्रकृति अधिक सिखाई पडती है । तीसरा भारत का जनमत विहातन नहीं है । उससे देश में राजनतिक मुत्ता नहीं घा पाई है ।

इन उपयुक्त तथ्या को ध्यान में रखन हुए यह जल्दी है कि भारत में कुछ ऐसी बौद्धिक शक्तियों का निर्माण हो सके जो समय पर विभिन्न राजनतिक व धर्म्य मामलों पर विचार कर सकें और सरकार का परामर्श दे सकें । इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि देश में प्रथम की स्वतंत्रता का दुष्प्रयोग न किया जाय । विषयविद्य तथ्या में पत्रकारिता का योग गुरु क्रिया जाय । देश में ऐसे प्रभावशाली ग्रुप (Pressure groups) का ज्ञान विद्य गिया जाय जमे बिन व समारंभ म्म पाय जाय । इस तरह क समुदाय म्म प्रकृति रूप से जनमत का निर्माण करते हैं और सरकार की नीति को प्रभावित भी करत रहते हैं ।

संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution) म्म देश संविधान में परिवर्तन की गुणा ग्म हानी चाहिए । भारत क नवीन संविधान में ठोस व सच्ची शासन का मम बय है । संविधान के प्राव न ३२८ में संशोधन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में कहा गया है । भारत संविधान निर्मातु समा में संविधान संशोधन प्रक्रिया के सम्बन्ध में बानने हुए डा म्म कर न ३ पद्धतियों का निरपेक्ष किया था । प्म नी पद्धति के अनुसार संविधान में सम संशोधन बन्धत सं संशोधन कर सकती है इसमें राज्यों में विधान परिषद् क निर्माण व समाप्ति ग्मे विषय सम्म

निवाचन के रूप में बाध करके के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई है।

सर्वोच्च न्यायालय का गठन—एक संविधान के अधीन संघीय सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायमण्डल है। वह न्याय की न्यायनिका के लिए पर प्राचीन है। उक्त गठन १९५५ के भारत सरकार अधिनियम के उपबंधों के अधीन स्थापित संघीय न्यायालय कमेटी के उक्त उद्देश्य के अन्तर्गत धारा विचार प्रदान कर दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति और शक्ति की उन शक्तियों का प्रयोग करता है जिनका पत्रिका में विचार प्रदान किया था।^१ कुछ मामलों में इन शक्तियों को पर्याप्त बना दिया गया है।

नए संविधान की अनुच्छेद १२४ के अनुसार भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का एक मुख्य न्यायाधीश तथा नौ अन्य न्यायाधीशों द्वारा बनाया गया है। न्याय न्यायाधीशों की संख्या सर्वोच्च न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) अधिनियम १९५५ द्वारा वास्तविक रूप में की और धारा १४ कर दी गई है।

हमारे संविधान में (ad hoc) न्यायाधीश नियुक्त करने के लिए भी रखा गया है। यदि किसी समय अधिनियम करने के लिए जारी रखने के लिए मंदा पूरी न हो तो मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति से कुछ अनुमति लेकर तथा उक्त उच्च न्यायालय के मुख्य की सहाय से वहाँ के किसी भी न्यायाधीश को बढाकर पर बुला सकता है। परन्तु सभी ऐसे न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय का सदस्य बनने की योग्यता रखते हों और उक्त वही मन्तव्य में कि एक सर्वोच्च न्यायालय के सदस्य को मिलते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा अहताएँ—संविधान ने यह स्पष्ट उपबंध कर दिया है कि संसद कानून द्वारा न्यायाधीशों की संख्या को घटाया या बढ़ा सकता है। सर्वोच्च न्यायालयों के तथा राज्यो के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करके, जिनसे इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना राष्ट्रपति आवश्यक समझे राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश को नियुक्त करता है।

सर्वोच्च न्यायालय के दूसरे न्यायाधीशों को नियुक्ति राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तब तक ग्रहण होगा जब तक कि वह (१) भारत का नागरिक न हो (२) राज्य के किसी उच्च न्यायालय में पांच वर्ष से अधिक काम न कर चुका हो (३) किसी उच्च न्यायालय का दस वर्ष से अधिक अवकाश न रह चुका हो और (४) अथवा राष्ट्रपति उसे पारमर्श विधिवेत्ता न समझता हो।

१ सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के साथ भारत का प्रिवी काउंसिल के सम्बन्ध टूट गया है।

यायाधीशों के वेतन आदि—सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को बिना किराया दिए पदावास के उपयोग का हक है। मुख्य यायाधिपति को ५००० रु० प्रतिमास और दूसरे प्रत्येक न्यायाधीश को ४००० रु० प्रतिमास वेतन मिलता है। यायाधीश जहाँ एक बार नियुक्त हुए फिर उनके मत्तो, उपलब्धियों और विशेषाधिकारों में उनके लिए अनामकारी किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यायाधीशों को नौकरी की गारण्टी दी जाती है। उनका सेवा निवृत्त होने की आयु ६५ वर्ष निश्चित की गई है।

न्यायाधीशों की पदच्युति—सर्वोच्च न्यायालय के यायाधीश को अपने पद से केवल उसी समय हटाया जा सकता है जबकि सिद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के लिए उनको हटाए जाने हेतु समद के दोनों सदनों ने राष्ट्रपति के सम्मुख एक समावेदन रख लिया हो और राष्ट्रपति ने उसके हटाए जाने का आदेश दे दिया हो। समावेदन के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रथम सदन की समस्त सदस्य सभ्या के बहुमत द्वारा और उपस्थित व मतान्तरण वान सभ्यो के कम से कम दो तिहाई बहुमत के द्वारा पास किया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय के यायाधीश सेवा निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष बकालत करने अथवा उपस्थित होने से वंचित कर दिए गए हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ—भारत का सर्वोच्च न्यायालय एक शक्तिशाली निकाय है। उसकी शक्तियाँ अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के सहित किसी अन्य सभ की सर्वोच्च न्यायिक सत्ता की शक्तियों से अधिक हैं। वह एक अभिलेख न्यायालय है और उसे अपने घबमान के लिए दण्ड देने की शक्ति के सहित एक न्यायालय की सब शक्तियाँ प्राप्त हैं।

(क) अभिलेख न्यायालय—अभिलेख न्यायालय वह उच्च न्यायालय होता है जिसके निर्णयों और न्यायिक आदेशों को नित्य स्मृति के लिए लिख लिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय में अभिलेखों का साक्ष्यात्मक मूल्य होता है और जब किसी न्यायालय के सम्मुख उन्हें उपस्थित किया जाता है तब उनकी साक्षी पर किसी प्रकार का कोई सदेह नहीं किया जा सकता।

(ख) सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक क्षत्राधिकार—सर्वोच्च न्यायालय प्रारम्भिक अपीलीय और परामर्शिक क्षत्राधिकारों का प्रयोग करता है। उनका अथवा सर्वोच्च प्रारम्भिक क्षत्राधिकार (१) भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच के (२) एक और भारत सरकार और कई राज्यों या राज्यों तथा दूसरी और एक या अधिक अथवा राज्यों के बीच के अथवा (३) दो या अधिक राज्यों के बीच के, किसी विवाद में यदि और जहाँ तक ऐसा को प्रस्तुत उपस्थित है (चाहे कानून का हो चाहे तथ्य का) जिस पर किसी कानूनी अधिकार का परिहार या विस्तार निर्भर है वहाँ तक होता है। उच्च सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षत्राधिकार का

विस्तार उस विवाद पर नहीं है जो पूर्वकालीन देशों राश्यों के साथ की गई संधियों के उपबन्धों से सम्बन्ध रखता है और जिसमें कोई राज्य एक पक्ष है।

(ग) सर्वोच्च न्यायालय का प्रथमोप-क्षेत्राधिकार—सर्वोच्च न्यायालय के प्रथमोप-क्षेत्राधिकार में तीन तरह के मामले आते हैं—(क) अध्यापिका (ग) दीवानी और (ग) फौजदारी। अध्यापिका मामला में किसी उच्च न्यायालय के बाधता फौजदारी विषयक और चाहे दीवानी बाधता भी मंजूर हुए निर्णय की प्रथम सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है यदि वह उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले में सविधान व निर्वाचन का कोई कारण विधि प्रश्न प्रस्तुत है। दीवानी मामलों में उच्च न्यायालय के किसी निष्पक्ष प्राप्ति या प्रतिम प्राप्ति की प्रथम सर्वोच्च न्यायालय में होगी यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करे कि विवाह विषय की राजि का मूल्य २० ००० रु० से कम नहीं है परन्तु प्रथम में कोई कारण विधि प्रश्न प्रस्तुत है। फौजदारी मामलों में किसी उच्च न्यायालय के लिए हुए निर्णय की सर्वोच्च न्यायालय में प्रथम होगी यदि उस उच्च न्यायालय ने (१) प्रथम में किसी प्रथमयुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के प्राप्ति को पलट दिया है तथा उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है (२) अपने प्रथम न्यायालय में किसी मामले को परीक्षण करने के हेतु अपने पाम मार्ग लिया है तथा एम परीक्षण में प्रथमयुक्त व्यक्ति को सिद्ध दोष ठहराया है और मृत्यु दण्डादेश दिया है परन्तु (३) प्रमाणित किया है कि मामला सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने लायक है। सस कानून के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के प्रथमोप-क्षेत्राधिकार को बड़ा सजती है।

सविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को कतिपय परामर्शोप-क्षेत्र भी दिए हैं। यदि राष्ट्रपति को प्रतीत हो कि कानून या तथ्य का कोई एमा प्रश्न उत्पन्न हुआ है जो सावधानिक महत्व का है तो उस पर वह सर्वोच्च न्यायालय की राय प्राप्त कर सकता है। इस क्षेत्राधिकार के प्रथम राष्ट्रपति उन विवाहों को भी सर्वोच्च न्यायालय को राय देने के लिए सौंप सकता है जो पूर्वकालीन देशों राश्यों के साथ की गई संधियों और समझौतों के नियमन को प्रस्तुत करते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय और मूल अधिकार—सर्वोच्च न्यायालय भारत के नागरिकों की स्वतंत्रताओं और मूल अधिकारों का रक्षक है। यदि किसी विधान मण्डल द्वारा पाम किया गया कोई कानून उन मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है जो सविधान न जनता को प्रदान किए हैं तो न्यायालय उसको शून्य घोषित कर सकता है। नियम निरोध अधिनियम के खण्ड १६ के मामले में यह किया गया था राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश निरानकर उस खण्ड को प्रभावित कर दिया। प्रथम हान हो म राजशा के उच्च न्यायालयों ने प्रथम सर्वोच्च न्यायालय ने सविधान के अनुच्छेद १६ और ३१ के प्रतिपुन करने वाले कतिपय कानूनों को निरस्त किया है।

संविधान का अभिरक्षक और निवचक—सर्वोच्च न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण और मूल अधिकारों के प्रयत्न के लिए तब निकाल सकता है। इस प्रकार अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की तरह भारत के सर्वोच्च न्यायालय को विधान मंडलों द्वारा पास किए गए कानूनों का पुनरीक्षण करने और उन्हें यदि वे संविधान के किसी उपबन्ध के विरुद्ध हों अवघ घोषित करने की शक्ति दे दी गई है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अभिरक्षक और निवचक है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता—संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय की निष्पक्षता और स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने व उसे कार्यपालिका या व्यवस्थापिका के हस्तगत प्रभाव से दूर रखने का उचित उपबन्ध कर दिया है। यायाधीश जहाँ एक बार नियुक्त हुए, फिर उन्हें एक अत्यन्त कठिन प्रक्रिया के अलावा अन्य किसी रीति से अग्रदस्व नहीं किया जा सकता। इसके अलावा न्यायपीठों के बतन और सर्वोच्च न्यायालयों के प्रशासनिक व्ययों का भार भारत का संवित निधि के ऊपर पड़ता है। ये सब राष्ट्रीय विधान मण्डल के मतापेक्षी नहीं हैं।

एक व्यक्ति आयोग (One man commission) सर्वोच्च न्यायालय की अखंडता व स्वतंत्रता के प्रसंग में एक व्यक्ति आयोग के विषय में बर्ताना करना अनुपयुक्त नहीं होगा। अभी हाल में भारत सरकार ने प्रस्तावित व धर्म मानकों के सम्बन्ध में एक व्यक्ति आयोग नियुक्ति की परिपाटी प्रारम्भ की है। इस आयोग में साधारणतया सर्वोच्च या उच्च न्यायालयों का रिटायर्ड यायाधीश होता है। इस आयोग का कार्य हस्तान्तरित विषय पर जांच व मत देने का है। सरकार उसे स्वीकार या रद्द करने में स्वतंत्र है किन्तु न्यायालय की स्वतंत्रता की रक्षा व लिए रिटायर्ड न्यायाधीश के मत का मूल्य उतना ही होना चाहिए।

सारांश

भारत के नए संविधान की रचना में श्री मिशा योजना के उपबन्धों के अधीन १९४९ में निर्मित संविधान सभा ने कार्य किया। यह संसार का नवम बड़ा संविधान विधान ब्यावहारिक प्रत्यक्ष है। नवम ब्राह्मण अनुसूचियों के अलावा ६५ अनुसूच्य हैं। यह बड़ा संविधान है यद्यपि अमेरिका व संविधान से कम बड़ा है। यह नवम व राष्ट्रीय है लेकिन इसकी आत्मा एकतात्मक है। इनने भारतवर्ष व तब से १५ शतक प्रणाली को अंगीकृत किया है। इसमें अमेरिका के मूल अधिकारों व ऊपर एक अध्याय है। यह अमेरिका समवनीय है। तबिन इसमें संसद के सदस्यों व अधिकारों को अभाव का भी स्पष्ट किया जा सकता है। हमारे संविधान की एक अनुसूची विधान सभा की निर्धारित है। इन तत्वों का न्यायालय द्वारा वादना नहीं दा जा सकता। यह तब उन अवस्थाओं के लिए जो राज्य की सत्ता का प्रयोग करते हैं तबिन विधानों के रूप में है। संविधान व भारतवर्ष में धर्म निरपेक्षता व की स्थापना की है। एक राज्य में सब धर्मों का नमान दृष्टि से दया जाता है।

भारतीय संविधान में मधीय राजतंत्र के सिंगिष्ण सगुण रिद्यमान हैं। राष्ट्रियों और तप के बीच जनितियों का स्पष्ट रितरण है। संविधान के का सर्वोच्च कानून है और मरिशात के अधिमभारक तथा निषेधक के रूप में ग्यायताविता का अध्याय विधायक है। अरिन संविधान में मधुन एकात्मक अधिमभारि नाई जाती है और वह केवल अद्व मधीय हो। व का अधिमष्ण मरिशात मरिशात म्यायत मरिशात दी गई है। साधारण परिस्थितियों का भी वर राष्ट्रियों की स्वायत्तता में हूना दे कर मरशा है। साधारण में मरिशात को बिना किसी अधिमभारिक मरशात के एकात्मक बनाया जा मरशा है।

सधीय कायपालिका—भारत मधु की कायपालिका मरिशात राष्ट्रपति में रिद्यत की गई है। व राष्ट्रों की विधान सभाओं तथा मरशात मरशात मरशात में निर्वाचित सदस्यों द्वारा परोक्षत निर्वाचित जाता है। मरिशात का राष्ट्रपति का नियुक्त कायपालिका विधायिनी वितीय और कायपालिका मरिशात प्रमाण की है। अरिन साधारणतः राष्ट्रपति इन मरिशातों का प्रयोग मरिशात में म प्रणा पर करता है। व अधिमभारि शासन है और उसकी स्थिति रिद्यत शासन के समान है। कुछ अधिमभारि मरिशातों का कहना है कि चूनि राष्ट्रपति मधु मामला में मरिशातों की मरशातों को मानन के लिए कानून बाध्य नहीं है मरशात वह कतिपय परिस्थितियों में वास्तविक शासन अध्याय तानाशाह बन सकता है।

लेकिन सधुवीय शासन प्रणाली में जिसे कि भारत में अध्यायता गया है वास्तविक कायपालिका मरिशात परिषद होती है। मरिशात परिषद सामूहिक रूप से लोकमता के प्रति उत्तरदायी होती है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाता है और दूसरे मन्त्री प्रधानमन्त्री की मरशात पर राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। मरिशात परिषद प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में विधान मण्डल के साथ सहयोगपूर्वक काय करती है।

सधीय विधान मण्डल—सधीय विधान मण्डल अध्याय सासद रिद्यतनात्मक है। उच्च सदन (राज्य परिषद्) राज्यो की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा परोक्षत निर्वाचित होता है। उसकी अधिकतम सदस्य-संख्या २५० है १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित होते हैं। लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या ५०० थी परन्तु अब ५२० कर दी गई है। इसके सदस्य वयस्क मताधिकार और सयुक्त निर्वाचक गणों के आधार पर जनता द्वारा सीधे निर्वाचित होते हैं। लोकसभा की साधारण कानावधि ५ वर्ष है। राज्य परिषद स्थायी सदन है। उसके सदस्य ६ वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं परन्तु तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष निवृत्त हो जाते हैं। सासद के दोनों सदन शक्तियो और प्रभाव की दृष्टि से समान नहीं हैं। वितीय मामलों में लोकसभा परमण्ड है अरिन अधु वितीय मामलों में दोनों सदन बराबर हैं।

संविधान संशोधन प्रक्रिया—भारत के संविधान में ३ प्रकार की संशोधन प्रक्रिया रखी गयी हैं (१) पार्लियामेंट के साधारण बहुमत द्वारा (२) $\frac{2}{3}$ बहुमत द्वारा (३) पार्लियामेंट के $\frac{2}{3}$ बहुमत तथा $\frac{1}{2}$ संघीय एकाई की स्वीकृति द्वारा। तीसरी पद्धति से राज्य का संविधान में महत्व बढ़ा दिया गया है। भारतीय संविधान में इस प्रकार ठोस व लचीलापन का सम्बन्ध है। अब तक १८ संशोधन संविधान में किये जा चुके हैं।

भारत में ससदीय जनतंत्र—भारत में ससनीय जनतंत्र सिद्ध १५ वर्ष से जागू किया जा रहा है। हमारे ससनीय जनतंत्र की प्रावहारिक सफलता में योग्य जन नेतृत्व ठोस जनमत तथा मजबूत विरोधी दल की कमियाँ हैं। इनकी सफलता के लिये भारत में जन शिक्षा, राजनैतिक जागृति तथा योग्य व ईमानदार पत्रकारिता व बौद्धिक युवों का निर्माण व विकास की आवश्यकता है।

संघीय न्यायपालिका—संविधान ने एक सर्वोच्च न्यायालय का उपबन्ध किया है। यह न्यायालय संघ का अन्तिम नियन्त्रक है। इसके साथ ही साथ यह देश का सर्वोच्च न्यायमण्डल भी है। यह भारत का मुख्य न्यायाधिशक्ति और ७ दूसरे न्यायाधीशों से मिलकर बनता है। वह प्रारम्भिक और अपील न्यायाधिकार का प्रयोग करता है। उसके अपील न्यायाधिकार में अधीनस्थ न्यायाधीशों और अपील न्यायाधीशों के मामलों में। तथ्य या कानून के किसी मूल्यपूर्ण प्रश्न पर राष्ट्रपति उनसे परामर्श भी ले सकता है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय संघ के सबसे अधिक शक्तिशाली निकायों में से है।

संविधान संशोधन प्रक्रिया—भारत के संविधान में ३ प्रकार की संशोधन प्रक्रिया रखी गयी हैं (१) पार्लियामेंट के साधारण बहुमत द्वारा (२) ३/४ बहुमत द्वारा (३) पार्लियामेंट के ३/४ बहुमत तथा ३/४ भागीय एकता की स्वीकृति द्वारा। तीसरी शक्ति से राज्या का संविधान में महत्व बना दिया गया है। भारतीय संविधान में इन प्रकार ठोस व लचीलापन का सम्बन्ध है। अब तक १८ संशोधन संविधान में किये जा चुके हैं।

भारत में ससदीय जनतंत्र—भारत में ससदीय जनतंत्र विद्यमान १५ वर्ष से जागू किया जा रहा है। हमारे ससदीय जनतंत्र की "शासनात्मक सफलता में योग्य जन नेतृत्व ठोस जनमत तथा मजबूत विरोधी दल की कनिर्घा है। इनकी सफलता के बिना भारत में जन शिक्षा, राजनतिक जागृति तथा योग्य व ईमानदार पत्रकारिता व बौद्धिक सुर्षों के निर्माण व विकास की आवश्यकता है।

सघीय न्यायपालिका—संविधान ने एक सर्वोच्च न्यायालय का उद्घाटन किया है। यह न्यायालय सभ का अन्तिम निचबल है। इनके साथ ही साथ बहु देश का सर्वोच्च न्यायमण्डल भी है। यह भारत के मुख्य न्यायाधिवक्ता और ७ दूसरे न्यायाधीशों से मिलकर बना है। यह प्रारम्भिक और अन्तर्गत क्षत्राधिकार का प्रयोग करता है। उसके अन्तर्गत क्षत्राधिकार में अधिनिक दायता और फौजदारी के मामल आते हैं। तथ्य या वास्तुन के किमी महत्वपूर्ण प्रदन पर राष्ट्रपति उनके परामश भी न सकता है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय सभार के सबसे अधिक शक्तिशाली निकायों में से है।

अध्याय १६

भारत का नया संविधान—क्रमशः (राज्य की सरकार)

भारत सभ के राज्य

भारत सभ के राज्य क्षत्र म राज्यो क राज्य क्षत्र समाविष्ट हैं। स्वतंत्रता क पश्चात् राजा का जो एकीकरण किया गया उत्तर परिणाम स्वरूप घटता स राज्य थ। अण्डमान निकोबार द्वीपों का पृथक् श्रमणो म रखा गया था। राज्यों को ४ श्रेणियां थ बांटा गया था तिनका उत्तम सविधान की प्रथम अनुसूची में मितता है। सन १९५३ में आंध्रप्रदेश का निर्माण हुआ। इस क पश्चात् राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों पर संविधान म सानवों समाधान किया गया। वसमान भारत सभ म दो प्रकार क राज्य हैं। एक वो है जो सभ का स्वतंत्र इकाया हैं और दूसरे थ प्रशासित। य सभ निम्न तानिका म लिखाया गया है।

संघीय इकाया

- १ आंध्रप्रदेश
- २ आसाम
- ३ उडिसा
- ४ पंजाब
- ५ पश्चिमी बंगाल
- ६ बिहार
- ७ मद्रास
- ८ मध्यप्रदेश
- ९ महाराष्ट्र
- १० उत्तरप्रदेश
- ११ गुजरात
- १२ मसूर
- १३ राजस्थान
- १४ केरल
- १५ जम्मू कश्मीर
- १६ नागालैण्ड

केन्द्र प्रशासित

- १ देहला
- २ हिमाचल प्रदेश
- ३ मणिपुर
- ४ त्रिपुरा
- ५ गोवा डामन ड्यू
- ६ पांडिचेरी

नए संविधान के अधीन राज्यों का पद—नया संविधान भारत को एक सघ बनाता है। फलतः राज्य जो सघ के अंग बन जायेंगे एक एक स्वायत्त स्टेटस का उपभोग करते हैं। संविधान सघ और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट वितरण करता है। साधारण परिस्थितियों में कतिपय विषय राज्यों के अंगवर्ती प्राधिकार में आते हैं। लेकिन संविधान में एक कुछ उपबन्ध विद्यमान है जो सघ सरकार को उन विषयों पर भी जो कि राज्य सूची में प्रमाणित हैं कानून बनाने और नियंत्रण रखने की शक्ति प्रदान करता है। यह प्रबंध भारत की शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए किया गया है। इसलिए नया संविधान केंद्र और सघों के बीच समझौता है।

१३० सघ तथा राज्यों के सम्बन्ध

शक्तियों का वितरण—संविधान व्यवस्थापन के विभिन्न विषयों का तान सूचियों—संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची—में बाँटा है। ये सूचियाँ सातवीं अनुसूची में दी हुई हैं। सघ सूची में वे विषय हैं जिनके ऊपर सघ (केंद्र) सरकार को अंगवर्ती प्राधिकार प्राप्त है और जिनके ऊपर वह कानून बना सकती है।

(१) सघ सूची—संघ सूची में ६७ विषय हैं। प्रारिक्षा शिक्षा, मानव नागरिकता, दीयकरण तथा अन्य दीय रतव राष्ट्रीय राज्य पय चनाय टकण और विधायक विधायी विनियम भारत का रित्रय वर राबधर ववत वैक विधी वाणिज्य बीमा प्राणि विषय संघ सूची में सम्मिलित हैं।

(२) राज्य सूची—राज्य सूची में सावजनिक प्रस्था पुत्रिज जन स्थानीय शासन सावजनिक स्वारथ्य और स्वच्छता शिक्षा टा माना उन उद्यान और राज्य का नाश ववाए आदि क सहित ६६ विषय हैं। संविधान में उल्लिखित कवन उन परिस्थितियों का धोरण जबकि संघ सरकार उन विषयों का धरन हाय म न सक्ता है। राज्य सरकार का उनके ऊपर अंगवर्ती व्यवस्थात्मक तथा प्रामानिक शशाधिकार प्राप्त है।

(३) समवर्ती सूची—समवर्ती सूची कोजारी कायवाहा विवाह और तान संविधाए दीवाना कायवाहा श्रमिक सघ श्रमिक क दाल मू प निय तण कारमान, आधिक और सामाजिक योत्रना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक ताना, विदुत समाचार पत्र पुत्रके और मुन्हासय प्राणि को मिनाकर ४७ विषय प्रमाणित करती है। समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के ऊपर कानून बनाने के लिए सघ सरकार और राज्यों का सरकार—ना ही सक्षम हैं। लेकिन उनमें एक बात है और वह यह कि यदि शिक्षा समवर्ती विषय पर राज्य के विधान मण्डल द्वारा निमित्त कानून उद्यो विषय पर संघ द्वारा निमित्त कानून के प्रतिद्वन्द्व पड़ता है तो संघ द्वारा निमित्त कानून अमिनायी हागा तथा राज्य के विधान मण्डल द्वारा निमित्त कानून विरोध की भाषा तक मून्य हागा।

अप्रतिष्ठ शक्तियाँ—य तीनों सूचियों बड़ी विचित्र हैं। लेकिन हो गया है कि प्रविष्ट में एक ही भी विषय का पता पड़े जो कि नाम में ही भी सूची में सम्मिलित न किया गया हो। परिधान व उनका वस्तुकार ऐसे तब विचित्र मध्य सरकार के धनाधिकार में आवें। दूसरे शर्तों में प्रविष्ट शक्तियाँ तब में निहित की गई हैं।

यह स्पष्ट है कि यह विधान के अधीन दिए गए शक्तियों के वितरण का उद्देश्य केवल को अत्यन्त शक्तिशाली बनाना है। प्रविष्ट शक्तियों को केवल रूपों में सौंप देने का भी यही उद्देश्य है। प्रविष्ट और स्थिररूप जसे टिपण सभों में प्रविष्ट शक्तियाँ प्रथमो एकाँ में निहित की गई हैं। भारत में उन शक्तियों में जो जो सभ सरकार को राज्य व धनाधिकार का प्रतिफल करने और राज्य सूची में प्रगणित विषयों पर कानून बनाने की शक्ति देते हैं केवल को अधिकाधिक सत्तन बनाने की भांति प्रयत्न होता है। तब और राज्य के विषयी प्रमाणिक और विलीय शक्तियों का पदनाम तब कथन ही सत्तन को स्पष्ट रूप से प्रकट करना है।

विषयी शक्तियाँ—जहाँ तब सभ और राज्य व विषयी शक्तियों का प्रयत्न है तब और राज्य के बीच शक्तियों के उक्त विवरण से यह प्रकट है कि सभ की सरकार और राज्य की सरकारें अलग अलग क्षेत्र में वस्तु बुद्ध स्वतन्त्र हैं। शक्ति यहाँ पर स्पष्ट है कि जहाँ राज्य का विधान मण्डल सभिय सभ के धनाधिकार का ही भी नो दगा म प्रतिफलन नो कर सकता सभिय सभद निम्न दशाओं में राज्य सूची में प्रगणित विषयों पर कानून बना सकती है—(१) यदि राज्य परिषद दो तिहाई बहुमत से इस प्राश्न का एक प्रस्ताव पास कर दे कि अमुक विषय राष्ट्रीय महत्व का है तो सभद उस विषय पर कानून बना सकती है। (अनुच्छेद २६८)। (२) आपात की उद्वोषणा के प्रयत्न काल में सभ राज्य सूची में प्रगणित समस्त विषयों पर कानून बना सकती है। (अनुच्छेद २५०)। (३) यदि दो या दो से अधिक राज्य सभद से इस बात की प्राश्ना करें कि यह किसी राज्य विषय पर उनके लिए कानून बना दे तो सभद उस विषय पर कानून बनाने के लिए सक्षम है। (अनुच्छेद २५२)। (४) सभद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई संधि या करार के परिपालन के लिए राज्य विधान मण्डल के धनाधिकार में आने वाले विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। (अनुच्छेद २५३)। (५) यदि सभद द्वारा निर्मित कानूनों और शर्तों के विधान मण्डलो द्वारा निर्मित कानूनों में असंगति हो तो सभद द्वारा निर्मित कानून चाहे वह राज्य के विधान मण्डलो द्वारा निर्मित कानूनों के पक्ष या पक्षे पास हुआ हो, अमानवी होगा और शर्तों के विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानून विरोध की मात्रा तक शून्य होने। (अनुच्छेद २५४)। (६) शर्तों में बधानिक तंत्र के विकल हो जाने की अवस्था में राष्ट्रपति राज्य के विधान मण्डल के अधिकार अपने हाथों में लेकर सभद को दे सकता है और उस दशा में उसके सब अधिकारों का प्रयोग

समद करेगी। (धनुच्छेद २५६)। (७) राज्य विधान मण्डल द्वारा पास किए गए कुछ विधायक ऐसे हैं जिन्हें राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोक सकता है और जो राष्ट्रपति की स्वीकृति पाने पर ही कानून बन सकते हैं। धनुच्छेद (२०१)।

प्रशासनिक सम्बन्ध—सर्विधान न यह व्यवस्था की है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा जिससे सभ द्वारा निमित्त विधियों का तथा किसी वतमान विधियों का जो उस राज्य में लागू हैं पालन मुनिश्चित रहे। सभ का अधिकार है कि यह इन सम्बन्ध में राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सकता है। (धनुच्छेद २५६)। इसका साथ ही साथ सभ राष्ट्रीय महत्व के यातायात के साधना के निर्माण तथा उनकी रक्षा के लिए राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सकेगा। इन निर्देशों के पालन में राज्यों को जो अनिश्चित व्यय करना पड़ेगा, उसे सभ सरकार वहन करेगी। (धनुच्छेद २५७)। राष्ट्रपति राज्य सरकार की अनुमति से राज्य के न्यायपालिकाओं को सैनिक सरकार के किसी भी काम को करने का आदेश दे सकता है। (धनुच्छेद २५८)। सभ को अन्तर्राष्ट्रियक शक्तियों तथा न्याय की पाठियों के सम्बन्ध में उन्हे वात नगदों के निगरान के लिए कानून बनाने का अधिकार है। (धनुच्छेद २५९)। यदि किसी राज्य का मध्य घणना राज्या और सभ के मध्य एक विषय का उत्तर काई विधान उठ जिनमें सामान्य हिन है तो राष्ट्रपति उसकी परीक्षा करने तथा उस पर निर्धारित करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रियक परिषद का निर्माण कर सकता है। (धनुच्छेद २६३)। देशी राज्यों के पाम सर्विधान प्रारम्भ होने से पूर्व ता बनाए था य उन्हे पाय उस समय तक बना रहती जब तक सभ कानून द्वारा उनकी कार्य व्यवस्था न करे। एसी सभी बनाए भारतीय सभ का अंग समझे जाएगी व उन पर सभ सरकार का नियंत्रण रहेगा। (धनुच्छेद २६४)। यातायात की उद्घाटना के प्रवर्तनकाल में राज्यों की स्वायत्तता स्थगित हो जाएगी और सभ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार द्वितीय राज्य को इस विषय में निर्देश देना होगा कि यह अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस शक्ति से प्रयोग करे। (धनुच्छेद २६३)। सभ और राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि स्वायत्त राज्यों को अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार प्राप्त है, फिर भी सभ सरकार उन पर प्रभुत्व हस्तगत कर सकती है। इससे प्रतिरिक्त द्वितीय शक्ति के राज्यों पर तो सभ सरकार का सर्विधान प्रारम्भ होने के दस वर्ष बाद तक बाध नियंत्रण रहेगा।

वित्तीय सम्बन्ध—सभ सर्विधान ने सभ और राज्यों के बीच आर्थिक शक्तों का बंटवारा बहुत कुछ १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के धनुषार हा किया है। कुछ कर तो पूरा रूप से सभ के हार्पा में हैं और कुछ राज्यों के। कुछ कर सभ लगाता है लेकिन राज्य एकत्रित करता है। कुछ कर ऐसे हैं जिन्हें सभ लगाता और संग्रहित करता है परन्तु राज्यों को देता है। निम्नलिखित कर पूरा रूप से सभ के हार्पा में हैं—शुल्क का धारकर घाट घाट पर कर, सीमा शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात

शुल्क भी है भारत में निमित्त या उत्पादित तम्बाकू तथा मानव उपनाग के मद्य सारिक पाना, मफीम, माग और मद्य पानक साँ या ती धोषधिया तथा खापका का छोड़कर किन्तु एसा धोषधीय और प्रसाधन सामग्री का धतगा करक जिनमें मद्य सार का कोई पदाथ म् तविष्ट हो, मद्य सब वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क निगमदर व्यक्तियों या समवायों का प्राप्ति म् स ट्टि भूमि का छोड़कर उसक मूलधन मूद्र पर कर समवायों व मूलधन पर कर, कृषि भूमि का धाकर मद्य सम्पत्ति क उत्तराधिकार क बारे म् शुल्क रत्न या समुद्र या वायुयात्रा से लजान वाला वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर रत्न क जन माड़े और वस्तु माड़े पर कर मुद्राक गुल्क का छोड़कर श्रष्टि चत्वर और पादा बाजार के क्षी । पर कर जिनमद्य पत्रा पत्रा वचन पत्रा यहन-पत्रा, प्रत्यय पत्रो धीमान-पत्रा पत्रा व हस्तांतरण ऋण-पत्रा प्रति-निधिया और प्राप्तिथो क सम्पत्थ म लगेन यात्र मुद्राक गुल्क को दर समाचार पत्रा क क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होन बाल विनापनों पर कर । (सद्य सूची ८२ १२) ।

निम्नलिखित कर पूण रूप से रा या को सरकारा क माय क साउ है—ट्टि माय पर कर कृषि भूमि क उत्तराधिकार व विषय म् शुल्क कृषि भूमि क विषय म् सम्पत्ति शुल्क भूमि और भवनों पर कर सस स विधि द्वारा सानज विरासत क सम्ब व म् उगाई गई परिक्षामात्रो के अधीन रूठ हुए सानज अधिकार पर कर मफीम और माग पर कर विद्युत क उपनाग या विद्यम पर कर समाचार पत्रा को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर समाचार पत्रो में प्रकाशित होन बाल विनापनों को छोड़कर अन्य विनापनों पर कर भादि भादि (राय-सूची ४६-६६) ।

निम्नलिखित शुल्क और कर भारत सरकार द्वारा सरोपित व सप्रहीत किय जायगे किन्तु राज्यों का शोप दिय जायग—कृषि भूमि स अन्य सम्पत्ति क उत्तराधिकार विषयक शुल्क कृषि भूमि स अन्य सम्पत्ति विषयक सम्पत्ति शुल्क रत्न समुद्र या वायु से वाहित वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर रत्न माडो और वस्तु भागी पर कर श्रष्टि चत्वरों और वापदा बाजारों के क्षी पर मुद्राक शुल्क स मद्य कर समाचार पत्रो क क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विनापनों पर कर । (मनु० २६१) ।

सविधान ने निश्चय किया है कि कृषि माय क प्रतिरिक्त अन्य माय पर करों को भारत सरकार द्वारा उदग्रहीत और सप्रहीत किया जायगा तथा सद्य धोर रायों क बीच में वितरित कर दिया जायगा । (मनु० २७०) ।

मनुच्छेद २६१ और २७० में किसी बात के होते हुए भी सद्य उन मनुच्छेदों में निर्दिष्ट शुल्कों या करों में से किसी का भी किसी समय सद्य के प्रयोजनों के लिए अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकेंगे तथा ऐसे किसी अधिभार के समस्त भागमें भारत का सचिष्ठ निधि के भाग होमे । (मनु० २७१) ।

सद्य सूची में बलिष्ठ धोषधीय तथा प्रसाधन सामग्री पर उत्पादन शुल्क से अन्य सद्य उत्पादन शुल्क भारत सरकार द्वारा उदग्रहीत और सप्रहीत किय जायगे किन्तु यदि

संसद विधि द्वारा यह उपबोधित करे तो शुल्क लगने वाली विधि जिन राज्यों को लागू होती हो उन राज्यों को भारत की सचिव निधि में से उस शुल्क के शुद्ध प्रागमों के पूरा प्रयत्न किसी भाग के बराबर राशि दी जाएगी और वे राशियाँ उन राज्यों के बीच विधि द्वारा मूल-वृद्ध वितरण-सिद्धान्तों के अनुसार वितरित की जाएंगी। (धनु० २७२)।

भासाम उड़ीसा विहार और पश्चिमी बंगाल पटसन और पटसन से बनी वस्तुओं पर नियात शुल्क का स्थान में सहायक अनुदान प्राप्त करेगी। (धनु० २७३)।

एसी राशियाँ जो संसद विधि द्वारा उपबोधित करे उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में प्रतिवष भारत की सचिव निधि पर भारित होंगी। जिन राज्यों के सम्बन्ध में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है तथा निम्न निम्न राज्यों के लिए निम्न राशियाँ नियत की जा सकेंगी। इसका प्रतिरिक्त किसी राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की सचिव निधि में से वही मूल तथा आवश्यक राशियाँ दी जा सकेंगी जहाँ कि उस राज्य को उन विकास या न्यायों के खर्चों के उठान में समय बनाने के लिए आवश्यक हो जो उस राज्य के प्रत्यक्ष अनुसूचित भादिम जातियों के कल्याण की उत्पत्ति करने के प्रयोजन के लिए प्रयत्न उस राज्य के अलग-अलग अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उत्पन्न करने के प्रयोजन के लिए उस राज्य ने भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली हो। (धनु० २७५)।

किसी राज्य के विधान मण्डल की ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि जो उस राज्य या किसी नगरपालिका जिला मंडली स्थानीय मंडली प्रयत्न उद्यम अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, भाजीविकारों या नौकरियों के बारे में लागू होती है इस आधार पर प्रमान्य न होगी कि वह प्रायकर है। राज्य को प्रयत्न इसमें की किसी एक नगर पालिका जिला-मण्डली स्थानीय मण्डली या प्रयत्नस्थानीय प्राधिकार को किसी एक व्यक्ति के बारे में वृत्तियों, व्यापारों, भाजीविकारों और नौकरियों पर करों द्वारा देय समस्त राशि दी थी पचास रुपए प्रतिवष का अधिक न होगी। इस सम्बन्ध में विधियाँ बनाने की राज्य के विधान मण्डल की शक्ति का यह प्रयत्न नहीं होगा कि वृत्तियों, व्यापारों, भाजीविकारों और नौकरियों से प्रोद्भूत या उत्पन्न प्राय पर करों के विषय में विधियाँ बनाने की संसद को शक्ति किसी प्रकार सीमित की गई है। (धनु० २७६)।

राज्य की कार्यपालिका

१३१ राज्यपाल

राज्यपाल की नियुक्ति, पदावधि, शर्तें और उपसम्भियाँ—नए विधान के अधीन भाग (क) राज्य की कार्यपालिका-कथित राजराज में निर्दिष्ट की

राज्यपाल भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और उसके प्रसार पत्र पर धारण करता है। इस उम्र के अधीन रहते हुए उसकी पदावधि पाँच वर्ष होगी। कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होने के लिए उस समय तक पात्र नहीं होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और ३५ वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो। अपनी पदावधि में उसे सामान्य किसी अन्य पद को धारण करने से बर्हि कर दिया जाता है। जब तक वह राज्यपाल का पद धारण करता है उमर के लिए वह आवश्यक है कि वह संसद के किसी सदन का अध्यक्ष राज्य के किसी विधान मण्डल का सदस्य न हो। जब तक संसद इस सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थापित करे राज्यपाल को बिना किराया दिए पत्राचार के उपयोग तथा धरत पद के कर्तव्यों का सुविधा और प्रतिष्ठा के साथ और नियुक्त करने के लिए यात्रा व अन्य सम्बन्धी दूसरे भत्तों के प्रस्ताव ५,५०० रु० प्रति मास वेतन का हक होगा।

राज्यपाल की शक्तियाँ—संविधान राज्यपाल को कई शक्तियाँ प्रदान करता है। इन शक्तियों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। (क) कार्यपालिका (ख) विधायित्व (ग) वित्तीय और (घ) याचिका। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका शक्ति का मन्तार है और वह इस शक्ति का माता रज्य और या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा संविधान के अनुसार प्रयोग करता है।

(क) कार्यपालिका शक्तियाँ—राज्यपाल की कार्यपालिका शक्तियाँ उन सब विषयों के प्रशासन से सम्बन्ध रखती हैं जो राज्य सूची में प्रगणित हैं और जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए राज्य का विधान मण्डल सक्षम है। समवर्ती सूची में प्रगणित मामलों के सम्बन्ध में राज्यपाल की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियों के अधीन हैं।

(ख) विधायित्व शक्तियाँ—अपनी विधायित्व शक्तियों के अन्तर्गत राज्यपाल राज्य के विधान मण्डल को ग्राह्य कर सकता है सदन या सदनों का सत्रावसान कर सकता

१ यद्यपि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित होता है लेकिन यह नहीं समझना चाहिए कि वह राज्य मन्त्रालय के ऊपर लाद दिया जाएगा। १९४७ और १९४९ के बीच परम्परा यही रही है कि राष्ट्रपति राज्यपाल को प्रतिम रूप से चुनने के पूर्व सम्बद्ध राज्य के मुख्य मन्त्री से परामर्श कर नेता है। नए संविधान के अधीन इस परम्परा का चालू रहना अनिवार्य है। के० सधानम— दी वास्टीट्यूशन प्राक्क इण्डिया पृ० १६२।

२ वर्तमान काल में यू० पी० का राज्यपाल अपने वेतन के प्रस्ताव निम्न भत्त प्राप्त करता है। अन्य सम्बन्धी भत्त १६००० रु० (वार्षिक) सैनिक-मन्त्री और अधिकतर कर्मचारी मण्डल १६,००० रु० (वार्षिक) पदावधि की सामग्री और सजावट १५००० रु० (वार्षिक) सजावट का नया सामान ९३००० रु० (पाच वर्षों में) सुसज्जा का भत्ता (नियुक्ति पर) १६००० रु०। मनोरंजन भत्त ५००० रु० (वार्षिक)।

हैं और विधान-सभा का विघटन कर सकता है। यदि राज्य का विधान मण्डल द्विसद नात्मक है तो वह विधान-परिषद् के लिए कुछ सदस्यों को नाम निर्दिष्ट भी कर सकता है। वह राज्य विधान मण्डल के किसी सदन को भ्रष्टाचार राज्य परिषद् के साथ समवेत दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है। राज्य के विधान मण्डल के प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में राज्य विधान-सभा को भ्रष्टाचार राज्य में विधान परिषद् होने की व्यवस्था में समवेत हुए दोनों सत्रों को सम्बोधित कर सकता है। राज्यपाल या वह सम्बोधन ब्रिटिश समद में सम्राट द्वारा दिए गए भाषण का तत्स्थानी है। राज्य के विधान मण्डल द्वारा पास किया गया कोई भी विधेयक उम समय तक बिल नहीं बनता जब तक कि उस पर राज्यपाल की अनुमति प्राप्त न हो जाए। राज्यपाल यदि चाहे तो विधेयक पर अपनी अनुमति दे सकता है चाहे तो उसे रोक सकता है और चाहे तो उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर सकता है। राज्यपाल किसी विधेयक को यदि वह घन विधेयक नहीं है तो पुनर्विचार के लिए राज्य के विधान मण्डल में पास वापस भेज सकता है। यदि विधेयक द्वारा पास कर दिया जाता है तो राज्यपाल उस पर अपनी अनुमति नहीं रोक सकता। कोई भी घन विधेयक राज्यपाल की सिफारिश के बिना विधान सभा में पुनः स्थापित नहीं किया जा सकता।

(5) राज्यपाल की प्राध्यादेश निकालने की शक्ति—संविधान ने राज्य के विधान मण्डल के विश्रान्तिकाल में राज्यपाल को प्राध्यादेश निकालने की शक्ति प्रदान की है। राज्यपाल द्वारा निकाले गए प्राध्यादेश का वही बर हाना है जो राज्य के विधान मण्डल के अधिनियम का होता है लेकिन वह विधान मण्डल के पुनः समवेत होने से एक सप्ताह की समाप्ति पर भ्रष्टाचार उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व विधान मण्डल द्वारा उसके निरनुमोदन का प्रस्ताव पास किए जाने पर प्रवर्तन में नहीं रहता। कुछ व्यवस्थाओं में राज्यपाल राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना प्राध्यादेश नहीं निकाल सकता।

(6) वित्तीय शक्तियाँ—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारम्भिक होने से पूर्व राज्यपाल (मंत्रियों के द्वारा) राज्य के विधान मण्डल के समक्ष वार्षिक वित्त विवरण रखता है। इसमें उस राज्य की उस वर्ष के लिए प्राकल्पित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण होता है। किसी भी अनुमान मांग (प्रभात राज्य के राजस्व के किसी भाग को रक्ष करने की शक्ति की मांग) भ्रष्टाचार करारों के प्रस्ताव को सिवाय इसके कि राज्यपाल के नाम में करत हुए मंत्री उपस्थित करें, अन्य किसी प्रकार से उपस्थित नहीं किया जा सकता।

(7) न्यायिक शक्तियाँ और उन्मुक्तियाँ—राज्यपाल को कतिपय न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। वह जिला-न्यायाधीशों और दूसरे न्यायिक पदाधिकारियों की नियुक्तियों पर स्वाध्यायी और परोक्षता का नियंत्रण कर सकता है। उसे बिच-न्यायालयों द्वारा सिद्ध होय शक्तियों को समाप्त देने और उनका दायित्व को कम करने की भी शक्ति प्राप्त है। राज्यपाल अपनी पदाधिकार में तमाम फौजदारी दीवानी और प्रथमियों से

व्यक्तिगत उम्भुविज का उभोग करता है। दूसरे शर्तों में देश के निष्ठी भी म्यामापन में किसी भी प्रपराय के लिए उन पर मुहडमा नहीं पल।या जा सकता।

१३२ राज्यपाल की शक्तियों का किस प्रकार प्रयोग होता है ?

साधारणतः जते अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर साधारण करना पड़ता है— जिस प्रकार कि भारत के राष्ट्रपति के सम्बन्ध में सिद्धांत और व्यवहार के बीच स्पष्ट धारण है, वही स्थिति राज्य के राज्यपाल की है। सिद्धांततः राज्यपाल तमाम कार्य-पालिका शक्तियों का पुत्र है लेकिन व्यवहारतः यह एक बधानिक शासक है और उसे सामान्यतः अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर साधारण करना पड़ता है। सविधान का कथन है "दिन बातों में इन सविधान द्वारा या इनके प्रभाव न राज्यपाल से यह प्रपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों प्रपरा उनमें से किसी को स्वविकर से करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का निबन्धन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी। [अनुच्छेद १६३ (१)]

साधारण परिस्थितियों के अधीन योद्धे ही स्वविकर शक्तियाँ—यह एक महत्वपूर्ण उपाय है। भारत के राष्ट्रपति के सम्बन्ध में इसका तत्स्थानी कोई उपाय नहीं है। लेकिन साधारण परिस्थितियों में सविधान यह छाड़कर कि प्रताम का राज्यपाल कतिपय आदिम जाति जनधोत्रों और सीमान्त भूखण्डों के प्रशासन के सम्बन्ध में स्वविकर से कार्य कर सकता है। राज्यपाल को योद्धे ही प्रतिष्ठा देता है। यह एसा इसलिए है क्योंकि उभे भारत के राष्ट्रपति के प्रतिकर्ता के रूप में इन क्षेत्रों और भूखण्डों का प्रशासन करना पड़ता है। राज्य का राज्यपाल मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने में विधान सभा का विघटन करने में और राज्य में बधानिक तन्त्र की विकरना का राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देने में स्वविकर से कार्य कर सकता है। लेकिन इनमें से किसी भी मामले में सविधान को वास्तविक क्रियाविति में राज्यपाल की अपनी व्यक्तिगत हवि प्रवृत्ति का कोई स्थान न होगा।

साधारणतः राज्यपाल को बधानिक शासक होना चाहिए—इस प्रकार साधारण परिस्थितियों में राज्यपाल से यह प्रपेक्षा की जाती है कि वह प्रायः समस्त मामलों में अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर कार्य करेगा प्रपरा शर्तों में राज्य-प्रशासन का बधानिक या छवजमान शासक होगा। यह ठीक है कि सविधान ने इस धारण को स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि राज्यपाल के लिए अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा स्विकार करना अनिवार्य है। लेकिन मन्त्रण प्रणाली के अधीन, जिसे कि भारत में केन्द्रीय और राज्य-दोनों स्थानों पर प्रयोग किया गया है यह प्रपरिहाय है कि केवल कुछ उल्लिखित प्रपराओं को छोड़कर राज्यपाल अपने मन्त्रियों की धो विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं मन्त्रणा के अनुसार कार्य करे। उसका वास्तविक कार्य मन्त्रणा देना चेष्टा करने देना और फिर भूक्त जाना है। राज्यपाल के नाम से जो भी कार्य किया जाता है उसका उत्तरदायित्व मन्त्रियों के

सिर पड़ता है। इसलिए वह सबका स्वामाधिक ही है कि जो उत्तरदायित्व को बहन करत हैं व शक्ति का भी प्रयोग करें। चूँकि राज्यपाल का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, इसलिए वह किसी शक्ति का प्रयोग नहीं करता। हमारे सचिवायन निर्माताओं का उद्देश्य राज्यपाल को ध्वजमान शासक बनाना था यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उन्होंने जनता के प्रत्यक्ष मतदान द्वारा उसके निर्वाचन का प्रस्ताव पसवीकार कर दिया और इसके स्थान पर वह निश्चित किया कि वह राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाएगा। यह सोचा गया कि 'जनता द्वारा निर्वाचित राज्यपाल और विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मुख्य-मन्त्री का एक साथ होना तनाव और उसके फलस्वरूप प्रशासन में दुरतता उत्पन्न कर सकता है।'^१

ये परिस्थितियाँ जिनके अधीन राज्यपाल अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर आचरण करने के लिए विवश न होगा—लेकिन ऐसी कतिपय उल्लिखित परिस्थितियाँ हैं जिनके अधीन राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति के निर्देशन में भा जाएगा और उस सीमा तक अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होगा। उदाहरणार्थ यदि राष्ट्रपति भाषातः की उद्घोषणा निकाल देता है तो राज्यपाल राष्ट्रपति का प्रतिकर्ता बन जाता है और अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर काय न करके उसके अनुदेशों के अधीन काय करता है। यही प्रभाव उस समय होगा जबकि अनुच्छेद ३५६ के अधीन उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति इस बात की उद्घोषणा कर देता है कि राज्य का शासन सचिवायन के उपर्या क अनुसार नहीं चलाया जा सकता और उच्च-शासालय के कार्यों का छाडकर राज्य-सरकार के समस्त या कोई काय अपने हाथ में ले लेता है। इस प्रकार की उद्घोषणा के फलस्वरूप राज्य की मन्त्रि-परिषद् का विघटन कर दिया जाएगा और भारत के राष्ट्रपति को धार से राज्य का शासन सीधे राज्यपाल नरेगा। यह एक भनाधारण शक्ति है और सचिवायन समा में उसकी कट्टर धारणा हुई थी। धारणा का कथन था कि यह तो १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के दुष्टता पूरा विभाग ६३ का पुनराधिनियमन है और इसलिए साम्राज्यवादी मन्त्री का एक प्रभाव है। सचिवायन के भाषात-उपार्यों के फलस्वरूप राज्य को स्वायत्तता स्थगित हो सकती है और राज्य सरकार पस्थायी कर से सय सरकार में विलय हो सकती है। दूसरे स्थानों में सचिवायन राज्यों में पूरा उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं करता।

१३२ मन्त्र-परिषद्

नियुक्त प्रक्रिया—सचिवायन ने उक्त किया है कि जिन बातों में सचिवायन द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह धारणा की जाती है कि वह अपने धर्या उनमें से किसी को स्वविक्र से करे उन बातों को छाडकर राज्यपाल की धरने धर्यों का निबहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी। मन्त्रि-

परिषद् को नियुक्ति के लिए निम्न प्रतिमा निर्धारित की गई है। राज्यपाल मुख्य मंत्री को नियुक्ति करता है। मुख्यमंत्री को नियुक्ति करते समय राज्यपाल को इन बात का ध्यान रखना पड़ता है कि इस व्यक्ति को राज्य को विधान सभा में स्थायी बहुमत तो प्राप्त है न? दूसरे मंत्रियों को नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री की मंत्रालय करता है। समस्त मंत्रियों के लिए यह धारणा है कि वे विधान मण्डल के सदस्य हैं। ऐसा कोई व्यक्ति जो राज्य के विधान मण्डल का सदस्य न हो मंत्री नियुक्ति किया जा सकता है परंतु वह छ महीने की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहता यदि वह इसी वातावरण में राज्य के विधान मण्डल के लिए निर्धारित नहीं हो जाता। मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण राज्यपाल मुख्यमंत्री का मन्त्रालय करता है।

मंत्रि-परिषद् और राज्यपाल के सम्बन्ध—राज्य की वास्तविक राजनीतिक मंत्रि परिषद् है। यद्यपि प्रशासन का यपाल के नाम में संचालित होता है किन्तु वास्तविक नियंत्रण मंत्रियों द्वारा किया जाता है। राज्य के मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों के प्रशासन से सम्बद्ध मंत्रि परिषद् के निर्णयों का व्यवस्थित प्रस्तावों को तथा एसी सूचना को जो राज्यपाल को राज्यपाल के पास पहुंचाना। यदि किसी मामले का निर्णय किसी व्यक्तिगत मंत्री के द्वारा किया गया है तो राज्यपाल इस बात की मांग कर सकता है कि वह मामला समग्र परिषद् के सम्मुख उपस्थित किया जाए। इस तरह राज्यपाल का यह अधिकार है कि उस सब प्रकार की सूचना मिलती रहे। मंत्रियों द्वारा विचारित किसी कार्यक्रम के सम्बन्ध में उद्घोषणा बनी तथा मंत्रालय देकर राज्यपाल उनके मांग दशक और मंत्रि के रूप में भी कार्य कर सकता है। लेकिन जहाँ मंत्रियों ने एक बार कितनी बात का निश्चय कर लिया राज्यपाल केवल उन घोड़े से प्रपवादों को छोड़कर जिनका हम पहले ही बखुन कर चुके हैं उनके निर्णयों को मानने के लिए बाध्य है। संविधान का कहना है कि मंत्री राज्यपाल के प्रसादपत्र प्राप्त होने पर धारण करेंगे। इस प्रकार सिद्धांततः राज्यपाल यदि चाहे तो वह किसी मंत्री को प्रपदस्थ कर सकता है किन्तु मंत्रि परिषद् का राज्य को विधान सभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व देखते हुए राज्यपाल सामान्यतः अपनी इस शक्ति का व्यवहार में प्रयोग नहीं करेगा।

मंत्रि परिषद् और राज्यपाल के सम्बन्ध—संविधान ने इस बात का उपबन्ध करके कि मंत्रि-परिषद् राज्य को विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी [अनुच्छेद १६४ (२)] राज्यपाल के साथ मंत्रि-परिषद् के सम्बन्ध का निरूपण किया है। इसका अभिप्राय यह है कि मंत्रि परिषद् उसी समय तक पदावृद्ध रह सकती है जब तक कि उसे विधान सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है मंत्री राज्यपाल के सदस्य हैं। उन्हें उसकी बैठकों में उपस्थित होने और उनकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है। वे सरकारी विधेयकों को पुनः स्थापित करते हैं और उन्हें पास करवाते हैं।

राज्य का विधान मण्डल मंत्रियों के काम का कई तरह से नियंत्रण और निरोधण कर सकता है। विधानमण्डल के सदस्य सूचना को प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न और पुरक प्रश्न पूछ सकते हैं। बजट वादविवादों के दौरान वे प्रशासन के विरुद्ध जनता की शिकायतों की धावाज को बुलन्द कर सकते हैं। वे प्रतिगम सावजनिक महत्व के मामलों पर 'कामरोसों' प्रस्ताव उपस्थित कर सकते हैं। इन प्रकार के प्रस्तावों द्वारा सरकार की नीतियों को प्रकाश में लाया जा सकता है और उसकी गलतियों की धारा-धारा की जा सकती है। अतः सामान्य प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के कारण विधान सभा किसी सरकारी विधेयक का पाम करना अस्वीकार करके किसी ऐसे सरकारी विधेयक को पास करके जिसका मंत्रियों ने विरोध किया हो, मंत्रियों द्वारा उपस्थित की गई बजट की मांगों में कमी करके अथवा मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का संघा प्रस्ताव पाम करके मंत्रिपरिषद् को पञ्चुत कर सकती है। बहने का मार यह है कि विधानमण्डल मंत्रियों को बना या विगाड़ सकता है। दूसरी धारा मंत्री भी विधान मण्डल का अगम नियंत्रण और प्रभाव में रह सकते हैं। वे बहुमत वाले दल के नेता होते हैं। इस बहुमत का समर्थन मिलने के कारण माधारणतः वे अगम विधायी प्रस्तावों को पाम करवाने में सफल हो जाते हैं। यदि दल का अनुशासन बँटोर है और उनका विधान मण्डल में पूरा बहुमत है तो मंत्रिपरिषद् विधान मण्डल को अगम हाथ की फटपुनती बना सकता है। विधान मण्डल पदावृद्ध दल को उसी समय अगम्य कर सकता है जबकि दल का बहुमत अदिव्य हो अथवा उसके सदस्यों में फूट हा।

राज्य का विधान मण्डल

१३३ एक सदनात्मक और द्विसदनात्मक राज्य विधान मण्डल

सविधान ने निश्चित किया है कि प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के प्रत्येक राज्य के लिए एक विधान मण्डल होगा जो राज्यपाल तथा विधान मण्डल के यथा स्थिति एक या दो सदनों से मिलकर बनेगा। पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, अन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश के राज्यों में दो सदन होंगे। भाग (क) के शेष राज्यों में एक सदनात्मक विधान मण्डल होगा। द्विसदनात्मक विधान मण्डल वाले राज्य में उच्च सदन विधान परिषद् और निम्न सदन विधान सभा के नाम से प्रख्यात होगा। यदि राज्य का विधान मण्डल एक सदनात्मक है तो वह विधान सभा कहलाएगा। राज्यों को द्विसदनात्मक विधान मण्डल देने के प्रश्न पर सविधान सभा में खूब जोरदार बहस हुई थी। अतः किसी राज्य में द्विसदनात्मक विधानमण्डल हो या न हो इस बात का निश्चय उस राज्य के प्रतिनिधियों के मतानुसार किया गया। तीन राज्यों—आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा ने द्वितीय सदन का समर्थन नहीं किया। इसके विपरीत भाग (क) के शेष छ राज्यों ने द्वितीय सदन का समर्थन किया।

निर्वाचित होगा, (ख) द्वादशवां एसे व्यक्तिओं द्वारा निर्वाचित होगा जो किसी विश्व विद्यालय के कम से कम तीन वर्ष से स्नातक हैं (ग) द्वादशवां एसे व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित होगा जो राज्य के भीतर माध्यमिक पाठशालाओं से प्रतिष्ठित स्तर की शिक्षा सस्थाओं में पढ़ाने के काम में कम से कम तीन वर्ष से मग हुए हैं (घ) तृतीयवां राज्य की विधान सभा के सभ्यता द्वारा एसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होगा जो सभा के सदस्य नहीं हैं और (ङ) शेष सभ्यता राज्यपाल द्वारा उन व्यक्तियों में से नाम निर्दिष्ट किए जायें जिन्हें साहित्य विज्ञान कला सञ्चारी या सेवा और सामाजिक सेवा के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या ब्यावहारिक अनुभव है। विधान परिषद के लिए तमाम निर्वाचन एवम सञ्चमण्य मत के द्वारा सानुगत प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार होगा।

सदस्यों की प्रस्तावें—विधान परिषद के लिए निर्वाचन में सजे होने वाले व्यक्ति में निम्न प्रस्तावना का हाना यावश्यक है—(क) उसे भारत का नागरिक जाना चाहिए (ख) उसकी आयु कम से कम तीन वर्ष की होनी चाहिए और (ग) उसमें ऐसी अन्य प्रस्तावें होनी चाहिए जो सभा इस बारे में कानून के अंग या अंगीन निर्दिष्ट करे। राज्य की विधान परिषद अपने ही सभ्यता में से एक सभापति और एक उप सभापति निर्वाचित करेगी। विधान परिषद स्थानीय निकाय होगी और उसका विघटन नहीं किया जाएगा। विधान परिषद के सभ्यता ६ वर्ष के लिए निर्वाचित होंगे और तिहाई सभ्यता प्रति दूसरे वर्ष हट जाया करेगा।

राज्य के विधान मण्डल के सत्र—राज्य के विधान मण्डल के सदन या सदनों को (यथास्थिति) राज्यपाल एक वर्ष में कम से कम दो बार अधिवेशन के लिए प्रार्थना करेगा और उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक तथा अगामी सत्र की बैठक के लिए नियुक्त तारीख के बीच ६ मास का अन्तर न होगा। इस उपबंध के अधीन रहते हुए राज्यपाल समय समय पर सदन या सदनों को प्रार्थना कर सकता, उनका सत्रावसान अथवा विधान सभा का विघटन कर सकता।

१३६ राज्य विधान मण्डल की शक्तियां और उसका कृत्य

विधायिनी शक्तियां—राज्य के विधान मण्डल को राज्य सूची में प्रगणित समस्त विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। इस क्षेत्र में राज्य विधान मण्डल साधारणतः अपवर्जित शक्त्याधिकार का उपयोग करता है। राज्य विधान मण्डल समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों के सम्बन्ध में भी कानून बना सकता है। लेकिन इस क्षेत्र में उसका शक्त्याधिकार अपवर्जित नहीं है। इन विषयों पर ससद भी कानून बना सकती है और यदि किसी समवर्ती विषय पर राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानून उसी विषय पर ससद द्वारा निर्मित कानून के विरुद्ध है तो ससद द्वारा निर्मित कानून चाहे वह उसके अधिनियमन के पहले या पीछे पास हुआ हो अविभावी होगा और राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानून विरोध की मात्रा तक शून्य होगा।

लेकिन यदि किसी समवर्ती विषय से सम्बद्ध राज्य के कानून के ऊपर, उच्च राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल गई है तो वह उसी विषय पर पास किए गए सभी कानूनों के ऊपर धनिमावी होगा।

वित्तीय शक्तियाँ—राज्य का विधान मण्डल राज्य के वित्त पर भी नियंत्रण रखता है। इस क्षेत्र में यदि राज्य का विधान मण्डल द्वि-सदनात्मक है तो विधान सभा की स्थिति सर्वोच्च होती है। राज्य के राजस्वों पर नारित व्यय के प्रस्ताव जिस पर राज्य का विधान मण्डल वाद विवाद कर सकता है पर मतदान नहीं दे सकता समस्त धन्य प्रस्तावों का अनुदान मांगा के रूप में विधान सभा के सम्मुख उपस्थित किया जाना अनिवार्य है। विधान सभा मांग को स्वीकार या अस्वीकार प्रस्ताव उसकी राशि का कम कर सकती है। इसी प्रकार विधान सभा के अनुदान के बिना कोई भी कर नहीं लगाए जा सकते।

कायपालिका के ऊपर नियंत्रण—नए विधान न कट और प्राप्ता दोनों स्थानों पर संसदीय शासन प्रणाली का स्थापना की है। फलतः राज्य की वास्तविक कायपालिका मंत्र परिषद् का विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तराधी बना दिया गया है। इस प्रकार विधान मण्डल मंत्र परिषद् के ऊपर नियंत्रण और निरीक्षण रख सकता है तथा उसके ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पान करके उसे घटाय कर सकता है। इसके अलावा जना कि हम ऊपर कह चुके हैं विधान मण्डल के साम्य प्रदनों वचन या वा विवादा तथा वामरोका प्रस्तावों के द्वारा शासन की गतिविधियों को जनता के सामने ला सकते हैं।

१३७ राज्य विधान मण्डल के दो सदनों के सम्बन्ध

विधान सभा की परमैठिका—द्वि-सदनात्मक विधान मण्डल वा राज्य में निम्न सदन अर्थात् विधान सभा का मुख्य स्थान दिया गया है। उच्च सदन (अर्थात् विधान परिषद्) न कवन द्वितीय सदन ही है अपितु गौण सदन भी है। वित्तीय मामलों में विधान सभा की ही पूरी और अंतिम शक्ति प्राप्त है।

धन विधेयकों के सम्बन्ध में—धन विधेयक के लिए यह आवश्यक है कि वह विधान सभा में ही पुरन स्थापित कर दिया जाता है, तब वह विधान परिषद् के पास भेजा जाता है। परिषद् के पास नये जाने के १४ दिन के पश्चात् वह विधेयक चाह इस बीच में परिषद् में उसे पास किया जा या न किया हो राज्यपाल को स्वीकृति मिल जाने पर कानून बन जाता है। इसके अलावा अनुदान मार्ग पर कश्चन विधान सभा हो मत दे सकती है।

अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में—धन विधेयकों को छोड़कर, धन विधेयकों के सम्बन्ध में भी विधान सभा विधान परिषद् को अपेक्षा महत्तर शक्तियाँ वा उपनियम करती है। यदि विधान परिषद् वास्तव में राज्य की विधान सभा द्वारा धन विधेयक से किसी अन्य विधेयक के पास लिए जाने तथा विधान परिषद् के पास पहुंचाए जाने के

पश्चात्—(क) परिषद् द्वारा विधेयक प्रस्तावित कर दिया जाता है (ग) परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से उनसे विधेयक क पास किए बिना तीन मास स अधिक समय व्यतीत हो जाता है अथवा (ग) परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पास किया जाता है जिसमें समा सहमत नहीं होती तो विधान सभा विधेयक को उसी या किसी धारावासी सत्र में विधान परिषद् द्वारा प्रस्तावित संशोधनों सहित या बिना यदि कोई ह्रा पुन पास करनी है और इस प्रकार पास किए गए विधेयक को विधान परिषद तक पहुंचा सकती है । यदि विधान सभा द्वारा विधेयक को इस प्रकार दोबारा पास किए जाने तथा विधान परिषद् तक पहुंचाए जाने क परमात्—
 (क) परिषद द्वारा विधेयक प्रस्तावित कर दिया जाता है अथवा (ग) परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से उनसे पास हुए बिना एक मास स अधिक समय व्यतीत हो जाता है अथवा (ग) परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पास किया जाता है जिसमें समा सहमत नहीं होती तो विधेयक राज्य के विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पास किया सम्भवा जाएगा जिसमें कि वह विधान सभा द्वारा दूसरी बार पास किया गया था ।

कार्यपालिका के ऊपर नियंत्रण रखने के सम्बन्ध में—राज्य की कार्यपालिका का नियंत्रण विधान सभा के हाथ में रखा गया है और यदि किसी राज्य में द्वितीय सदन है तो विधान परिषद सूचना आदि प्राप्त करने क अलावा इस शक्ति में कोई हिस्सा नहीं रखती । सविधान न मात्र परिषद् का सामूहिक रूप से अकेले विधान सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया है । दूसरे शब्दों में विधान परिषद नहीं अपितु विधान सभा ही मात्र परिषद् को अक्षय कर सकती है ।

१३८ राज्य क विधान मण्डल की शक्तियों पर प्रतिबंध

कतिपय विधेयक की पुन स्थापना क लिए राष्ट्रपति की पूव मजूरी—नया सविधान राज्य विधान मण्डलों को उन शक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक शक्तियाँ देता है जिनका प्राचीन विधान मण्डल १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अधिन उपभोग करते थे । साधारण परिस्थितियों के अधीन अपने निश्चित क्षेत्र में वे करीब-करीब प्रभुत्वं सम्पन्न हैं लेकिन उनकी सक्षमता के ऊपर लगाए गए कुछ प्रतिबंध हमारे सविवान की एकात्मक भावना को प्रकट करते हैं । पहली बात यह है कि कुछ विधेयक भारत के राष्ट्रपति की पूव मजूरी के बिना राज्य के विधान मण्डल में प्रस्तावित नहीं किए जा सकते । उदाहरणार्थ यह शत उन विधेयकों के ऊपर लागू होती है जो राज्य के भीतर या दूसरे राज्यों के साथ वाणिज्य व्यापार और समाज की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध आरोपित करते हैं । (मनुच्छेद ३०४) । दूसरी बात यह है कि राज्य विधान मण्डल द्वारा पास किए गए कुछ विधेयक उस समय तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक कि वे राष्ट्रपति के विचाराय रक्षित किए जाने के पश्चात् उसकी स्वीकृति प्राप्त न कर लें । इस कोटि में (१) अथवा द्वारा सम्पत्ति के अन्तर्ग ले सम्पत्ति

विधेयक (घनुच्छेद) धोर (२) समवर्तों मामलों से सम्बद्ध व विधेयक जो ससद द्वारा पास किए गए धतमान कानूनों क प्रतिबूत हो जाते हैं (घनुच्छेद २५४) । व विधेयक भी जो ससद द्वारा समुदाय के जीवन क लिए आवश्यक घोषित की गई वस्तुओं क ऋय या विक्रय पर करारोपण करते हैं राष्ट्रपति के विचार क लिए रक्षित किए जाने पर उसकी अनुमति बिना प्रभावी नहीं हो सकत (घनुच्छेद २८६) ।

राज्य परिषद संसद को राज्य-सूची म प्रणहित विषयों क ऊपर कानून बनाने की शक्ति दे सकता है—तीसरी बात यह है कि संविधान न ससद को राज्य सूची म के विषयों क बारे म कानून बनाने की शक्ति दी है । यदि राज्य परिषद उरक्षित धोर मत देने वार सदस्या की दा तिहाई स कानून संख्या द्वारा समर्थित प्रस्ताव द्वारा यह घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित म यह आवश्यक या इष्टकर है कि ससद का राज्य सूची म प्रणहित विषयों क ऊपर कानून बनाना चाहिए ता ससद उन विषयों क ऊपर कानून बना सकता है (घनुच्छेद २५९) । इस उपबंध की कठोर धालाचना की गई है । धानोचको का कहना है कि य उरबन्ध राज्य की स्वायत्तता क ऊपर कठोर धापात है तथापि यह स्मत्तव्य है कि राज्य-सूची क किसी विषय को संसद के विधायी धप्राधिकार का सौप देने की राज्य परिषद की शक्ति धय धापात धवस्थापन तक मधादित है । इस उपबंध के धधीन ससद द्वारा पास किए गए कानून केवल एक परिमित धवधि क लिए ही प्रभावी होंगे ।

धापात काल से संसद राज्य-सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है—चौथी बात यह है कि जब तक धापात की उधोपण प्रवतन म है संसद भारत क समुदाय राज्य धत धयवा उसके किसी भाग क लिए राज्य सूची में प्रणहित विषयों से किसी क बारे म कानून बना सकती है (घनुच्छेद २५०) । इस उपबंध के धधीन संसद द्वारा पास किया कानून उधोपण प्रवतन की समाप्ति के पश्चात धः मास की कालावधि की समाप्ति पर प्रवतन में न रह्या । पाचवी बात है कि संसद राज्य में कानूनिक ठान क विकृत हो जाने की धापणा क प्रवतन काल म भी राज्य-सूची में प्रणहित विषयों पर कानून बना सकती है । जब तक एसा उधोपण प्रवतन में है राष्ट्रपति घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधान मण्डल की शक्तियाँ संसद क धाधिकार क द्वारा या धधीन प्रयोक्तव्य होंगी (घनुच्छेद ३५६) ।

१३३ केन्द्र प्रशासित राज्य—

राज्य पुनर्र्गठन धापोष की सिध्धारियों के धनुसार दो भाग रखे गए (१) प्राथमिक संघोष एकक (२) केन्द्र प्रशासित । प्रारम्भ में ६ केन्द्र प्रशासित राज्य व लेखिन गोधा धयन ल्घु धादि के सम्मिलित होने पर उनकी संख्या बढ़ गई है । सिन्धी, हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मनीपुर गोधा, धयन ल्घु, अरुणाचल, निकोबार तथा कर्नाटक पिनीकरण धोर धधीन दिवा क्षेत्र प्रशासित राज्य हैं । प्रशासकीय शक्ति व शक्ति कितने को प्रान्त के धाव कर्तव्य धियाया जा सकता ।

दिल्ली तो भारत की राजधानी है और यह एक साम्राज्यक राजधानी है। राजधानी पर साधारणतया केंद्रीय नियंत्रण होता है। सदन व परिषद की भी यही स्थिति है। बाकी प्रदेशों में बिछे हैं कुछ भारतीय सीमा पर स्थित हैं और कुछ द्वीप हैं।

संविधान के अनुसार द्वाय प्रशासन व सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था की गई है -

(१) केंद्र प्रशासित राज्यों का शासन राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त यायुक्तों द्वारा करता है। (२) राष्ट्रपति यदि चाहे तो इनमें राज्यशासन की भी नियुक्ति कर सकता है। (३) राष्ट्रपति इनकी शक्ति व्यवस्था व उन्नति के लिए नियम भी बना सकता है अथवा प्रवृत्त नियम व व्यवस्था में संशोधन भी कर सकता है। (४) भारत की पार्लियामेंट इनके लिए एक पूरक उच्च न्यायालय का व्यवस्थापन कर सकती है अथवा किसी अन्य राज्य के उच्च न्यायालय से सम्बन्धित भी कर सकती है। केंद्र प्रशासित राज्यों के अथवा कुछ भागों में स्वतंत्र व्यवस्थापिका भी बनाने की ओर सरकार प्रयत्नशील है। जनता में भी यह माँग जोर पकड़ रही है।

राज्यों में उच्च न्यायालय (High Courts in States)—भारत में नवीन संविधान व प्रत्येक राज्य की शक्ति राज्यों में ना उच्च न्यायालय की प्रस्थापना की गई है। यद्यपि भारत अमेरिका की भाँति संपात्नक है किन्तु वहाँ की तरह राज्यों के उच्च न्यायालय भारत में नहीं हैं। अमेरिका में उच्च न्यायालय राज्यों के संविधान के अनुसार कार्यरित हैं जबकि भारत में उच्च न्यायालयों पर राष्ट्रीय सर्वोच्च न्यायालय का नियंत्रण है। इंग्लैंड अमेरिका व विपरीत महा उच्च न्यायालय के संगठन व प्रतिभार शक्ति में समानता पायी जाती है।

उच्च न्यायालयों का संगठन वेतन कायकाल व शक्ति—राष्ट्रीय सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति राज्यों के उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं है। राष्ट्रपति समय समय पर उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित करता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय न्यायालयों के प्रधान न्यायाधीश की सिफारिश पर की जाती है। यद्यपि न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि वह ३५ वर्ष का हो भारत का नागरिक हो और १० साल तक उच्च न्यायालय का एडवोकेट रहा हो। वह ६२ साल की अवस्था तक पद पर रहता है। यदि इसके पूर्व वह चाहे पद त्याग कर सकता है और उसे पदातिरिक्त भी किया जा सकता है। प्रधान न्यायाधीश को ४०००) ६० तथा अन्य न्यायाधीशों को ३५००) ६० प्रति मास वेतन मिलता है। उच्च न्यायालयों का स्थान राज्य के किसी भी भाग में हो सकता है यह कदापि जरूरी नहीं है कि वह केवल राज्य की राजधानी में ही स्थापित हो।

संविधान में वर्णित प्रावधानों के अनुसार उच्च न्यायालयों को प्रभौतवीय व निष्ठाधिक शक्ति के अतिरिक्त चार और अन्य शक्तियाँ दी गई हैं—(१) मौलिक

अधिकारों की रखा (२) राज्य के सभी निम्न न्यायालयों का प्रशासन (३) छाने न्यायालय से बड़े न्यायालयों में मुद्दों का हस्तांतरण (४) उच्च न्यायालय के अधिकारिता व कमचारियों की नियुक्तियाँ। हाईकोर्ट के निर्णयों के विरुद्ध अधिकार प्राप्त मितन पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

१. भारत में उच्च न्यायालयों की संख्या स्थापना वर्ष व स्थान निम्न प्रकार से हैं —

संख्या	नाम	वर्ष स्थापना	कार्य सीमा क्षेत्र	न्यायालय का स्थान
१	इलाहाबाद	१९१६	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद
२	भाद्र प्रदेश	१९१८	भाद्र प्रदेश	हैदराबाद
३	घासाम घोर नागालण्ड	१९८८	घासाम घोर नागालण्ड	गोहाटी
४	बम्बई	१८६१	महाराष्ट्र	बम्बई
५	बनकटा	१८६१	पश्चिमी बंगाल अन्तर्गत घोर निकोबार अन्तर्गत	बनकटा
६	गुजरात	१८६०	गुजरात	अहमदाबाद
७	जम्मू घोर बनार	१९२८	जम्मू व बनार	श्रीनगर घोर जम्मू
८	करल	१९२६	करल गणेश मिनिक्काय तथा ग्रामि गणेश	एरनाकुलम
९	मध्य प्रदेश	१९१६	मध्य प्रदेश	जबलपुर
१०	राजस्थान	१८८१	राजस्थान घोर पण्डीचरी	जयपुर
११	मसूर	१८८८	मसूर	बंगलूर
१२	उड़ीसा	१९४८	उड़ीसा	कटक
१३	पटना	१९१६	बिहार	पटना
१४	पंजाब	१९४७	पंजाब घोर दहली	लुधियाना
१५	राजस्थान	१९४९	राजस्थान	जयपुर

+ भारत, १९६४

सारांश

भारत राज्यों का संघ है। संविधान से इन राज्यों का दो विभिन्न कोटियों में वर्गीकरण किया है। संघीय पद्धति के अधीन ये राज्य संघ-स्वायत्त स्टेट्स का उपभोग करते हैं मरिदन शासक परिस्थितियों में इन्हें अपने अतिमित क्षेत्र के भीतर वास्तविक प्रभुत्व मक्ति प्राप्त है। शासकों में उनकी स्वायत्तता का स्थायित्व किया जा सकता है।

संघ की एक-राज्य की कार्यपालिका मरिदन शोधकारिक रूप से राज्यपाल में निहित है। राज्यपाल राज्यपालि शासक नियुक्त किया जाता है घोर पांच वर्ष तक पर

दिल्ली तो भारत की राजधानी है और यह एक संपात्क राजधानी है। राजधानी पर साधारणतया व द्वाय नियंत्रण होता है। लन्दन व पेरिस की भी यही स्थिति है। बाकी प्रदेश पिछड़े हैं कुछ भारतीय सीमा पर स्थित हैं और कुछ द्वीप हैं।

संविधान के अनुसार इनका प्रशासन व सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था की गई है -

(१) केन्द्र प्रशासित राज्यों का शासन राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त प्रायुक्तों द्वारा करता है। (२) राष्ट्रपति यदि चाहे तो इनमें राज्यपाल की भी नियुक्ति कर सकता है। (३) राष्ट्रपति इनकी शांति व्यवस्था व उपरति के लिए नियम भी बना सकता है अथवा प्रचलित नियम व व्यवस्था में संशोधन भी कर सकता है। (४) भारत की पार्लियामेंट इनके लिए एक पृथक उच्च न्यायालय का व्यवधान भी कर सकती है अथवा किसी भी राज्य के उच्च न्यायालय से सम्बन्धित भी कर सकती है। केन्द्र प्रशासित राज्यों के एक कुटुम्ब भाग में स्वतन्त्र व्यवस्थापिका भी बनाने की ओर सरकार प्रयत्नशील है। जनता में भी यह माँग जोर पकड़ रही है।

राज्यों में उच्च न्यायालय (High Courts in States)—भारत की राष्ट्रीय संविधान के अंतर्गत केन्द्र की भाँति राज्यों में भी उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है। यद्यपि भारत अमेरिका की भाँति संपात्क है किन्तु वहाँ की तरह राज्यों में उच्च न्यायालय भारत में नहीं है। अमेरिका में उच्च न्यायालय राज्यों के संविधान के अनुसार कार्यरत है जबकि भारत में उच्च न्यायालयों पर राष्ट्रीय सर्वोच्च न्यायालय का नियंत्रण है। इसी अमेरिका की विपरीत यहाँ उच्च न्यायालयों के समूह व अधिनार शक्ति में समानता पायी जाती है।

उच्च न्यायालयों का समूह वेतन कायकाल व शक्तियाँ —राष्ट्रीय सर्वोच्च न्यायालय की भाँति राज्यों के उच्च न्यायालयों के कुल न्यायाधीशों की संख्या निर्दिष्ट नहीं है। राष्ट्रपति समय समय पर उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित करता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय न्यायालयों के प्रधान न्यायाधीश की सिफारिश पर की जाती है। यद्यपि न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि वह ३५ वर्ष का हो भारत का नागरिक हो और १० साल तक उच्च न्यायालय का एडवोकेट रहा हो। वह ६२ साल की आयु तक पद पर रहता है। यदि इससे पूर्व वह चाहे पद त्याग कर सकता है और उसे पदातिरिक्त भी किया जा सकता है। प्रधान न्यायाधीश को ४ ००) ६० तथा अन्य न्यायाधीशों को ३५००) ६० प्रति मास वेतन मिलता है। उच्च न्यायालयों का स्थान राज्य के किसी भी भाग में हो सकता है यह कदापि जरूरी नहीं है कि वह केवल राज्य की राजधानी में ही स्थापित हो।

संविधान में वर्णित प्रावधानों के अनुसार उच्च न्यायालयों को अधीनस्थ व निर्णायक शक्ति के अतिरिक्त चार और अन्य शक्तियाँ दी गई हैं—(१) मौलिक

अधिकारों की रखा (२) राज्य के सभी निम्न न्यायालयों का प्रशासन (३) छोटे न्यायालय से बड़े न्यायालयों में मुहूर्तों का हस्तांतरण (४) उच्च न्यायालय के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्तियाँ। हाईकोर्ट के नियुक्तियों के विरुद्ध अपील पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

१ भारत में उच्च न्यायालयों की संख्या स्थापना वर्ष व स्थान निम्न प्रकार से हैं —

संख्या	नाम	वर्ष स्थापना	राज्य सीमाएँ	न्यायालय का स्थान
१	इलाहाबाद	१९१६	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद
२	बिहार प्रदेश	१९५८	बिहार प्रदेश	हैदराबाद
३	आसाम और नागालैण्ड	१९५८	आसाम और नागालैण्ड	गोहाटी
४	बम्बई	१८६१	मद्रास	बम्बई
५	कन्नडा	१८६१	पश्चिमी बंगाल प्रदेस और निवादा और आइसलैण्ड कन्नडा	
६	गुजरात	१९६०	गुजरात	अहमदाबाद
७	जम्मू और कश्मीर	१९२८	जम्मू व कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
८	केरल	१९५६	केरल राज्य विभिन्न तथा प्रामाणिकीय	एरनाकुलम
९	मध्य प्रदेश	१९५६	मध्य प्रदेश	जबलपुर
१०	मंगल	१८६१	मंगल और पाण्डीचेरी	मद्रास
११	मसूर	१८८८	मसूर	बंगलौर
१२	उड़ीसा	१९५८	उड़ीसा	कटक
१३	पटना	१९१६	बिहार	पटना
१४	पन्जाब	१९५७	पन्जाब और देहली	लखनौ
१५	राजस्थान	१९५६	राजस्थान	जोधपुर

+ भारत, १९६४

साराश

भारत राज्यों का संघ है। अधिकांश से इन राज्यों का दो विभिन्न कोटियों में वर्गीकरण किया है। अधीन वर्तमान के अधीन व राज्य अधिनियम स्टेट्स का उपयोग करते हैं अधिनियम परिस्थितियों में इन्हें अपने अतिरिक्त धन के नीचे वास्तविक प्रमुख शक्ति प्राप्त है। अधिकांश से उनकी स्वायत्तता का स्पष्ट किया जा सकता है।

संघ की एक-राज्य की कार्यवाही शक्ति अधिकांश रूप से राज्यपाल में निहित है। राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और पांच वर्ष तक पर

धारण करता है। उक्त व्यापक कायपानिका विधानी, वित्तीय और वार्षिक मंत्रियों प्राण्य है। लेकिन यह व्यापक मानक है और साधारणतः घन मंत्रियों की मन्त्रणा पर काय करता है। यह कल्प बोधी से उत्तिमित व्यवस्था की ही बात है जब कि राज्यपाल के कायमकर्ता ही जाता है और घन विषय क अनुसार काय करता है।

राज्य की वास्तविक कायपानिका मन्त्रि परिषद है। मन्त्र-परिषद् सामूहिक रूप से राज्य के विधान मण्डल के प्रति (प्रथम यदि राज्य में द्वितीय सदन है तो केवल विधान सभा के प्रति) उत्तरदायी है। राज्य की मन्त्रि परिषद् सच की मन्त्रि-परिषद् के पद चिन्हा का अनुसरण करती हुई ही काय करती है।

प्रत्येक राज्य में एक विधान मण्डल है। भारत के १ राज्यो में द्विसंघात्मक विधान मण्डल है। उच्च सदन (विधान परिषद्) परोक्षतः निर्वाचित और नाम निर्दिष्ट सदस्यों से मिलकर बनता है। विधान सभा की चुनना में विधान परिषद् सवधा शक्तिहीन है। वह स्थायी सदन है। उसकी अवधि ६ वर्ष है लेकिन प्रति दून्ने वर्ष उसके तिहाई सदस्य निवृत्त हो जाते हैं। विधान सभा जनता वर सदन है। वह वयस्क मताधिकार और सयुक्त निर्वाचक गणो क आधार पर प्रत्यक्षतः निर्वाचित होती है। साधारणतः राज्य सूची में प्रगणित विषयो के ऊपर राज्य के विधान मण्डल की मन्त्रियों क्षत्राधिकार प्राप्त है लेकिन कुछ परिस्थितियों में यह क्षत्राधिकार सभ को हस्तांतरित किया जा सकता है। राज्य का विधान मण्डल (द्विसदनात्मक विधान मण्डलो वाले राज्यो में विधान सभा) राज्य क वित्तो को नियन्त्रित करती है और मन्त्रि-परिषद के काय का निरीक्षण करती है।

१९५६ के राज्य पुनगठन नियम के अनुसार राज्यों का प्राचीन वर्गीकरण समाप्त कर दिया गया है। केन्द्र प्रशासित राज्यों की कुल संख्या ६ है। राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त प्रायुक्तों तथा उपर ज्वपानो द्वारा शासन करता है। प्रथम यह शोच ही निजो विधान मंडल चुनने का अवसर दिया जा रहा है।

राज्यों में उच्च न्यायालय—राज्यों में न्याय की दृष्टि से उच्च न्यायालय की व्यवस्था है। भारत में संधीय व उच्च न्यायालय में गहरा सवधा रखा गया है। प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। इनकी संख्या विस्थित नहीं है। उच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का वेतन ४००) और अन्य का ३५०) २० प्रतिमान निर्धारित किया गया। इन न्यायालय की काय सीमा राज्य तक सीमित है। इनके निष्पत्ति के पश्चात् यदि प्रश्न का प्रतिकार पत्र मिल जाय—सर्वोच्च न्यायालय में भी प्रेषित की जा सकती है।

प्रध्याय १७ देशी राज्य उनका विलीनीकरण और लोकतन्त्रीकरण

१४२ देशी राज्यों की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश भारत और देशी राज्य—मात्र भारत में 'राज्य' शब्द भारत-सभ के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होता है। लेकिन ब्रिटिश शासन काल में यह शब्द देशी नरेशों के अधीनस्थ प्रदेशों के लिए लागू होता था। देशी राज्यों की संख्या ५६२ थी। ये राज्य सम्पूर्ण देश में फले हुए थे। इनमें सारे देश का ४५ प्रतिशत क्षेत्र और उसकी कुल जन संख्या का २६ प्रतिशत भाग प्राप्त जाता था। विस्तार जनसंख्या और शक्तियों की दृष्टि से उनमें पर्याप्त अन्तर था। एक छोटे से हैदराबाद या जिसकी आबादी १ करोड़ ६५ लाख व वार्षिक आय १० करोड़ रुपए थी दूसरे छोटे और बाकरी या जिसकी आबादी २७ और वार्षिक आय ८० रु० थी। काश्मिराबाद में २८३ राज्य थे। इनमें ६ राज्यों की तो वार्षिक आय ८० रु० थी। काश्मिराबाद २७४ राज्यों की कुल वार्षिक आय १३५ लाख रुपए थी। इस राज्यों को २७४ शासक परिवारों का पालन करना पड़ता था और इससे शाशा की जाती थी कि यह २७४ पृथक प्रथम-स्वतंत्र राज्यों के प्रशासकों का संचालन करे।

राज्यों की उत्पत्ति—देशी राज्यों की उत्पत्ति विभिन्न रीतियों से हुई। कुछ राज्य बहुत पुराने थे। उदाहरणार्थ कूचबिहार त्रावणकोर और कोचीन का इतिहास काफी पुराना था। मसूर जायपुर और जयपुर जहाँ कुछ दूसरे राज्य भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के काफी पूर्व से बरतमान थे। बहुत से राज्य मुगल शक्ति के पतन के पश्चात् उत्पन्न हुए। ब्रिटिश शासन की जब जमान के पूर्व भारत एक प्रखण्ड देश नहीं था प्रकृत स्वतंत्र राज्यों का एक समुदाय था। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इन राज्यों के पारम्परिक सभों में हस्तक्षेप करना शुरू किया तब उसने उनमें से बहुतों को विजय प्रपवा दूसरे अधिकांश उपजाऊँ द्वारा अपने बग में कर लिया। लेकिन ऐसे भी बहुत से राज्य बाकी बच गए जिन्हें अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष अपने प्रभुत्व नहीं किया। अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसिसियों को भारत से बाहर कर देने के लिए अंग्रेजों को उनकी सहायता तथा सहायता की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इन राज्यों से सभियों की और उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता देकर अपना स्वामित्व मित्र बना लिया। बहुत से इन भारतीयों को जिन्होंने अंग्रेजों को भारतीय सभ-महासभ के रूप में अपना प्राधिकार जमाने में सहायता दी, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जाकीर प्रदान की। इस रीति से भी अनेक राज्यों की उत्पत्ति हुई। स्पष्टतः इस उग से प्रादुर्भाव राज्य अपने अस्तित्व के लिए सीधे ईस्ट इंडिया कम्पनी के श्रेणी है।

देशी राज्यों की प्रथोगति—देशी राज्य प्रथोगति ने गत में बड़े हुए थे। राजनीतिक दृष्टि से वे समान्तरात्मक और प्रतिप्रियावात्मक गढ़ थे। प्रथिमान राज्यों के नरेश स्वैच्छाचारी की भाँति शासन करते थे। राज्य के प्रशासन में जनता की कोई धावाज नहीं थी और वह राजनीतिक प्रधिकारा से सवया वरित थी। कुछ राज्या में विधान मण्डल थे परन्तु उनका वायव्यनिर्णय क ऊँच कोई नियन्त्रण नहीं था। प्रायः और कोचीन बड़ी। और म्वालियर जैसे कुछ राज्या का शासन प्रथम प्रान्तीय रूप से प्रगतिशील था लेकिन उनकी सभ्या बहुत कम थी। प्रायिक दृष्टि में भी राज्य प्रनुन्नत थे। केवल थोड़े से राज्या को छात्ररूप में राज्या में प्रौद्योगिक विकास की पूर्ण प्रपेक्षा की गई थी और उनमें सिर से पर तक सामन्ती प्रय-व्यवस्था घतमान थी। किसानों की दशा बड़ी दयनीय थी। जमीरदार व जागीदार उनका निदयतापूर्वक शोषण और दमन करते थे। राज्या के साधन स्यात प्रत्यन्त सीमित थे। शासक धाकठ विनासिता में मग्न रहते थे। उनके विलास के उपकरण जटान में ही राज्यों का प्रायिक भेराङ्क टूट जाता था फलतः राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक सेवा के कार्यों के लिए कोष में प्रत्यल्प धनराशि बच पाती थी। प्रथिमान राज्या में जनता की शिक्षा प्रयवा चिह्नितना सम्बन्धी सुविधाएँ बिलकुल प्राप्त नहीं थी। केवल तीन राज्या में विश्वविद्यालय थे और डिग्री कानिज कवल तीसरा था म य। राज्या में कुल मिनाकर कवल ३ प्रतिशत जनता साक्षर थी। यह ठीक है कि इस सम्बन्ध में कुछ राज्य प्रपवाद स्वरूप भी थे। उदाहरणार्थ प्रायनकोर और कोचीन में भारत में सबसे अधिक ४० प्रतिशत सातरता थी।

१५३ सार्वभौम सत्ता

सार्वभौम सत्ता का प्रथिप्राय—देशी राज्य किसी भी प्रकार प्रभुत्व सम्पन्न राज्य नहीं थे। इसक विपरीत वे ब्रिटिश सम्राट के सार्वभौम सत्ता के अधीन थे। सार्वभौम सत्ता शब्द की सागोपाग व्याख्या कभी नहीं की गई लेकिन साधारण रूप से इसका प्राणय यह था कि देशी राज्य ब्रिटिश सम्राट के सार्वभौमत्व के अधीन है और इस सार्वभौमत्व का प्रयाग भारत में सम्राट के प्रतिनिधि वायसराय करते हैं। देशी राज्या के सम्बन्ध में ब्रिटिश सम्राट की सार्वभौम प्रयवा सर्वोच्च सत्ता का १९२६ में नाइरोडिंग ने हैदराबाद के निब्राम को लिख गए प्रपने पत्र में स्पष्ट रूप से निरूपण किया था। उन्होंने लिखा था भारत में ब्रिटिश सम्राट की प्रभुत्व शक्ति सर्वोच्च है और इसलिए देशी राज्य का कोई भी शासक ब्रिटिश सरकार से समानता के प्राधार पर बातचीत करने का दावा उपस्थित नहीं कर सकता।

इसलिए सार्वभौम सत्ता का प्रथिप्राय था कि देशी राज्य वास्तविक प्राणय में राज्य नहीं थे। ह्योटर के प्रनुसार प्रन्तर्राष्ट्रीय कानून में उनकी कोई स्थिति नहीं थी। वे अधीनस्थ प्रयवा रक्षित राज्य थे। वे न तो युद्ध की घोषणा कर सकते थे और न विदेशी राज्यों के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे। क्योंकि उनके विदेशिक सम्बन्ध पूर्णतः ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित होते थे। राज्यों को प्राचररिक क्षत्र में

१९३६ के अधिनियम के अधीन प्रस्तावित संघ

भी अधीनित स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती थी। साम्राज्य न्याय प्रथम मुगासन के हितों के अन्तर्गत होने पर सम्राट उनक मामलों में हस्तक्षेप कर सकते थे। ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों के घरेलू मामलों में जब चाह तब हस्तक्षेप कर सकती थी। कभी-कभी वह प्रशासक नरेशों का अधिकारच्युत तक कर देती थी। उदा० ए० १८६१ में मनीपुर के सनापति को फासी दे दी गई। १९३० में नामा के महाराजा को पदच्युत और गिरफ्तार किया गया। १९३६ में भारत के शासक को विवश किया कि वह २४ पट्टे के भावर-ही मोतार अपना राज्य छोड़कर चल जाए। किसी राज्य के उत्तराधिकार को निश्चित करने और दत्तक ग्रहण के सम्बन्ध में यह प्रावधान था कि सम्राट की अनुमति प्राप्त कर ली जाए। उत्तराधिकार के सम्बन्ध में मतभेद पदासन पर अन्तिम निरूप सम्राट के हाथों में रहता था। ब्रिटिश साम्रज्यत्व की अधीनता में देशी राज्यों की स्थिति गुलामी के समान ही थी।

१९४४ १९३५ के अधिनियम के अधीन प्रस्तावित संघ भारत के प्राथमिक तिहास में १९५५ के अधिनियम में प्रथम बार राज्याधीन राज्यों को एक प्रखिल भारतीय संघ के अन्तर्गत सामान्य प्रशासन के अधीन लाने का प्रस्ताव किया। तथापि यह निश्चित कर दिया गया कि राज्य का धारिनाम उसी समय होगा जबकि ऐसे देशी राज्यों के शासक जिनका जनसाम्य समन्त राज्यों की कुल जनसाम्य का अधोसंघान है और जो प्रस्तावित राष्ट्रीय विधानमण्डल के उच्च सदन में देशी राज्यों के लिए नियत स्थानों में कम से कम आधे स्थानों के लिए हक्कार है संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत हो जाए। राज्याधीन राज्यों में प्रथम एलिक्टोराधीन प्रमुख राज्य संघ में सम्मिलित होगा या नहीं इसका निर्णय बहाक शासक के ऊपर छोड़ दिया गया था।

योजना की असफलता—यह योजना कार्यान्वित न हो सकी क्योंकि भारतीय लोकमत के प्रत्येक वर्ग ने जिसमें देशी नरेश भी सम्मिलित थे इसका विरोध किया। भारतीय जनता को यह सन्देश था कि जब तक राज्यों के आन्तरिक प्रशासन का लोक-तन्त्रीकरण नहीं हो जाता तब संघ में प्रतिनिध्यावादी रस ग्रहण करना और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ढगमगाती हुई नीचा के लिए प्रवृत्त तुल्य विड हांग। कांसस ने इस सम्बन्ध में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को फरवरी १९५५ में पास किए गए प्रस्ताव में स्पष्ट किया एक सच उप के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वतंत्र एकका से मिलकर बन। ये एकक लोकतन्त्रात्मक निर्वाचन पद्धति द्वारा न्यूनाधिक रूप से एक-सा स्वतंत्रता नागरिक स्वाधीनता तथा प्रतिनिधित्व का उपयोग करत है। नरेशों ने इस योजना को इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि उन्हें मय था कि यह उन्हें सम्राट् और राष्ट्रीय सरकार दो स्वामिनी की अधीनता में पटक देगा।

१९५५ स्वतंत्रता के बाद देशी राज्य भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा उत्पन्न की गईं उसहान—भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन प्रस्तावित संघ में प्रत्येक ब्रिटिश समन्त्या

देशी राज्यों की थी। भारत सभ के साथ उनका क्या सम्बन्ध होने को था ? भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ने एक बड़ी सतर्कता स्थिति बना कर दी थी। अधिनियम ने घोषणा की थी कि राज्यों के ऊपर जो ब्रिटिश सम्राट की सावभौम सत्ता थी, वह देश की नई संघीय सत्ता को हस्तांतरित हुए बिना ही समाप्त हो गई। इससे मथुर उलझन पैदा हो गई। औपचारिक रूप से राज्य स्वतन्त्र हो गए और उनकी बड़ी स्थिति हो गई जो भयानकी भयानता में घाने के पूव थी। कानूनी तौर से राज्य दोनों अधिनियमों (भारत या पाकिस्तान) क्रमों में भी सम्मिलित हान प्रथवा प्रथमी स्वतन्त्रता की घोषणा करने के लिए स्वतन्त्र थे। स्पष्ट है कि वह भारत की एकाता को भग करने और उनकी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को भग करने की एक चष्टा थी।

राज्यों का भारत सभ में प्रवेश—यदि कही अधिकांश राज्य अपने उस्त अधिकार का प्रयोग कर लेते स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर देते, तो भारत की राष्ट्रीय एकाता और शक्ति को तीव्र घाघात पहुंचता। निरसगत भारत स्वतन्त्र क लिए तयार नहीं था कि ५०० प्रभुत्व सम्पन्न सामन्ती राज्य उनकी सीमाओं के भीतर विद्यमान रहें। ये राज्य राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से किस प्रकार भारत में भिलाए जा सकते थे ताकि भारत एक प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का रूप धारण कर सकता ? बिना किसी रकनता के पारस्परिक सहयोग क द्वारा इस समस्या का समाधान किस प्रकार सम्भव था ? राज्या से बचित भारत बिनकुन क्षुब्ध हो जाता।

सचिन सरदार पटेल जैसे भारतीय नेताओं के प्रयासों और कई नेशों की दृश भक्ति के फलस्वरूप अधिकांश राज्य भारत सभ में सम्मिलित हो गए। प्रायण कोर और हैदराबाद जम कुछ प्रवाद भी थे। लेकिन बाद में इन राज्यों को भी भारत सभ में सम्मिलित कर दिया गया पुरे को लो शान्तिपूर्ण दबाव के द्वारा और दूसर को शक्ति द्वारा। जूनागढ के नवाब ने अपने राज्य की भौगोलिक स्थिति और जनता की इच्छाओं की उन्ना करने हुए उनक पाकिस्तान में सम्मिलित होने की प्रापणा कर दी। लेकिन जनता के दृढ़ मकल्प ने शासक की कुचेष्टा को निष्फल कर दिया। पश्मीर के स्थायी प्रवेश का प्रश्न अभी अनिश्चित है। लेकिन भारत ने अपने प्रदल निश्चय की घोषणा कर दी है कि इस प्रश्न का निणय राज्य की जनता ही करेगी।

द्विहरण (राज्यों का विलीनीकरण)—भारत सभ में राज्यों का प्रवेशमान तो समस्या क समाधान में पुरा कल्प था। ६५२ राज्यों को उसी स्थिति में जिवमें य ब्रिटिश शासन की अधीनता में ये छोड़ देना सूचनापूर्ण था। लगभग उन सबके पास कम साधन आर्यों का प्रभाव था जिनसे कि वे एक उगतिशील शासन प्रदति कायम रख सकते और भारत सभ के पण विकसित एरुक बने रहते। इसलिए राज्यों को मांड व विराटकाय और नीचे पाग्य एरुकों के रूप में संगठित कर देना वास्तविक

स्वतन्त्रता के बाद देशी राज्य

। इस लक्ष्य को विलीनीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पूरा किया गया। मुख्य रूप से काय को तीन तरह से किया गया है।

राज्यों का प्रान्तों में विलीनीकरण—विलीनीकरण की पहली प्रक्रिया छोटे छोटे राज्यों को पड़ोसी प्रान्तों में मिला देने की थी। यह प्रक्रिया एक जनवरी १९५८ को शुरू हुई जब उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के ३६ राज्यों को (जिनका क्षेत्रफल ५६००० बगमोल और भावादी ७० लाख थी) उड़ीसा प्रोविंसी को प्रान्तों में सम्मिलित कर दिया गया। १६ फरवरी १९५८ को एक कोल्हापुर को छोड़कर दक्षिण के समस्त राज्यों को बम्बई प्रेसीडेंसी में मिला दिया गया। १० जून, १९६८ को गुजरात के राज्य तानुके और याने जिनकी सख्या १५७ सत्रफल १६३०० बगमोल और भावादी २७ लाख थी बम्बई प्रेसीडेंसी के भाग बन गए।

राज्यों का सर्घों में विलीनीकरण—राज्यों के विलीनीकरण की दूसरी प्रक्रिया यह थी कि कई बड़े-बड़े राज्यों को सघा (यूनियन) के रूप में संगठित कर दिया गया ताकि वे जीने योग्य प्रशासनिक एकक बन सकें। सबसे पहले काठियावाड़ प्रयवा सौराष्ट्र के राज्यों का एक सघ बनाया गया। यह घनपुठान १५ फरवरी, १९५८ को परा हुआ। इस सघ में ३० राज्य शामिल हैं। इसका क्षेत्रफल ३१८८५ बग मोन और जनसख्या ५ लाख से ऊपर है। यूनाधिक रूप से सौराष्ट्र के ही भादश पर देण क दूसरे नागों में राजस्थान मध्यभारत और पेंपू जैसे सघा का निर्माण हो गया है।

बीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में विलीनीकरण—तृतीयत कुछ राज्या प्रयवा राज्य समूहों को बीफ कमिश्नरों के प्रान्तों (भाग व राज्यों) में मिला दिया गया। इन प्रान्तों का शासन प्रबंध सीधे के्रीय सरकार की देख रल में हाता है। इस प्रकार निमना पहाडी के २२ राज्यों को (जिनका क्षेत्रफल ११२५४ बग मोन और जनसंख्या १०५६ लाख था) हिमाचल प्रदेश क रूप में संगठित किया गया। बिष्ण प्रदेश भावाल बिनामपुर बच्छ और मनोपुर त्रिपुरा इसी कोटि के राज्य हैं। इनका शासन प्रबंध सीधे के्रीय सरकार करती है।

सोकरतरीकरण—स्वतन्त्रता के स्वर्णों में के परवान् अधिनाय राज्यों में स्वच्छापरिता का घन्त करने और उनकी सख्याओं व प्रशासन का नीवतरीकरण करने के समानान्तर लक्ष्य को सिद्ध कर लिया है। नए सविधान की प्रथम धनुमुची के भाग में में सम्मिलित राजसंघा प्रयवा राज्यों के राजसंघा वधानिक शासक हो गए हैं और उनकी स्थिति भाग (क) राज्यों के राजसंघा क समान ही है। मूनमूत अधिनाय और नागरिक स्वतन्त्रताओं क सम्बंध में इन राज्यों की जनता और प्रा जो की जनता में कोई भेद नहीं है। भाग (ग) राज्यों का १० वष क लिए वनीय शासन की दाय रल में रखा गया है ताकि घन्तज्ञान के दौरान इनके प्रशासन का नवीनीकरण हो सके। प्रथम धनुमुची क भाग में जो पूर्वशासन देशी राज्य

देशी राज्यों की थी। भारत सघ के साथ उनका क्या सम्बन्ध होने को था ? भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ने एक बड़ी सतरनाक स्थिति पैदा कर दी थी। अधिनियम ने घोषणा की थी कि राज्यों के ऊपर जो ब्रिटिश सम्राट की सावभौम सत्ता थी वह देश की नई वैश्व सत्ता को हस्तांतरित हुए बिना ही समाप्त हो गई। इससे भयकर उलझन पैदा हो गई। औपचारिक रूप से राज्य स्वतन्त्र हो गए और उनकी बड़ी स्थिति हो गई, जो अधिजाती की अधानता में जाने के पूर्व थी। कानूनी तौर से राज्य दोनों धोमिनियनों (भारत या पाकिस्तान) किसी में भी सम्मिलित होने भयवा अधिजाती स्वतन्त्रता की घोषणा करने के लिए स्वतन्त्र थे। स्पष्ट है कि वह भारत की एकात्मता को भंग करने और उनकी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को भंग करने की एक चष्टा थी।

राज्यों का भारत सघ में प्रवेश—यदि कहीं अधिकांश राज्य अपने उक्त अधिजाती का प्रयोग कर लेते स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर देते, तो भारत की राष्ट्रीय एकात्मता और शक्ति को तीव्र अधिजाती पहुँचता। निसंगत भारत इस बात के लिए तैयार नहीं था कि ५०० प्रभुत्व सम्पन्न सामन्ती राज्य उनकी सीमाओं के भीतर विद्यमान रहें। ये राज्य राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से किम प्रकार भारत में मिलाए जा सकते थे ताकि भारत एक प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का रूप धारण कर सके ? बिना किसी रक्तपात के पारस्परिक सहयोग के द्वारा इस समस्या का समाधान किस प्रकार सम्भव था ? राज्यों से वचित भारत वित्तकुन अधिजाती हो जाता।

सन्नि सरदार पटेल जमे भारतीय नेताओं के प्रयासों और कई देशों की देश भक्ति के फलस्वरूप अधिकांश राज्य भारत सघ में सम्मिलित हो गए। थापणुकी और और हीनरावाद जमे कुछ अधिजाती भी थे। लेकिन बाद में इन राज्यों को भी भारत सघ में सम्मिलित कर लिया गया पढ़ने को तो शान्तिपूर्ण दबाव के द्वारा और दूसरे की शक्ति द्वारा। जूनागढ़ के नवाद ने अपने राज्य की भौगोलिक स्थिति और जनता की इच्छाओं की उल्लेख करने हुए उनसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने की अधिजाती कर दी। लेकिन जनता के दृढ़ सकल्प ने शांति की कुचेष्टा को निष्फल कर दिया। बरमौर के स्वायत्त प्रवेश का प्रश्न अभी अनिश्चित है। लेकिन भारत ने अपने घटन निश्चय की घोषणा कर दी है कि इस प्रश्न का निणय राज्य की जनता ही करेगी।

द्वितीय (राज्यों का विलीनीकरण)—भारत सघ में राज्यों का प्रवेशमात्र तो समस्या का समाधान में पढ़ना काम था। १५२ राज्यों को उसी स्थिति में विश्व में ब्रिटिश शासन की अधिजाती में थे छोड़ देना भूखण्डाणु था। लगभग उन सबके पास एक साधन साधनों का अधिजाती था कि वे एक अधिजाती शासन पद्धति कायम रख सकें और भारत सघ के पणु विलीनित एक बनने रहें। इसलिए राज्यों को पाठ से विलीनित और जीने योग्य एककों के रूप में अधिजाती कर देना अधिजाती

स्वतन्त्रता के बाद देशी राज्य

था। इस लक्ष्य को विनीनीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पूरा किया गया। मुख्य रूप से इस काय को तीन तरह से किया गया है।

राज्यों का प्रान्तों में विलीनीकरण—विलीनीकरण की पहली प्रक्रिया छोटे-छोटे राज्यों को पड़ोसी प्रान्तों में मिला देने की थी। यह प्रक्रिया एक जनवरी १९५८ को शुरू हुई जब उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के ३६ राज्यों को (जिनका क्षेत्रफल ५६००० बर्गमील और आबादी ७० लाख थी) उड़ीसा और सी० पी० के प्रान्तों में सम्मिलित कर दिया गया। १६ फरवरी १९५८ को एक कोल्हापुर को छोड़कर दक्षिण के समस्त राज्यों को बम्बई प्रेसीडेंसी में मिला दिया गया। १० जून १९५८ को गुजरात के राज्य तानुके और याने जिनकी सख्या १५७ क्षेत्रफल १६३०० बर्गमील और आबादी २७ लाख थी बम्बई प्रेसीडेंसी के भाग बन गए।

राज्यों का सर्वो म विनीनीकरण—राज्यों के विलीनीकरण की दूसरी प्रक्रिया यह थी कि कई बड़े-बड़े राज्यों को सभा (यूनियन) के रूप में संगठित कर दिया गया ताकि वे जिन योग्य प्रशासनिक एकक बन सकें। सबसे पहले काठियावाड़ प्रयवा सोराष्ट्र के राज्या का एक सभ बनाया गया। यह अनुष्ठान १५ फरवरी १९५८ को परा हुआ। इस सभ में ३० राज्य शामिल हैं। इसका क्षेत्रफल ३१८८५ बर्ग मील और जनसख्या ३५ लाख से ऊपर है। 'यूनायिड रूप से सोराष्ट्र के ही आदेश पर देग क दूम्रे भागो म राजस्थान मध्यभारत और पेन्सू जसे सभा का निर्माण हो गया है।

चीफ कमिश्नरों के प्रान्तो मे विलीनीकरण—तृतीयत कुछ राज्या प्रयवा राज्प समूहा को चीफ कमिश्नरों के प्रान्ता (भाग व राज्पा) म मिला दिया गया। इन प्रान्ता का शासन प्रबन्ध सीधे क आय सरकार की देख रेख में हाता है। इस प्रकार शिमला पहाडो के २२ राज्पो की (जिनका क्षेत्रफल ११२५४ बर्ग मील और जनसन्धा १०८६ लाख था) हिमाचल प्रदेश क रूप म संगठित किया गया। बिष्प प्रदम भावाल विनामपुर बन्ध और मनीपुर त्रिपुरा इधो कीटि के राज्य हैं। इनका प्रबन्ध सीधे क आय सरकार करती है।

सम्मिलित हैं उनमें 'रोकथाम' की बहुत कम उन्नति हुई है। लेकिन अब इस त्रुटि को दूर करने के यथासम्भव उपाय किए जा रहे हैं।

रक्तहीन प्राति—१५ अगस्त १९४७ के पश्चात् दशों रा'यों में जा परिचयन हुआ है उसे एक गौरवपूर्ण रक्तहीन प्राति कहा गया है। हैराबाद जूनागढ़ और कश्मीर को छोड़कर शेष दशों राज्यों के विलीनीकरण और साक्षर-रीकरण की बोहरी प्रतिज्ञा बिनाकुन शक्तिपवक लगभग अनछित भाव से घटित हो गई है। यह सही है कि नरेशों के सहयोग को प्राप्त करने के लिए एक बहुत बड़ी कीमत देनी पड़ी है। इनकी तिजो खर्च के तीर पर कुल भिनाकर लगभग घाठ करोड़ खर्च प्रति वर्ष दिए जाते हैं। भारत जैसे गरीब देश के लिए यह व्यय भार घमसा है। तरणों को अपनी उपाधियों बनाए रखने और विशेषाधिकारों का उपनाग करने की भी आना द दी गई है। उनमें से कुछ को राजसमुच्च और उपराजसमुच्च बना दिया गया है। लेकिन अधिकांश लोगों की राय में राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति का देवत हुए जिसका जय सरदार पटेल की हृद और दूरदर्शनी राजनीतिज्ञता का पाता है यह अस्सम अनुचित नहीं है।

उपरोक्त प्रबंध केवल परिस्थिति का सामना करने के लिए किये गये थे। इन व्यवस्था से भारतीय सभ के विभिन्न प्रशासनिक एककों का न ता सतुचन संयोजन गठन हो सका और न ही उनके बीच की सवधानिक असमानता ही दूर हुई। कायस दल द्वारा स्वीकार किये हुए प्रस्ताव के अनुसार एक भाषा वाले क्षेत्रों को मिलाकर नये रा'यों की रचना करने की भाग भी पदा हो गई थी। देश में राष्ट्रीय आवाजन का कार्यक्रम आरम्भ किये जाने पर रा'यों के पुन सगठन की आवश्यकता का भी अनुभव किया गया, परन्तु इस समस्या पर शांति तथा घय के साथ यह दृष्टिकोण सामने रखकर विचार करना था कि प्रत्येक प्रशासनिक एकक के निवासियों से साथ-साथ सम्पूर्ण देश की जनता का भी हित होना चाहिए।

रा'य पुन सगठन आयोग—प्रत रा'य के पुन सगठन पर विचार करने तथा इसके सम्बन्ध में सरकार को सुभाव देने का काय एक रा'य पुन सगठन आयोग को सौंपा गया। यह आयोग २६ दिसम्बर १९५३ को सत्यद कजन अली की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया। श्री हृदयनाथ कुजूरू तथा श्री के० एम० परिणकर इसके अध्यक्ष थे। इस आयोग को अपनी सिफारिशों ३० सितम्बर १९५५ तक पेश करने को कहा गया था। आयोग ने १०४ स्थानों की यात्रा की और ६०००० हज़ार व्यक्तियों से मिला। इसकी रिपोर्ट २४३ प्रश्नों तथा कुल ८७९ पेरिग्राफों में प्रकाशित हुई।

आयोग के सुझाव—आयोग ने सिफारिश की कि पुन सगठन के आवश्यक परिणाम के रूप में भारतीय सभ के प्रशासनिक एककों के बीच सवधानिक असमानता नहीं होनी चाहिये। इसके अनुसार भारतीय सभ के सगठन एक इस प्रकार थे—

(१) रा'य—भारत के प्रशासनिक एकक

(२) क्षेत्र—क्षेत्र द्वारा प्रशासित

स्वतंत्रता के बाद देशी राज्य

इस प्रकार भारतीय सप में १६ राज्य तथा ३ केंद्र प्रशासित क्षेत्र प्रायोग में घोषित किए। सम्पूर्ण रिपोर्ट ४ भागों में बंटी हुई है। प्रथम भाग में राज्यों के पुनर्गठन की समस्या और उनके इतिहास पर विचार किया गया है। दूसरे भाग में पुनर्गठन को प्रभावित करने वाले तत्वों पर लिखा गया है। तीसरे भाग में वर्तमान राज्यों का पुनर्गठन करने के बारे में प्रस्ताव है और अन्तिम भाग में पुनर्गठन से सम्बन्धित प्रामाणिक और सत्य प्रतिक्रियाओं के बारे में विचार करके उन्हें हल करने के साधन पर सभ्य में लिखा गया है। रिपोर्ट में श्री फजल अली ने हिमाचल प्रदेश के बारे में व श्री पणिकर ने उत्तर प्रदेश के बारे में अपने मत प्रकट किए हैं। श्री फजल अली के मत में हिमाचल प्रदेश एक पृथक इकाई के रूप में जारी रहना चाहिये और न केवल राज्य सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहे। इसी तरह श्री पणिकर ने उत्तर प्रदेश का दो भागों में बांटने की सिफारिश की क्योंकि उसकी जनसंख्या ६ करोड़ है जबकि अन्य राज्यों की जनसंख्या ३ करोड़ से अधिक नहीं है। प्रायोग ने अपने सुझावों में भाषा स्थान विशेष की समस्या व प्रशासनिक सुविधाएँ आदि सभी दृष्टियों का सामान रख कर पेश किए थे।

सबसे पहले विचार—ताक सना में प्रायोग की सिफारिशों पर एक सत्रे समय तक बाद विवाद हुआ और ७ सितम्बर १९५६ को भारत के नवीन संविधान में ७वाँ संशोधन पारित हुआ। यह राज्य पुनर्गठन अधिनियम था। संक्षिप्त रूप में पुराने ८ प्रान्त तथा कल्याण संघों के विचार कर विचार और तीन नए राज्यों के निर्माण का निश्चय किया—केरल कर्नाटक (मसूर) मध्यप्रदेश त्रिपुरा संघराज्य व मिनीकाय तथा अजमेरवाड़ा का केंद्र प्रशासित क्षेत्र रखने का निश्चय लिया गया। नए राज्यों में इन राज्यों से सम्बन्धित विधान सभानों से विचार विमर्श शुरू किया। इसी बीच मसूर में प्रांतपाल शुरू हुआ। महाराष्ट्रीय जनता बम्बई को महाराष्ट्र में मिलाया चाहती थी। एक पृथक गुजरात राज्य की भी मांग की गई। केंद्रीय वित्त मंत्री श्री देगमुख ने महाराष्ट्र के विषय को लेकर मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र दे दिया। इसी भाँति पंजाब में महापंजाब बनाने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए। १९५६ के राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार भारतीय सप १९६६ ईकाई राज्य तथा ६ केंद्रीय प्रशासित क्षेत्र में रख गये। इसके पश्चात् गुजरात प्रान्त का निर्माण हुआ। १९६२ में नागालैण्ड नाम पृथक राज्य के रूप में उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् गोवा डामन ड्यू भारत सप में सम्मिलित हो गये हैं। वर्तमान समय में भारतीय सप में १६ स्वतंत्र प्रशासनिक एकक व ६ केंद्र प्रशासित राज्य हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) राज्य एकक—पंजाब प्रदेश उत्तरप्रदेश पश्चिमी बंगाल

मध्यप्रदेश मद्रास मसूर उड़ीसा पंजाब

बम्बई व कश्मीर नागालैण्ड।

(२) केंद्र प्रशासित—दहली हिमाचल प्रदेश त्रिपुरा मिनीपुर मिनीकाय

व संघराज्य व अजमेरवाड़ा अजमेरवाड़ा

राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार ५ क्षेत्रीय परिपदें बनाई गईं।

(१) अन्तरीय क्षेत्र—इसमें पंजाब राजस्थान, जम्मू वरमोर और हिमाचल प्रदेश सम्मिलित हैं।

(२) केन्द्रीय क्षेत्र—उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश।

(३) पूर्वीय क्षेत्र—बिहार पश्चिमी बंगाल उड़ीसा असम मणिपुर व त्रिपुरा से मिलकर।

(४) पश्चिमी क्षेत्र—बम्बई तथा मद्रास।

(५) दक्षिण क्षेत्र—आंध्र मद्रास केरल आदि से मिलकर। इन क्षेत्रीय परिपदा का प्रमुख कार्य प्रत्येक क्षेत्र के अधिनियमों का प्राथमिक व सामाजिक विकास, सीमा सम्बन्धी झगडा तथा अन्तर्राज्य यातायात सम्बन्धी कोई भी विषय व राज्य पुनर्गठन अधिनियम से सम्बन्धित कोई भी प्रश्न आदि क बारे में सिफारिशें प्रस्तुत करना होगा। प्रत्येक क्षेत्रीय परिपद में राष्ट्रपति द्वारा नियोजित एक केन्द्रीय मंत्री, राज्य क एक मुख्यमंत्री दो अन्य मंत्री योजना आयोग द्वारा नियमित एक प्रतिन प्रत्येक राज्य क मुख्य सचिव विकास कमिश्नर आदि नियुक्त उमरी रखना करे। अध्यक्ष को एक विशेष मत का हक होगा।

इसके साथ साथ यह भी व्यवस्था की गई कि बर्द मद्रास पंजाब केरल, राजस्थान तथा राजस्थान राज्यों के जन सेवा आयोग की पुनरचना की गई। हैदराबाद मध्यभारत पटियाला पूर्वी पंजाब राज्य सच और सीराष्ट्र के जन सेवा आयोग समाप्त कर दिये गये। इसके अतिरिक्त अधिनियम क अन्तर्गत उच्च न्यायलयों के सम्बन्ध में प्रावधान रखे गये थे।

हिमाचल प्रदेश त्रिपुरा और लक्षद्वीप मिनिकाय तथा अमीनदिवी द्वीपसमूह भी संघीय क्षेत्र घोषित कर दिये गये हैं। दिल्ली मणिपुर तथा प्रण्डमान और निकोबार द्वीपों को मिलाकर ६ क्षेत्र हैं।

सारांश

ब्रिटिश शासनकाल में भारत दो भागों—देशी और ब्रिटिश भारत में विभाजित था। देशी भारत में २६२ देशी राज्यों क प्रदेश सम्मिलित थे। राज्य राजनीतिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए थे और उनका शासन सामन्ती नरेश स्वच्छाचारि ढंग से करते थे।

देशी राज्य किसी भी प्रकार प्रभुत्व सम्पन्न स्वतंत्र राज्य नहीं थे। वे ब्रिटिश सम्राट की साबमोम सत्ता के अधीन थे। इसका अन्तिम फल यह था कि ब्रिटिश सरकार उनसे वदेशिक सम्बन्धों का पूणत नियन्त्रित करती थी और वही कर्मों उनसे परे नु मामलों में भी टांग बहा देती थी।

जब भारत स्वतंत्र हुआ राज्यों ने एक कठिन और जटिल समस्या उपस्थित की। कानूनी दृष्टि से राज्य भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होने या स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर देने के लिए स्वतंत्र थे। निश्चयत यदि कहीं बहुत से प्रभु व सम्पन्न

सारांश

राज्य बनने के अपने कानूनी अधिकार का प्रयोग कर बैठते तो सारे देश में घबबवस्या फल सकती थी। यह सरदार पटेल जैसे नेताओं की राजनीतिज्ञता और नरेशों की देश भक्ति के प्रति श्रद्धांजलि है कि भारत की एकता के ऊपर मडराने वाला यह खतरा राज्यों के भारत-साथ में प्रकेश करने से दूर हो गया। इस काय को तीन तरह से पूरा किया गया। कई छोटे छोटे राज्या को पड़ोसी प्रांता में मिला दिया गया। कुछ बड़े राज्यों के संघ बना दिए गए ताकि वे जीने योग्य प्रशासनिक एकक हो सकें। कुछ राज्यों अथवा राज्य समूहा को चीफ कमिश्नर के प्रांता के रूप में (भाग ग राज्य) केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में ले लिया गया।

राज्यों के विलीनीकरण के साथ ही माय उनका लोकतन्त्रीकरण भी होता गया है। दशो राज्या क स्वल्प-परिवर्तन और उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली भारतीय एकता को एक गौरवपूर्ण और रक्तहीन श्रान्ति बहा गया है।

परन्तु उपरोक्त परिस्थिति श्रान्ति का पहना दौर था। सवधानिक प्रसमानता को दूर करने तथा राष्ट्रीय आयोजन के दृष्टिकोण से राज्या का पुन सगठन करने के लिए एक राज्य पुन सगठन आयोग नियुक्त हुआ जिसकी सिफारशा के आधार पर सगठित एकाओ का रूप यह था—जो राज्य भारत के प्रशासनिक एकक हंगे तथा शत्र जो केंद्र द्वारा प्रशासित हंगे।

भारतीय संघ म अब १५ राज्य और ६ क्षेत्र हैं। उनके नाम य हैं —
 राज्य—प्रथम उड़ीसा उत्तर प्रदा आंध्र प्रदा बिहार पश्चिमी बंगाल,
 ममूर परल मद्रास महाराष्ट्र गुजरात राजस्थान मध्य प्रदेश जम्मू तथा काशीर,
 पंजाब तथा नागालण्ड।

केंद्र प्रशासित क्षेत्र—दिल्ली हिमाचल प्रदेश मणिपुर त्रिपुरा गोपा
 शामन क्यू प्रण्डमान तथा निकार और लदाखी मिनीकाय तथा काशीरदखी।
 राज्यपुनसंगठन आयोग की सिफारशा के अनुसार ५ क्षेत्रीय परिषदें भी बनायी
 गये हैं। इन क्षेत्रीय परिषदा का प्रमुख काय प्रत्येक क्षेत्र के अधीन राज्या का प्राथिक
 व सामाजिक सीमा सम्बन्धा कगठा का निवारण आदि के बारे में अपनी सिफारिशें
 प्रस्तुत करना है।

भाव ह न भवगणना । समस्त धम एक दूसरे के साथ प्रोतप्रोत हैं । प्रत्येक धर्म में कई विशेषताएँ हैं किन्तु एक धर्म दूसरे धर्म से अष्ट नहीं । जो एक में है वह दूसरे में नहीं है । इसलिए एक धर्म दूसरे धर्म का पूरक है । ^१ महात्मा गांधी के अनुसार वास्तविक धर्म वही है जो हम आत्मदर्शन कराता है ईश्वर के समीप पहुँचाता है । उनके सम्मुख विश्व के समस्त धर्म एक ही सत्य तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग थे ।

यदि हम एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विभिन्न मार्गों का आश्रय लेते हैं तो क्या हुआ ? महात्मा गांधी धर्म शास्त्रों का उसी समय तक शिरोधार्य करने के लिए प्रस्तुत थे जब तक कि वे उनकी बुद्धि को सन्तुष्ट कर सकत थे ।

‘यावहर्भारिक आदर्शवादी - महात्मा गांधी कवि शक्ती की उस चिड़िया (स्काई लाक) की भाँति नहीं थे जो पृथ्वी पर स्थित अपने नीड की सुध बुध भूलकर धनन्त आकाश में पर फलाए उड़ती रहती है वह कवि वह सत्य की उस चिड़िया के समकदा थे जिसे आकाश में उड़ते समय भी पृथ्वी पर स्थित अपने नीड का निरन्तर ध्यान बना रहता है । दूसरे शब्दों में वह यावहारिक आदर्शवादी थे । उनका मत था कि आदर्शवाद को यथायक रूप धारण करने के लिए व्यवहारिक होना आवश्यक है । वह भावात्मक सत्य को उस समय तक बिलकुल पथ मानते थे जब तक कि वह यथितियों के जीवन में प्रकट नहीं होता । उनके सत्त्व ने उन्हें आदर्शवादी बनाया और समन्वयधर्मता ने यथायकानी । १९२० में उन्होंने अपने एक ताल में लिखा था मैं स्वप्न नहीं देखा करता । मैं एक यावहारिक आदर्शवादी होने का दावा करता हूँ । इतिहास का धर्म केवल ऋषियों और महात्माओं के लिए नहीं है । वह जनसाधारण के लिए भी है । जिस तरह से हिंसा पशुओं का जीवन सिद्धांत है उसी तरह इतिहास हम मानव का ।’^२

हिंसा के दबदूत गांधीजी के ये वचन कि जब भरे सामने केवल दो विकल्प रह जायें—बायबतता और हिंसा—तो मैं हिंसा के लिए सलाह दूंगा । इसके बजाए कि भारत कायबततापूर्वक अन्न ही अन्नसमान का शिकार बने या बना रहे मैं यह पसंद करूंगा कि वह अपने सम्मान की रक्षा के लिए हथियार उठाए । अथवा सत्कार निरतक से ही शासित नहीं जाता । स्वयं जीवन में ही छोड़ी बहुत हिंसा अन्तर्गत है और हमें नूनतम हिंसा का मार्ग चुनना है उनके यावहारिक आदर्शवाद के ही प्रोत्साहक हैं । आचार्य जे. बी. कृपानी के शब्दों में— महात्मा गांधी इस बात को मनीषात्रि जानने थे कि कब हड़ रहा जाए और कब झुका जाए कब और किन वस्तुओं में सहयोग किया जाए तथा किन में असहयोग कब प्रारंभ किया जाए और कब शान्त रहा जाए । ^३ महात्मा गांधी ने सत्य और हिंसा को अपनी नीति देश के

१ हार्डनन सेवक—३१ ३ ३३ पृ० ३ ।

२ जवाहरलाल नेहरू— ‘राष्ट्रपिता’ पृ० ४३ ४४ ।

३ आचार्य जे० बी० कृपानी— ‘गांधी दो स्टेटसमन’, पृ० ६० ।

गांधी जी राजनीतिक नेता क रूप में

सम्मुख एक राजनीतिक शास्त्र स्वराज्य प्राप्ति के एक प्रभावशाली और सत्वर उपाय के रूप में उपस्थित की थी। इस सम्बन्ध में उनकी स्वयं अपनी सारी मिलती है मैं इस मत पर घटल हूँ कि मैंने ग्रहिणा को कांग्रेस के सम्मुख एक लाभप्रद उपकरण के रूप में उपस्थित कर प्रच्छा ही किया। यदि मुझे उसका राजनीति में समावेश करना था तो मेरे लिए प्रत्य कोई चारा ही नहीं था—दक्षिण अफ्रीका में भी मैंने उसे लाभप्रद उपकरण के ही रूप में उपस्थित किया था यदि मैं ऐसे न्वक्षितपा के साथ अपने बाय को प्रारम्भ करता जो ग्रहिणा को घम के रूप में स्वीकार करते, तो उसको ज्ञानने वाला प्रवेला में ही रह जाता। चूकि मैं स्वयं प्रभूण हूँ प्रत मैंने प्रभूण स्त्री पुरुषों के साथ अपना बाय प्रारम्भ किया और एक प्रारिचिन समुह की यात्रा की।

प्रवीण सेनापति—महात्मा गांधी ने अपने ५० वर्षों से अधिक के राजनीतिक जीवन में इस बात को जली नाति सिद्ध कर लिया कि वह राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य समर के प्रवीण सेनापति थे। प्रवीण सेनापति से यह भाषा की जाती है कि वह युद्ध की प्रत्येक स्थिति को प्रच्छी तरह समझ और तदनुसार ही प्रचरण करे क्योंकि उसका एक भी गलत कदम सारे राष्ट्र का विनाश के गत में डकेल सकता है। भारतीय राष्ट्रीय प्रान्दोलन के सेनापति होने के नाते महात्मा गांधी इस कसौटा पर पूरी तरह से उतरते हैं। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चान् जब उदोन भारत के राजनीतिक जीवन में विधिवत् प्रवेश किया दंग की स्थिति उस जगत्प्राप्तियों क तुल्य थी जो बस फूट पडने वाला ही हो। रौलट एक्ट पश्चात् हत्याकाण्ड और विलासत-प्रश्न का लेकर दंग में प्रचण्ड प्रसन्तोष क बादल घुमड रहे थे। यदि उस समय महात्मा गांधी प्रसहयोग प्रान्दोलन प्रारम्भ न करते तो यह निश्चित प्राय था कि विप्लववागी मगन म धा जात और सारा दंग शाणित के नद में डब जाता। श्री प्रभार जब १९२२-२३ म स्वराजवाग्नि य प्रपरिवर्तनवादिया के बीच कौत्सिन प्रवेश की समस्या पर मतभेद उठ सदा दृष्टा था महात्मा गांधी न स्वराजवादियों को निवाचना म नाग लेने और प्रपरिवर्तनवागियों का रचनात्मक बाय प्रम में जुट रहने का परामश देकर राष्ट्रीय शक्तियों के सम्भाव्य विपटन को नैतृत्व में इण्डियन होम रूलिंग की स्थापना क प्रान्तर ही जवाहरलाल और मुनाय बोस क नेतृत्व में इण्डियन होम रूलिंग का प्रान्तर देग के राजनीतिग यर्मामीटर का तापक्रम एक बार फिर ऊंचा चड़ा। साइमन-कमीशन का प्रसफलता के कारण देग की जनता रोषानन से प्रीय हो रही थी। परिणामस्वरूप विप्लववाद जोर पकड रहा था। एही प्रवस्था में गांधी जी ने सत्याग्रह प्रान्दोलन प्रारम्भ करके देग के समस्त यर्मा गहणों और स्त्री वामपक्षियों और दक्षिण पक्षियों उग्रवागियों और उग्रवादियों को रूपे स-करा विनाकर राष्ट्र-मुक्ति सपन में समान रूप से सन्निध भाग बन जाना क्रियाही बना िन। पाश्चात् य बो वृत्तली क धनुषार इतनी विभिन्न विचार पाठमों और भावनामों वाली विभिन्न शक्तियों का एक

स्थान पर एकत्रित करता एक प्रवीण राजनीतिक कलाकार का दाय था ।^१ वस्तुतः महात्मा गांधी एक प्रवीण राजनीतिक कलाकार थे । सत्याग्रह का जीवन मान्यतरक चला । इसके उपरान्त उसकी शक्ति धीरे धीरे लगी । महात्मा गांधी ने इस बात को सुरत मान लिया । फलतः जैसे ही सरकार ने काग्रस के साथ समझौता करने की इच्छा पकड़ की गांधीजी ने उस चट से मान लिया । गांधी इतिहास समझौता इतिहास का फल था । इसी प्रकार जब द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के कूटनीति पर नज़र मारने के समीप आती प्रतीत हुई और क्रिप्स मिशन का कोई फल न निकलता महात्मा गांधी ने काग्रस के सामने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव रखा । विदेशी आक्रमणों से घबराती रक्षा करने मईसमय भारतीय जनता की असहायता को देखकर गांधीजी विचलित हो गए थे । परिणामस्वरूप उन्होंने देश को छोड़ने का फैसला किया । यदि गांधी उस समय इस प्रकार का फल न उठाते तो भारत के राष्ट्रीय सत्रय की प्रतिम सफलता इतनी शीघ्र और शक्तिशाली न होती । उचित समय पर कायरा ले करके उन्होंने इंग्लैंड का यह विज्ञापन दिया कि अपनी स्वतंत्रता के लिए भारत सब कुछ उतार देने को प्रस्तुत है तथा भविष्य में आतंककारी एवं विद्रोही भारत का सबसे दमन और शस्त्रास्त्रा के बल से दासता में लाने रखा जा सकता ।^२

महान् आन्तिकारी—महात्मा गांधी अपनी नैतिक और आध्यात्मिक विराटता के प्रतिरक्त विरक्त विहास के सबसे महान् आन्तिकारी राजनीतिक नेताओं में से एक थे । आन्तिकारी नेता का प्रथम चिह्न इस तथ्य का पञ्चानना है कि वह परिस्थिति जिसका उसे सामना करना पड़ा है आन्तिकारी है उसका विकासवाद की धीमी प्रक्रिया और जन जनवाद से परिहार नही किया जा सकता परचादुत समाधान समस्याओं को सुननाए बिना स्थिति को और बिना दगा तथा आन्तिकारी की जब वह अरिहायत आती है अधिक नृशंस कठोर और निष्पक्ष अपने रोगानन की भाँक में बहून सी एमी अष्ट वस्तुधा का विध्वनक बना देगा जिसके पुनर्निर्माण के लिए एक नूनन अथवा एक प्रतिक्रानि अथवा एक हीन एवं पीडापूर्ण विकास प्रक्रिया की आवश्यकता होगी ।^३ आन्तिकारी नेता के रूप में महात्मा गांधी की यह सक्रियता थी कि उन्होंने १९१६ में भारतीय राजनीतिक जीवन में प्रवेश करते समय देश की आन्तिकारी परिस्थिति को ठीक ठीक पहचान लिया और उसका एक सच्चे आन्तिकारी के समान प्रत्यक्ष कायवाही से सामना किया यद्यपि उनकी यह प्रत्यक्ष कायवाही परिणामात्मक थी । वस्तुतः एक एसी विह्वलता जनता के लिए जो आधुनिक शस्त्रास्त्रों से पूरुत सन्त्रित शक्तिशाली विदेशी साम्राज्यशाही के विरोध में लड़ी हो यहिसक घसहयोग सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली थी । दूसरे आन्तिकारी को एक दो समुदाय अथवा

१ ज० बी० कृपानी— गांधी की स्टेट्समन पृ० ३६ ।

२ भाषाण ज० बी० कृपानी— गांधी की स्टेट्समन' पृ० ५६ ।

३ भाषाण ज० बी० कृपानी— गांधी की स्टेट्समन , पृ० ६४ ।

पाकिस्तान के लिए प्रादोलन

अश्वित नहीं लाते बल्कि तो जन साधारण का प्रादोलन है। हो सकता है कि प्रादि
 में जन साधारण प्रादोलन से विलग रह लकिन किसी-न किसी स्थिति पर उसका
 प्रादोलन में सक्रिय योगदान प्रपरिहाय है। अन्तिमारी नता से यह प्रपेक्षा की जाती
 है कि यह प्रादोलन को जन साधारण का प्रादोलन बना दे। महात्मा गांधी ने भारत
 में यही किया था। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता प्रादोलन को जो उनके पूर्व मध्यवर्गीय
 बुद्धिजीवियों का ही प्रादोलन था, देश के कोटि-कोटि नगरीय मूखों तक-समूह या
 प्रादोलन बना दिया। अन्तिकारी नताओं के सम्मुख म तीव्ररी बात यह है कि व
 सदैव अमा या कमी नही की भावना में काम करत हैं। उनका विचार होता है कि
 यदि हम वर्तमान ममात्र 'यवस्था को तुरन्त नही बदल दते तो समाज बिना क
 गत में जा गिरगा। ' महात्मा गांधी ने अपने सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन में इसी
 अमो या कमी नही की भावना में काम किया। १९२० में उन्होंने कहा था— मुझे
 एक बप क प्रदर स्वराज चाहिए। ' बाई ना बुद्धिमान अश्वित स बात की मनी
 नीति ममक सकता था कि एक बप क प्रदर स्वराज को प्राप्त करने की बात पागत
 वन के मियाय बुद्ध नही है। अिन किर भी एक बप क प्रदर स्वराज प्राप्त करने
 का वरत प्रदर महात्मा। ने जाना म यह प्रपर प्रादोलन को पूरा की कि जनता
 मय बुद्ध मय प्र घोर उनन प्रादोलन में मय अग न माना गया ममूख
 नायन का मय स्वयं की प्रति पर निर्भर हो। १९३० में उहान पुन अमो या कमा
 न। ना जयन्त उचारित किया। उहान प्रतिता की ति में अपने प्रादोलन का
 अमो व वा गीट्टा का जब भारत का व दो प्रादोलन। मय वार प्रद पुन प्रमस्त हुए।
 १९४२ में उहान का अि एन वार अना या दता करो या म। का
 मय दिया। प्रन्त अन्तिकारी नता मय सम्मुा प्राध्वय म मनी-न रगत
 है। यह जिण नाम म नी हाय डानता है उहान एक म उद् य अमन मय का
 पान होती है। गांधी का व अमन म दग उधय की स्थिति म मिनता है। उनका
 प्रयक काम उहान का अि-ारी जात-त म भारत का स्वतंत्रता म सम्मुख रगत
 था। चाह तो हम उनका चर्चा म मय प्रादोलनकार चाल स्वयं म मय चाह
 प्राभोत्वान अमन दन ममन्त मय रक्षा म उहान एक मय अमन मय मय का
 एनिष्ठ सापना करता था। चर्चा म यह प्रादोलन उरान का एक प्राधार नही
 ममन्ते म उहान उह स्वराज के दान हाय म। प्रस्तुतता उनक लिए एक सामा
 त्रिक प्रमिशाप ही नहीं था उसे यह भारत के राजनीतिक विरास क माम म प्रबन्ध
 को ही मूल्य नही था। उनके लिए स्वयं देण की प्रय मयवस्था की सम्हालने का
 उपायमान नहीं उस यह स्वराज के सारतत्व क रूप में प्रहण करत था। प्राभोत्वान
 को प्राभो की मोचनीय स्थिति मुधारने क सापनमान के रूप में ही नहीं देखते म
 यह उनके मत से प्रादोलन स्वयं स्वयं तक पहुचने का एक प्रमिवाय घोषण था।

३ प्राधान्य अ० बी० इपतानी— गांधी दी स्टेटसमन' पृ० ८५।

घोर तो घोर महात्मा गांधी ने अपनी प्राथना समाप्ता कर वा जगता को अनुगमित करने और राजनीतिक शिक्षा देने के लिए प्रयोग किया। उन्होंने अपनी कतिपय सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषणाएँ प्राथना समाप्ता में की थीं।

नव मानवता के शिल्पी—भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के नया हान के साथ साथ महात्मा गांधी नव मानवता के शिल्पी थे। उनकी 'गुप्त कुम्भ' के पुनीत सिद्धांत में अचन निष्ठा थी। वह कट्टर राष्ट्रवादी थे पर यही अनुभव करते थे कि मुझ सम्पूर्ण समाज ही एक सत्ता दत्ता है। उनका विश्वास था कि सच्चा राष्ट्रमन्तराष्ट्रीयता का विरोधी नहीं प्रत्युत परक होता है। उनका मत स राष्ट्रवाद स्वयं बुराई नहीं बुराई तो सकुचितता स्वयं भावना और वजनाशीलता है। न विरय मानवता की बंदी पर देश का बलिदान करने के लिए सर्व प्रम्नुन रहने थे। उन्होंने कहा था 'राष्ट्रीयता के सम्बंध में मेरा विचार यह है कि मेरा दल स्वयंत्र हो जाए लेकिन यदि आवश्यकता पड़े तो मानव जाति का जीवित रखने के लिए वह सारा या सारा नष्ट हो जाए।' 'समे जातीय घणा को कोई स्थान नहीं। हमारी राष्ट्रियता एसी होनी चाहिए।' महात्मा गांधी एक भारत का स्वप्न देखते थे जो कि सम्पूर्ण समाज के लिए कामकारी हो। वह यह सत्न करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे कि भारत दूसरे राष्ट्रों के धरसावशर्षों पर उत्तमि करे। उन्हें अपने भिन्न का पूरा भाग था। उनका कहना था 'मेरा भिन्न केवल भारतीय मानवता का ध्रातृत्व नहीं है। मेरा भिन्न केवल भारत की स्वतंत्रता नहीं है यद्यपि आज वह निम्न है हमें सम्पूर्ण धवन और सम्पूर्ण समय को ल लता है। मैं भारत की सत्ता नता को प्राप्त करने के माध्यम स मानव ध्रातृत्व का भिन्न की साक्षात्कृत और हस्तगत करना चाहता हूँ।' महात्मा गांधी का यह दृढ विश्वास था कि मैं भारत की सेवा करने के साथ साथ सम्पूर्ण मानवता की सेवा कर रहा हूँ। उन्होंने भारत के समग्र राजनीतिक आन्दोलन को सत्य और अहिंसा की धार्मिक शक्ति के ऊपर आधारित किया था। उनका मत था कि जहाँ स आन्दोलन ने भारत में अपनी उपयोगिता सिद्ध की सम्पूर्ण समाज पर उसका प्रभाव पाना अवश्य सम्भाव्य है। मैं लिखित और उच्चारित शक्ति की अप या विचार शक्ति में अधिक धारणा रखता हूँ। यदि इस आन्दोलन में जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ कुछ शक्ति है और उसे देवी प्राणीवादि प्राप्त है तो वह भरी भौतिक उपस्थिति के बिना ही समाज के विभिन्न भागों में व्याप्त हो जाएगा। महात्मा गांधी को विश्व शांति का उत्कट कामना थी और उनकी दूरदर्शी दृष्टि ने 'स बात को मला भाति दल लिया था कि मानव कुल की

१ निमल कुमार घोष— सेलेक्शंस फ्रॉम गांधी पृ० ४३।

२ भार० फ० प्रभु और यू० भार० राव— दी माइण्ड ऑफ महात्मा गांधी पृ० १६०।

३ भार० के० प्रभु और यू० भार० राव — दी माइण्ड ऑफ महात्मा गांधी पृ० १३९।

सहस्रों वष व्यापी ऐतिहासिक जययात्रा का एतन्मात्र सच्चा और काम्य लक्ष्य प्रयो-
याश्रित राश्यों का विश्व सध ही है 'विशाल राज्यों का लक्ष्य पृथक स्वतंत्रता नहीं
प्रप्तितु स्वेच्छित भतनिभरता है। सभार के उन्नतमना व्यक्ति भ्राज एक दूसरे से लडन
वाले पूणत स्वतंत्र राष्ट्रों की इच्छा नहीं करते प्रत्युत भिन्नतापूण एक दूसरे पर
निभर राज्या का सध चाहते हैं।'^१ महात्मा गांधी ने विप्र^२ और भ्रशान्ति सं जजरित
मानयता को सत्याग्रह की भ्रपूव शक्ति से दुधर भत्याचार और भ्रयाय का प्रतिकार
करने की विलक्षण युक्ति प्रदान कर भविष्य क त्रिए एक नूतन भालोक-पय का
निर्देश किया।

१४७ महात्मा गांधी का राजनीति-दर्शन ✓

महात्मा गांधी के राजनीति-दर्शन का स्वरूप—जब हम महात्मा गांधी के
राजनीति दर्शन क सम्बन्ध में विचार करते हैं हम यह प्रारम्भ से ही समझ लेना
चाहिए कि वह साम्प्रोय भ्रयों में राजनीतिक दार्शनिक नहीं थ। उ लेन किसी राज-
नीति दर्शन को सांगोपांग और तक सम्मत निरूपण नहीं किया है। महात्मा गांधी
प्रारम्भ से ही भ्रसली सुधारक और कमयोगी पुरुष थ। उनकी स्थिति प्राचान काल
क उन पगम्बरो और समाज सुधारकों की भांति थी जिह राजमरा की भ्यावहारिक
कठिनाइयों का सामना करना पता था और जिन्हाने इसके लिए भ्रपने भ्रापको किन्हा
भ्रपरिवर्तनीय प्रणालियों में न पसाकर भ्रपने भ्रनुयायियों के त्रिए कतिपय नतिक और
भ्रनोवनातिक सिद्धान्त स्थिर कर दिए थ। महात्मा गांधी भ्रपने जीवन काल म यह
बार बार कहा करत थ कि गांधीवाद जसी कोई चीज भ्ररे दिमाग म नहीं है। भे
कोई सम्प्रदाय प्रयत्न नहीं ह। तत्त्वगानी हान का भ्रैन कभी दावा भी नहा किया है।
भ्ररा यह प्रयत्न भी गहा है।'^३ यह यह मानते थ कि भ्रैन किया नए नत्य का
भ्राश्रिकार नहीं किया है वरिष्ठ सत्य को जस्र में जानता ह उवा क भ्रनुसार चतन
हा और लोगों का बतान का प्रयत्न करता हूँ। हा। कतिपय प्राचीन सत्य सिद्धान्ता
पर गया प्रकाश डालने का भ्रै गना भ्रवश्य करता ह।'^३

राजनीति दर्शन जीवन दर्शन का एक भाग—महात्मा गांधी सम्पूर्ण जीवन का
एक इकाई मानत थ। उनके भ्रनुसार जीवन को भ्रातिक, राजनीतिक सामाजिक और
नतिक भ्रादि विभिध धर्मों म नहीं बाटा जा सकता। उनक लिए जीवन क सभी पहलू
एक दूसरे के साथ जुड़े हुए थ। इसीलिए महात्मा गांधी का राजनीति-दर्शन उनक
जीवन-दर्शन का एक भाग था। निसगत गांधी जी वं राजनीति-दर्शन का समझन के
लिए उनके जीवन दर्शन को समझना भ्रत्यन्त भ्रावश्यक है।

१ धार० के० प्रनु धोर यू० धार० राय—'दी नाइण्ड ग्राफ महात्मा गांधी'
पृ० १६१।

२ रामनाथ मुमन—'गांधीवाणी' पृ० २४३।

३ "यय इण्डिया १५-५-२१, पृ० २६७।

महात्मा गांधी के राजनीति दर्शन के मूल तत्त्व (१) धार्मिक तथा नैतिक आधार—ऊपर महात्मा गांधी के राजनीति दर्शन के स्वरूप जीवन-दर्शन नैतिक और धार्मिक विश्वासों का जो संप्लित विवेचन किया गया है उससे उनके राजनीति-दर्शन के मूल तत्त्वों का सुगमतापूर्वक विश्लेषण किया जा सकता है। महात्मा गांधी के राजनीति-दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता उनके धार्मिक आधार में दिखाई देती है। जफरसन की भाँति महात्मा गांधी भी राजनीति का धार्मिक आधार-भूमि पर आधारित करना चाहते थे। उनके लिए धर्म और नैतिकता से दूर राजनीति का कोई महत्त्व नहीं था। उनका अनुसार धर्महीन राजनीति में कोई चीज नहीं। राजनीति धर्म की अनुची है। धर्म हीन राजनीति को एक काँपा ही समझिए। वह पातल का नाग कर देती है। महात्मा जो यदि राजनीति में नाग देने दे तो इसलिए कि अपने हमारे जीवन को चारों ओर से एसा परावृत्त कर रहा है कि हम उससे बचकर नहीं निरव सकते। गांधीजी धर्म को जिहा सम्प्रदाय विधेय से एकाङ्कित नहीं करते थे। उनका धर्म तो वह धर्म था जो सब धर्मों में मूल में विद्यमान है जो व्यक्त को ऊँचा उठाता है उसे परिवर्तन की शिखा देता है। गांधी जी का धर्म निरव उगम और मात्रा फेरन वाला धर्म न होकर सदा के लिए अविनाशित और अविनाशित को उखा करने वाला धर्म था।

(२) साम्य और साधन का अन्तः—वृत्ति महात्मा गांधी का राजनीति-दर्शन धार्मिक आधार भूमि पर स्थित था इसलिए उनकी राजनीति पद्धति में साधन को कोई स्थान नहीं था। उनका विश्वास था कि अन्तः साम्य की प्राप्ति के लिए अन्तः साम्य ही प्रयोग धारण्यक है। वह कौटिल्य और मर्कवालेनी के समान अन्तः साम्य की प्राप्ति के लिए बुरे साधनों का उपयोग ठीक नहीं समझते थे।

(३) व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध—महात्मा गांधी व्यक्ति और समाज में कोई विरोध न मानते थे। उनका कहना था कि मनुष्य मानव-समाज का मूल है, स्वतन्त्रता और प्रगति का मापदण्ड है। वह इस सिद्धान्त में विश्वास रखते थे कि समाज के बिना मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। महात्माजी के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि वह अपने ऊपर समाज के अर्थ को स्वीकार करे और अपने माद्यों की सेवा द्वारा उसे युक्ताने में प्रवृत्त हो।

(४) धारणा की व्यावहारिकता—महात्मा गांधी का राजनीति-दर्शन केवल कल्पना-लोक की वस्तु नहीं है। यद्यपि वह प्लेटो के तुल्य उनके आधारभूत थे और उनके स्वप्न का स्वप्न ऐसा करते थे फिर भी उनके राजनीति-दर्शन के व्यावहारिक होने में कोई संशय नहीं किया जा सकता। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका और भारत में अपने राजनीति-दर्शन का सफलतापूर्वक उपयोग कर उनकी प्रियतामयता मती प्रकार सिद्ध कर दी। उनके लिए प्रत्येक सिद्धांत उस समय तक निरवयोग्य था जब तक कि उसे पर धारण नहीं किया जा सकता। महात्माजी का यह विश्वास था कि मनुष्य राजनीति द्वारा बचन युक्त लोगों के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज के लिए है।

(५) स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा—महात्मा गांधी स्वतन्त्रता के एकनिष्ठ साधक थे। उनके अनुसार स्वतन्त्रता का वास्तविक प्रयोजन जीवन का सर्वांगीण अभ्युत्थान करना है। उनकी दृष्टि में सच्ची स्वतन्त्रता में राजनीतिक प्राथिक और नैतिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रताएँ समाविष्ट हैं। स्वतन्त्रता के इन दोनों पहलुओं का विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा था— राजनीतिक स्वतन्त्रता का अर्थिप्राय यह है कि देश पर ब्रिटिश सेनाओं का किसी भी रूप में कोई शासन न रहे। प्राथिक स्वतन्त्रता का अर्थिप्राय ब्रिटिश पूंजीपतियों और ब्रिटिश पूंजी के साथ ही उनके प्रतिरूप भारतीय पूंजीपतियों और भारतीय पूंजी से पूण्य छुटकारा पाना है। दूसरे शब्दों में छाट से छाटे आदमी को भी यह अनुभव करना है कि वह बड़े में बड़े आदमी के बराबर है। नैतिक स्वतन्त्रता का अर्थ देश की सुरक्षा के लिए गई सैन्य सेनाओं से छुटकारा पाना है। रामराज्य की मरौ बहलना में ब्रिटिश फौजी हुकूमत से जगह राष्ट्रीय फौजी हुकूमत को बिठा देने की गुंजाइश नहीं है। महात्मा गांधी की स्वतन्त्रता के अर्थ में उदात्त जो। अपने सपनों में भारत का चित्र खींचते हुए उन्होंने लिखा था— स्वतन्त्रता में राजा से लेकर रक तक का एक भी अंग अविद्यमान न रहे। एसा नहीं होना चाहिए। उसमें कोई किसी का शत्रु न हो सब अर्थात् अर्थात् काम करें कोई निरक्षर न रहे उत्तरोत्तर सबके पान की वृद्धि होना जाये सारी प्रजा को कम से कम बीमारियाँ हों कोई भी दरिद्र न हो परिश्रम करने वाले को बराबर काम मिलना रहे उसमें जुधा चोरी मद्यपान और ब्यभिचार न हो वगैरह न हो घनिक अपने धन का विवेक पूर्वक उपयोग करें यह नहीं होना चाहिए कि मुठ्ठे भर घनिक मीनाकारी के महतों में रहे और हजारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रमाण रहित कोठरियाँ में।^१

लोकतन्त्र सम्बन्धी धारणा—महात्मा गांधी स्वतन्त्रता से ही लोकतन्त्रवादी थे। उनकी लोकतन्त्र सम्बन्धी धारणा में तीन बातें विशेष रूप में दृष्ट्य हैं। प्रथमतः महात्मा गांधी केन्द्रीयकरण और लोकतन्त्र लोकतन्त्र के अन्तर्गत का विरोधी मानते थे। उनका विश्वास था कि सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना के लिए राजकीय सत्ता का विवेक-करण अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे गांधीजी के अनुसार लोकतन्त्र और समाज का साथ साथ निर्वाह नहीं हो सकता। उन्होंने लिखा था— लोकतन्त्र के अन्तर्गत उपायों का विवेक-मिलन नहीं हो सकता। लोकतन्त्र की मानना के अन्तर्गत से न्याय जा सकती। वह तो भीतर से आती है।^२ चाकि जनता के अन्तर्गत में अर्थिक पर वैशेषिक क्षत्र में अर्थिक है अतः वह सच्चा लोकतन्त्रवादी के अन्तर्गत में ही है। गांधीजी का विचार था कि पश्चिमी देशों के जनतन्त्र के अन्तर्गत में ही है। हममें ठाकुर जनतन्त्र के अन्तर्गत में के कुछ कीटाणु के अन्तर्गत में हैं, लेकिन वह सच्चे अर्थों में जनतन्त्र नहीं हो सकता

१ रामनाथ सुमन— गांधीवाणी' पृ० १८१-१८६।

२ हरिजन सेवक १८-१२-३६' पृ० ६।

३ निमलकुमार बोस— सत्येवजयन्त फार्म गांधी पृ० ४२।

है जब हितारहित हो जायगा और इसमें से बढभमली व खुराफात घटाय हो जायेंगे ।^१ तीसरे गांधीजी के मतानुसार—मालोचन प्रत्यालोचन लोकतन्त्र का प्राणतत्व है । उनकी नाकतंत्र सम्बन्धी धारणा में समाज के प्रत्येक सदस्य को शासन की मालाचना करने का अधिकार है ।

राज्य सम्बन्धी धारणा—महात्मा गांधी ने अपनी रचनाओं में अधिकतर राज्य की सुरक्षा पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला है । इस सम्बन्ध में वह कांङ्ग्रेसन 'सूचन की One step enough for me उक्ति के उपासक थे । फिर भी हम उनके विभिन्न भाषणों, वचनों और लेखों से अनुशीलन द्वारा उनकी राज्य सम्बन्धी धारणा का यादा या परिचय पा सकते हैं ।

भारत के देवदूत महात्मा गांधी के लिए हिंसा के प्रतीक राज्य का चिह्नित की दृष्टि से देतना मन्था स्वाभाविक था । उनका विश्वास था कि राज्य का उदात्त ढानन की प्रवृत्ति नतिकता की दृष्टि से घातक है क्योंकि कोई भी ऐसा इत्य जा ऐं दक नहीं है नतिक नहीं कहा जा सकता । महात्माजी के विचार में आदम समाज यस्या राज्य विहीन उरुत न है । 'ऐसे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति प्रभुता प्राप्त है । वह प्रभुता शासन में तरट करता है कि घने पडौमों के लिए कभी विघ्न नहीं बनता ।'^२ गांधीजी की धारणा समाज व्यवस्था में आम सभ तथा आम गमाज दोनों ही ऐं दक आधार पर संघटित हान । ऐसी समाज व्यवस्था में राजकीय शक्ति विकेंद्रित रहगी ।

गांधीजी राज्य का स्वयं ही एक साध्य न मानकर जनता की अधिकतम कल्याण-साधना का एक उपाय मानते थे । व हीमल की इस मा उता के विरुद्ध थे कि राज्य मानवीय गणठन का प्रतिम सत्य है । सतन में ही एक साध्य है और नतिकता घनतिरता की भावना से ऊपर है । उसकी दृष्टि में तो राज्य जनता की कल्याण साधना के लिए बहुत से मायनों में न एक साधन था । गांधीजी उदुगन्धियों और धरातंत्रतावाधियों की भाति राज्य के निरनुपान प्रभुत्व निन्दा का प्रतिपादन करते थे । उनका विरुद्ध नतिक प्राथितार पर आधारित जनता के प्रभुत्व में विश्वास था । गांधी जी का मत था कि ध्यार्जित को राज्य के धारण उभी समय तक मानन चाहिए जब तक कि व उचित और यावपूत नें ।

महात्मा गांधी राज्य के वायधन को नूनतम रखने के पारसाला थे । उनके अनुसार दरग न का घन गाता के विघ्नतल से स्वत न होने का प्रचारण गता है । उनका मत था राज्य के अहितार इत्य ऐं दक समुदायों द्वारा सम्पादित हान पाटि । गांधीजी का कहना था कि अधिकतम राज्य के लिए विरुद्ध पाकनणों का मायना भी ज है तब ही सन अधिक शक्ति से ही करना वाधनीय है ।

१ हितारहित मन्था - ६ - ० पृ० २२० ।

२ पृ० ४१० एत० धानन गग- भातिदितन दितमकी धाक महात्मा गांधी में उ ७१ पृ० २६६-२६७ ।

३ वन इधिया (२) पृ १६०

महात्मा गांधी और विश्व शान्ति—प्राथमिक युग की सबसे बड़ी समस्या शान्ति की समस्या है। अब यह विश्वास दिन प्रति दिन बन पड़ता जा रहा है कि यदि मनुष्य ने अंतर्राष्ट्रीय भगड़ों का युद्ध के द्वारा गुल ताना नहीं रखा तो सम्पूर्ण मानव संस्कृति और मानव जाति का विनाश हो जाएगा। विश्व शान्ति के सम्मान में गांधीजी का विचार था कि अब तक मनुष्य ने अपनी सामूहिक समस्याओं को गला घाघार पर हिंसा द्वारा हल और विग्रह प्राप्ति के द्वारा सुलभाने का प्रयाग किया है। उनका मत था कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामाजिक राजनीतिक हो या धार्मिक पुराई का परिहार बुराई से नहीं किया जा सकता और उन्नी तरह से जैसे कि गतान गतान को नहीं हटा सता। गांधीजी कहा करते थे कि आज की अभ्यवस्था का मूल कारण मनुष्य के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में सामंजस्य का न होना है। उनके अन्तर्गत विश्व शान्ति की समस्या का स्थायी हल उन्नी निकल सकता है जबकि मनुष्य के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में मनुष्यन स्थापित हो जाए। वे नतिक मापदण्ड जो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन का नियमन करते हैं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी प्रयुक्त किए जाने चाहिए। यदि व्यक्तिगत जीवन में कोई मनुष्य छन कपट और हिंसा प्रादि आसुरी वृत्तियां का प्रय वेता है तो वह निरा का पात्र माना जाता है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी ऐसा ही क्यों न हो? गांधीजी के मत से अहिंसा और सत्य के सिद्धांत व्यक्तिगत आचरण के ही सिद्धान्त न बनकर समुदायो और राष्ट्रों के आचरण के सिद्धांत बनने चाहिए।

मनुष्य ने अपनी युग युग बापी जययात्रा में सत्याचार और सत्याय का सामना करने के लिए अब तक हिंसा और घृणा और युद्ध का ही सहारा दूना सीखा है। महात्मा गांधी ने सत्या को सत्याय और सत्याचार का सामना करने के लिए सत्याग्रह के रूप में एक अमिनव पद्धति का सफलतापूर्वक प्रयोग कर इसकी वावहारिक उपयोगिता को मली भाति सिद्ध कर दिया।

महात्मा गांधी का धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक कायक्रम भी विश्व-शान्ति का साधक है। धार्मिक क्षेत्र में गांधीजी विकेंद्रित उद्योगों के पक्षपाती थे यदि उद्योगों का पूजावादी आचार पर केन्द्रिकरण होता है तो इससे शोषण और साम्राज्यवाद बढ़ता है। यदि उद्योगों का साम्यवादी आचार पर केन्द्रिकरण किया जाता है तो इससे नोकरगारी बढ़ती है। एसी स्थिति में गांधीजी का विनेन्द्रिकरण सिद्धान्त शान्ति की दृष्टि से सबसे अधिकतर है। सामाजिक क्षेत्र में गांधीजी ने ऊंच और नीच के समस्त भेदभाव हटाने शान्ति की सराहनीय साधना की है। राजनीति क्षेत्र में गांधीजी ने वतत्र के समर्थक थे। नकिन उनके लोकांत में स्थानीय स्वायत्तता का बड़ा महत्व है। सधपत साधनों के अत्यधिक मात्र अहिंसा और सत्य के आधार पर सामूहिक और राजनीतिक जीवन में नतिकता का पुट देकर विवादों का हल करने के लिए सत्याग्रह को अपनाकर शोषण से उन्मुक्त प्राथमिक अर्थतंत्र तथा विकेंद्रित उद्योगों के ऊपर प्रबलम्बित रचनात्मक कायक्रम प्राप्त पचायता के

माध्यम से स्वस्थ और शक्तिशाली स्थानीय स्वशासन तथा हड़ते बढ़कर उपयोगी कार्य में निरत गति व समाज के योग्युक्त जीवन के द्वारा महात्मा गांधी नतिक सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सामंजस्य तथा सफलता प्राप्त, प्रभावशाली लोकतंत्र की स्थापना करना और विश्व शांति की स्थापना करना चाहते हैं ।^१

क्या गांधीजी का राजनीति-दर्शन क्रान्तिकारी है ?—महात्मा गांधी के राजनीति दर्शन पर समाजशास्त्री और साम्यवादी तुल्य वाम पन्थाय आलोचकों ने यह बार-बार आक्षेप किया है वह सुधारवादी है प्रतिनिधायकवादी है और क्रान्ति का विरोधी है। गांधीजी के राजनीति-दर्शन का निष्पत्त मूल्यवान् इस आक्षेप को निराधार मिट्टी करता है। उनका राजनीति दर्शन का प्राथमिक स्वरूप का निष्पत्त करने से पूरा क्रान्ति शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक है। क्रान्ति का सचयममत अर्थ पूरा मयमा मन्तर परिवर्तन है। क्रान्ति के लिए यह विचार आवश्यक नहीं है कि परिवर्तन हितक और शक्तिम ही हो। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्ति का अर्थिप्राय यह होता है कि प्राचीन जी-प्राणीय मान्यताएँ हस्त ही जाएँ और उनका स्थान नूतन उच्चतर नतिक मान्यताएँ ग्रहण करें। गांधीजी का राजनीति-दर्शन इस बमोटी पर परम जाने पर अक्षयिण स्व से क्रान्तिकारी उद्हरता है। यदि हम क्रान्तिकारी में किसी एनी वस्तु का अर्थिप्राय ग्रहण करें जो जनता का दृष्टिकोण में सुगन्धर लाती है जनता की परिवर्तित मन स्थिति और मायताओं का नूतन मूल्यवान् करती है तो गांधीजी द्वारा प्रतिपादित विचार अत्यन्तम अर्थों में क्रान्तिकारी हैं।^२ कहा जा सकता है कि गांधी के विचार भौतिक तो हैं नहीं पुराने ही हैं फिर वे क्रान्तिकारी कसे हुए ? इस सम्बन्ध में यह स्मरण है कि विचारों के क्रान्तिकारी होने के लिए उनका भौतिक होना अनिवार्य है। क्रान्ति की सच्ची कसौटी विचारों द्वारा लाए गए परिवर्तन की विशेषता है। इस दृष्टि से महात्मा गांधी ने विचार-क्षेत्र में जो क्रान्ति उत्पन्न की है वह सचवा अमूल्य है। इसका अन्तर्गत भारत तक ही सीमित रहने वाला नहीं है वह दूसरे देशों को भी अपनी ओर निश्चित आकृष्ट करेगा। महात्मा गांधी की संसार के राजनीति-दर्शन को न यह नहीं है कि उन्होंने किन्हीं नए सत्यों का आविष्कार किया प्रत्युत यह है कि उन्होंने प्राचीन सत्यों का अपने युग की समस्याओं के समाधान में अर्थिप्राय किया। गांधीजी के सर्वोच्च उत्तम दर्शन का एक अत्यन्त प्रयोग अर्थिप्राय विरोध भाव के नूतन-पक्ष आन्दोलन में सिद्धाई देता है। नूतन पक्ष आन्दोलन न यह तक जो सफलता प्राप्त की है इसका अर्थिप्राय भाव अत्यन्त अर्थिप्राय प्रतीत

१ आचार्य जी की कृपानो—गांधीयन विधिपक्ष और अर्थिप्राय (ने हिंदु रतान टाइम्स जनवरी ८ १९५३)

२ डॉ० ए के आचार्य—गांधीयन आन्दोलन विचारधारा इत इत रिचो सुन्दरी ? कोल्कता १०, नं० १ तथा २ पृ ३० ।

होती है। वह देश में एक अहिंसक क्रांति का पथ प्रकाश कर रहा है। यदि उसे अपने लक्ष्य में पूर्ण सफलता मिल जाती है तो गांधी दत्तन मानवता के लिए अनुपम क्रांतिकारी सिद्ध होगा।

१४८ गांधीवाद और साम्यवाद एक तुलनात्मक विवेचन

बनो बनो यह समझा जाता है कि गांधीवाद और साम्यवाद में कोई आन्तरिक भेद नहीं है दोनों जुड़वा भाई हैं दोनों के चरम उद्देश्य एक हैं। यदि दोनों में थोड़ा सा अंतर है भी तो वह केवल साधन प्रणाली का है। सन्नि उषे किसी भी प्रकार आन्तरिक भेद नहीं कहा जा सकता। उस मत के प्रतिपादकों का कहना है कि हिंसा और अहिंसा के बीच भेद ही रेखा अत्यंत सूक्ष्म है क्योंकि महात्मा गांधी ने स्वयं यह चिन्ता धारित की जहां सिर्फ कार्यरता और हिंसा के बीच किसी एक के चुनाव की बात हो वहां हिंसा का पक्ष मार लिया जाएगा।^१ गांधीवाद और साम्यवाद का सम्बन्ध में इस प्रकार का मत विभ्रम दुर्भाग्यपूर्ण है। यह ठीक है कि दोनों के आदर्श में थोड़ी सी समानता दिखाई पड़ती है और यह यह है कि दोनों ही समाज के अल्पसंख्यकों और शोषितों के प्रति अत्यंत सत्य हैं दोनों ही एक ऐसी समाज-व्यवस्था का स्थापित करना चाहते हैं जिसमें मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण न हो सके और सबको बिना किसी भेदभाव के अपने विकास की समान सुविधाएं उपलब्ध हो सकें। उस सामान्य आदर्श को छोड़कर दोनों में अब कोई समानता नहीं है। आवश्यक है कि दोनों के दृष्टि में का सौं मही मन्थन किया जाए। गांधी दत्तन के प्रकाश पड़ने की किशोरलाल मशहूरवाला ने अपनी कृति गांधी एण्ड मार्क्स में गांधीवाद और साम्यवाद के दृष्टिभेद का तुलनात्मक विवेचन करते हुए लिखा है कि

गांधीवाद और साम्यवाद एक दूसरे से इतने ही भिन्न हैं जसे कि तान से हरा भिन्न होता है अर्थात् हम जानते हैं कि गांधी के उस रागी की जिसे रंगभेद की पहचान नहीं होती दोनों समान प्रतीत हो सकते हैं।^२ उन पुस्तक की समिका गांधीजी के प्रमुख शिष्य आचार्य विनोबा भावे ने लिखी है। उन्होंने भी गांधीवाद और साम्यवाद में दृष्टिभेद पर ऐसा ही मत व्यक्त किया है। उनके शब्दों में दोनों त्रिचर पारस्परिक हैं उनका अंतर सूत्रबद्ध है और दोनों एक दूसरे की पट्टर विरोधी हैं।^३

दार्शनिक आधार—साम्यवाद का दार्शनिक आधार दृष्टान्तिक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) है। वह हीमिस एण्ड हीमिस और सिंथीमिस की पद्धति पर आधारित है। इसका मूलभूत सिद्धांत के अनुसार जगत् का जाकुत्र कार्य-कारण द्वय ही पारस्परिक होता है वह आत्मा परमात्मा जसी किसी चेतन सत्ता की चीज नहीं है। उसका विश्वास है कि भौतिक पदार्थ ही वह अन्तिम चीज सत्ता है—

१ यह दृष्टि ११ अगस्त २०१३, पृ. ३।

२ किशोरलाल मशहूरवाला— गांधी एण्ड मार्क्स पृ. ३८।

३ किशोरलाल मशहूरवाला— गांधी एण्ड मार्क्स पृ. १६-१७।

मानिकों का होता है और जो उत्पादन साधनों पर एक्कड़न प्राधिपत्य का उन्मोह करते हैं हैं दूसरे वे लोग जिन्का वाय प्रादेश-पालन करना ही होता है और जो प्रथमोक्त वग द्वारा नाना प्रकार से भोषित होते हैं । इन दोनों वर्गों के द्विज एक दूसरे से सवधा निग्र हैं और उनमें प्रत्यक्ष या पराक्ष रूप से घनघरत सघष जारी रहता है । मार्क्सवाद मानव विकास के सम्पूर्ण इतिहास को इसी वग सघष की गाथा मानता है । प्राचीन काल में ये विरोधी वग स्वतः प्र मानिक और राम के रूप में थे, मध्यकाल में सामन्तगण और कृषक दास के रूप में थे और आज़काल पूँजीपति व श्रमिकों के रूप में दिखाई पड़ते हैं । वैसे तो समाज में इन आघारभूत वर्गों के घनघरित सघष कई प्रकार के वग भी पाए जाते हैं परन्तु इन तीनों के द्विज प्र नानातरा दही आघारभूत वर्गों में से किसी एक के माग सम्बद्ध होते हैं । मार्क्सवाद उन समस्त साधनों के उपयोग का कट्टर समर्थक है जिनके द्वारा वग सघष को उत्तन्ना भिन्नती है । ता कस्य वग सघष की घ्राण पर धानो टावने में मानववात् उ ह प्रतिनिधावा के ठहराना है ।

गाधीवाद वग सघष का नहीं प्र घन वग सामजस्य का पुजारी है वह समाज को स्थायी रूप से दो परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित नहीं मानता । गाधीजी के सर्वोदय भावना में पूजापतिया और श्रमिकों दोनों के द्विजों के सखल और विनास की समान व्यवस्था है । गाधीजी जिन रामराज्य का स्वप्न देखते थे उममें वहु राजाघों और मियादियों दोनों के अधिकारों की रक्षा की बात कहते थे । यह ऊँचे और नीचे वर्गों की समस्या को बर्णाश्रम घम के द्वारा सुलभाना चाहते थे । पूँजीपतियों और श्रमिकों में सघष-वय स्थापित करने की दृष्टि से गाधीजी कहुा करते थे 'पूँजी पतियों और श्रमिकों को एक दूसरे का पूरक बन जाना चाहिए । उन्हें एक ऐसे विशाल परिवार के समान होना चाहिये जिसमें वे एकता और सामजस्य के साथ निवास कर सकें । ' उनका मत था कि मैं किसी ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें एक ब्यक्ति दूसरे से अधिक धनी नहीं होगा । लेकिन मैं ऐसे समय की कल्पना प्रवश्य करता हूँ जब भमीर भादमी गरीबों का शोषण कर भमीर बनने से घणा कर देंगे और गरीब भादमी भमीरों से घणा करनी बन्द कर देंगे । ' महात्माजी पूँजी पतियों का नहीं पूँजीवाद का ही विघ्वन चाहते थे । पूँजीपतियों के लिए परामश था कि आपको श्रमिकों का दृष्टी बन जाना चाहिए प्रथवा आघाय विनोबा भावे की शम्भवली में विरघस्त वृत्ति से काम लेना चाहिए ।

साधन प्रणाली का भेद—गाधीवाद और मार्क्सवाद में एक प्रघान घन्तर साधन प्रणाली के भेद को लेकर है । मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार यदि हमारे साध्य ऋष्ठ हैं तो हम उनको प्राप्त करने के लिए कसे भी साधनों का प्रयोग क्यों न करें सब सम्म हैं । यही कारण है कि मार्क्सवाद के अनुयायी घपने आदर्शों की सिद्धि

१ वग इण्डिया १९२० घगस्त २५ पृ० २८५ ।

२ वग इण्डिया १९२५ जुलाई, २१' पृ० २२८ ।

के लिए छल प्रसत्य और हिंसा आदि बुरे समझ जाने वाले उपायों का प्राथम्य लेना भी प्रवाहनीय नहीं समझते। वैसे तो मासवादानी अपने उद्देश्य लागू के लिए शान्ति पूरा और बधानिव कायवाहिया का भी सभ्या उरम्कार नहीं करते परन्तु उनका विश्वास है कि सत्ता च्युत पूजीपति वर्ग की प्राति विरोधी प्रतिक्रियावादी हलचलों को नष्ट करने के लिए किसी न किसी स्तर पर रक्तपात और हिंसा का उपयोग अवश्यम्भावी है।

गांधीवाद अष्ट साध्य की प्राप्ति के लिए अष्ट साधनों का पक्षपाती है। वह अहिंसा तथा सत्य का एकनिष्ठ पुजारी है और अपने बट्टर व बट्टर धनु के प्रति भी सदैव व्यवहार का समर्थन करत है। चूंकि गांधीवाद की धारणा है कि मृष्टि के प्रत्येक जीव में ईश्वर का अंश है इसलिए वह मनुष्य के हृदय परिवर्तन में आस्था रखता है। गांधीजी का मत था कि उनका सत्य और अहिंसा व सिद्धान्तों का सत्य सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। वह कहा करते थे कि हिंसा के ऊपर किसी भी स्थायी वस्तु का निमाण नहीं किया जा सकता।^१

सोवियत की धारणा—मासवादानी विद्वान् सोवियत के सिद्धान्त की बट्ट धारणा करता है। उनका मत था एक विपुल पूंजीवाग धारणा है जिसका सव हारा का के लिए कोई उपयोग नहीं है। डाटस्का ने लिखा था— सोवियत एक निरन्त्रा और निरपन स्वां है। हम सवदारा का व मान में इसका परिवार करत है। तासन व के द्वारा—विन प्राप्त करा का द्वारा विनकुन बरार है।^२ मान्य बाग व मनुष्याया सोवियत प्रालन के द्वारा (Democratic Centralism) र विद्व न का मनुष्यकरण करत है। व धरने विरोधिता का मापण प्रत्या प्रत धारिनी सोवियत प्रालन स्वतंत्रताए प्रदात करती के लिए तंत्रिक भा प्रस्तुत नहा है। मासवाद मपन व अथ की मुविधा व विचार स पुता मा न माग ना ही व रपर उन्हा सागा व नीति तो भूनिगत कायवाहियों और सागा रान्ति या उमपन करन का है। प्रालिता के नीचे में वोन और कहा यह कहा है कि सत्तीय सपथ ही मासुओं का मुख्य सपथ है? क्या इतिहात यह सिद्ध नहीं करता कि उस कवन एक सहायक के रूप में हमारी प्रान्ति की सापस है और मजदूरों की ममस्वाए हृदता व सासन शान्ति व शास ही हल हां सकतो है? मासवादानी अपभितक स्वतंत्रता का उत समय तक कोई महत्त्व नहीं देन जब तक कि उसके साथ धार्मिक सुरक्षा सपुनत न हो।

महात्मा गांधी जनजात सोवियतवादी थे। उनका मत था कि प्रसमी लोक

१ वग इच्छिया, १५ नवम्बर १९२८' पृ० ५८१।

२ एच एन प्रसवात डाटा— गांधीन एम्ब डम्पूनिष्म, लेख में उद्धृत मासन रिम्पू नवम्बर, १९५२' पृ० ३५८।

३ स्टालिन— 'सोवियत धार्मिक लेनिनिष्म', पृ० २१

तत्र तो अहिंसा से ही प्राप्त हो सकता है। १ यह सोचत-गान्धिमूलक पारणायों को अशक्तत्व के सर्वांगीण विकास के लिए पर्यायस्वरूप मानते थे। उनका कहना था कि लोकतंत्र और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव में रामराज्य की स्थापना असम्भव है। गांधीजी की आदर्श समाज व्यवस्था में शांति से शांति व्यक्ति को महान् महोपान व्यक्ति को उन्मुक्त आलोचना करने का अधिकार प्राप्त था। गांधीजी प्रत्येक मनुष्य के लिए अधिक सुरक्षा को बहुत आवश्यक स्वीकार करते थे परन्तु अपनी बेनी पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बलिदान करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं।

बे-कड़ीकरण विकेन्द्रीकरण—मात्रमवाङ् सवाधिकारवादी राज्य की मायता पर आधारित है। यह महाराज्य के अधिनायकता का प्रतिपादन करता है। सत्य द्वारा वग के अधिनायकत्व में प्रधानमन्त्री और प्रौद्योगिक शक्तियों का अधिनायक के द्रो-मुखी हाना सबवा नवगिक है। मात्रमवाङ् का अन्तिम प्राण राज्यविहीन समाज की स्थापना करना है पर इतना उच्चत के उन्मुखी राज्य जसा मात्र अन्त में देखा जा रहा है उसे तिरोहित हो जाएगा यह आशानी से समझ में नहीं आता।

गांधीवाद विकेन्द्रीकरण का प्रतिपादन करता है। गांधी जी के केंद्रीकरण और लाक्षणिक को एक दूसरे के विरुद्ध प्रतिरूप मानते थे। उनका कहना था विकेन्द्रीकरण से हिंसा और सवाधिकारवाद को प्रोत्साहन मिलता है। यही कारण था कि महात्मा गांधी बड़े बड़े उद्योगी मशीनों और कर्मियों राजसत्ता के विरोधी थे। हस्त मजिम विमान पमाने पर प्रौद्योगिकरण और विकेन्द्रीकरण द्वारा वग गांधीजी को पट्ट नहीं था। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था जब मैं हस्त की ओर देखता हूँ जहाँ प्रौद्योगिकरण अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया है, तब मैं वहाँ का जीवन प्रभावित नहीं करता। बाइबिल की भाषा में यदि मनुष्य अपनी आत्मा को छोड़कर सत्ता भी प्राप्त कर ले तो उसे क्या नाम होगा। २ गांधीजी अधिक से अधिक आत्मनिर्भरता और विकेंद्रित राजसत्ता सहित ग्राम पंचायतों की स्थापना का समर्थन करते थे। उनका विश्वास था कि सब अच्छे शासन तो वही है जो न्यूनतम शासन करता है।

१४९ भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन को महात्मा गांधी की देन

भारतीय राष्ट्रवाद के प्रतीक—१९१६ के पश्चात् भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन का इतिहास महात्मा गांधी की जीवन गाथा है। प्रायः तीस वर्षों तक भारत के राष्ट्रवादी रणमंच पर महात्मा गांधी ने अपना एकाग्र अधिपत्य जमाए रखा। इस सम्पूर्ण अवधि में वे भारतीय राष्ट्रवाद के एकमात्र सच्च प्रतीक प्रणता और प्रेरक थे। उनका एक एक कृत्य और वक्तव्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए व्यग्र मात्र से सपपशील भारत की आत्मा बोलती थी। उनके विद्यमान नेतृत्व और चुम्बकमय

१ निमन कुनार वसु— सेलेक्च स फाम महात्मा गांधी पृ० ४३।

२ हरिजन सेवक, २८ जून, १९१६ पृ० ४३८।

व्यक्तित्व ने भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम को एक नूतन दिशा में धीरे उभरे बीमवीं घाटान्नी का एक महाकाव्य बना दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्या की शक्तता निद्रा को त्याग प्रगडाई लेकर उठने हुए भारतीय राष्ट्र ने महात्मा गांधी के रूप में अपनी समस्त राष्ट्रीय आकांक्षाओं की साकार प्रतिभूति प्राप्त की।

महात्मा गांधी के पूर्व भारत की राजनीति—भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन को महात्मा गांधी की जो महान देन है उसका ठीक ठीक मूल्यांकन करने के लिए उनके पूर्व की भारतीय राजनीति का सक्षिप्त विहंगावलोकन अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह समर में विजय प्राप्त कर भारत लौटे उस समय यहाँ दो राजनीतिक दलों उत्पन्न हो चुके थे और उग्रवादी दल की तूती बोल रही थी। उग्रवादी दल अपने राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बधानिक और घातपूर्ण आन्दोलन में विश्वास रखता था। उग्रवा राजनीतिक लक्ष्य उस प्रकार की भाषण प्रणाली को प्राप्त करना था जिसका उपयोग ब्रिटिश साम्राज्य के स्वामित्व को नीचे गिराने के लिए किया जा सके। उग्रवादी दल ब्रिटिश शासन का बटु धालोचक्र था। वह अपने राजनीतिक लक्ष्य के सम्बन्ध में विनम्र स्वभाव और निश्चित नहीं था। उसका स्वराज्य का अर्थ उग्रवादी दलों के स्वामित्व में बहुत भिन्न नहीं था। उग्रवादी दलों की सोच प्रणाली में भी अस्पष्टता की बहुत मात्रा है। आचार्य कृपलानी के अनुसार वे यह अनुभव करते थे कि परिस्थिति को देखते हुए कुछ आन्दोलनकारी कार्यवाही करने की आवश्यकता है परन्तु वह आन्दोलनकारी कार्यवाही क्या होनी चाहिए इस के लिये जानते ही नहीं थे कि भारत के लिए उग्रवादी दलों का क्या महत्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक दल पर प्रभाव पड़ा। वे पूरा पूरा भारत को ही लक्ष्य कायम था और न कोई निश्चित राजनीतिक लक्ष्य। राष्ट्रवादी आन्दोलन रूपल कुछ महत्वपूर्ण निश्चित बातें तक ही सीमित था और हमारी जनता उत्तमना जोदा और राज्य ने भर हुए बच्चे इन बातें पर नहीं बलिके वीरियों से घराता घन और एमीना बगती धार थी और यह कि भारत की रण रण में घनती हुए इतनी गहरी पहुँच पुरी थी कि उसमें हजार आनादिक जीवन का एक एक पक्ष विधान और अनुभव का धारे धीरे विन्दु निश्चित रूप में प्रकट कर देता है।¹

निष्कर्ष का सार—किन्तु भी संग्राम के निपाही के लिए निम्नलिखित धारणाएँ हैं। भारत के महान राजनीतिक विचारक आचार्य और पाण्डित्य ने निम्न है कि आचार्यों का मत यह बनकर जनता को धन्यमान देता है। उन लोगों में जहाँ राष्ट्रीय सरकार विद्यमान है जनसाधारण की निम्नलिखित धारणाएँ स्वातंत्र्य में अनिच्छित होती हैं। यदि जनता सरकार की नीति को बुरा समझती है तो उसकी

१ न० बी० कृपलानी—'गांधी की स्टेटसमन' पृ० ८।

२ बवाहरखान बेहू—'समृद्धि', पृ० १४।

निम्न कठ से मालोचना करती है उसे किसी प्रकार के दण्ड की गारा नहीं होती । लेकिन उन देशों में जो पराधीनता के पाश में जकड़े होते हैं जनता की मांग की प्रथम सरकार की मनवाही मालोचना करने की कोई स्वतंत्रता नहीं होती । भारत में भी यही बात थी । यहाँ सबसे प्रमुख भावना प्रथम की थी—एक सर्वभारपी दुःखदायी और गला घोटने वाला भय—पौर का भय, पुत्र का भय, प्रफमरों का भय दमनकारी कानूनों का भय जमींदार क गुमाशते का भय महाजन का भय और उस वैशारी तथा भूख का भय जो हर समय मुह बाये खड़ी रहती थी ।^२

महात्मा गांधी ने भय के इन बादलों को तीव्र माधत के ंग से छिन्न मिन्न कर दिया । उन्होंने भारतीय जनता को निम्नता का स देग दते हुए घोषणा की वह राष्ट्र महान् है जो सदा मौत को तर्किया बनाकर सोता है ।^३ वा. वा. अष्ट सेम्मुषन के अनुसार गांधीजी ने भारत को अपनी कमर सीधी करना सिखाया अपनी भाँजों ऊपर उठाना सिखाया और सिखाया प्रविचन दृष्टि से परिस्थितियों का सामना करना । गांधीजी ने अपने निम्न नेतृत्व से पूर्वोक्त द-अपन के शिकार भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के सन्निर्भों के निरत कठिन प्रतिबारा त्रन पर माहमपयक चना की प्ररणा दी उसमें केवल आक्रमण का ही नहीं प्रत्युत आत्म रक्षा का भा प्रतिकार प्ररित है ।

शांति-गन का नतिक आधार—सतार क इतिहास में इस बात का एन भी उदाहरण नहीं मिलता जब कि किसी राष्ट्र में विशेषा शासन स हिमा और रक्षापात क बिना स्वतंत्रता हस्तगत की हो । इटली के एकीकरण प्रभेरिया के शासन युद्ध और आयरलैण्ड के राष्ट्रीय आ गोन—सबसे एक ही सत्य मुत्रर हाता है कि यदि किसी देश का विशेषा साम्राज्यशाही से मुक्ति प्राप्न करनी है तो हिंसा और रक्तपात परिरहाय है । स्वयं हमारा देश में तिनक जसे उग्रवादी नेता इस बात का समथन करत थे कि साध्य के सम्मुख साधन नगण्य हैं । उनका कहना था कि यदि हम अष्ट घादशों की प्राप्ति के लिए हीन उपायों का आशय गते हैं तो विनकुल अनुचित नहीं है ।

महात्मा गांधी इस विचार के अनुयायी नहीं थे । वह साध्य और साधन में प्रयो-याश्रित सम्बन्ध मानते थे । उनका विश्वास था कि अष्ट साध्य की प्राप्ति के लिए साधन भी अष्ट होने चाहिए । वह भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रतीव उत्सुक थे लेकिन इसके लिए हिंसा छल वपट और असत्य प्रादि जषय उपायों का आश्रय लेना उन्हें कदापि अष्ट नहीं था । उन्होंने एक बार कहा था 'मेरे जीवन-दशन में साध्य और साधन का अंतर नहीं है । कुछ लोग कहते हैं कि साधन तो आसिर साधन

२ जवाहरनाल नेहरू— राष्ट्रपिता पृ० १५ १६ ।

३ महात्मा गांधी— हिंद स्वराज्य' पृ० ७३ ।

४ सबपत्नी राधाकृष्णन— गांधी अभिनन्दन प्रथ पृ० २२८ २३ ।

हो है। मैं कहूंगा कि साधन ही तो भावितर सब कुछ है। जब साधन होंगे, वसा ही साध्य हावा। हिंसक साधन हिंसक स्वराज्य देगे। वह ससार के लिए और स्वयं भारत के लिए एक खतरा होगा।^१ गांधीजी न भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन का आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने देशभक्ति को पूरा आन्दोलन और यहन धार्मिक उत्साह की ऊषाई पर उठा दिया।^२ गांधीजी के नतिक दृष्टिकोण का ही त्रिमका उन्होंने राजनीति में अद्विग भाव से पालन किया यह फल था कि जहाँ उनसे कोई बड़ी भून हुई उन्होंने उसे निस्सकोप भाव से सावजनिक रूप में अपनी हिमायत-तुल्य भून बहकर स्वीकार किया, दूसरों के दोषों को भी अपने शीश पर ले लन में कभी आगा-भीक्षा नहीं साका बार करने से पव शत्रु का सदैव चतावनी ही और कठोर से पठोर सफ्ट की घडी में भी अपने विरोधी का अपकार नहीं चाहा। उन्हें अपनी दुबलताओं और बुराइया को भी शत्रु के सामन खोनकर रख देने में हिचक नहा हाती थी। वह ईसा और बुद्ध की भाति पाप से घृणा करते थे पापी से नही अन्याय से घृणा करते थे, अन्यायी से नही। उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सिपाहियों को सदैव यही उपदेश दिया कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी बन ब्रिटिश जाति के नही। उनका कहना था मैं अश्वरी के विरुद्ध नहा हूँ अश्वरी के विरुद्ध नहा हूँ सरकार के विरुद्ध नही हूँ लकिन असत्य के विरुद्ध हूँ पाखण्ड के विरुद्ध हूँ अन्याय के विरुद्ध हूँ।^३

जनता का आन्दोलन—भारतीय राजनीति में गांधीजी के पुत्रागमन के पूव हमारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम केवल कुछ मध्यवर्गीय पढ़े लिखे लोगों तक ही सीमित था। जन साधारण में उनका कोई सीधा सम्पर्क नहीं था। भारतीय राष्ट्रवादी ब्राह्मण कायस अग्रजी पढ़े लिखे व्यक्तियों का मस्या थी। उनकी सम्पूर्ण बाधबाही अग्रजी में संचालित होती थी। उनका समस्त उद्देश्य गणित वर्गों के अधिपतियों से सम्बन्ध रखने थे। वह मानस के ऊँचे पदों पर भारतीयों की निगुणित की माँग करती थी पर भारतीयों न उसका आशय अग्रजीई सिधित भारतीय का ही होता था। राष्ट्रवादी नेता भारत के औद्योगिक पुनरुत्थान की बात प्रवचन करते थे लकिन इस औद्योगिक पुनरुत्थान का आर्थिक आधार क्या हो इस सम्बन्ध में उनकी कोई स्पष्ट विचारपारा नही थी। उन्हें भारतीयों की निपनता का ज्ञान अवरस था लकिन यह ज्ञान उन्होंने पुस्तकों से प्राप्त किया था। वे उन्नीसवीं शती के अन्त में और पन्द्रहवीं शती के अन्त में भूतल पर छाए सात नाग पर्वों में जगह जगह बिलखे पढ़े करोड़ों पथभूमा की उन्नत समस्याओं और कठिनाइयों से व्यवहारत बिलकुल ही अपरिचित थे।

१ 'यग इण्डिया—२६ निसम्बर १८८४ पृ० ४३५।

२ नयननाथ गुप्त—गांधी एण्ड गांधी-म' पृ० ८।

३ धार० ८० प्रभु और १०० धार० राव—'दी माइण्ड काक मशरुमा गांधी, पृ० १७५।

प्रथमतः उन दिनों की सम्पूर्ण वायव्य राजनीति भावनात्मक थी।^१

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते ही उस गहरी स्थिति को बदल डाला। यह सच प्रथा में जनता का नेता था। उसी धर्मनात्मक की धाती भारत की निष्पन्नता की साक्षात् प्रतीक थी। उर्ध्व भारत का ग्राम-समस्याओं का ठीक परिचय था। उनसे गतिशील नृत्य में राष्ट्रीय आन्दोलन जनता का आत्मनिर्भर बन गया। गांधीजी ने कांग्रेस के सविधान में इस प्रकार संशोधन किया जिससे वह जनता की संस्था बन सके। उनकी प्रेरणा से कांग्रेस की सारी कार्यवाही भद्रजी के स्थान पर हिन्दुस्तानी में होने लगी। गांधीजी ने कहा कि हमलो भारत का गांधी बनना हुआ है। उन्होंने कांग्रेस के स्वयंसेवकों को गांव गांव जाकर काम करने का परामर्श दिया। इस तरह भारत का स्वतंत्रता संग्राम की आवाज एक एक गांव में एक एक घर में पहुंच गई। गांधीजी ने जनता का आन्दोलन सत्य का पान कराया। उन्होंने कहा—मेरा स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य है। जीवन की आवश्यकताएँ नरेशों तथा धनिकों के साथ साथ आपको भी मिलनी चाहिए। मैं इस सम्बन्ध में यतन करूँगा कि स्वराज्य उस समय तक पूर्ण स्वराज्य नहीं है जब तक आपकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती।^२ गांधीजी ने अपने प्राणवान नेतृत्व से उस पतित कार्यर और निराश जनता को जिसे अपनी स्वायत्त सिद्धि के लिए सभी प्रमुख दल पीड़ित और पतनित करत था वह और जिसमें विरोध की शक्ति ही नहीं रह गई थी ऐसा बना दिया जिसमें आत्म-सम्मान की भावना जाग उठी जिसे अपने पर मरना होने लगा जो अत्याचार का विरोध करने लगी और जिसमें मित्रकर्म काम करने तथा एक बड़े दृष्टि के लिए त्याग करने की सामर्थ्य आ गई।^३

आन्तिकारी आन्दोलन—महात्मा गांधी को इस बात का ज्ञान प्राप्त है कि उन्होंने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को लोक आन्दोलन ही नहीं बनाया प्रत्युत उसे जनानिकारी आन्दोलन के रूप में भी बनाना दिया।^४ उनसे पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन विधुद्ध धनानिकवादी तक ही सीमित था। राष्ट्रवादी नेता प्रस्ताव पास करते थे लेख लिखत थे धुमाधार भाषण देते थे कमी-कमी सरकार की हलकी फुनकी निरधर आलोचना भी कर बैठते थे। अपने उद्योग को प्राप्त करने के लिए ठोस कार्यवाही करने का उन्हें कोई विचार नहीं मूकता था। गांधीजी दूसरी धातु का बने हुए थे। उनकी आवाज शान्त और धीमी आवाज थी लेकिन वह जनता की चीख से ऊपर सुनाई देती थी। वह आवाज कोमल और मधुर थी लेकिन उसमें कहीं न कहीं फोलायी स्वर

१ ज. सी० कृपलानी— गांधी की स्टेटसमन पृ० ७७

२ पंग इण्डिया २६ मार्च १९३१ पृ० ४६।

३ जवाहरलाल नेहरू— राष्ट्रपिता पृ० १८।

४ कृपलानी— इण्डिया ए रिस्टेटमेण्ट पृ० १२९।

द्विपा हुआ था।^१ गांधी जी ने जनता को सदेश दिया कि 'यदि हम स्वतंत्र स्त्री पुरुषों की भांति रह नहीं सकते तो हमें मरने में सन्तोष लाभ करना चाहिए।^२ उनका कहना था 'स्वराज्य एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के लिए दान कदापि नहीं है। यह वह विधि है जिसे राष्ट्र के सर्वथम रक्त से गरीदा जाना है।'^३ उन्होंने जनता से यह दो टूक बात कह दी थी कि स्वराज्य की जययात्रा में हमें जिनियावाला बाग के हत्याकाण्ड जैसे घायलों की बारम्बार भावृत्तियाँ के लिए तैयार रहना चाहिए।'^४ गांधीजी की राजनीति ने अपने पूर्ववर्ती नेताओं की राजनीति से प्रयाण विद्विष्ट किया। उनकी राजनीति भाराम की नहीं, दृष्ट को पलायन की नहीं, जूझने की बात की नहीं बस की राजनीति थी।

१५० महात्मा गांधी और समाज-सुधार

पृष्ठभूमि—प्रायः पिछले एक सहस्र वर्षों से भारतीय समाज ऐसी अनेक शीघ्र सामाजिक कुरीतियों से पीड़ित रहा है जिन्होंने उसकी उन्नति के मार्ग में अनुत्पन्न रोडे घटकाए हैं। इस बीच में समय समय पर भारत भूमि में ऐसे बहुत से समाज सुधारकों का प्रादुर्भाव होता रहा है जिन्होंने इन सामाजिक कुरीतियों को मिटाने की प्रणय से चेष्टा की। इमें कोई सदेह नहीं कि उन्हें थोड़ी बहुत सफलता भी मिली, पर समयत सामाजिक कुरीतियों ने भारतीय जनता का पिड नहीं छोड़ा। जिस समय भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई यहाँ कान-बध बालविवाह शिशु हत्या, दास-प्रथा सती-प्रथा और असृश्यता जसी घातक सामाजिक कुरीतियाँ अपने निरुप्यत रूप में बिलमान थी। ब्रिटिश शासकों ने हम दो ही वर्षों तक अपने पराधीनता पाश में जकड़े रखा। इसके लिए हम उन्हें पादे रिठना ही पानी पी-पोकर कोसें, हम इस बात के लिए उनका हृदय से भानार मानना ही चाहिए कि उन्होंने हमारे सामाजिक जोका का सुधार करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। पाश्चात्य विद्या और संस्कृति के प्रभाव से भारतीयों में नूतन शक्ति उत्पन्न हुई और उन्होंने गहरर सामाजिक सुधारों की आवश्यकता का अनुभव किया। ताद विविध बटिक ने सती प्रथा, बाल-बध और सती बध, ताद एनबरो ने दास प्रथा का और ताद डलहोत्री ने पारिक पूजा के स्थान पर नर-चरि का पन्त किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रह्म समाज, धर्म समाज और रामकृष्ण मिशन प्रभृति जो विविध धार्मिक धाराएँ उठे उनका भी भारतीय समाज सुधार के क्षेत्र में समुत्पन्न योगदान है। गांधीजी ने अपने स्वयं के स्थिति से जहाँ राजनीति के क्षेत्र को पाला-बिठ किया वहाँ समाज सुधार का क्षेत्र भी उनकी प्रतिभा के प्रकाश से जगमगा

१ अयाहरलास नेहरू— राष्ट्रपिता" पृ० ५।

२ अय इतिहास—५ जनवरी, १९२२ पृ० ५।

३ अय इतिहास—५ जनवरी, १९२२ पृ० ५।

४ अय इतिहास—१८ दिसम्बर, १९२०" पृ० १००।

सठा। उनके हाथों भारतीय समाजगुधार की दीपगिरी मगने उच्चतम रूप में प्रकट हुई।

उग्र सुधारक—महात्मा गांधी ने समाज गुधार के प्रश्न का साधारण विगनरी की भांति नहीं, प्रत्युत उग्र सुधारक की भांति हल किया। उन्होंने जनता के मन में यह बात बठा दी कि त्रिहें हम सामाजिक कुरीतियाँ बहुत हैं व केवल सामाजिक विघ्न नहीं हैं प्रत्युत राजनीतिक विघ्न हैं जब तक हम उनका निवारण नहीं करते हमारे राष्ट्रीय जीवन का कोई उत्थान नहीं हो सक्ता। उन्होंने ६ अगस्त १९२१ का यह इण्डिया में निखाया मरा समाज गुधार का काय मरे राजनीतिक काय से किसी भी प्रकार कम या हीन नहीं था। तथ्य यह है कि जब मैं देखा कि मरा समाज गुधार का काय राजनीतिक काय की सहायता बिना नहा चल सकता, मैं राजनीतिक काय को अपने हाथ में लिया और उमी सीमा तक जहा तक उसने समाज गुधार के काय में सहायता दी। मैं यह स्वीकार करता हू कि मुझ समाज या इस प्रकार की घन्त शुद्धि राजनीतिक काय की अपेक्षा सीगुनी अधिक प्रिय है। गांधी जी का विश्वास था कि जितनी शीघ्र हम यह समझ लगे कि हमारी बहुत सी सामाजिक कुरीतियाँ हमारी यात्रा को अवरोध करती हैं उतनी ही शीघ्रता से हम अपने प्रिय बन्धु की ओर पग बढ़ाने में समर्थ होंगे। वह कहा करते थे कि समाज गुधार को स्वराज्य प्राप्ति के काल तक स्थगित करना स्वराज्य का भय न जानना है।

अन्तर्सांभ्रदायिक एकता—अपने सामाजिक कार्यक्रम में गांधी जी अन्तर्सांभ्रदायिक एकता की स्थापना को सबसे उपयोगी माग समझते थे। देश में शान्ति और सुखवस्था के लिए सांभ्रदायिक एकता की महत्ता को जितना उन्होंने समझा था शायद ही और किसी ने समझा हो। वे सांभ्रदायिक एकता को राजनीतिक दृष्टि से ही आवश्यक नहीं मानते थे वह भारत की सांभ्रदायिक एकता को मानवता के लिए एक मिसाल बना देने के आकांक्षी थे। गांधी जी ने इस तथ्य को अच्छी तरह से हृदयगत कर लिया था कि भारतवर्ष नाना धर्मों जातियों और साधनाओं का देश है जब तक उनमें परस्पर और सहिष्णुता का भाव नहीं रहेगा देश उन्नति नहीं कर सकता। गांधीजी विभिन्न धर्मों के दीक्ष मन्थन और अनुभव के परचाव इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे (१) सभी धर्म सच्चे हैं (२) सभी धर्मों में सुख-सुख गन्ती है (३) सभी धर्म मुझ हिंदू धर्म की भांति प्रिय हैं। २

महात्मा गांधी की अहिंसित यही कामना रहती थी कि उनके सपनों का भारत एक ऐसे मनोहर उपवन के रूप में बने जिसमें विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय सुवासित पुष्पों की भांति सुरमिभ हों। इस आदेश की सिद्धि के लिए उन्होंने जीवन भर कोशिश की। वह सांभ्रदायिक एकता का भय हृदय की वह सच्ची

१ आचार्य कृपनानी द्वारा गांधी की स्टेटस मन में उद्धृत पृ० २७।

२ निमलकुमार बसु— सेलेक्ड स फ्रॉम गांधी" पृ० २२१-२२७।

एकता मानते थे जो तोड़ने से भी न टूट सके। उनके मत से इस एकता को स्थापित करने की सर्वप्रथम बात यह थी कि 'हर एक कायस जन, चाहे वह किसी भी धर्म का क्या न हो, अपने धर्म में हिन्दू मुसलमान ईसाई, जरपुखती यहुदी आदि का माने एक धर्म में हर एक हिन्दू, गर हिन्दू का प्रतिनिधि बने इसके लिए हर एक कायसजन को दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत मित्रता कायम करनी और बढ़ानी चाहिए। उसे दूसरे धर्मों के प्रति उतना ही भाव रखना चाहिए जितना कि अपने धर्म के प्रति।' भारतीय राजनीति में जिस विपाक साम्प्रदायिक त्रिभुज का विकास हुआ उसक लिए गांधी जी मुख्य रूप से ब्रिटिश शासकों की ही दोषी ठहराते थे।

महात्मा गांधी भारतवर्ष को एक पक्षी तथा हिन्दुओं और मुसलमानों को उसका दो पक्ष बताया करते थे। सन १९२४ में उन्होंने कहा था, 'घात्र ये दोनों पक्ष भ्रमण हो गए हैं और पक्षी आकाश में उड़कर स्वतंत्रता का आरोपणपद पर शुक हुआ जाने में असमर्थ है।' स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जब सम्पूर्ण भारत साम्प्रदायिक उपद्रवों की ज्वालता से मस्मीभूत होने लगा था, गांधीजी को मर्मांतक वेदना पहुँची थी और उन्होंने अपनी इसी आयु और स्वास्थ्य की ओर विनम्र ध्यान न देते हुए उपन्यस्त शर्तों (बिहार और नोमालानी) की पटन यात्रा को तथा साम्प्रदायिक भाग पर पानी डालने का प्रयत्न किया। गांधी जी ने अपने जीवन का अन्तिम उपवास (१३ जनवरी १९८ से १८ जनवरी १९८ तक) साम्प्रदायिक एकता को स्थापना के लिए ही किया था। यह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का ही फल था कि काँग्रेस देश में धर्म निरपेक्ष प्रजातन्त्र की नींव डालने में समय हुई।

अस्पृश्यता निवारण—महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए जो प्रचण्ड सपथ किया वह उनके राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी सबसे प्रभावशाली कृत्या में से एक है। गांधी जी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कोढ़ मानते थे। उनकी कट्टर शक्तियों को चेतावनी थी कि यदि अस्पृश्यों के साथ होने वाले अत्याचारों का प्रतिकार न किया गया तो हिन्दुधर्म का नाश हो जाएगा। भारत के अस्पृश्यों को जिस सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता था उन्हें निम्न से निम्न पाय करन के लिए विवश होना पड़ता था उन्हें मन्दिर प्रवेश कुर्छ से पानी भरने और हाथजानिक स्पातों के स्वच्छन्द प्रयोग जैसे मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, यह सब गांधी जी सहन नहीं कर सकते थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से अस्पृश्यता धर्मों की भारत-विषय का सामाजिक कन था। धर्मों ने हम देव पर विषय प्राप्त करन क बात बहुत से विद्विता को पाने गूट में मिला दिया। विद्विता म से जो सबसे गिद्धे हुए सोय थे, व अस्पृश्ट रू

१ रामनाथ मुनल—गांधी-बाणी पृ० २२८।

२ हिंदी नवजीवन—२-११-१९२८, पृ० १५।

गए।^१ कालांतर में प्रसूयता प्रथा को पारमर्क सम्मोचन प्राप्त हो गया। पुत्र रामानुज रामानुज करीर नाना देव तुंगाराम और दयान प्रभृति लोकनायको ने समय समय पर इस प्रथा को पानी कर देने की चेष्टा की, पर ये अपने लक्ष्य में पूर्ण सफल न हो सके।

महात्मा गांधी प्रसूयता निवारण के लिए किये गए प्रयासों से जाना जा सकता है कि यद्यपि हम उनके लिए सब कुछ था फिर भी यह बहुत कुछ नहीं करने थे कि यदि कोई यह निश्चय कर ले कि प्रसूयता हिन्दू धर्म का एक अनिवार्य अंग है तो यह हिन्दू धर्म को त्याग देगा। वह कभी नहीं करेगा यदि भारत हमारे देशों के द्वारा प्रभावित किया जा रहा है तो इतना मूल कारण यही है कि भारत ने प्रसूयता के रूप में अपनी पवना जनमन्त्रा को प्रभावित कर रखा है। जब तक हम उन्हें उनकी हीनावस्था से मुक्त नहीं करते स्वतन्त्रता सम्भव है। उन्हें यह कहत हुए सहीच नहीं होता था कि यदि हिन्दू धर्म ने प्रसूयता को नहीं त्यागा तो उसका मर जाना ही श्रेयस्कर है।^२ अनिष्ट जनों के प्रति उनका हृत्प में जो प्रगाढ़ प्रेम था निम्न उद्धरण उसका एक परिचय देता है। मैं फिर से जन्म लेना नहीं चाहता बल्कि यदि मुझ फिर से जन्म लेना हो पड़े तो मैं एक प्रसूयक रूप में जन्म लेना चाहूँगा ताकि मैं उनके केशों को तथा प्रपमानों में नाग ल सकूँ और इन दयनीय परिस्थितियों से स्वयं अपने को तथा उन्हें उबार सकूँ। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि मुझ किसे से जन्म लेना करना पड़े तो मुझ पराहण क्षत्रिय वर्य प्रथवा शूद्र के रूप में नहीं प्रत्युत प्रति शूद्र के रूप में जन्म मिलना चाहिए।^३

महात्मा गांधी ने शूद्रों के लिए हरिजन अर्थात् ईश्वर के जन शब्द गना था। १९३२ में जब भारत का नया संविधान बनाने समय ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने निर्वाचन के लिए प्रसूयता को हिन्दुओं में प्रथम करने का कुचक्र रचा गांधीजी ने अपने प्रार्थना की बाजी लगाकर पना पवट द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के इस दुष्प्रयत्न को विफल कर दिया। गांधीजी द्वारा स्थापित हरिजन संघक संघ ने प्रसूयता को दशा में लुप्त प्रयास किया है। हम की बात है कि भारत के नए संविधान ने प्रसूयता का अन्त कर दिया है।

नारी जागृति—प्रवाचीन भारतीय इतिहास की एक दृष्टि विशेषता नारिया की प्रसूयता जागृति है। ब्रिटिश पूर्व भारत में सुजाता रजिया चांद बीबी तूरजहाँ और मालिकाबाई दोल्फर ब्रांन्ड मुद्रांनी मिस्री राजमदिलासों को छोड़कर स्त्रिया सामान्यतः घर की चहारदीवारी में ही बंधी रहती थीं। आज नारिया नारियों में जिस

१ ए० आर० देसाई—सोसाय ब्रह्मप्राण्ड भाक इण्डियन नेशनलिज्म पृ० २६१।

२ यंग इण्डिया' २५ मई १९२१-पृ० १६५।

३ यंग इण्डिया' ४ मई १९२१ पृ० १४४।

अनूतपुत्र जागरण के दशन हो रहे हैं वे सहस्रो की मख्या में राजनीति म माग नेतीं उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करता और जीवन क प्रत्येक क्षण म अपने पुण्य माइयों के साथ वधे से कया मिनारर धागे बढ़ती त्रिा द रही हैं उनका बहुत कुछ श्रय महात्मा गांधी को प्राप्त है ।

महात्मा गांधी ने भारतीय नारिया की उन्नति के लिए प्रकथनीय चेष्टा की । नारी जाति के प्रति उनके हृदय में अपार सम्मान की भावना थी । वह नारी को पुण्य की दामी नों साधिन मानते थे । उनका विश्वास था कि माननिक दानतामा की दृष्टि से नारी नर से क्रिमी प्रकार घटकर नहीं है । वह इस बात का दृढ़ समर्थन करते थ कि नारी को नर क मनान ही धार्मिकविषय क समस्त धर्मर मुलम जाने चाहिए । उनके अनुसार स्त्री महिमा की मूर्ति है । महिमा का अर्थ है धनन प्रम और उमका प्रव वष्ट महन की धनन्त गति । पुण्य को माना स्त्री से वकर अस शक्ति वा परिचय धर्मर-ने धर्मर माया में और बहा मित सया है ? बुद्ध में कया दृष्टि निया धात्र शक्ति वा धर्मनान वरन के निर तप रही है । यह गति कता तियाने वा काम नादान ने स्त्री को ही तिया । १

महात्मा गांधी चारुते थ कि स्त्रियां स्वय को धवला करना छोड दें और अपने सम्पुग सीता मय थी धर्ममुयों तथा दमयन्ती जनी उगत गतिया व मन्नीय धर्मर ररों । उनका कहना था कि वह स्त्री को दृढतापुत्रक यह मानती है कि उनका पवि का नी उनके मनीत्व को सर्वो व दान है उमका गीत मवया मुगति है । एषी स्त्री के तत्रमात्र स परपुण्य शौचिया जाएगा और तत्र से ग जायगा । २ गांधी जो नारी जाति को जिन अपार श्रद्धा की दृष्टि म दशन थ निम्न धवतरण उस पर समुचित प्रता डालना है स्त्री का धवना बहना उमका धपमान करना है । उसे धवना बढकर परप उक्त मान धाय करता है । यदि शक्ति वा धनिप्राय पागविक शक्ति है तो निस्त-दृ पुरुष की धपेधा स्त्री म वध पतुता है । परपु यदि ससा धनिप्राय नतिर शक्ति है तो निश्चित नी पुण्य की धपे ता स्त्री धर्मिक शक्तिगतिनी है । यदि धिा हमारे जीवन वा मूनमात्र है तो बरता होगा कि इस ग का गविय त्रियों व हाथ न है । ३

महात्मा गांधी को ि दू विधवाओं की त्रनीय श्या शरकर धार रेना शो जो थी । यद्यपि वह ध तममात्र और मनानिपठ व धार पतरती थ पर पु उह विधवा विवाह धवया तिया, धि-ध परवाई धारत न,ा हानी था । यठ बात विधवाओं की कुबारियां ही मानने थे त्रिा उनरी दृष्टि म बात त्रिाह गार् विवाह ही नहीं था । उन्होंने श्हेत्र प्रता क विद्व नो धपनी धारात्र उठा, थी और त्रिा था बर वर

- १ 'रिजन एचक' २८२ ६० पृ० १६ ।
- २ 'हरिजन सवक' १३३ ६० पृ० ६७ ।
- ३ 'हिन्दी नवजायत' १० ६३०, पृ० ३७७ ।

कामा के पिता से विवाह करने की दया के लिए दण्ड लेता है तब नीचता की हूँ ही जाती है। उसे के लालच से बिया गया विवाह विवाह नहीं है एक नीच सौग है।^१ गांधीजी परदे की भी मत्सना करते थे। उनका मत था कि पवित्रता पर की भाव रखने से नहीं पनप सकती यह तो मन को गुद रखने में पनपती है। गांधीजी अपनी पति बहना को भी नहीं भूल सके। उन्होंने उह पवित्र जीवनयापन की प्रेरणा दी। वह मानते थे कि वैश्यावृत्ति उतनी ही पुरातन है जितनी यह दुनिया पर वह श्रावकल की तरह नगर भावन का नियमित भग भाय ही बनो रहो हो। उन्होंने मविष्यवाणी की थी हर हालत में वह समय भाय बिना नहा रह सकता जब कि मानव जाति इस पाप के विरुद्ध भावाज उठावगो और वस्यावृत्ति को भूतकाल की वस्तु बना देगी।^२

शिक्षा पुनगठन—महात्मा गांधी प्राधुनिक शिक्षा प्रणाली के कटु भातोचक थे। भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में उनका विचार था कि इनमें विश्वविद्यालयों जसी कोई विशेषता नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज और निष्प्राण नकल भर हैं। यदि हम उह पश्चिमी सम्प्रदाय का स्थाहासोत्त मान कह तो शायद बजा न होगा।^३ गांधीजी भारत का वर्तमान शिक्षा प्रणाली को तीन कारणों से मदीप मानते थे—(१) यह श्रेणी सस्कृति को पूण उपेक्षा कर विदेशी सस्कृति पर प्राधारित है (२) यह हृदय और हाय की शिक्षा पर ध्यान नहीं देती तथा करने को केवल मस्तिष्क की शिक्षा तक ही सीमित रखती है।^४

महात्मा गांधी की दृष्टि में शिक्षा का सच्चा अर्थ मनुष्य के शरीर मन और प्रात्मा का सर्वांगीण विकास है। वह शिक्षा का चरम लक्ष्य व्यक्ति का चरित्र गठन मानते थे। उनका विश्वास था कि साहित्यिक शिक्षा व्यक्ति की नतिक ऊचाई में एक इच की भी वृद्धि नहीं करती और चरित्र निर्माण साहित्यिक शिक्षा से स्वतन्त्र होता है।^५ गांधीजी ने जनसाधारण के सास्कृतिक जागरण के लिए बुनियादी वालीम अथवा वर्षा शिक्षा योजना की नींव डाली। उनका मत था कि असली शिक्षा तो तभी प्रा सकती है जबकि शरीर के अवयवों हाय कान नाक भादि से ढटकर काम लिया जाये। वर्षा शिक्षा योजना में इस सिद्धांत का अच्ची तरह से समावेश है। इस शिक्षा योजना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह छात्रों को प्राथिक भात्म निर्भरता प्रदान करती है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति देशी भापामों के विकास के प्रति उदासीन है। गांधीजी को यह इच्छा नहीं था। उनका कहना था कि हम अपनी देशी भापामा क उत्थान की

१ हिंदी नवजीवन ६६ २८ पृ० २४।

२ हिन्दी नवजीवन २८-५-२५ पृ० ३३८।

३ हरिजन सवक २१ १४२' पृ० ६१।

४ यग इण्डिया १९ २१ पृ० २७६।

५ "यग इण्डिया, १६ २१, पृ० १७२।

घोर ध्यान देने की प्रचुर आवश्यकता है। उन्होंने लिखा था यह स्पष्ट है कि जब तक हम इस काम को धाने नहीं बढ़ाते हम अपने स्त्री पुरुषों के बीच घोर अपने वर्गों तथा जनता के बीच बढ़ती हुई बौद्धिक और सांस्कृतिक खाई को दूर नहीं कर सकेंगे। यह भी निश्चित है कि दली भाषाओं का माध्यम ही अधिक से अधिक लोगों में मौलिक विचारधारा उत्पन्न कर सकता है।^१ लेकिन इसका यह भाग्य कदापि नहीं था कि गांधीजी दूसरी भाषाओं और संस्कृतियों के अनुशीलन को उचित करना चाहते थे। वह तो हम सिद्धान्त के उपासक थे कि, मैं यह नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों घोर दीवारों खड़ी हों और मेरी खिड़किया बंद हों। मैं चाहता हूँ कि सब देशों की संस्कृतियां मेरे घर के पास पाम यथासम्भव स्वतंत्रतापूर्वक बहें परन्तु उनमें से कोई भी मेरे परों को उखाड़ दे यह मैं प्रसन्नोकार करता हूँ।^२ गांधीजी कहा करते थे कि उच्च कोटि के विद्वान् पुरुषों को प्रथम भाषा का ही क्या ध्याय समृद्ध विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन कर उनकी चुनी हुई पुस्तकों का जो भाषाओं में अनुवाद प्रस्तुत करना चाहिए।

हमारे वर्तमान मित्रा संगठन में एक भारी त्रुटि यह है कि हममें छात्रों को नैतिक शिक्षा देने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं की गई है। यह बात मित्रों से छिपी नहीं है कि आज के युग में राजनीतिक घोर सामाजिक जीवन के प्रामाण्य को नैतिक धारण पर खड़ा करना अतीव आवश्यक है। गांधीजी इस त्रुटि को दूर करने के लिए विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के पक्षपाती थे। धार्मिक शिक्षा से उनका यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि बच्चों को धर्म विषय की रुझिया का ज्ञान कराया जाए। धार्मिक शिक्षा से उनका मन्तव्य यही था कि छात्रों को सत्य प्रहिंसा अपरिग्रह और अहंभय धारि उन सावनीम नैतिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाए जो सब धर्मों के मूल में समान रूप से विद्यमान हैं।

मध्य निवृत्त—महात्मा गांधी शराब, धूम्रपान, गाजा धारि माण्ड इन्वों के पार विरोधी थे। उनकी इच्छा थी कि लोग शराब पीना छोड़ दें क्योंकि मद्यपान विषयान से भी अधिक घातक है। विष तो शरीर को हत्या करता है पर मद्य धात्मा को मार डालता है और मनुष्य को पशु बना देता है। गांधीजी मद्यपान को दुगुण की प्रवेक्षा बीमारो अधिक मानते थे। उनका कहना था मैं ऐसे बहुत से व्यक्तियों का जानता हूँ जो यदि शराब को छोड़ सकत तो सहज छोड़ सकते। मैं कुछ ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ जिन्होंने कहा था कि यदि हमसे मद्यपान का सातव दूर कर दिया जाए तो हम मद्यपान को प्रवश्य छोड़ देंगे। मद्यपान का लालच उनसे दूर किया गया फिर भी वे कुछ छिन्नकर मद्यपान करते हैं। रोगी व्यक्तियों को स्वयं अपने ही विकृत उपचार की आवश्यकता है।^३ गांधीजी का सरकार के लिए परामस था कि वह ऐसे विद्वान्ति यह सोने जहाँ धके मादे मजदूरों को विधायन मित्र और उनक लायक उन चलने का

१ 'यग इण्डिया २५ ४ २०, पृ० ४६५।

२ 'यग इण्डिया १६ २१, पृ० १७०।

३ 'यग इण्डिया ६-७-२१', पृ० २१०।

ग्रहणा प्रबन्ध हो। इस योजना का प्राचरण लोगों को स्वयं मदनियेध की ओर प्रवृत्त करेगा। गांधीजी का विश्वास था कि मदनियेध से जनता का नारैरिक, मानसिक और नतिक सब प्रकार का कल्याण होगा। गांधीजी द्वारा प्रवृत्त प्रमत्तयोग और सविनय प्रवृत्ता आन्दोलनो में शराब की दूकानो पर धरना देना एक जल्दी कार्यक्रम रहता था। १९७ में जब भारत के ग्यारह प्रांतो में वायसी प्रमत्तपट्टना की स्थापना हुई तो उन्होने गांधीजी के इंगित पर आर्थिक हानि को महते हुए भी कई स्थानों पर मदनियेध की योजना को कार्यान्वित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति व पर्याप्त राशियों की काप्रत सरकारें मदनियेध के कार्यक्रम को यथामत्तम पूरा करने का प्रयास कर रही है।

१५१ गांधीजी की आर्थिक विचारधारा

एक विशिष्ट स्कूल—जिस ग्रथ में हम एडम स्मिथ और मागन को ग्रथ शास्त्री कहते हैं महात्मा गांधी उन ग्रथ में ग्रथशास्त्री नहीं थे फिर भी उनके समीप अपने निधन देशवासियों की गहायता करने के लिए एक व्यावहारिक आर्थिक कार्यक्रम था। यद्यपि महात्मा गांधी ने ग्रथशास्त्र पर कोई स्वतंत्र पोषी नहीं लिखी है पर जब हम उनका प्रतीण रचनाओं का अनुशीलन करते हैं हमारे मम्पुन उनको आर्थिक विचारधारा का एक सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। महात्मा गांधी ने शास्त्रीय दृष्टि से ग्रथशास्त्री न होने हुए भी भारतीय ग्रथशास्त्र पर ग्रापक प्रभाव डाला है और धीरे धीरे हम श्नेते हैं कि मेवाग्राम की विनीत वेदी से ग्रथशास्त्र का एक एमा विशिष्ट स्कूल पनपता जा रहा है जो गांधीजी के आर्थिक विचारों को पनपद करने और एक वज्ञानिक आधार से म प्रयत्नरत है।^१ य, ठीक है कि गांधीवादी ग्रथ शास्त्र ग्रमी शशवावस्था में ही है और समय समय पर उसकी शय परीक्षा भी होती रही है। इतन पर भा भारत के आर्थिक शासन में उमका जो म्त्तपूरा स्थान बन गया है उस प्रचलित नये तुने आर्थिक सिद्धांतों की शान्दनी द्वारा नहीं नापा जा सकता क्योंकि वह इन प्रचलित नये तुने आर्थिक सिद्धांतों को मूलस्य धारणाओं को रानी चुनौती देता है।

ग्रथशास्त्र और नतिकता—महात्मा गांधी की ग्रथशास्त्र सम्बन्धी माधना पश्चिम के वनासिक्तन कहे जाने वाले ग्रथशास्त्रियों से बिनकुन प्रपग थी। वह ग्रथ शास्त्र को न तो माज्ञान की भांति जीवन के सामान्य व्यवहार में मानव जाति का ग्रथपयन मानते थे और न प्रो कनन को तरह उन मानारण कारणों की जिन पर मानव प्राणियों का भौतिक कल्याण निर्भर है धारणा ही स्वीकार करते थे। महात्मा गांधी को दृष्टि म तो ग्रथशास्त्र जीवन के ग्रथमाय सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक आदि पन्तुजा से समुक्त था। उनकी आर्थिक विचारधारा का मूनाधार उनकी नतिक सम्बन्धी भावना है। वह ग्रथशास्त्र और नतिकता के बीच कोई विभाजन रेखा नहीं

१ डॉ० एच० जी० पी० धीवास्त्रव— ग्रथशास्त्र मान गांधियन कामेन्ट प्रॉस इकनोमिक्स (प्रमृत बाजार ११-५-५३) ।

वकी प्राप्य हैं भयवा होने चाहिए। उन्हें दूसरों के भोपण का साधन बना सेना रचित नहीं है।^१ महात्मा गांधी के मत से उत्पादन के साधनों और जीवन की आरम्भिक आवश्यकताओं पर किसी देश जाति या जनसमूह का एकाधिकार सबया ग्राह्ययुक्त है।

गाँवों की और चलो — भारत जैसे महादेश के लिये जिसकी ९०/जनसंख्या गाँवों में बसती है गाँवों की उपेक्षा की दृष्टि से देखना आत्मघात के समान ही है। प्राचीन काल में भारतीय गाँव जीवन की आरम्भिक आवश्यकताओं में स्वाधीन होते थे पचायती प्रथा के द्वारा अपना शासन प्राप्त करते थे और देश के आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन के मेरुपिंड बने हुए थे। महात्मा गांधी का ब्रिटिश शासन पर एक गभीर आक्षेप यह था कि उसने भारत के सात लाख गाँवों को मरणासन्न स्थिति में पहुँचा दिया है। उन्होंने देशवासियों को है अपना द्विदुस्तान नहीं बह बसा हमारे गाँव में पाठ बार बार पढ़ाया। उनका सन्देश था कि देश के सांस्कृतिक सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर घरबार से वियुक्त एक जगह पड़े रहने वाले मजदूर वर्ग का नहीं भय पिछाच महाजन या व्यापारी समाज का नहीं प्रत्युत सरल स्वभाव ग्रामीण जनता का प्रभुत्व होना चाहिए। इसी उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने गाँवों की ओर चलो का नारा उठाया था। भारत के गाँव प्राथमिक-तम प्रथम-परम्परा और सकीर्ण दृष्टिकोण जसी प्रसह्य व्याचियों से पीडित हैं। गांधीजी ने लोगों को बताया कि वे सम्बेदनामय हृदय लेकर गाँवों में जायें वहाँ के निवासियों के सुख-दुख में एकरस होकर घले मिलें उनकी समस्याओं को सहानुभूति से समझें और उनके समाधान में प्रवृत्त हों। गांधी जी का यह विश्वास था कि यदि गाँव नष्ट हो गए तो भारत नष्ट हो जाएगा भारत के अस्तित्व के लिये ग्रामों का उत्थान अतीव आवश्यक है। वह कहा करते थे अब तक हमें जीवित रखने के लिए सदियों गाँव मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। अब हम उनको जीवित रखने के लिए मृत्यु को प्राप्त होना चाहिए।^२ उनकी ग्राम-स्वराज की भावना ऐसे पूरा गणराज्य की भावना थी जो अपनी बड़ी-बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र हो लेकिन ऐसी बहुत सी वस्तुओं में जिनमें अयो यात्रित होना आवश्यक है अयो यात्रित भी हो।

मशीनों का विरोध—मशीनें जो आधुनिक सभ्यता की केन्द्रबिन्दु हैं गांधीजी की दृष्टि में महापाप हैं क्योंकि वे साप से बिल ह जिनके भीतर एक नहीं सकड़ों साप होते हैं। एक के पीछे दूसरा निकलता ही जाता है। जहाँ कल-कारखाने होंग वहाँ बड़े शहर होंगी। जहाँ शहर हों वहाँ रेल और ट्राम होनी ही चाहिए। बिजली की रोशनी की जरूरत भी यही होती है। आप सच्चे बच डाक्टर से पूछें तो

१ गग इण्डिया, १५ नवम्बर १९२८ पृ ३८१।

२ गग इण्डिया १७ फरवरी २४ पृ १३०।

वे आपकी बताएंग कि जहाँ रेल टूमों घाटि बढी हैं लोगों की तदुच्छ्ती बिगड गई हैं।' १

भारत की धार्मिक प्रयोगति म कल पारलानों की मार का बहुत बडा हाथ रहा है। मांचेस्टर की मार ने भारत को जो हानि पहुँचाई है उसकी कोई ह नही। भारत के हस्तकन कौशल जो प्राय समाप्त हो गए यह मांचेस्टर की ही कृपा है। गांधीजी के अनुसार भारत में मिलें खडी करने से यह अधिक प्रच्छा होगा कि हम मांचेस्टर को पसा दें और उसका रद्दी घदी मान इस्तमाल करें क्योंकि उसका कपडा काम में लाने से तो हमारा केवल पसा ही जाणा नबकि हिन्दुस्तान में मांचेस्टर बनाने से हमारा पसा तो हि दुस्तान में रहेगा पर वह हमारा खून लेगा क्योंकि वह हमारे चरिष का नाश करेगा यह मानना नासमझो ही होगा कि अमेरिका के राक फेलर से हिन्दुस्तान का राकफेलर प्रच्छा होगा। २

मशीनों के ऊपर गांधीजी का मुख्य प्राथम यह है कि वे धम की इतना बषत कर डालती हैं कि हजारों का मूर्खो मरना पडता है और उहें उन डवन तक को दुष नही मिलता। ३ समय और परिश्रम का बचाव गांधीजी भी चाहत थ लेकिन यह मुट्टी मर आत्मियों के लिये नही बल्कि सारी मानव-जाति के लिय प्राज यत्रा के कारण साखा की पीठ पर मुट्टी मर गांधी सवार हो बठ हैं और उहें सता रहे हैं क्योंकि इन यत्रों को चलाने के मूल में लोन है धनवृष्णा है जन नत्याण पी नावना नहीं है। ४

नकिन गांधीजी य प्रमात्र के विरोधी नहीं थ क्योंकि मैं जानता ह मरा मरीर ही एक बडा नाजुक यत्र है। मरा विरोध यत्रों के सम्बन्ध म फले दीवानपन के साथ है यत्रों के साथ नहीं। ५ गांधीजी सिगर की मशीन जती उपयोगी मशीनों का कोई विरोध नहीं करते थ। उनका कहना था कि हमें उन घरेलू मशीनों भ जिनका प्रयोग साखो स्त्री रुप कर सकें हर प्रकार के सुधार का स्वागत करना चाहिए।

कुटीर-उद्योगी का जीर्णोद्धार—गांधीजी की धार्मिक विचारधारा में कुटीर उद्योगों के जीर्णोद्धार को बहुत प्राथमिक स्थान प्राप्त है। उनक अनुसार प्रहिता घोर कर्तित उद्योगों का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता। विमान पत्तवार प्रकृति घोर अनुप्य दोनों का मोपण करतो है। फलत गांधीजी भारत क मोयोगीकरण के

१ गांधी जी— हिन् स्वराज्य' (हिन्दी) सत्वा साहित्य मण्डल १७) पृ १०६ ११०।

२ गांधी जी, हिन् स्वराज्य पृ १०७।

३ हिन् नवजीवन २ नवम्बर, २४ प ६०।

४ हिन् नवजीवन २ नवम्बर २४' पृ० ६०।

५ हिन्दी नवजीवन २ नवम्बर २४ पृ० ६०।

विरोधी थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने यह स्पष्ट किया था जब भारत का औद्योगीकरण हो जाता है और वह दूसरे राष्ट्रों का शोषण प्रारम्भ कर देता है, अतः निःसन्देह के औद्योगीकरण पर अवश्यम्भावी ही है, तब वह दूसरे राष्ट्रों के लिए एक प्रतिशोध सत्कार के लिए एक सत्कार बन जाएगा। नया प्राप स्थिति की यह दुःखटना नहीं देखते हैं कि हम अपने तीस लाख बेकार लोगों के लिए काम या सकते हैं, सत्कार इ गलब अपने तीन लाख बेकार लोगों के लिए काम नहीं या सकता और एक एसी समस्या से घिरा हुआ है कि जिसके सम घान में वहाँ के बड़े बड़े बौद्धिक शक्तिशाली की बुद्धि हैरान है, यदि औद्योगीकरण का मध्य पश्चिम के लिए प्रयोज्य है तो क्या वह भारत के लिए और अधिक प्रयोज्य नहीं होगा।^१

गांधीजी भारत में खादी और चरखे के प्रचार को अत्यधिक महत्व देते थे। वे खादी को मुक्तिदाता और चरखे को स्वराज्य का सबसे बड़ा हथियार कहा करते थे। चरखा उनके अहिंसक समाज की बुनियादी ईंट था। गांधीजी की दृष्टि में चरखा उनके रचनात्मक कार्यक्रम के अग्रगण्य में सूच के सदस्य था। उन्होंने बताया कि जिस प्रकार भारत के किसान अपने पेट के लिए घनाज पत्र करके स्वाश्रयी बने हुए हैं उसी तरह वे अपने खेतों में पत्र की हुई कपास को अवकाश में कातकर कपड़ा तयार कर सकते हैं और विशेषो में धाने जाने करोड़ों रुपये को बचा सकते हैं। मनुष्य की दो ही बड़ी आवश्यकताएँ हैं रोटी और कपड़ा। जब वे उसे स्वतः प्राप्त हो जाएगी उसे दूसरों के मुँह की ओर न लाना पड़ेगा वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन जाएगा। खादी के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी 'स्वराज्य के समान खादी भी राष्ट्रीय जीवन के लिए श्वास जितनी ही आवश्यक है। जिस तरह हम स्वराज्य को नहीं छोड़ सकते उसी तरह खादी को भी नहीं छोड़ सकते। खादी छोड़ देने के माने होंगे भारत की जनता को बेच देना भारत की आत्मा को बेच देना।'^२ महात्मा गांधी ने खादी और चरखे के प्रचार के लिए चरखा सघ की स्थापना की थी। चरखा सघ की शाखाओं प्रशाखाओं ने सारे भारत में फनकड़ लाखों लोगों को खादी चरखे का महत्त्व बनाया।

धर्म और पूँजी—महात्मा गांधी साम्यवादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित वर्ग-समर्थ के सिद्धांत में विश्वास न रखकर वर्ग सहयोग और वर्ग सामंजस्य के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। उन्हें श्रमिकों द्वारा पूँजीपतियों का उन्मूलन इष्ट नहीं था क्योंकि उनकी धारणा थी कि पूँजीपतियों का भी चाहें वे कितनी ही शोषक वृत्ति के रूपों में हों हृदय परिवर्तन हो सकता है। गांधीजी के मत में यदि पूँजीपति श्रमिकों के प्रति पितृात्मक भाव अपना लें और उन्हें अपने घनोपभोग में सहभागी बना लें तो वे भी समाज के प्रति अप्रयोज्य सिद्ध हो सकते हैं। अपने एक

१ यंग इंडिया १२ नवम्बर २४, पृ० ३८६।

२ हिंदी नवजीवन—१६ जनवरी २८ पृ० १७३।

बतलाने में उन्होंने कहा था 'श्रमिहों को पदावार के साथ-साथ सेवा करने के स्वान पर जसा कि वे भावकल हैं स्वामी होना चाहिए। पूत्री को श्रम का दास होना चाहिए स्वामी नहीं।' १ गांधीजी की श्रमिकों और पूत्रीपतियों दोनों के लिए यह सलाह उचित ही थी कि उन्हें एक-दूसरे का तथा दूसरी ओर उप-नोबताओं का दृष्टी बन जाना चाहिए। यदि व-एसा कर सकें तो उनके धारणों विचार-नाममात्र को ही रह जायेंगे।

महात्मा गांधी का विचार था कि श्रमिहों को उद्योगों के प्रबन्ध और नियमन में भाग लेने का उचित प्रयत्न प्र-दा वेतन पाने का अधिकार मिलना चाहिए। बतमान काल में श्रमिहों की जो दयनीय स्थित है उससे उन्हें अपार क्षोभ होता और उनका यह बार-बार कहना था कि श्रमिका के नतिक और बौद्धिक विकास के लिए मगौरय कोशिश करने की प्रवण्ड आवश्यकता है। यदि पूत्रीपति श्रमिहों की 'यायपुस्त मार्गों को पूरा करने के लिए किसी भी प्रकार तयार न हा तो गांधीजी के अनुसार श्रमिकों को अधिक हस्ताल करने का पूरा अधिकार है।

१ हा० शंकर— 'पोलिटिकल किनाउची धारण महात्मा गांधी' पृ २१६।

विश्वत्र भुवन की भावना से बड़े प्रभावित थे। स्वामी विवेकानन्द व धर्मविद गोब द्वारा प्रतिपादित। धार्मिक राष्ट्रवाद के प्रति उनके हृदय में कोई सहायुभूति नहीं थी। राष्ट्रवाद को व एक भावात्मक वस्तु समझते थे। उनके लिए राष्ट्रवाद स्वयं में एक समस्कार पूर्ण विचार था उद्योगे निष्ठा था। राष्ट्रवाद वास्तव में गत प्रगतिशील प्रयासों एवं अनुभवों की एक सामूहिक स्मृति है तथा राष्ट्रवाद की भावनाएँ पहले के युगों की तुलना में धार्मिक प्रतिक्रियाशील हैं। जब कभी भी किसी देश पर सफट उपस्थित हुआ है राष्ट्रवाद ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है।

पंडित जी भारत की मौलिकता तथा उसकी मौलिक एतता के प्रति जागरूक थे। उनका यह विश्वास था कि भारत में विभिन्नताओं से होते हुए भी सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में हमें एक इकता रहा है। यद्यपि वे नास्तिक थे फिर भी उनमें 'भारतमाता' जैसे या तथा भारतीय भादवों के प्रति उनका गूरा भाव था। राष्ट्रवाद के संबंध में उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' (Discovery of India) में लिखा— 'राष्ट्रवाद वस्तु में विद्वती उपरति प्रयासों तथा अनुभवों की एक सामूहिक स्मृति है। प्रागुनिक युग की उल्लेखनीय प्रगति यह रही है कि उसने भूतकाल और राष्ट्र की राज की है।'

प नेहरू ने राष्ट्रीय आत्मनिर्णय (National Self-determination) के सिद्धांत पर बहुत जोर दिया। उन्होंने साम्राज्यवाद का खंडन किया। स्वाधीनता का प्रश्न उनके मन में देखा भारत का ही नहीं बल्कि ब्रिटिश राष्ट्र के अर्थात् सभी राष्ट्रों का है। राष्ट्रवाद का समर्थन करते हुए ना केवल अविश्यसनात्मक मित्र और सभ्य इतिहासकार की सेवा में थे। राष्ट्रवाद अन्तर्जातीय धर्मनाशों के प्रति हमारा धर्म मूर्खता है। प नेहरू ने बताया कि राष्ट्रीयता स्वतंत्रता के लिए सघन गीत का म एक स्वस्थ उक्ति होती है। देश स्वतंत्र हो जाने के बाद राष्ट्रीयता अवश्य ही नी बलिह प्रति प्रयासों एवं नकीण भी बन सकती है। राष्ट्रवाद के नाम पर धर्म जाति एवं लहृति का जो सहारा लिया जाता है वह राष्ट्र की उपरति में घातक है। प नेहरू की दृष्टि में राष्ट्रवाद व मुस्लिम राष्ट्रवाद ज्यों की कोई वस्तु नहीं। वे भारतीय राष्ट्रवाद को स्थापित करते थे। उन्होंने एक बार कहा था कि यदि राष्ट्रीयता धर्म पर आधारित है तो भारत में दो नहीं बनें राष्ट्र हैं। इस प्रकार पंडितजी राजनीति प्रपंचा राष्ट्र को धर्म से सम्बन्धित नहीं करना चाहते थे।

मानवतावाद

पंडित नेहरू मानवतावाद के भी सरलक थे। जनता के दुख और पीड़ा के प्रति वे बहुत ही आते थे। भारत में हुए साम्प्रदायिक दंगों से उनका हृदय इतना भूत हो जाता था। १९३४ में जब स्टेन गृहपुत्र की सपटों में भूलत रहा था तब वे भादवों की बाजी लगाकर भी सभा उ हिस्सों में घूमे। बारसिखोना में तो वे बम

भी देश की विदेश नीति पर किसी व्यक्ति का इतना प्रभाव नहीं पड़ा होगा जितना कि प० नेहरू का। यदि भारत की विदेश नीति की नेहरू की नीति ही रहती या जाय तो भी कोई प्रतिशयोक्ति नहीं होगी। आज तक भी उन रोगाचारा में मचमक कम नहीं हुए बल्कि वह निगमती जा रहा है। एा तरह में उमरी प्रतिपरीक्षा होती रहती है। भारतीय विदेश नीति की स्पष्ट परिभाषित 1947 के समय तक युक्त यारयानो में हुई है। संसद या दन की बठठा में दन या विदेश में बही न बही उनके मधुन बचनो गारा सगरो वार विनगल गति क साथ साथ वि न नीति सम्ब धो विचारा दी पुनरावृत्ति होती रही है। नेहरू के पितगण नवून क गारण ही भारत की विदेश नीति का जो विषय पचीग था सरल विषय बन गया है। इण्डोनेशिया की आजागी का जनक महा की जनता सुभाषी क बा" नेहरू को ही मानती है। आजागी के बाद एक बार काग्रत अधिवेशन में इण्डोनेशिया के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी तब गृह मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा था इण्डोनेशिया विश्व के नका में बहा स्थित है और एा सम्बन्धो रहस्य क्या है मैं कुछ नहीं जानता। यह प० नेहरू के धन का विषय है और वे ही इनक वारे में सही स्थिति प्रकट कर सकते हैं।

७ सितम्बर 1946 को अंतरिम सरकार के प्रधानमन्त्री की हैसियत से राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हुए प० नेहरू ने कहा था हम यथा सम्भव शक्ति द्वारा पश्चिम युगो में अन्तग रहन का प्रयत्न करेग। क्योंकि शक्ति गुँों के कारण दो विश्व युद्ध हो चुके है और य पुन एक नयकर विनाश की आर अग्रगर कर सकन है। हमारा विश्वास है कि शांति और स्वतंत्रता अधिभाज्य है। पराधान दगा और उपनिवेशो का स्वतंत्रता में हमे दिनचरशी ह। हम जातिवा" की नाशोयी विचार धाराका क विरोधी है। आर की दुनिया प्रतिग इता घुणा और मानरिक सपनों के बावजद भा अधिन सहयोग और विश्व निर्माण की आर बन रही है। विश्व में एकता स्थापित हा इसके निय स्वतंत्र भारत प्रयास करेगा। एसे जगन के निय स्वतंत्र भोगो का स्वतंत्र सहयोग होगा। इस कारण कोई एक वग दूसरे वग का शोषण नही कर सनेगा। नेहरू की विदेश नीति क्षणिक विचारधारा का परिणाम न था। वह दुनिया की परिस्थितियों पर यथावधानी दृष्टि से एक सम्बन्ध समय क अनुभव विचारो का परिणाम थी। उन नीति में एक ही नीति के सभी गण विद्यमान रहे हैं। इसमें आदाना" और मघाववाद का सम्बन्ध है। इस नीति का नाम या तटस्थता या निगुट विदेश नीति (Positive neutrality or Non alignment)। यदि हम भारत की विदेश नीति की याचना करें तो सतिष्ठ गनों में इसका यह अर्थ है कि भारत किसी भी गुट का सदस्य नहीं होगा उसकी एक स्वतंत्र नीति होगी। भारत विदेशो के प्रपंचों में सही चीज का समर्थन करते हुए शीत-युद्ध से पृथक रहने का प्रयत्न करेगा और प्रत्येक विषय पर अपना निरुप विषय की योग्यता के

के प्रयत्नो से प्राप्त विदेशों की सहायता पर आधारित कई कारणों व उद्योगों का निर्माण सम्भव हो सका है। आज एशिया और अफ्रीका के बहुसंख्यक राष्ट्र हमारी नीति के समर्थक हैं। १९५५ में एशियाई राष्ट्रों के वाशिंगटन सम्मेलन में भारत का सफल नेतृत्व रहा। नेहरू ने अपनी विदेश नीति की आधार शिखा पंचशील के सिद्धान्त को उस सम्मेलन में रखा जिसे सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया। भारत सदैव दक्षिणी अफ्रीका में व्याप्त रंग भेद की नीति का विरोध करता रहा है तथा निःशस्त्रीकरण के लिए कई योजनाओं का प्रारूप भी प्रस्तुत करता रहा है। भारत की विदेश नीति दूरदर्शिता की नीति थी जिसके परिणामस्वरूप दाना अतिशय गरीबों से सहायता मिलती रही है। चीन के आक्रमण से विरक्त व यह नष्ट कर गई थी कि इस अपने अनुभवों से चीन की सुनकर सहायता करेगा तथा भारत पूँजीवादी गुट को तरफ मिला जायगा किन्तु सब बातें स्वप्न मात्र ही रही। भारत की तटस्थता की नीति का कारण ही आक्रमण के समय हमें भारत को २१ मिनट (Min 21) विमान न्यून यह एक तरह से भारत का तटस्थता की नीति की ही भारी सफलता है। नेहरू की दूरदर्शिता के कारण ही सत्र जल्दी ही टन गया व यथा किसी गुट में मिनट से बाधनासीन संधियों के लिए बाध्य होना पड़ता।

नेहरू की मृत्यु के उपरांत उनके उत्तराधिकारी लालबहादुर शास्त्री ने यह घोषणा की थी कि वे विदेश नीति के क्षेत्र में नेहरू के पदचिह्नों का ही अनुसरण करते रहेंगे। भारत-पाक युद्ध के दौरान नेहरू की तटस्थता की नीति का कारण ही शास्त्री सफलता पा सके जबकि दूसरी ओर पाकिस्तान को अमरीकी गुट का सत्य होते हुए भी पराजय का भार्य ग्रहण करना पड़ा। आज चीन अणुशक्ति सम्पन्न राष्ट्र बन गया है तब भी भारत अपनी पुरानी नीति पर ही अटल है। इस के लुप्तके व कोशीलम अमेरिका के आक्रमण हावर तथा कनेनी संयुक्त राष्ट्र सभ के भूतपूर्व महा सचिव डाग हैमरशोल्डर मलेशिया के टुकुम दुल रहमान आदि जैसे अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं ने हमारी विदेश नीति की प्रशंसा की है तथा नेहरू को विश्व का महान् नेता व दूरदर्शी राष्ट्रनायक का उपाधि से विभूषित किया है।

उपसंहार

नेहरू भारत में एक नवयुग के निर्माता थे। यद्यपि कई आलोचकों ने उनके जीवन व विचारों की बड़ी आलोचनाएँ की हैं और उनका विचारों व सिद्धान्तों में सत्यता तथा वास्तविकताओं की कमी बताई है। कुछ आलोचकों का मत है कि कश्मीर विवाद चीन भारत संधि प्राप्ति नेहरू का दृष्टिकोण का म है। उनकी नीति में स्वैच्छा आरिता का अर्थ रहा है, फिर भी यह निस्सन्देह रूप से बढ़ा जाता है कि विश्व स्तर पर भारत की विदेश नीति पूरा रूप से सफल रही है। आज भी भारत उसी विदेश नीति का ही अनुयायी है। भारत अपने राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिए सभी शक्तिपूर्ण तरीकों का सहारा लेता है। जिस समय नेहरू ने इस नीति की नींव डाली थी उस समय उनके कोई समर्थक नहीं थे लेकिन कुछ ही वर्षों में इस नीति की सफलता को देखकर

इण्डिया व इण्डो-चीना के विकास राष्ट्री ने नेहरू की नीति को ग्रहण किया। ऐसी नीति का निर्माण प० नेहरू जीने योग्य और महान् विचारक ही कर सकते थे। उस नीति के हेतु भारत ने जो भी मजतग्रा प्राप्त की है उसक लिए पश्चिम की ही प्रशंसनीय है। पञ्चानन भी प० नेहरू की देन है। २३ सितम्बर १९५४ ई० को प० नेहरू ने पञ्चगौत के निदान्त की नींव रखी थी जिसका प्रारम्भ सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में चीन व भारत में अभी की आधारशिला के रूप में हुआ। पञ्चगौत सभ्यता का आधार पञ्च पञ्चन पञ्च अणुलिया भगवान बुद्ध के पांच सिद्धान्त अथवा इस्लाम की पांच व दिक रोशियों पर आधारित है। २ अप्रैल १९५५ तक बर्मा चीन लाओस नेपाल सिचत नाम युगोम्माविया और बर्मा/बर्मा नये सब बर कर लिया था। एशिया तथा इण्डो-चीना के सभी राष्ट्रों ने इन सिद्धान्तों की प्रशंसा की। यह निम्न रूप में स्पष्ट है कि यदि राष्ट्र इस नीति का स्वामाविक व हार्मिक रूप में पालन करे तो विश्व को अधिकतम समस्यायें सृज्य रूप से ही सुलभान् जा सकती हैं।

भारत ने पञ्चगौत व तटस्थ नीति की आज तक रक्षा की है। इस नीति को अपनाते रहने में कई बार बाधायें आईं किन्तु इस नीति की एक तरह से उन बाधाओं में अंगन-बोधा हा हुआ है तथा यह उरा मानित हुई है। जब प्रथम बार फरवरी १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया और भारत की अनाये पीड़ित होने लगीं तब विरोधियों के मुद्दों से यह आवाज उठने लगी थी कि अब भारत की अपनी तटस्थता की नीति का त्याग कर देना चाहिए और विश्व युद्ध में सम्मिलित हो जाना चाहिए, किन्तु कितने ही विरोध के परवाह भी नेहरू परत निश्चय पर रह रहे। इस नीति की दृढ़ता के अरन्त ही हमें दोनो मुद्दों से बराबर सहयोग व समर्थन प्राप्त हो रहा है।

प० नेहरू के प्रतिम वर्षों में उनके समारोहों की भी आयोजना की गई। उसमें व्यावहारिकता के स्थान पर आदर्शवादी चर्चा रही है। उनके द्विदूष्य विरोधी विचार अत्यन्त प्रष्टिपूर्ण समझ गये हैं। उनके अस्तित्व के लिए यह भी कहा गया है कि वे अपने निजी जीवन में साग जावन बिना क पणपानो नहीं व इसक साथ ही पश्चिमी धर्म के अन्वेषे पारगयी नहीं मान जात थे। अनुमान व प्रमाणकीय दृष्टि से उनमें हु-तता व योग्य नियम लेने की क्षमता नहीं की परन्तु भारतीय धर्म की ये माधारण इण्डिया कोई गम्भीर महत्व की पन्ना न थी। निस्सन्देह रूप में वे सामाजिक थे। स्वभाव से वे अत्यधिक मानव भवित थे। दान-दवा और मानवता उनके जीवन में ही दृष्ट कर गये हुए थी। आज भी मानव व अधिकतम जीवन के लिए वे उनके व्यक्तित्व की दाय मोक्ष है। वे सच मोक्षनामक थे। विश्व में उनका ही पना मेठा पना हुआ ही अनेक अधिकतम अर्थनामक रूप में उनका पार करता हो अतिनामिक वे जाया नेहरू की करत रहे। वे अन्त-अन्त के अर्थ में सयामे हुए थे।

य नेहरू को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी शानिदून के नाम से गौरवाण्वित होने का सौभाग्य प्राप्त है। नेहरू से व्याख्यानों को गुनने के लिए अत्यन्त जनमानस साक्षात्कृत रहता था। दोष किस व्यक्ति में नहीं होता जबकि य तो सारे राष्ट्र की बागडोर सँभालने हुए थे, इस कारण उनमें कहीं प्रतियोगिता होना स्वामायिक ही था। उनमें प्रमुख दोष यही था कि वे अपने निष्पक्षों का मानव को सङ्घ व गुणोत्तम प्रवृत्ति को सामने रखकर देख गते थे। वे एक महान राष्ट्रमन्त्रा शक्ति तथा शक्ति के प्रबल समर्थक थे। नेहरू की प्रतिभा में एक ऐसी उदात्तता की भी थी जो कि भयकर ही भयकर लूकानी हवाओं में भी निरन्तर प्रज्वलित रहती थी। उनको भारत का लिकन भी मानते हैं वे जनमानस के नेता थे। भारत का जनमानस उस महान शक्ति की सेवाओं का कमी नहीं भूल सकता। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् भी उनके शान्ति समर्थन व युद्ध विरोधी विचारों का सदैव आदर करता रहा।

लालबहादुर शास्त्री एवं उनके विचार

हम रहे या न रहे तबिन यह झण्डा रहना चाहिये और देग रहना चाहिए। और मुक्त शिवबास है कि यह झण्डा रहेगा हम और प्राप रह या न रहे तबिन भारत का निर ऊंचा होगा। भारत दुनिया के देश में एक बड़ा देश होगा और जायद भारत दुनिया को कुछ दे भी सके।
—लाल बहादुर शास्त्री

प्रखर राष्ट्रीयता के पृष्ठ पीपक शील सम्पन्न मानवता के प्रतीक कमठ एवं साहसी गौह पुरुष श्री आत्मजी का जन एक साधारण गरीब परिवार में हुआ था। साधारण सम्भृतमय गिता उपनयन के साथ ही राष्ट्र सेवा एवं मानवता की सेवा प्रापके धाजीवन उद्देश्य था। मानव-सेवा व देश सेवा की प्रवृत्ति ने प्रापको मानवता के सबसे बड़े पुत्रों के प्रासन पर प्रारुद्ध होने में हाथ बटाया। एक अत्यन्त साधारण परिवार से उठकर शास्त्रीजी राष्ट्र की राजनीति में प्रवर बनकर चमक उठे। उनकी दृढ़ निश्चयी कमनिष्ठा न उहे ऊपर उठाया तथा भारतीय जनता का धाराणात्र बना दिया। उनके अतिरिक्त न यह स्पष्ट कर दिया कि व्यक्ति ज म से ही नहीं धनितु स्वकीय गुणों से महान बनता है। उन्होंने अपने कमठ जीवन के द्वारा यह सिद्ध करके दिया कि एक निपन परिवार में जन्म लेकर भी एक कमठ व्यक्ति उच्च स्थान की प्राप्ति कर सकता है। शास्त्रीजी केवल त्याग सेवा और सदगुणों के सहारे ऊंचे उंचे प्राग प्राये और उन्होंने देश को सकल नवृत्त प्राग दिया। भारतीय संस्कृति में जो भी उच्छ और अमिताथ है शास्त्री जी उसके सन्ने प्रकथ। उनके महान शक्ति व की विरोधता उनकी सांगी हृदयस्वरुप शक्ति युद्ध प्राधरण और धर्म्यवप्राय था। उनमें मनुजन बनाये रखन कठिन परिस्थितियों ने अकन और समझौता करान की। बसोप प्रतिभा थी। वे सर्व धर्म्यपन गिन व सहृदय व्यक्ति थे। वे विश्व शांति के प्रखर पुत्रा थे। राष्ट्रीय हित प्रास्त्रीजी का अरमोच्छ

सह्य या घोर इसी साधना में तल्लीन यह महा-मानव राष्ट्र के नाम इस मानवता को अपने अनूठे विचार अनिर्व्यक्त कर विभवशान्ति एवं मत्री के लिए बलिदान हो गया। समय समय पर वह अपने मानवतावादी विचार अनिर्व्यक्त किया करते थे। उन्होंने राष्ट्र एवं मानवता के विभिन्न पहलुओं को अपनी मूर्धन्य एवं महत् बुद्धि से परखा एवं समरोचित समाधान किया। विभिन्न पहलुओं पर उनके विचार निम्न प्रकार हैं—
कुशल राजनीतिक नेता

शास्त्रीजी एक सफल राजनेता थे। प्रत्येक राजनीतिक प्रश्न का समाधान अपनी प्रभुत्व विद्वत्ता से करते थे। गीता के योग कर्मस्य कौशल में उनकी पूर्ण प्राप्ति थी। वे प्रत्येक समस्या का समाधान अपने अद्भुत नवत्व के कारण अद्वैत पूर्ण ढंग से करते थे। वे गोविन्द वल्लभ पंत इनके राजनीतिक गुरु थे। शास्त्रीजी की मना कमठना हृदयता वक्तव्यनिष्ठा और घात विश्वास में अटूट प्राप्ति थी। सादगी पूर्ण जीवन एवं मानवता की सेवा ही व नवत्व का कसौटी मानते थे। त्यागमय निष्ठा एवं अतर्क परायणता साहस एवं हठ धारणविश्वास को वे सफल राजनेता के प्रमुख गुण मानते थे। इन्हीं सोचियों से वह महाभाग्य प्राप्त बड़ा। समानता एवं मानव अधिकार में उनकी अटूट श्रद्धा थी। यही कारण था कि उन्होंने सभी दिशाओं में सभी का विश्वास प्राप्त कर लिया। राष्ट्रहित को प्रमुखता देकर वे ही प्रत्येक समस्या का समाधान करना उचित समझते। दक्षिण गुण उनके राष्ट्रिय नतन में अरुण निहित हुआ।

नेहरू-या के पृष्ठपोषक

सामबहादुर शास्त्री अपने प्रधान मन्त्रित्व काल के पूर्व नेहरू के प्रत्येक कार्य में हथ बगवा करते थे। यही कारण था कि वे नेहरू का शास्त्री पर महत् विश्वास था। वे जानते थे कि शास्त्रीजी मरे जाने तक की सागर अपनी अद्भुत प्रतिभा अमोघता एवं नेतृत्व के कारण समस्त भारत वस्तुतः एका ही हुमा। शास्त्रीजी ने नेहरू के प्रत्येक हाथ मार्ग एवं विचार को पूर्णतः प्रशंसित था। नेहरू द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण शास्त्रीजी ने किया इसी की वजह से प्रति वर्षीय नवी अर्थात् जीवन सम्पन्न थे। नेहरू द्वारा स्थापित वरराष्ट्र नीति का भी उन्होंने उद्देश्य किया और उस कार्यान्वयन में किया।

शास्त्रीजी सामाजिक उन्नति का आश्वासन पर जोर देते थे। समाज-सेवा उनके जीवन का उद्देश्य था। वे भारतीय समाज के अन्तर्गत असाधारण थे। उनकी मान्यता थी कि धार्मिक एवं जनता के युग में समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज की उन्नति अन्तर्गत राष्ट्र की उन्नति अर्थात् है। अन्तः सामाजिक गुणों के अन्तर्गत समाज का अन्तर्गत विद्यमान स्थिति से उच्च मानव में अन्तर्गत रहता है। सामाजिक गुणों के अन्तर्गत ही पूर्व के लिए अन्तर्गत अन्तर्गत जीवन

सादगीमय कष्ट साध्य, सत्यप्रती एवं मानव कल्याण के हित चिन्तन के रूप में बिताया। वे मुख्यतः अर्थविकासित एवं निम्न जातियों को ऊपर उठाने में कृत सकल्प थे। तत्कालीन प्रण्डाचार एवं भ्रष्टाचार परस्त वातावरण से उनका मा सख विप्र रहता था। वे प्रण्डाचार विरोधी थे। पक्षपात एवं निम्न प्रवृत्तियों उनसे काफ़ी दूर थीं। वे समाज को हड़ करिष एवं कृत अनिष्ट बनाने क पक्षपाती थे।

उनका ईश्वर में विश्वास एवं धर्म के प्रति अटूट धन्य था। ईश्वरपरायणता उनके दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार था। सभी धर्मों के प्रति उनका हृदय में सम्मान था। मानव मानव भाई भाई' उनका मूलमन था। वे समाज एवं राष्ट्र सेवा को ही समाज के विकास का प्रमुख आधार मानते थे। उन पर हिन्दू धर्म क कट्टर अनुयायी होने का आरोप पाक विदेश मंत्री जुट्टो जैसे व्यक्ति लगा सकते हैं। नेटिव साम्प्रदायिकता की भावना उनसे कोसों दूर थी।

धार्मिक विकास एवं राष्ट्रोन्नति

शास्त्री जी हृदय से एक सच्चे समाजवादी भी थे और उनका प्रयत्न हमेशा यही रहा कि देश की राजनीतिक धार्मिक सामाजिक सभी नीतियाँ समाजवादी स्थापित करने में सहायक हों। धार्मिक क्षेत्र में वे व्यावहारिकतावादी थे। उनका ध्येय स्वकीय धार्मिक इष्टिकोण था जो महात्मा गांधी एवं जवाहरलाल नेहरू के धार्मिक धारणा पर आधारित था। योजनाबद्ध तरीके से धार्मिक विकास एवं राष्ट्रोन्नति में उनकी पूरी आस्था थी। जनसाधारण की समृद्धि में उनका विश्वास था। उनके मतानुसार भारत में योजनाओं का उद्देश्य जनता पर से दरिद्रता का बोझ कम करना ही होना चाहिये। वित्तीय उपकरणों में उनकी पूरी आस्था थी।

वे राष्ट्रीयकरण के पक्ष में अधिष्ठ नहीं थे। शांतिवादी व्यक्ति होने के नाते किसी व्यक्ति को अनावश्यक धारणा पठुचाना व उचित नहीं समझते थे। उनका यह विश्वास था कि निजी उद्यम और सांख्यिक उद्यम में निरंतर विकास के लिये देश में काफ़ी गुंजाइश है। वे एक स्पष्ट एवं सतुलित धार्मिक व्यवस्था के हिमायती थे। यही कारण था कि राजनीतिक वातावरण का प्रभाव उन्हीने धार्मिक कार्य साधन पर नहीं धरने दिया। वे स्वतंत्र उद्योगपतियाँ एवं व्यापारियों से निरंतर कहा करते थे कि उन्हें अपनी सामाजिक एवं नैतिक जिम्मेदारियाँ समझनी चाहिए क्योंकि सभी एक 'यूनितम जीवन-स्तर की प्राप्ति सम्भव है। वे मुनाफ़ को धार्मिक प्रथम न देकर क्रमिकों को प्रवृत्ति की ओर बढ़ाने के पक्षपाती थे। शास्त्री जी गांधीजी के इस दृष्टिकोण से समुत्तम थे कि भारत में प्रामाण्य एवं लघु उद्योगों की स्थापना पर बल दिया जाना चाहिये पर तु बड़े उद्योगों की स्थापना एवं उन्नति को भी वे उतना ही आवश्यक समझते थे। वे देश के धार्मिक विकास के लिये हर सम्भव प्रयत्न के लिये कटिबद्ध थे। वे बचत के बड़े पक्षपाती थे। धार्मिक आत्मनिर्भरता उनका प्रमुख लक्ष्य था।

कृषि एवं ग्राम्य विकास

खाद्य समस्या भारत की प्रमुख समस्या रही है। शास्त्री जो हर सम्भव प्रयत्न से इसका हल ढूँढना चाहते थे। व निजी जीवन में सन्तुलित आहार के पक्षपाती थे। कृषि उत्पादन उनका विशिष्ट लक्ष्य था। उनकी भावना थी कि उरज बढ़ाकर ही मातृभूमि की समुचित सेवा सम्भव हो सकेगी। अतः वे सिंचाई योजना विधायक तथा सिंचाई योजना एवं खाद्य उत्पादन के पक्षपाती थे। उनकी भावना थी कि मुगम मुलम साधनों का विवेक से प्रयोग कर उपज बढ़ायी जा सकती है।

ग्रामीण जनता से उन्हें अधिक स्नेह था। भारत की सच्ची आत्मा ग्रामों और विशिष्ट किसानों में निवास करती है। ग्रामों की उन्नति राष्ट्र की समृद्धि है। व यह मानते थे कि देश का धन जमीन से पैदा होता है। राष्ट्र की भाव बढ़ाने और देश को समृद्ध बनाने का दायित्व हम प्रकार प्रकार कृषि प्रधान देश में किसानों के विज्ञान कर्मों का ही आश्रय लेता है। ग्राम विज्ञान एवं कृषि उत्पादन का प्रमुख आधार उनके कर्मों में पचायती राज है। उनका इच्छा में पचायत राज का सर्वम जल्द्री काम ज्यादा से ज्यादा कृषि उत्पादन कर देश की मानवी हानि सुधारना है। कृषि उत्पादन में भारत निरभरता देश की आर्थिक उन्नति की नींव है। उनका विश्वास था कि जहाँ दिन और हड़ता है वहाँ सफलता में सँभल बड़ा। किसान एक सैनिक ही देश के प्रमुख एवं सजग प्रहरी है। इसलिये उन्होंने उपाय किया था जय बवान जय किसान।'

विज्ञान एवं तकनीकी

श्री शास्त्री भारतीय संस्कृति के पृष्ठभूतक होने के साथ ही वैज्ञानिक उत्तरदायक एवं तकनीकी में अग्रिम विश्वास करते थे। उनकी भावना थी कि हम वैज्ञानिक प्रगति की अवहेलना कर विश्व में अपना अस्तित्व नहीं बना सकते। अतः राष्ट्रीय स्तर के अनुसूचक हम इनका अनुकरण करना समुचित है। शास्त्रीजी भारत की प्राचीन संस्कृति और आधुनिकता का सुन्दर सम्मिश्रण चाहते थे। उनका विश्वास था कि जब तक विज्ञान और टेक्नाजोकी के क्षेत्र में हम अपने पुरों पर नहीं खड़े हुए तब तक हमारी प्रगति अवहल रहेगी। चाहे वह आधुनिकता का क्षेत्र हो औद्योगिक उत्पादन या क्षेत्र हो चाहे रक्षा का विज्ञान टेक्नाजोकी के सहारे ही हम भारत निरभर हो सकते हैं।

मानवता विघ्न कर वैज्ञानिक उत्तरदायक न उनकी धारणा नहीं थी। व प्रगति के पक्ष विरोधी थे। उनका प्रधान मंत्री काल में चीन न दो बार परमाणु बम विस्फोट किया और सभी ओर से यह पुकार होने लगी कि भारत भी परमाणु बम बनाय। लेकिन उन्होंने नेहरू की नीति का निनाश हुये स्पष्ट कर दिया कि भारत परमाणु बम बनाकर अपनी अस्व-स्वस्था का खतरे में नहीं डालना चाहता। परमाणु के रचनात्मक प्रयोगों में उनकी आस्था थी। इनके अनुसार परमाणु बम विश्व शांति के लिए सबसे बड़ा सतारा है।

मुहम्मद युद्ध नेता युद्ध सम्बन्धी विचार

शास्त्री जी स्वभाव से ही शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। फिर घातिकांन से शान्ति की दुहाई देने वाले राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर धारणी होने के पश्चात् उनका शान्ति स्वरूप और मुहम्मद होना स्वाभाविक था। लेकिन जब कोई ऊपर ही था पड़ता है तो चुन बड़े रत्ना उनका सिद्धांत न रहा था। भारत सदैव पाकिस्तान व चीन व साथ मित्रता का इच्छु रहा है शास्त्री ने श्री इस लक्ष्य को पीटा। लेकिन वह लोह पुरुष इसके साथ बनत भी नहीं थे। युद्ध से उन्हें घृणा थी। मानवता के लिए प्रतिस्मृत पुत्रारी वे मानवता का ध्वज नहीं चाहते थे। पर वह समझ दान की एकना, परण्डता और प्रमत्ता पर किसी की चुनौती सदन करन जाने भी नहीं थे। लेकिन का जवाब शक्ति से देने के वह पक्षपाती थे। समझौते से पक्षपाती थे। प्रथम बार जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया तो ब्रिटेन को मध्यस्थता स्वीकार कर समझौता किया। पर पाकिस्तान ने फिर दुवारा नीपण आत्मण किया उनका सामना भी किया। इस बीच भारत और म्यानरक युद्ध में वे हिमाचल जैसे घड़िया रहे। उनको घानी जनता पर पूरा विश्वास था और दृष्टता से सामना करते रहे। व यह मानते थे कि प्रत्येक भारतीय भारत का मस्तक न भुङ्कने पाय और उसका भण्डा ऊंचा रहे इसके लिये बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने को तयार है। इसी दृष्टि आत्मविश्वास ने उन्हें युद्ध-नेता बना दिया।

भारतीय विदेश-नीति

परराष्ट्र नीति के सम्बन्ध में व नहरू के आदर्शों के प्रतीक थे। तटस्थता में उनकी आस्था नहीं थी। वे सलग्नता के पृष्ठपोषक थे पर मफिर घनननता के। प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भारत को अपना मूलत्वपूर्ण पाठ प्रण कराने के पक्षपाती थे। विश्व के सभी राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना उनका प्रमुख ध्येय था। मानवीय समस्या समुच्च राष्ट्र सभ में उनकी परी आरथा थी। अविकसित राष्ट्रों के उत्थान के समर्थक थे। उनका प्रति शास्त्री की गहरी सहृदयता थी। प्रत्येक राष्ट्र की सावभौम सत्ता का व आदर करते थे।

अमान्यता की नीति को शास्त्री ने सन्निय रूप लिया था। किसी गुट में शामिल न होकर शान्तिवय तरीके से राजनीति चलाया प्रमुक्त था। उनके शांति में यही नीति राष्ट्रीय हित का सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है। अविकसित एवं अल्पविकसित राष्ट्रों के लिए यही नीति उपयुक्त है।

पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति व्यवहार सफल चालाक्य

शास्त्रीजी पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि हम उनसे नती कर सकते हैं जब पड़ोसियों के साथ सहोदायता का व्यवहार हो। व एशिया महाद्वीप की प्रगति शान्तिमय परिस्थितियों में ही सम्भव मानते

थे। चीन व पाकिस्तान कट्टर शत्रु होते हुये भी शास्त्रीजी उनकी मित्रता के लिये बटवन्द थे। प्रधानमंत्री श्री शास्त्री ने पदग्रहण करने के बाद दिनांक ११ जन १९६४ की रात पहली बार अपने राष्ट्र व्यापी ब्राडकास्ट में भारत और पाकिस्तान के बीच सम्भावनाओं और पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पर जोर दिया और कहा कि यह केवल दोनों देशों के लिये आवश्यक हांग बल्कि एशिया की शांति और समृद्धि में भी इनका बहुत बड़ा योगदान रहेगा। अफाकी एग्रीआई एक्टा के श्री शास्त्री समर्थक थे। चीन के साथ भी य शांतिमय वार्ता के उत्सुक थे। अतः पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति उनकी नीति शांतिमय मित्रता एवं सहयोग पूर्ण थी। अन्तर्विद्विष्ट राष्ट्रों को यथा सम्भव सहयोग देने के व पूर्ण पक्षपाती थे।

शास्त्री एक सकल चाखुबय भी थे। पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति मित्रता पूर्ण व्यवहार करने हुए भी उनका अनुभार राष्ट्र को सजग एवं सशक्त बनाना चाहिये। इसी नीति के कारण पाकिस्तान ने मई की खाई। साथ ही नेपाल भूटान एवं सिक्किम आदि छान् राष्ट्रों को हर तरह की आर्थिक व गानिक एवं तकनीकी मदद देने के भी वे पक्षपाती थे ताकि राष्ट्रीय नीतियों को सुरक्षा बनी रहे।

सफल शांतिदूत

गान्ध्यादुर शास्त्री शांति के लिए बशीद हुए। व मूल रूप से शांति क शायर थे। उनका उद्देश्य था कि भारत मुद्धविहीन और शांतिपूर्ण हो। बन्द्यन ना सम्झोता एवं तावकद धोरणा—उनकी शांतिप्रियता व चरणात्मक चरण हैं। उनका विचारों से शांतिमय वातावरण में ही मानवता का निर्माण सम्भव है। विरय में शांति कायम करने से ही प्रत्येक राष्ट्र की उत्पत्ति सम्भव है। मुद्ध भी विनाश व कारण पर चला रहकर न कोई राष्ट्र बनी पनपा है न पनपाया। बमानिष् प्रगति सभी सम्भव है। साथ ही गरीबी एवं भुखमरी से हम सभी लड सकते जब विरय शांतिमय माध्यमों का प्रयनायगा। श्री शास्त्री शांति के पक्षपाती थे लेकिन इस्लामिक धर्मों कि हम कमजोर हैं बल्कि इस्लामिक कि हम शांति का शत्रु प्रगति तथा मानव जाति का विनाश से बचाने के लिये आवश्यक समझते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति उद्दान काशीगन के निमन्त्रण को स्वीकार करके की। श्री शास्त्री का उद्देश्य था कि जनमानस के हृदय में शांति का फलना है। यह शांति समुत्त राष्ट्रसंघ के सदस्यत्वों से ही सम्भव है। प्रणु प्रायुषों एवं प्राणुबम उनका दृष्टि में शांति को सबसे बड़ा शत्रु है। यदि विरय का ना समय बनाया जा सकता है वा सिर्फ एव ही माध्यम है और वह है परमाणु विहीन विरय। उनका विरयार्थ था कि परमाणु शक्ति विनाश की प्रयनाय रचनात्मक कामों में अधिक सकल सिद्ध हो सकती है। अतः परमाणु बमों के व पार विरोधी थे। शास्त्री जी निष्करीकरण के हिनायता थे।

इस प्रकार शास्त्री जी एक महान् व्यक्ति थे महार ही समक विचार थे। उनकी अविस्मृत प्रतिभा की प्राय मानवता पर अविस्मरणाय रहेगी। दुर्गो लख

श्री शास्त्री का दृढ़ चरित्र सादगी सेवावृत्ति जमठठा माहृत एव सेनानी अतिशय तथा मानवता के हितचिन्तक का रूप भारतीय जनता का मांग प्रकट कर सकेगा।

श्रीमती इंदिरा गांधी के राजनीतिक विचार

श्रीमती इंदिरा गांधी सत्तर के सबसे बड़े गणतंत्र देश भारत की सब प्रथम महिला प्रधानमंत्री हैं। यह उनकी देश सेवा की घट्ट सगन का ही परिणाम था जो उद्देश्य सर्वोच्च ध्यान पर नेहरू एव शास्त्री के उत्तराधिकारी के रूप में सींच लाया। श्री नेहरू की सुपुत्री होने के नाते यदि इंदिरा जी चाहती तो सत्तर के समस्त धाकपणों मुर्खों की उपनिधि स्वगृह ही कर लहीं पर इस देवी स्वरूपा के अक्षय में प्रारम्भ से ही राष्ट्र प्रेम एव मानवता की सेवा के अक्षर प्रस्फुरित हो चुके थे। सभी सुखों को ठाकर मार कर जनों की यातनायें सहो। श्रीमती गांधी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की बमठ सेनानी रही हैं। आप बहादुर महिला भारत की जायत नारी एव महिला रत्न की प्रतीक हैं। प्रारम्भ से ही इंदिरा जी युवा शक्ति सगठन कर उस नवगृहण की ओर ने जान का पक्षपाती रहीं हैं। पीछे जाणित मानवता की आत्मशक्ति से सम्पन्न करने तथा नारी शक्ति का अक्षरण का काय का अर्थ इंदिरा जी को हा है। स्त्रियोजना निमगना एव मृदु नायिका की दली की रा प्रतीक हैं। घट्ट आस्था एव प्राणवान जगत के साथ बिषय मानवता अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एव सद्भाव का समर्थन कर भारत की परम्पराओं का निर्वाह कर रहीं हैं।

श्रीमती इंदिरा गांधी के राजनीतिक विचार

भारत का देश एव वार मन्त्रिण है। इनका विचार है कि मनुष्य को प्रत्येक अनुकूल व प्रतिफल अवस्था पर सतुनन बनाये रखना चाहिये। विरुद्ध परिस्थितियों का शान्तिमय उपायों द्वारा हड़ता से सामना करना चाहिये। मनुष्य जाति सभी उपायों का शिखर पर आरुत हो सकती है जब उसमें प्रत्येक समस्या का सामना करने की क्षमता उत्पन्न हो जाय तभी राष्ट्र एव जाति उन्नति कर सकती है। मनुष्य का साहस की भी नहीं भाग चाहिये। इस अक्षर के कारण इंदिरा जी ने कठिन परिस्थितियों में देश की बागडोर सम्हाली। उन्होंने परिस्थितियों का प्राप्ता एव समस्याओं को सम्यक्ता से दक्षा एव समयाचित समाधान किया।

नेहरू की अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एव विरुद्ध शास्त्री की राष्ट्रीय लोकप्रियता का सुन्दर सम्मिश्रण

इंदिरा जी ने प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं पर भारत को फिर से रखा। अपने पिता के काय जनों की प्राप्ता बढ़ाया। इनका अन्तर्राष्ट्रीय आतृत्वता में हड़ आस्था है। साथ ही राष्ट्र के हित को सर्वोच्च ध्यान देना भी अपना अक्षर अक्षर ही है। यही कारण है कि राष्ट्रीय लोकप्रियता इनकी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। १९९० के द्वितीय निर्वाचन में पुन प्रधानमंत्री का ध्यान मिलना इस बात का

है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की कट्टर समर्थक है। इतना कहना है, यम निरपेक्षा लोकतन्त्र समाजवाद और विश्वशांति के जिन आदर्शों पर इस राष्ट्र की बुनियाद रखी है उनका भी पूरी तरह पालन करेगा। यही ठाकी राष्ट्रीय एकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। देश का भाविक विकास तमो सम्भव है। तकनीकी एवं औद्योगिक उन्नति तमो सम्भव है। भाविक नियोजन तमो सफल हो सके हैं जब हम तमो एक सूत्र में धावद्ध हो प्रयास करें।

विदेश नीति

पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति भावना दृष्टिकोण मनीषूण है। हरे सम्भव प्रयास भाषके इस ओर रहे हैं। पर मनीषूण भावना क साप ही सजगता एवं राष्ट्रहित सर्वोपरि है। और पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति सहयोग पूण नीति भी।

परम्परागत शांति पूण भारतीय प्रवृत्ति की भा समर्थक है। व गुट निरपेक्षता तथा सह प्रतिस्तर की बनी समर्थक है। भाषके नेतृत्व म हम अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़े हैं।

प्रधानमंत्री बनने के बाद श्रीमती गांधी ने विभिन्न पक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की राजकीय यात्राओं तटस्य देशों के शिखर सम्मेलन आदि द्वारा हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति की अनुकूलना प्रतिष्ठा और सफलता को मली भाति स्थापित कर दिया है।

विश्व में शांति की भाष अप्रिम समर्थक है। शांति पूण बातावरण के माध्यम से ही भाषका विश्वास है कि मानवता के घोर शत्रु गरीबी भ्रमान एवं अधविश्वास को दूर कर सकत है। विपतनाम समस्या पर भी भाष भातिपूण हन चाहती है। नि शस्त्रीकरण में भाषकी पूण भाष्या है। इनके शर्तों में भारत सदैव के विश्व-शांति एवं मनी वा भूमिसायी है और रहेगा।

